...त्मा-आलोक

आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्णदेव जी चैतन्य पाराशर
'यायावर ऋषि'

उप कुलपति
विश्व विद्यालय गुरुकुल
कांगड़ी की सेवा में
सप्रेम भेंट

श्री गोपालराज गोयल
भेंटकर्ता मदनानन्द आश्रम
नदी मार्ग, मुजफ्फरनगर

ॐ

चिकित्सा-आलोक

रोगों का निदान, अनुभवी महात्माओं के सुपरीक्षित अनेक गुप्त-प्रयोगों एवं निर्धन-धनिक-उभयविध व्यक्तियों के लिए सुलभ्यौषध-प्रयोगों से युक्त, शास्त्र-प्रमाण और अनुभव से पुष्ट आयुर्वेदीय-चिकित्सा की उत्कृष्ट पुस्तक।
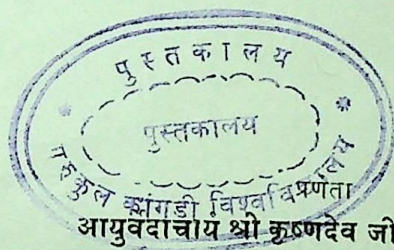
प्रणेता
आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्णदेव जी चैतन्य पाराशर
"यायावर ऋषि"

प्रकाशक
श्री चैतन्य संस्थान, योगाश्रम,
रजपुरा, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण 5000

गुरु पूर्णिमा

संवत् २०३६ विक्रमी

~~मूल्य : १५) रुपये~~

Rs 25P00

प्राप्ति स्थान :

१. प्रकाशक : श्री चैतन्य संस्थान,
योगाश्रम, रजपुरा, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

२. श्री इन्द्र देव
जवाहर बिस्कुट फैक्टरी, घंटाघर, मेरठ २५०००१

३. श्री बृजलाल, रमेशचन्द
मोरगंज बाजार, सहारनपुर (उ० प्र०)

४. श्री सत्य प्रकाश मित्तल
बी-१४, नई गुप्ता कालोनी, दिल्ली-११०००७

५. श्री शान्ति प्रसाद
३२३२ लाल दरवाजा, बाजार सीताराम, दिल्ली ११०००६

मुद्रक : न्यू अग्रवाल प्रिंटिंग प्रेस,
५४ हनुमान पुरी, मेरठ। दूरभाष : ७३१६७

कवर डिजाइन : नरेन्द्र

प्रस्तावना

भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से अद्यावधि तत्त्वज्ञ महर्षियों के -१-शालीन और २-यायावर–ये दो आम्नाय चले आ रहे हैं। इनमें शालीन शब्द उन महर्षियों का अभिधायक है जो ब्रह्मचिन्तनार्थ अरण्य में अथवा ग्राम से दूर रमणीक शान्त एकान्त स्थान में कुटीर बनाकर मनन, निदिध्यासन में परायण रहते हैं और यायावर-पदवाच्य वे ब्रह्मर्षि होते हैं, जो सर्वदा भ्रमण करते रहते हैं, कहीं पर भी स्थाई होकर नहीं रहते। ये दोनों प्रकार के महर्षि समय-समय पर अपने दीर्घकालीन-साधनाभ्यास से प्राप्त अनुभवों को जनता-जनार्दन तक प्रसारित करने के लिये पूर्ण प्रयास करते थे। इसलिए ग्रामीण और नागरिक व्यक्तियों की सन्तप्त-चित्तभूमि को अपने अमूल्य उपदेशामृत से आप्लावित करते और उनके उत्तम सुप्त संस्कारों का उद्बोधन करके उनको नीरोगता, धर्माचरण, कर्त्तव्य-निष्ठा, सेवा, परोपकार, सहिष्णुता, दया, सत्यनिष्ठा आदि अलौकिक भद्र-भावों में प्रवृत्त करते थे।

क्योंकि ब्रह्मानुभूति होने के उपरान्त मैत्री, करुणा, मुदिता, दया, प्रेम आदि दिव्य भावों की वृद्धि स्वयमेव होती है और उसका प्राणिमात्र के मनोमण्डल पर अचिन्तनीय सूक्ष्म प्रभाव अवश्य होता है, अतएव साक्षात्कृत धर्मा, विदितवेदितव्य, महर्षियों द्वारा उपदिष्ट ज्ञान का प्रभाव राजा-और प्रजा दोनों के चित्तमण्डल पर समान भाव से होता है। जो संशय और विपर्यय से शून्य होने के कारण यथार्थ और स्थाई होता है। ऐसे ब्रह्मर्षि का शुभागमन जिस राष्ट्र वा समाज में सौभाग्य से जब कभी होता है, तो वहाँ नृपति से लेकर साधारण जनता का मनोमण्डल उसी प्रकार आकर्षित होता है; जिस प्रकार चुम्बक के प्रति लोहे का आकर्षण होता है। भारतवर्ष सदा से ऐसे महापुरुषों की निधि रहा है। यह भारतीय वह निधि है जो सच्चिदानन्द रूपी सर्वोच्च शिखर पर अधिष्ठित होने के कारण कभी पराभूत नहीं होती। जिसे परमाणु बम आदि किसी भी विप्लवकारक शक्ति का भय नहीं है।

यद्यपि आधुनिक काल में तथाकथित महर्षियों की संख्या अल्पीयसी हो रही है; तथापि प्रभुकृपा से यत्रतत्र उक्त प्रकार के तत्त्वज्ञ महर्षियों की उपस्थिति रहती ही है। "चिकित्सा-आलोक" प्रस्तुत पुस्तक के प्रणेता "आचार्य श्री कृष्ण देव जी चैतन्य पाराशर" भी आधुनिक समय के "यायावर ऋषि" हुए हैं। आपने अविनाशी ब्रह्म तत्त्व की अनुभूति करने के लिए शारीरिक और मानसिक दोषों के शोधक, अल्प सत्त्व व्यक्तियों द्वारा असाध्य और ब्रह्मर्षि-महर्षि-मुनियों से अनुमोदित नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत की पवित्र दीक्षा ग्रहण करके योग्य गुरुजनों की सश्रद्ध सेवा की और उनके मुखारविन्द से निःसृत उपदेशामृत को श्रवण करके–ग्रहण-धारण-ऊह-अपोह-तत्त्वज्ञान और अभिनिवेश प्रक्रिया से सारभाग हृदयङ्गम करके तदनुरूप व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया।

"अनुभूत ज्ञान को केवल अपने अन्तःकरण तक सीमित रखना, अन्यत्र उसका प्रचार वा प्रसार न करना" यह भाव निन्दनीय है। अतएव आचार्यदेव ने सत्यानुभवों को जनता-जनार्दन तक प्राप्त कराने का दृढ़ निश्चय किया। तदर्थ उन्होंने अध्यात्म-ज्ञान और आयुर्वेद-विद्या को प्रमुखता देकर इन दोनों से जन कल्याण कार्य करना आरम्भ कर दिया। क्योंकि अध्यात्मज्ञान सूक्ष्मतम होने से दुर्गम, राजसी तथा तामसी बुद्धि द्वारा अप्राप्य और सात्त्विक धीर पुरुषों द्वारा विज्ञेय है। सर्वसाधारण व्यक्तियों की बुद्धि वहाँ तक नहीं जाती। अतएव आचार्य देव से अध्यात्म-विद्या ग्रहण करने वाले श्रद्धालु, जिज्ञासु-व्यक्तियों की सङ्ख्या उतनी अधिक नहीं रही, जितनी कि आयुर्वेद से उपकृत होने वाले व्यक्तियों की थी।

उन्होंने अनेक ग्रामों में आयुर्वेदीय-औषधि-वितरण की व्यवस्था की। अपनी देख-रेख में भारत वर्ष में अनेक स्थानों पर धर्मार्थ-औषधालय चलाये। जिनमें सहारनपुर जनपद वर्त्ती कोटा ग्राम, मुजफ्फरनगर में पचैंहण्डा-ग्राम और मयराष्ट्रमण्डल (मेरठ) के गोशाला तथा रजपुरा—ये ग्राम लब्धख्याति हुए। इन तीनों जनपदों में आचार्यदेव की "फलाहारी ब्रह्मचारी जी" इस नाम से प्रसिद्धि हुई। यहाँ की अधिकाँश जनता आपकी दयालुता, रोगियों के प्रति आत्मीयता, तप, त्याग, परोपकार और इन्द्रिय-निग्रह आदि दिव्य गुणों से प्रभावित थी। आपने आयुर्वेदीय निम्न पवित्र-आदर्श को आत्मसात् किया और उसको व्यावहारिक रूप में सत्यसिद्ध किया —

धर्मार्थं नार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः।
प्रकाशितो धर्म परैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम् ॥ चरक चि० ।१।

धर्म कार्य में संलग्न, अविनाशी ब्रह्मतत्त्व की उपलब्धि करने के इच्छुक महर्षियों ने धर्म के लिए आयुर्वेद-विद्या का उपदेश किया था। महर्षियों ने आयुर्वेद का उपदेश धन-संग्रह करने के लिए अथवा अन्य कामना की पूर्त्ति करने के निमित्त नहीं किया था।

आयुर्वेद के प्राचीनतम इस आदर्श को आज के युग में निभाना कठिन हो रहा है। परन्तु महर्षि कृष्णदेव चैतन्य ने आयुर्वेदीय इस उदात्त-व्रत का अक्षरशः परिपालन किया था। इस श्रेष्ठ गुण के कारण आपकी ख्याति और भी अधिक विस्तृत हो गई थी। आपके यहाँ रोगी की चिकित्सा निष्काम भाव से होती थी। धनिक और निर्धन आतुरों के प्रति कोई भेदभाव नहीं था। आप जहाँ पर भी जाते अपने साथ औषधियों का एक थैला रखते; जिसमें कुछ विशिष्ट औषध-प्रयोग अवश्य रहते थे। प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा, दया, और प्रेम का भाव रहने से आपके चित्त, वाणी और शरीर में एक अलौकिक चुम्बकीय शक्ति ओतप्रोत रहती थी; जो पण्डित से लेकर साधारण व्यक्ति तक को आकृष्ट करती थी। यही कारण था कि भयङ्कर रोग से पीड़ित रोगी भी केवल आप के समीप में बैठने मात्र से रोग-निवृति का अनुभव करने लगता था। हजारों स्त्री-पुरुष बालक ऐसे थे जो आप के समीप कुछ समय तक केवल बैठकर

अपनी मानस-अशान्ति, क्षोभ,चञ्चलता आदि मनोविकारों का मौनरूपेण समाधान करते थे।

आजकल के समय में यह देखा जाता है कि अनेक पाश्चात्य चिकित्सक (डाक्टर) ऐसे है; जो स्व-विचारों की सङ्कीर्णता और अज्ञता के कारण वैद्यों और आयुर्वेद को हीनदृष्टि से देखते और अपने को सर्वोच्च मानते हैं। आचार्य देव की आत्मिक-शक्ति के समक्ष उक्त प्रकार के अभिमानी व्यक्तियों का मिथ्याभिमान निर्बल पड़ता और उनके विचारों में परिवर्तन होने लगता था। उनके आत्मिक बल से बहुत से डाक्टरों के अन्तःकरण में सुधार हुआ है।

आचार्य देव ने अपने जीवन में विभिन्न रोगों के बहुत-आतुओं की चिकित्सा करके जो अमूल्य अनुभव प्राप्त किया था, जन-कल्याण की भावना से उसे वे लिपिबद्ध करते रहते थे। अपने द्वारा अनुभूत आयुर्वेदीय-चिकित्सा-प्रयोगों को समय समय पर लिखते रहने के कारण ही "चिकित्सा-आलोक' नामक यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। यह पुस्तक अत्युपयोगी है। इसमें अनुभवी महात्माओं के अनेक सुपरीक्षित ऐसे प्रयोग भी हैं, जिनको आचार्य देव ने परिश्रम से प्राप्त किया था। कोटे में सुरक्षित आयुर्वेदीय हस्तलेख एवं पचैहण्डा और रजपुरे से जो कुछ उनके हस्तलेख उपलब्ध हो सके हैं; उन सब हस्तलेखों के आधार पर यह पुस्तक प्रतिष्ठित है।

यद्यपि यह पुस्तक आचार्य देव के जीवन काल में प्रकाशित हो जानी थी, और यदि उनके जीवित रहते हुए प्रकाशित होती तो अपेक्षाकृत और भी अधिक उत्कृष्ट बनती। किन्तु त्यक्तलोकैषण महर्षि ने अनेक व्यक्तियों का आग्रह होने पर भी दुजय लोकैषणा के भय से अपने जीवन काल में इसको प्रकाशित नहीं होने दिया। जब-जब श्रद्धालु जनों ने पुस्तक छपाने के लिए अनुमति प्राप्त करनी चाही; तब-तब उनको यही उत्तर दिया गया कि—"अभी इस पुस्तक के प्रकाशित होने का समय नहीं आया है" अस्तु।

जिन-जिन ग्रन्थों से इस पुस्तक में यत्किञ्चित् सहयोग प्राप्त हुआ है, उन-उन ग्रन्थों के मूल-प्रवक्ता, लेखक, टीकाकार, सम्पादक और प्रकाशक--इन सभी के प्रति हम सविनय हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं। क्योंकि जिन हस्तलेखों पर यह पुस्तक प्रतिष्ठित है; उन हस्तलेखों का कुछ भाग पैंसिल से लिखा हुआ होने से अस्पष्ट था और कुछ भाग जल से भीग जाने के कारण से प्रक्षीणाक्षर था। अतएव सावधानी के साथ लिखने पर भी मानव-सुलभ-प्रमाद-जनित दोषों का रहना सुगम है। गुणग्राही उदारचित्त सुज्ञ पाठकों से विनम्र निवेदन है कि—वे इसके गुणों को नीरक्षीरविवेकी हंसवत् ग्रहण करें।

गच्छतः स्खलनंक्वाऽपि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

निवेदक :
ला० बृजलाल (कोटा निवासी)
व्यवस्थापक
मोरगंज बाजार
सहारनपुर (उ० प्र०)

चिकित्सा-आलोक की विषय-सूचिका

———

ॐ

चिकित्सा-आलोक

मङ्गलाचरण

ओइम्भद्रंकर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितं यदायुः ॥ ऋग्वेदः—१।८६।८
स्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ॥ ऋग्वेदः—१।८६।६
यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मैदेवाय नमो नमः ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् २।१७

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

नमो भगवद्भ्य आत्रेयादिमहर्षिभ्य आयुर्वेदविद्याप्रवर्त्तकेभ्यो नमो गुरुभ्यश्च ॥

हे सच्चिदानन्द परमात्मन् ! आपके अनुग्रह से हम सब व्यक्ति कानों से असत्य, निन्दा, अश्लील आदि अभद्र वाक्यों को नहीं सुनें तथा आप्त महापुरुष और गुरुजनों के हितकर उपदेश श्रवण करें; नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों को अशास्त्रीय विषयों से हटाकर जितेन्द्रिय बनें एवं माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि मान्यदेवों की यथायोग्य सेवा करते हुए यज्ञ, परोपकार, दान आदि श्रेष्ठ कर्मों में तत्पर हों। स्थूल, सूक्ष्म और कारण–इन तीनों शरीरों से सुदृढ़-स्वस्थ रहते हुए निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग और अध्यात्मयोग में स्वजीवन यापन करें ॥

विद्या, बुद्धि, धृति आदि श्रेष्ठ भावों के स्वामी बृहस्पति हमें विवेक ज्ञान सम्पन्न करें; सर्वत्र प्रसिद्धकीर्ति परमैश्वर्यवान् इन्द्र हमारे लिये अभ्युदय-निःश्रेयसप्रद उपयोगी साधनों को सम्प्रदान करें; सर्वज्ञ, पोषक भगवान् विष्णु हमें धी-धृति-स्मृति स्वरूप उत्तम सामर्थ्य से पुष्ट करें; दुःख, भय, पाप, आदि अनिष्टों को चक्रवत् विनष्ट करने वाले अप्रतिहतगति ईश्वर हमें कायिक, वाचिक तथा मानसिक स्वास्थ्य सम्प्रदान करें।

जो देव जल में जीवनीयशक्ति को उत्पन्न करते हैं, अग्नि में प्रकाश, उष्णता आदि गुणों के व्यवस्थापक हैं; जो अन्तर्यामिरूपेण अखिल ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत हैं तथा जो औषधियों एवं वनस्पतियों में व्याधिनाश तथा स्वास्थ्यसंरक्षण की योग्यता सम्पन्न करते हैं; उन देव-देव महादेव के लिए कोटिशः प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो ! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों को नष्ट करो।

महर्षि पुनर्वसु आत्रेय, धन्वन्तरि आदि उन समस्त तत्त्ववेत्ता महर्षियों के चरणारविन्दों में नतमस्तक होकर मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ; जिन्होंने प्राणियों पर दया कर भूमण्डल पर आयुर्वेद आदि विद्याओं का प्रचार तथा प्रसार किया था।

अज्ञानरूपतिमिर को ज्ञानस्वरूप शलाका से नष्ट करने वाले प्रज्ञाचक्षु के उन्मीलक गुरुजनों के चरणकमलों में सश्रद्ध अभिवादन करता हूँ ॥

ग्रन्थ-प्रयोजन

न त्वहं कामये राज्यं न च स्वर्गं सुखानि च ।
प्राणिनां दुःखतप्तानां कामये दुःख नाशनम् ॥

हे सर्वान्तिर्यामिन् ! प्रभो ! आप से मैं राज्य की इच्छा नहीं करता तथा स्वर्गस्थ दिव्यभोगों की कामना भी नहीं है और अणिमा, लघिमा आदि अष्टैश्वर्य आदि से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म सुखों का अभिलाषुक भी नहीं हूँ। हे सर्वज्ञ ! जगदीश ! आपसे केवल यही अभिलाषा करता हूँ कि—आधि-व्याधियों से सन्तप्त जीवधारियों के समस्त सन्ताप शान्त हो करके प्राणिमात्र स्वस्थ तथा आनन्दी होवे। किसी सन्तप्त प्राणी के क्लेश को नष्ट करने में अथवा किसी चिकित्सक महानुभाव की ज्ञान-विवृद्धि में यदि यह ग्रन्थ किञ्चिन्मात्र भी उपयोगी सिद्ध होगा; तो प्रणयन-श्रम सार्थक हो जाता है।

अथ रसायन प्रकरणम् ॥१॥

"स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद् वृष्यं तद्रसायनम् ॥"
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ च० चि० अ: १।
"रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ।"
शा० सं० दीपन पाचन प्रकरण -१३वाँ श्लोक ॥

रसायन की परिभाषा—जिस साधन से स्वस्थ व्यक्ति को बुद्धि, श्रद्धा, उत्साह, मेधा, धृति, स्मृति, ओज, आरोग्यता आदि सात्त्विक पवित्र भावों की प्राप्ति होवे एवं वात, पित्त तथा कफ—ये तीनों दोष समता में रहें और रस, रक्त, मांस आदि धातुओं का उचित उपचय हो; उस साधन को "रसायन" कहते हैं।

असामयिक वृद्धावस्था तथा वात आदि दोषजनित व्याधियों को नष्ट करने वाले जो विशिष्ट उपाय हैं, वे विशेष उपाय रसायन-संज्ञक होते हैं। रसायन सेवन से रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा और शुक्र–इन सप्त धातुओं की यथोचित वृद्धि होने से बिना समय के वृद्धावस्था नहीं आती और अनेक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं; फलतः रसायन सेवी पुरुष दीर्घायु होता है।

रसायन-सेवन के गुण—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणंवयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥
वाक्सिद्धिप्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात् ॥ चरकसंहिता चि० १।७–८ ॥

विधिपूर्वक रसायन-सेवन से मनुष्य दीर्घ आयु, स्मरण शक्ति, धारणाशक्ति, आरोग्य, तरुणावस्था प्रभा-वर्ण तथा वाणी की श्रेष्ठता, शरीर एवम् इन्द्रियों में उत्तम बल की उपलब्धि, वाक्सिद्धि (वाणी से जो कहा वह सत्य सिद्ध हो), निरभिमानता-नम्रता, और शारीरिक सुन्दरता—इन सभी गुणों को प्राप्त करता है।

रसायन सेवन के पूर्व पञ्चकर्म द्वारा शरीर शुद्धि करने का महत्व—

स्नेहन, स्वेदन से जिन व्यक्तियों का शरीर संस्कृत हो गया है; उन व्यक्तियों के लिये बुद्धिमान् वैद्य वमन, विरेचन तथा वस्तिकर्म का प्रयोग करें। इन तीन क्रियाओं के उपरान्त नस्य कर्म करावे। इसके पश्चात् कालविद् वैद्य यथायोग्य रसायन सेवन करावें। इस क्रम के अनुसार जो रसायन सेवी पुरुष अपने शरीर को परिष्कृत करके रसायन सेवन करते हैं; वे उपर्युक्त सम्पूर्ण रसायन गुणों की उपलब्धि करते हैं ॥ चरक

(१) ईश्वरभक्ति योग रसायन

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः ॥
मुण्डकोपनिषद् २।२।५ ।

जिस अक्षर स्वरूप परमात्मा में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, अहङ्कार, और चित्त आदि सम्पूर्ण प्राकृतिक पदार्थ उसी प्रकार से ग्रथित हैं जिस प्रकार सूत्र में मणियाँ ग्रथित रहती हैं, हे मुमुक्षु पुरुषों ! आप लोग उसी अद्वितीय श्रेष्ठ तत्त्व परमात्मा को जानिये। अनावश्यक शब्द जाल को त्याग कर श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा परमेश्वर की अनुभूति करनी योग्य है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, आधि दुःख रूप संसार महासागर से पार होने और कैवल्य–मोक्ष की उपलब्धि करने के लिये एकमात्र उपाय ईश्वरानुभूति है ॥

वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

यजुर्वेदसंहिता ३१।१८ ।

यजुर्वेदीय इस मन्त्र में ईश्वर-तत्व की अनुभूति हो गई है जिनको ऐसे ब्रह्मज्ञानी अपना अनुभव कहते हैं कि—

मैं उस सर्वोत्कृष्ट सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु को जानता हूँ जो ब्रह्माण्डरूपी पुरी में सर्वत्र ओत प्रोत हो रहा है, अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश—इन पञ्च क्लेशों से अतीत है और जो सूर्य के सदृश प्राणियों के अज्ञान को विवेकज्ञान से विनष्ट करता है। उसी को जानकर (अनुभूति कर) मुमुक्षु व्यक्ति जन्म-मृत्यु आदि दुःखों से अतिक्रान्त होते हैं। संसार महासागर से पार होने के लिए तथा मोक्ष प्राप्ति करने के लिए ईश्वर तत्वानुभूति के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है।

ईश्वर को प्राप्त करने की प्रबलाकांक्षा को "ईश्वरभक्ति" कहते हैं। प्रभुभक्ति, संध्या, उपासना, ईश्वरप्रणिधान आदि पद पर्यायार्थक हैं। ईश्वरतत्त्व की उपलब्धि करने में सहकारी वेद-उपनिषद्-योग-गीता-शाण्डिल्यभक्ति सूत्र-नारदीय भक्तिसूत्र आदि शास्त्रों का श्रद्धापूर्वक श्रवण, मनन, नामजप, धारणा, ध्यान और समाधि, भक्तजनों का सत्संग, वैराग्य आदि सभी उपाय ईश्वरोपासना के अङ्ग हैं। प्रभुभक्तिस्वरूप रसायन का सेवन सभी वर्णों के स्त्री, पुरूष, बालक, युवा तथा वृद्ध—ये सभी कर सकते हैं। त्रिकाल सन्ध्या अथवा द्वैकालिक-सन्ध्या को श्रद्धा से करने वाले द्विज, गायत्री-पुरश्चरण, प्रणवजप, वा ईश्वर के अन्य नामों को शुद्धभाव से जपने वाले सभी मनुष्य ईश्वरभक्ति योग रसायन का सेवन करते हैं और अपनी-अपनी भावना के अनुसार मानसिक शान्ति, स्मृति, शारीरिक स्वास्थ्य, दीर्घ आयु आदि गुणों को प्राप्त करते हैं। भगवान् मनु महाराज ने भी कहा है—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ **मनुस्मृतिः–४।९४ ।**

ऋषियों ने समाधिस्थ होकर ईश्वरभक्ति को दीर्घकालपर्यन्त किया और इससे उनको दीर्घ जीवन, ऋतम्भराप्रज्ञा, यश, कीर्ति और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई थी ॥

ईश्वरभक्ति करने से अविद्या जनित अहङ्कार तथा ममकार का क्षय होकर, यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि होती है। भक्ति भाव की जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है;

वैसे-वैसे भक्त के अन्त: करणस्थ राजस और तामस मलिन भावों का अपनयन तथा सात्त्विक शुद्ध भावों की वृद्धि होती है। इससे उपासक का चित्त चञ्चलता शून्य होकर समाधि योग्य हो जाता है। महर्षि भगवान् पतञ्जलि जी ने—"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" (योग २।४५) इस सूत्र में "प्रभुभक्ति से समाधि होती है" ऐसा कहा है। ईश्वर प्रणिधान से प्राप्त होने वाली समाधि में परमेश्वर तत्त्व का यथार्थ अनुभव तो होगा ही; साथ ही साथ आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग) भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं; जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार।

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाऽभावश्च ॥ व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ [योगदर्शन १–२९–३०] इन दोनों सूत्रों में महर्षि जी ने ईश्वर भक्ति से उत्पन्न होने वाला लाभ कहा है। प्रभुभक्ति-योग-रसायन को श्रद्धा से सेवन करने वाले पुण्यात्माओं को आत्मस्वरूप की अनुभूति होती और अभ्यास में आने वाले अन्तरायों (विघ्नों) का विनाश हो जाता है। अभ्यास में विघ्न करने वाले नव कारण होते हैं—वात, पित्त और कफ के कुपित होने से उत्पन्न होने वाले–ज्वर, उदरशूल आदि कायिक रोग और स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, तथा अनवस्थितत्व ये मानसिक रोग चित्त के विक्षेप हैं। भक्ति से ये सभी विक्षेप प्रक्षीण होते हैं।

यदि स्वस्थ व्यक्तियों द्वारा इस रसायन का सेवन होगा, तो उनका स्वास्थ्य सुरक्षित रहेगा और दीर्घ आयु, धातु, मेधा, स्मृति, यश आदि उत्तम गुणों की प्राप्ति होगी। वे प्रज्ञापराधजन्य व्याधियों से सन्तप्त नहीं होंगे। रोगनिवृत्ति के लिये यदि आतुर व्यक्ति इसको सश्रद्ध सेवन करें तो स्वास्थ्य लाभ होगा। हमने अनेक ऐसे आतुरों को देखा है जो सांसारिक चिकित्सकों द्वारा असाध्य घोषित होने पर भगवती भक्ति देवी रसायन को सेवन करके पूर्ण स्वस्थ हुये। सांसारिक चिकित्सा का क्षेत्र साध्यव्याधियों तक सीमित है; परन्तु "ईश्वरभक्तिरसायन" साध्य, असाध्य इन दोनों क्षेत्रों में सफल होती है। यहाँ पर यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि—यदि साध्य तथा असाध्य रोगों में केवल भक्ति से सफलता मिल जाती है तो युक्तिव्यपाश्रय आदि चिकित्साओं का अनवकाश प्रसंग होगा। इस के उत्तर में निवेदन है कि—ईश्वर में दृढ़ श्रद्धा न होने से प्रभुभक्ति नहीं होती। भक्ति के अभाव में उसका फल कैसे मिले। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" जिसकी जैसी भावना होती है; उसे उसके अनुसार फल की प्राप्ति होती है। जिस के चित्त में ईश्वरीय विश्वास का अभाव है उसके लिए अन्य चिकित्साओं की आवश्यकता होगी। ऐसा रोगी भी यदि औषधियोगों के सेवन के साथ-साथ प्रभुशक्ति में विश्वास करके जप, ध्यान, आदि करेगा तो सत्वर लाभ होगा।

ईश्वरप्रणिधान रसायन के सेवन से प्रभु के स्वरूप का सम्यक् प्रकारेण बोध होता है। यह ज्ञान अनुभूतिपरक होने से संशय, और विपर्यय का विनाशक एवं

मोक्षप्रद होगा। इस से मनुष्य कृतकृत्य होगा। जन्म मृत्यु आदि सम्पूर्ण कष्टों की सीमा से पार हो जायेगा।

पथ्य—सात्त्विक भोजन, धर्माचार, माता-पिता–गुरुजन–अतिथि की सेवा, सज्जन पुरुषों का सत्संग, एकान्तनिवास, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह आदि गुणों में प्रीति करनी योग्य है। भक्तियोगरसायन सेवी व्यक्ति के लिए ये सभी गुण कल्याणप्रद हैं। जिन गुणों से ईश्वर भक्ति की दृढ़ता होती हो उन गुणों में अनुरक्ति करनी इष्ट है।

(२) अध्यात्मज्ञान-रसायन

जिस ज्ञान से, आत्मा, प्रकृति, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर आदि का निर्भ्रान्त अनुभव होता है उसको अध्यात्मज्ञान कहते हैं। पञ्च स्थूल भूतों से लेकर महत्तत्त्वपर्यन्त कार्यरूप विकृति तथा सत्त्व-रजः-तम-की साम्यावस्था कारण-स्वरूप मूल प्रकृति के साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध है? परमात्मा और आत्मा का क्या स्वरूप है? और इन तीनों का पारस्परिक क्या सम्बन्ध है? बन्धन और मोक्ष की क्या परिभाषा है? कौन चेतन है और कौन अचेतन? इत्यादि प्रश्नों को जिस विद्या से जाना जाता है? उस विद्या को "अध्यात्मज्ञान" नाम से बोला जाता है।

विद्या के "परा" और "अपरा" ये दो भेद महर्षियों ने माने हैं। इनमें अध्यात्म-विद्या को 'परा विद्या' और जिसमें चेतन तथा अचेतन का अभेद रूप से बोध होता है; विवेकज्ञान नहीं होता उस ज्ञान को "अपरा विद्या" कहा जाता है। सम्पूर्ण भौतिक ज्ञान-विज्ञान अपरा-विद्या में समाविष्ट होता है। इन दोनों विद्याओं में पराविद्या (अध्यात्मविद्या) श्रेयसी है [**"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" श्रीमद्भगवद्गीता १०।३२**] भगवान् श्रीकृष्णजी ने समस्त विद्याओं में अध्यात्मविद्या को श्रेष्ठ माना है। अध्यात्मविद्या को जान लेने पर कोई ज्ञेय पदार्थ शेष नहीं रहता। इस विद्या की अनुभूति होने पर सब कुछ जान लिया जाता है।

जिस अविद्या ने प्राणियों के विवेकज्ञान को आच्छादित कर जीवों को काम, क्रोध, लोभ, मद आदि पाशतन्तुवों में सुदृढ़ रूप से बान्धा हुआ है; जिस अज्ञान जन्य भ्रान्ति से विमूढ़ होकर जीव अपने शुद्ध स्वरूप को विस्मृत कर लेता है और जिस अविद्या के बल से धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, राग-द्वेष स्वरूप षडर (छह अरों से युक्त) संसार चक्र घूम रहा है; उस अविद्या को विनष्ट करने के लिए 'अध्यात्मज्ञान' की आवश्यकता है। अध्यात्मविद्या से अविद्यारूपी अन्धकार उसी प्रकार से प्रक्षीण हो जाता है जिस प्रकार सूर्योदय से निशा का घोर तिमिर विनष्ट हो जाता है।

"य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामा-न्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच" ॥ छान्दोग्योपनिषद् ८।७।१

भगवान् श्री ब्रह्मा जी ने प्राचीन काल में प्राणियों के लिए विज्ञापन दिया था कि—हे जीवो! जो आत्मा निष्पाप है, जरा (वृद्धावस्था) से हीन है, मृत्यु से नष्ट

नहीं होता, शोकातीत है, क्षुधा और पिपासा जिसे व्याकुल नहीं कर सकते, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है; वह अनुसन्धान करने योग्य है, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा अनुभव करने योग्य है। जो विद्वान् अपने जीवन काल में आत्मा-परमात्मा को अपरोक्षरूप में अनुभव कर लेता है, वह समस्त लोकलोकान्तरों में निर्बाध होकर विचरण कर सकता है और उसके लिए अखिल ब्रह्माण्ड में अलभ्य वस्तु कुछ नहीं होती—प्राप्त प्राप्तव्य हो जाता है।

लोक में देखा जाता है कि—किसी घनिष्ट सम्बन्धी की मृत्यु होने से, धन के विनष्ट हो जाने से, अभीष्ट पदार्थ के न मिलने आदि के कारण से व्यक्तियों में—शोक, चिन्ता, मोह आदि अनेक मानसिक विकारों की उत्पत्ति के साथ ही साथ—उन्माद, अपस्मार, यक्ष्मा, हृद्गति रोध, हृद्वेदना आदि विविध शारीरिक व्याधियाँ आक्रमण करती हैं। इससे जीवन अशान्त और दुःखमय हो जाता है। अनेक बार तो तुरन्त मृत्यु हो जाती है। यह व्याधि आजकल उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती जा रही है। पण्डित, मूर्ख, स्त्री, पुरुष, बालक, युवा तथा वृद्ध—ये सभी मनोविकारों से व्यथित देखे जाते हैं। अध्यात्म ज्ञान रसायन के सेवन करने से उक्त आधि एवं व्याधियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं।

"शोकः शोषणानाम्" (च० सं० सूत्र० २५) शरीर का शोषण करने वाले सभी कारणों में "शोक" भयानक है। शोक से शरीर के रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं का शीघ्र क्षय होने लगता है। यदि इसकी योग्य चिकित्सा न की जाय; तो असाध्य व्याधियों का आक्रमण वा मरण होता है। शोक के प्रभाव से सभी इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं। महाभारत के युद्धस्थल कुरुक्षेत्र में श्री अर्जुन जी ने शोक संविग्न होकर श्रीकृष्ण भगवान्‌जी से कहा था—

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ श्रीमद्भगवद्गीता २।८॥

हे भगवान् श्रीकृष्ण जी! मैं यदि भूमण्डल का धन धान्य आदि ऐश्वर्य सम्पन्न, शत्रु-विहीन राज्य को प्राप्त कर लूँ और स्वर्गस्थ देवों के मुख्याधिष्ठाता सुरेन्द्र पद की उपलब्धि भी मुझे हो जाय; तब भी (आपकी कृपा दृष्टि के बिना) अपनी इन्द्रियों के शोषण करने वाले शोक को नष्ट करने में योग्य उपाय नहीं देखता।

श्री अर्जुन जैसे वीर योद्धा को भी अज्ञान जनित शोक ने किंकर्त्तव्यता विमूढ़ कर दिया था, उस अवस्था में उनके हाथ से गाण्डीव गिर गया, शरीर काँपने लगा, मन में भ्रम हो गया, और वे अपने को अवस्थित नहीं रख सके थे। श्रीभगवान् कृष्ण जी से प्राप्त दिव्य चक्षु के द्वारा जब उन्होंने श्रीभगवान् जी का योगैश्वर्य देखा और उनके मुख से अध्यात्मज्ञान का श्रवण करके मनन किया, उसके पश्चात् उनके शोक

का शमन हुआ था। वर्त्तमान में भी अध्यात्मज्ञान के द्वारा श्रद्धालु व्यक्ति लाभान्वित होते देखे जाते हैं।

अज्ञान जन्य शोक, मोह, संशय आदि आधियों की चिकित्सा लौकिक चिकित्सा से सम्भव नहीं है। इसमें वटी, चूर्ण, अवलेह आदि लौकिक साधन अकिञ्चित्कर हैं। छान्दोग्योपनिषद् के सप्तम अध्याय में भगवान् नारदमुनि और अध्यात्मज्ञान के रहस्यज्ञ महर्षि भगवान् सनत्कुमार जी की आख्यायिका है। इसमें साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के ज्ञाता श्री नारदमुनि जी महर्षि सनत्कुमार जी के शरणापन्न हुए और अध्यात्मज्ञान की जिज्ञासा करने लगे। महर्षि ने उनसे पूछा कि—अब तक आपने क्या-क्या पढ़ा है? आपके द्वारा पठित ज्ञान को सुनने के उपरान्त मैं आपके लिए आगे का ज्ञान कहूँगा। इस पर श्री नारदमुनिजी ने—चारों वेदों सहित इतिहास आदि जो अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था, वह सब कह दिया और पश्चात् महर्षि जी से विनम्रता पूर्वक निवेदन करने लगे—

"सोऽहंभगवोमन्त्रविदेवास्मि नाऽऽत्मवित् श्रुतंह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति"।

छा० उ० ७।१।३॥

हे भगवन्! वह मैं केवल मन्त्रवेत्ता ही हूँ, आत्मज्ञ नहीं हूँ। मैंने आप जैसे तत्ववेत्ताओं के मुखारविन्द से सुना है कि आत्म स्वरूप के अनुभवी विद्वान् को शोक अभिभूत नहीं करता, परन्तु भगवन्! मैं शोक करता हूँ, ऐसे शोकाभिभूत मुझ मुमुक्षु को "अध्यात्मज्ञान" कराकर शोक से पार कर दीजिये। इसके उपरान्त महर्षि ने अध्यात्मविद्या का विधिवद् उपदेश करके नारद जी का शोक निर्मूल कर दिया था।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि अचेतन पदार्थों में जब तक आत्माध्यास रहेगा, तब तक शोकादि मनोविकारों से मुक्ति नहीं होगी और मनोदोषों की निवृत्ति हुए बिना प्रज्ञापराध जन्य शारीरिक व्याधियाँ आक्रमण करेंगी ही। अध्यात्मज्ञान रसायन के सेवन करने से अविद्याग्रन्थि कट जाती है। अज्ञान के प्रक्षीण होने पर तज्जन्य शोक आदि विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं। इससे मानसिक चञ्चलता का अपनयन होकर धी, धृति और स्मृति की विवृद्धि होती है। जहाँ शोक, चिन्ता आदि का अभाव है, वहाँ दीर्घ आयु, सुखी जीवन, सन्तोष आदि गुणों की प्राप्ति अवश्य होगी। अतः अध्यात्मज्ञान रसायन सेवी व्यक्ति रसायन जनित सभी उत्तम भावों को प्राप्त होता है।

आजकल के समय में भी आबालवृद्ध कोई भी व्यक्ति जो अध्यात्मज्ञान रसायन के गुणों से लाभान्वित होने की इच्छा रखते हों; वे अध्यात्मज्ञान प्रधान उपनिषद्, योग, सांख्य, गीता आदि शास्त्रों को अनुभवी विद्वानों से सश्रद्ध श्रवण एवं मनन कर और तदनुसार धारणा, ध्यान तथा समाधि में अनुभव करके मानसिक रोग और

शारीरिक व्याधियों का विनाश कर सकते हैं। इसके द्वारा वे दीर्घ आयु, स्मृति आदि रसायन जनित फलों की उपलब्धि करेंगे। इसमें सन्देह के लिए अवसर नहीं है।

तंदुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।

कठोपनिषद् १।२।१२।।

सर्वत्र व्यापक होते हुए भी जो अविवेक रूप गर्त्त में छिपा हुआ सा है, प्राणिमात्र के हृदय रूपी गुफा में विद्यमान होते हुये भी अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप अतिगहन क्लेश तिमिर के कारण जो दुर्बोध हो रहा है और जो सनातन है; ऐसे उस दुर्लभ देव को विशुद्धान्तः करण, विवेक सम्पन्न, साधक अध्यात्मज्ञान योग के द्वारा अनुभव करके हर्ष तथा शोक को अतिक्रमण कर जाते हैं। "हर्ष तथा शोक का अधिष्ठान अन्तःकरण है। आत्मा पर हर्ष एवं शोक आदि विकारों का प्रभाव नहीं होता"—ऐसा अनुभव होने पर शोक, तथा हर्ष का प्रभाव आत्मवेत्ता पर नहीं होता। "अध्यात्म-ज्ञान" रसायन "निश्चित अमूल्य और श्रेष्ठतम महौषधि है।"

पथ्य—अध्यात्मज्ञान रसायन सेवी पुरुष के लिए—अध्यात्म विद्या के अनुभवी महापुरुषों का संग, उनके उपदेश को श्रवण करके तदनुसार आचरण करना, यम नियमों का परिपालन, अल्प भाषण, एकान्त देश में निवास, युक्ताहार और सदाचार का पालन—ये गुण लाभप्रद होते हैं।

कुसंग, चपलता, जनसंसर्ग, कुविचार, राजस-तामस भोजन, अतिभाषण, अतिश्रम, अध्यात्मज्ञान के विरोधी ग्रन्थों का अवलोकन, अहङ्कार आदि को त्यागना उत्तम है।

(३) ब्रह्मचर्य रसायन

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।। **अथर्ववेद संहिता ११।५।१९।।**

ईश्वर चिन्तन, वेदादिशास्त्रों के अध्ययन तथा वीर्य संरक्षण स्वरूप ब्रह्मचर्य से और शीत, उष्ण, आदि द्वन्द्व-तितिक्षा रूप तपोबल के द्वारा देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी और ब्रह्मचर्य से ही सुरेन्द्र ने स्वर्गस्थ देवों के मुख्याधिष्ठातृ पद को प्राप्त किया था।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।। **अथ० ११।५।१७।।**

जिस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य व्रत और तपोमय जीवन से अपनी इन्द्रियों एवं चित्त को स्वाधीन कर लिया है; वह व्यक्ति राजपद के योग्य होता है। ऐसा राजा ब्रह्मचर्य और तपोबल की सहायता से राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति करने में पूर्ण समर्थ रहता है।

जो वेदज्ञ ब्रह्मनिष्ठ आचार्य होते हैं; वे अज्ञान-स्वरूप-अन्धकार का विनाश

करने और ज्ञान स्वरूप सूर्य के उदय के लिये जिज्ञासु ब्रह्मचारी को हृदय से अवश्य चाहते हैं। सुयोग्य आचार्य योग्य ब्रह्मचारी को विद्या देने के इच्छुक होते हैं।

"ब्रह्मचर्य" एक दिव्य रसायन है। यह उन समस्त वासनाओं का उन्मूलन करता है, जो जन्म-जन्मान्तरों से मनुष्य का छाया के समान अनुगमन करती आ रही हैं और उसे ज्ञान-विज्ञान से च्युत करके किङ्कर्त्तव्यता-विमूढ बना देती हैं। पारद, गन्धक, अभ्रक, स्वर्ण, लौह-आदि औषध-घटित रसायनों के समान केवल स्थूल शरीर पर प्रभाव करने तक ही यह सीमित नहीं है; प्रत्युत स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन शरीरों पर समान रूप से दिव्य प्रभाव डालने वाली उत्कृष्टतम महौषधि है। मृत्यु के उपरान्त जहाँ स्थूल शरीर नहीं रहता, जिसे किसी भी भौतिक यन्त्र से नहीं देखा जा सकता; जिसमें केवल आतमा शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगता है; मरणोत्तर ऐसी सूक्ष्म-अवस्था में भी "ब्रह्मचर्य रसायन" का सूक्ष्म प्रभाव अवश्य रहता है। "ब्रह्मचर्य" यह वही रसायन है जिसे युग-युगान्तरों से महर्षि, ऋषि, योगी, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ—ये सभी श्रद्धापूर्वक सेवन करते चले आ रहे हैं। अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश स्वरूप पञ्च क्लेशों का निर्मूलन करने के लिए और सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में अविचलित-अवस्थिति पाने के लिए यदि तीनों लोकों में कोई श्रेष्ठतम रसायन है, तो वह ब्रह्मचर्य ही है।

"ब्रह्मचर्य" (=ब्रह्म + चर्य)—इस शब्द से मुख्यतया १—ईश्वर-चिन्तन, २—वेदाध्ययन और ३—शुक्र संरक्षण—इन तीन अर्थों का बोध होता है। इन में से प्रत्येक अर्थ की उपलब्धि करने के लिये गुरु सेवा, दीक्षा, तपश्चर्या, श्रद्धा और मनोनिग्रह आदि आवश्यकीय अङ्गों की अत्यधिक उपयोगिता होने से इनको भी ग्रहण करना पड़ता है। ईश्वर-चिन्तन, वेदाध्ययन और शुक्र संरक्षण—इन तीनों भावों का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध होने से किसी एक की उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि ईश्वर-चिन्तन में मन को पूर्ण समाहित करने के लिए वेदाध्ययन जनित यथार्थ ज्ञान और वीर्य-संरक्षण की महती आवश्यकता होगी। उसी प्रकार वेदाध्ययन में पारङ्गत होने के लिए ईश्वर-चिन्तन तथा शुक्र-संरक्षण और वीर्य की सम्पूर्ण रूपेण सुरक्षा करने के लिये सम्यक् ज्ञान तथा ब्रह्म-चिन्तन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतएव पूर्णतया "ब्रह्मचर्य रसायन" सेवी व्यक्ति के लिये तीनों का एक साथ अभ्यास करना न्याय है। स्मरण आदि अष्ट-विध मैथुन से दूर रह कर मन को ईश्वर चिन्तन तथा वेदाध्ययन में प्रवृत्त रखना ही ब्रह्मचर्य है।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जः शुक्रं तु जायते ॥सु०सू०१४।१०॥

शुक्रोत्पत्ति का क्रम—

भुक्ताहार से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदः (चर्बी), मेदः से अस्थि, अस्थि से मज्जा और उससे शुक्र की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सप्तम धातु वीर्य या शुक्र बनती है। इसके आगे भी वीर्य का जो अन्तिम सार निष्पन्न होता है

उसे ओज कहते हैं। जिस प्रकार दूध में घृत और तिलों के अन्दर तैल व्याप्त रहता है; उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में शुक्र तथा ओज अवस्थित रहते हैं।

शरीर में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, भृकुटि (आज्ञा) और ब्रह्मरन्ध्र--ये सात चक्र हैं। इनमें अनाहत (हृदय स्थान) यह चक्र शरीर के मध्य भाग में स्थित है। हृदय के ऊपर और नीचे वायु का आकर्षण बना हुआ है। अपान, प्राण और उदान इन का परस्पर विपरीत दिशा में आकर्षण रहता है। प्राण तथा उदान शरीर को ऊर्ध्वगति देते (आकर्षित करते) और इनके विपरीत अपान वायु अधः आकर्षण करती है। यह आकर्षण ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार पृथिवी और नक्षत्र लोकों में रहता है।

इस प्रकार से हमारे शरीर में दो प्रकार की गति होती है। उसे ऊर्ध्वगति और अधोगति नाम से कहा जाता है। कार्य की दृष्टि से यदि विचार करें, तो मन, वायु और वीर्य इनका अन्योन्य घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। इनमें वायु और वीर्य--इन दोनों से चित्त कई गुणा बलिष्ठ तथा सूक्ष्म और आशु प्रभावकारी है। शुभ और अशुभ भेद से मनोभाव की दो धाराएँ प्रवाहित होती हैं। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि मनोभावों से अधोगति और ईश्वर-चिन्तन, अध्यात्म-ज्ञान, धारणा, ध्यान और समाधि से ऊर्ध्वगति होती है।

क्योंकि उत्तम और निकृष्ट दोनों प्रकार के मानसिक भावों का तदनुसार प्रभाव (वायु, वीर्य पर) अवश्य होता है; अतएव प्रशस्त भावों से वीर्य तथा वायु की ऊर्ध्वगति होती है। इसके विपरीत विषय-चिन्तन की धारा में चित्त को प्रवाहित करने से शुक्र एवं वायु की अधोगति निश्चित होती है। युग-युगान्तरों से भारतीय महर्षियों द्वारा अपने श्रद्धालु शिष्यों को जो ऊर्ध्वरेतो विद्या उपदिष्ट होती थी जिसके योगाभ्यास, तत्व चिन्तन, वेदाध्ययन, एकान्तवास, प्राणायाम, आदि मुख्याङ्ग माने जाते थे उनमें चित्त की शुद्धि विशिष्ट उपाय था। आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—इन उत्कृष्ट साधनों को दीर्घकाल, नैरन्तर्य और सत्कार पूर्वक करते रहने से चित्त, वायु तथा वीर्य—इन तीनों की समता होकर जो शुक्र और वायु की ऊर्ध्वगति हो जाती है, जिसे कुण्डली शक्ति का जागरण कहा जाता है; वह ऊर्ध्वरेतो विद्या का एक अङ्ग है।

भारतीय असंख्य महर्षि ऐसे हो चुके हैं, जो आत्म तत्व का साक्षात्कार करने के लिये अविवाहित रहकर ऊर्ध्वरेतो विद्या का अभ्यास करके कृतकृत्य, विदित-वेदितव्य हो गये हैं। यद्यपि आधुनिक काल में इस विद्या का प्रचार वा प्रसार न्यून हो गया है, तथापि आज भी अनेक पुण्यात्मा इस पथ के पथिक हो रहे हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास कठिन तो अवश्य है; परन्तु संसार सागर से पार होने का सर्वोत्तम उपाय है। आत्मा की अनुभूति कराने में अत्यधिक उपयोगी साधनों का निर्देश करती हुई भगवती श्रुति में कहा है।

(१) अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते ॥

प्रश्नो० १

(२) सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।। (मुण्डक० उ०)

अर्थात् जो विवेकी वीर्य संरक्षण, तपश्चर्या, श्रद्धा और अध्यात्म ज्ञान के द्वारा आत्मा-परमात्मा का अनुभव प्राप्त कर लेते हैं वे प्रकाश-मार्ग से सूर्य आदि लोक-लोकान्तरों में इच्छानुसार विचरण करते हैं ।

जो विशुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा शरीर के हृदय प्रदेश में सदा विराजमान है । जिसे निष्पाप, पुण्यात्मा, प्रयत्नशील, अभ्यासी ही अनुभव कर पाते हैं । उस परमात्मा को वीर्य-संरक्षण, सत्य, तपश्चर्या और यथार्थ-ज्ञान—इन चार साधनों के द्वारा प्राप्त किया जाता है ।

"ब्रह्मचर्य रसायन" के सेवन से इह और परत्र—दोनों लोकों में कल्याण होता है। जिस ऊर्जा शक्ति के होने पर शारीरिक स्वास्थ्य, स्फूर्ति, बौद्धिकबल, सामाजिक एवं राष्ट्रीय-प्रगति आदि प्रशस्त भावों की उपलब्धि होती है और प्रकाश-पथ का उदय होता है; उस ऊर्जा-शक्ति के लिए "ब्रह्मचर्य रसायन" का सेवन करना नितान्त आवश्यकीय है ।

पाश्चात्य विचारकों के मतानुसार वीर्य-संरक्षण को अस्वाभाविक और विषयोपभोग को शारीरिक धर्म माना गया है । उनके मतानुसार वीर्य-सुरक्षा होनी कदापि सम्भव नहीं है । किन्तु यह पक्ष अनुभव और शास्त्र-प्रमाण के विरुद्ध होने से आदरणीय नहीं है । कारण आज भी अनेक योगाभ्यासी ऐसे हैं; जो प्राणायाम तथा मुद्रा-बन्ध की विशेष-पद्धति से मूत्रेन्द्रिय के द्वारा जल, तैल, घृत, मधु का ऊर्ध्वाकर्षण करते तथा गिरते हुए शुक्र को स्वाधिष्ठान से ऊपर के चक्रों में आकर्षित करने की सामर्थ्य रखते हैं । इसे अभ्यासी व्यक्ति कर सकते हैं । वारि-वस्ति नामक हठयोग की क्रिया में भी गुदेन्द्रिय से बाहर का जल उदर में भर लिया जाता है । जिस प्रकार जलते हुए दीपक की बत्ती के सहारे नीचे का तैल ऊर्ध्वगति होता है और जैसे वृक्ष अपनी जड़ों के द्वारा भूमि से जल को आकर्षित कर लेते हैं; इसी प्रकार विधि-विशेष के द्वारा शुक्राशय गत वीर्य को ऊर्ध्वगति दे दी जाती है। अतएव उक्त पक्ष मान्य नहीं हो सकता ।

अनेक सद्गृहस्थ स्त्री-पुरुष संयम-अभ्यास, जप, धारणा के बल से अपने मेरुदण्ड में नीचे से ऊपर की ओर कोई सूक्ष्म वस्तु गति कर रही है; ऐसा अनुभव करते हैं । उसमें वायु के साथ वीर्य भी होता है । यह अनुभव उन्हीं व्यक्तियों को होता है जो धातु-संरक्षण का आदर करते हैं । यह भारतीय गुप्त विद्या है । इसे जानने के लिये इन्द्रियों तथा मन को संयम में रखने की अत्यधिक आवश्यकता है । प्रयास करने से कोई भी व्यक्ति इस रहस्य का अनुभव कर सकता है ।

व्यवहार में अनेक ऐसे स्त्री-पुरुषों को पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए देखा गया है कि जिन्होंने लम्बे समय तक संयम करके जिस इन्द्रियातीत, सर्वोत्कृष्ट आनन्द का अनुभव किया था; ब्रह्मचर्य की रक्षा में प्रमाद करने से वह लुप्त हो गया और पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त उनके समीप शेष कुछ नहीं रहा ।

संसार के किसी भी क्षेत्र में उन्नति करने के लिये ब्रह्मचर्य रसायन का सेवन अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री, पुरुष, बालक, बालिका, वृद्ध, युवा, सभी व्यक्तियों के लिए, चारों वर्ण तथा चारों आश्रमों के व्यक्तियों के लिए लौकिक और पारलौकिक कल्याण करने वाला यदि कोई दिव्य रसायन है; तो वह ब्रह्मचर्य है। इसके गुणों की महिमा अचेतन लेखनी से अभिव्यक्त नहीं होती। अनुभव से ही सत्यता का बोध होता है।

"ब्रह्मचर्यम् आयुष्याणां श्रेष्ठम्" आयुर्वर्धक समस्त साधनों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ उपाय है। चरक सूत्र० २५ ।। लौकिक पारलौकिक सुखों के इच्छुक, स्वास्थ्य और दीर्घायु के प्रेप्सु स्त्री-पुरुषों के द्वारा सेवनीय दिव्य रसायन है।

(४) दुग्ध रसायन

"क्षीर घृताभ्यासो रसायनानां श्रेष्ठतमः" (चरक सूत्र० २५)

दूध को संस्कृत भाषा में—दुग्ध, क्षीर, पयः, स्तन्य और बालजीवन आदि नामों से बोला जाता है। यह आबालवृद्ध सभी व्यक्तियों के लिए उत्तम आहार है। मुख द्वारा सेवन किये जाने वाले सभी रसायन द्रव्यों में दूध तथा घृत सर्वोत्कृष्ट रसायन हैं। दुग्ध को भूलोक का अमृत कहा जा सकता है। बालकों के लिए तो यह जीवन ही है। सभी शरीरधारी व्यक्तियों के लिए अनुकूल है। दुग्ध सेवन से मानव शरीर में रस, रक्त, मांस, आदि सप्त धातुयें शीघ्र बनती, नवजीवनसंचार होता तथा स्फूर्ति की अनुभूति होने लगती है। इससे शारीरिक बल की वृद्धि के साथ मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी होती है। स्मृति, धृति, मेधा के संरक्षण में दुग्ध सेवन अतिमहत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मचर्य, भक्ति, अध्यात्मज्ञान के अभ्यास में दुग्ध सेवन से प्रगति होती है। सात्त्विक आहारों में दुग्ध श्रेष्ठ है। सभी दुग्धों में गोदुग्ध उत्तम होता है। बुद्धि, स्मृति, धृति को पवित्र बनाये रखने के लिए और तत्त्वानुसन्धान में प्रगति करने के लिए गोदुग्ध का सेवन अत्युपयोगी है।

उन्माद, अपस्मार, अतत्त्वाभिनिवेश, भ्रम, मूर्च्छा, संग्रहणी, पाण्डुरोग, तृषा, हृदयरोग, अर्श, शूल, वायुरोग, पित्तरोग, गुल्म, आदि अनेक आधि-व्याधियों में दुग्ध का सेवन कल्याणप्रद होता है। इन रोगों में नियमित रूप से कुछ काल निरन्तर दूध का सेवन करने से आशातीत लाभ होता है। ४० दिन का दुग्ध कल्प करने से अन्य उपचार के बिना भी अनेक असाध्य रोग निर्मूल हो जाते हैं। चेतना की निवास स्थली हृदय में उत्पन्न होने वाली अशान्ति, भय, दौर्बल्य आदि व्याधिनाश में यम नियम के परिपालन के साथ-साथ दुग्ध सेवन से निराश हुए रोगी भी स्वस्थ हो जाते हैं।

प्राचीन काल में महर्षि अपने आश्रमों में गौवें रखते थे। उनकी सेवा करके विपुल दूध का लाभ उन्हें होता था। दुग्धाहार से वे स्वस्थ, स्मृतिमान्, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, दीर्घजीवी और तत्त्ववेत्ता होते थे। शारीरिक रोग और मनोदोषों से शून्य रहते थे।

दूध को अधिक उबालने से उसके पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं; जिससे वह पूर्णलाभप्रद नहीं होता। एक वा दो उबाल देकर ईषदुष्ण दुग्ध पीना अच्छा होता है।

धारोष्ण दुग्ध का सेवन करना भी गुणप्रद है। दूध की पवित्रता पर ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है।

जो व्यक्ति इस लोक में और परलोक में सुख शान्ति चाहते हैं, और जो आधि-व्याधियों से मुक्त होने के इच्छुक हैं— उनके लिए सदाचार पूर्वक गोदुग्ध रसायन का सेवन अपूर्वगुणप्रद है। स्वस्थ व्यक्तियों द्वारा यदि दुग्ध रसायन का सेवन होगा, तो दीर्घ काल पर्यन्त वे अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखते हुए धर्म-अर्थ-काम और सुख को प्राप्त कर सकेंगे। रोगियों के द्वारा यदि इसका सेवन होगा, तो व्याधिनाश एवं स्वास्थ्य लाभ होगा।

कफ तथा वायुजन्य रोगों में—शुण्ठी, पिप्पली, पञ्चकोल—इनमें से किसी एक के साथ दूध को उष्ण करके, मधु, गुड़, खाण्ड आदि को सम्मिश्रण कर पिलाना उत्तम है। जिन रोगियों को किसी प्रकार का आहार तथा दूध नहीं पचता हो—उनके लिए २ भाग दूध में १ भाग जल मिला कर उबाल कर इसे थोड़ा-थोड़ा ईषदुष्ण पिलाना लाभप्रद है।

यदि मद्य आदि मादक द्रव्य अधिक मात्रा में पिये गये हों, सोमल, पारद आदि क्षोभक विष खाये गये हों तो दूध में अल्प घृत मिला कर अल्पोष्ण पिलाना हितकर है। पित्तज तथा वातजनित शिरः शूल में भी सघृत दुग्ध का सेवन उपयोगी है।

दूध के साथ—नमकीन पदार्थों का सेवन और शाक, फल, अम्लद्रव्य, मांस, कन्द, आदि द्रव्यों का सेवन करना अहितकर है। परन्तु मधुर आम, किशमिश, द्राक्षा, आदि, शुष्क फल, मधु, मक्खन, त्रिकटु, त्रिफला, सैंधव आदि के साथ दूध सेवन में कोई हानि नहीं है।

(५) घृतरसायन

पर्याय—घृत, आज्य, हविः, सर्पिः—संस्कृत भाषा में ये घी के नाम हैं। घृत सेवन का अभ्यास उत्कृष्ट रसायन है। घृत, तैल, वसा और मज्जा—जो चार प्रकार के स्नेह माने गये हैं इन चारों में घृत श्रेष्ठतम है। घृत अपने स्नेहत्व से वायु को, शीतवीर्य होने से पित्त को और अपने सदृश गुण वाले कफ विकार को संस्कार के द्वारा क्षीण करने से त्रिदोष हर है। घृत को दूध, दाल, शाक, भात आदि में मिलाकर भी खाया जाता है और केवल घी का सेवन भी किया जाता है। उष्ण करके इसे दुग्ध आदि पदार्थों में सम्मिश्रण कर सेवन करना उत्तम है। केवल घृत पीने से जितना अधिक लाभ होता है उतना आहार द्रव्यों के साथ मिलाकर सेवन करने से नहीं होता।

घृत की मात्रा व्यक्ति की पाचन शक्ति पर निर्भर होती है। जितनी मात्रा को व्यक्ति निरूपद्रव पचा सके वही उसके लिए मात्रा है। पाचन सामर्थ्य के अनुसार—१–उत्तम, २–मध्यम और ३–कनिष्ठ ये त्रिविध मात्राएँ होती हैं। इनमें–१–उत्तम मात्रा उसे कहते हैं—जिसको सेवन करके व्यक्ति सरलता से २४ घण्टे में पचा सके।

२–मध्यम—जिसको पीने के पश्चात्–१२ घण्टे (एक दिन) में सुगमता से पचाया जा सके उसे मध्यम मात्रा जानिये। ३–कनिष्ठ–जो आधे दिन में पच सके वह कनिष्ठ मात्रा होती है।

उत्तम मात्रा में घृत सेवन वे व्यक्ति ही कर सकते हैं, जो बलिष्ठ हों, स्नेह सेवन के अभ्यासी हों, जिनकी पाचन शक्ति उग्र हो, और मध्यम मात्रा में घृत सेवन के अधिकारी वे व्यक्ति हैं—जो मध्यम बल वाले हैं, जो अधिक भोजन नहीं खाते। कनिष्ठमात्रा—उन व्यक्तियों के लिए हितकर है—जो अल्पबल वाले हैं, वृद्ध, बालक, सुकुमार हैं; जिनकी जठराग्नि मन्द है।

घृत में अल्प सैंधव लवण सम्मिश्रण करके पीने पर घी का शीघ्र पाचन होता है। घी पीने के पश्चात् अनुपान में उष्ण जल सेवन करना चाहिये। उष्ण जल के अनुपान से पिया हुआ घृत सम्पूर्ण स्रोतों को शीघ्र स्निग्ध करके उनकी कार्य करने की क्षमता को बढ़ाता है। घृत सेवी व्यक्ति को शीतल आहार, शीतल जल से स्नान तथा वेगसंधारण से दूर (घृत सेवन काल में) रहना चाहिए।

शरीर के लिए घृत अतिमहत्त्वपूर्ण है। इससे शारीरिक बल की वृद्धि, नेत्रों की ज्योति:, कान्ति, ओज, तेज, स्वर, स्मृति, बुद्धि, मेधा आदि प्रशस्त भावों की उपलब्धि होती है। दीर्घायु की प्राप्ति के लिए तो यह प्रसिद्ध है। सभी वायुजन्य रोगों में घृत का सेवन उपयोगी है। पित्तजन्य विकारों में इसका प्रयोग तुरन्त लाभकर होता है।

सम्पूर्ण घृतों में गोघृत श्रेष्ठ होता है। यह दिव्य रसायनों में पूजनीय है। यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में देवताओं तथा मनुष्य मात्र को प्रसन्न करने वाला है। गोघृत शुद्ध सात्त्विक आहार है। इसके सेवन से विचारों की पवित्रता, तत्त्वचिन्तन करने योग्य स्मृतिबल, पठित विषयों के पूर्वापर के चिन्तन की क्षमता और अधीत-विद्या को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य, आदि गुणों की प्राप्ति होती है। घृत सेवन के साथ-साथ जो मनुष्य शुद्ध विचार, उच्च लक्ष्य का निर्धारण, मनोनिग्रह, भक्ति, अध्यात्म-ज्ञान, और सत्संग में तत्पर रहते हैं वे नर लोक-परलोक में सुखी रहते हैं तथा संसार में लब्धख्याति होते हैं।

नेत्रों में शुद्ध गोघृत डालने से नेत्रों से जल का स्राव, मलिनता, चिपचिपाहट, नेत्रज्योति की क्षीणता आदि चाक्षुष रोग शान्त हो जाते हैं। जो पुरुष यदा कदा अपने नयन में घी डालते और आज्य खाते हैं, उन्हें नेत्र के रोग प्रायः नहीं होते। १० वर्ष का पुराना घी अथवा इससे भी अधिक पुरातन आज्य अनेक रोगों में लाभप्रद है। कर्ण तथा नेत्रों के शूल में पुराना घी कानों और नयन में डालने पर लाभ होता है। अपस्मार, उन्माद आदि में इसका नस्य दिया जाता है और मस्तिष्क, मेरुदण्ड आदि अंगों पर इसका मर्दन किया जाता है। मधुयष्टी वा मञ्जिष्ठादि कषाय से १०० (सौ) बार धोया हुआ घृत, पित्तजन्य शोथ, मक्षिका आदि विषजनित उत्सेध, कण्डू, दाह आदि को शान्त करता है।

(६) अभया रसायन

पर्याय—हरीतकी, अभया (भयशून्या), पथ्या (हितकारिणी), अमृता (अमृत के तुल्य), शिवा (कल्याण प्रदा), अव्यथा (व्यथाहरा), वयःस्था (आयुः स्थापका), विजया (व्याधियों को जीतने वाली), चेतकी (चेतना देने वाली), ये संस्कृत में हरड़ के नाम हैं।

प्राचीन काल में हरीतकी पर महर्षियों ने गम्भीर चिन्तन किया था। उन्होंने दीर्घकालीन अनुसन्धान के द्वारा यह अनुभव किया कि—मनुष्य के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने तथा रोगों को प्रशान्त करने के लिए हरड़ का सेवन अत्युपयोगी है। इसके सेवन से दोषों का अनुलोमन होता है। उदर में मलावरोध (कब्ज) नहीं होने पाता और खाये हुए आहार का उचित पाचन होकर रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं का उचित निर्माण होता है। मन्दाग्नि का नाश एवं क्षुधा की वृद्धि होती है। शरीर को स्वस्थ रखने और दीर्घायु की प्राप्ति करने के लिए मलावरोध का अभाव तथा भुक्त आहार का युक्त पाचन होकर उससे रस, रक्त, आदि धातुओं का सम्यक् प्रकार से निर्माण होना—यह महत्त्वपूर्ण है। केवल मलबद्धता ही उदर शूल, वीर्यक्षय, शिरः पीड़ा आदि अनेक उपद्रवों को उत्पन्न करने वाली है। यदि इसकी चिकित्सा न हो तो युवावस्था में ही वृद्धत्व आ जाता है और मलावरोध के अभाव में जठराग्नि की वृद्धि रहते हुए वृद्ध व्यक्ति भी युवा के तुल्य बलवान् होते हैं। इसके लिए अभया (हरड़) को सेवन करना अत्यन्त हितकर है।

भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर भोजनोपरान्त हरीतकी सेवन करने की प्रथा आज भी चली आ रही है। भोजन के पश्चात् हरड़ को चबा कर खाने से मुखशुद्धि और जठराग्नि की दीप्ति होती है। भोजन के साथ इसको सेवन करने से बुद्धि की वृद्धि और मन की प्रसन्नता होती है। जो व्यक्ति इसको निरन्तर ४० दिन तक सेवन कर लेते हैं, वे रसायनजनित गुणों को प्राप्त करते हैं। आवश्यकतानुसार ६ मास में ४०–४० दिन के १–२ अभया कल्प करने से अनेक रोगों का आक्रमण नहीं होता और सुख एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार के कल्प जीवन में यदा कदा चलाते रहने पर आयु स्थिर होती है।

"हरीतकी पथ्यानाम् उत्कृष्टतमा" (च० सं० सूत्र० २५)

हितकारक सभी द्रव्यों में हरीतकी श्रेष्ठ है। अपान वायु का अनुलोमन न होने से उदर में वायु की वृद्धि होती है और उससे अधो वायु उर्ध्वगामी होकर हृदय, कण्ठ, मूर्धा–इन प्रदेशों में जाकर हृदय दाह, कण्ठ जलन, खट्टी-खट्टी डकारें आना, शिर में पीड़ा का होना, समय पर मल-मूत्र का न आना, मन का उदास रहना, किसी कार्य को करने की इच्छा का अभाव, आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। आजकल गैस बनने का जो विशेष रोग प्रचलित हो रहा है, उसमें अपानवायु की बिकृति ही प्रधान कारण है। यदि अधोवायु अपना कार्य नियमित रूप से करे; तो गैस नहीं बनती। ऐसी अवस्था में कुछ समय तक निरन्तर भोजनोपरान्त हरड़ चूर्ण सेवन से लाभ

होता है। इससे अपान वायु का अनुलोमन होकर उक्त उपद्रव शान्त होने लगते हैं। उक्त दशा में हरीतकी सेवन के साथ ही युक्त आहार और, शारीरिक व्यायाम तथा मानसिक शान्ति के लिए प्रयास करना भी महत्त्वपूर्ण है।

वात-वाहक केन्द्रों और ज्ञान-वाहक तन्तुओं पर हरीतकी का उत्तम प्रभाव होता है। आरोग्य प्राप्ति के लिये शरीरस्थ वायु की अनुकूलता होनी अत्यावश्यक है। जब तक शरीर में प्राण, समान, अपान, व्यान और उदान—ये पाँच वायु नैसर्गिक अपने-अपने स्थान में स्थित होकर स्व-स्व कार्य को सुचारुरूपेण करती हैं, तब तक शरीर पूर्ण स्वस्थ रहता है और मानस प्रसन्नता तथा इन्द्रियों के कार्य करने की क्षमता अनुकूल बनी रहती है। इसके अभाव में आरोग्य की सम्भावना ही नहीं होती। हरीतकी सेवन से सम्पूर्ण वायु केन्द्र व्यवस्थित होकर कार्य करते रहते हैं, जिससे सुख पूर्वक दीर्घायु की उपलब्धि हो जाती है। अर्धाङ्ग, पक्षाघात, सन्धिवात, गृध्रसी आदि वात प्रकोप जनित व्याधियों से निर्भय रहने के लिये हरड़ का सेवन करना अभीष्ट है। इन रोगों के होने पर भी यदि कुपथ्य का त्याग और पथ्य का पालन करते हुए हरड़ को सेवन किया जाय; तो आशातीत लाभ होता है।

हरीतकी उन दिव्य रसायनों में से है जिनके प्रयोग से सभी प्रकार का हित होता है। किसी प्रकार की हानि नहीं होती। निर्भय रसायन होने के कारण ही इसका एक नाम अभया है। यह जीवधारियों के लिए मातृवत् हितकर है। कहा गया है—

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यति माता नोदरस्था हरीतकी॥

अर्थात् हरड़ मनुष्यों के लिये माता के तुल्य हितकारी होती है। माता तो कभी क्रुद्ध भी हो जाती है। परन्तु सेवन की हुई हरीतकी कदापि कुपित नहीं होती।

हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने दिने।
मोक्षारोग्यतपः कामश्चिन्तयेद् भक्षयेज्जपेत्॥

मोक्ष, आरोग्य और तप—इन की इच्छा करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन भगवान् श्री विष्णु जी का श्रद्धा से स्मरण, हरीतकी का सेवन और गायत्री मन्त्र का जप करना इष्ट है।

जो रसायनार्थ हरीतकी का सेवन करना चाहते हैं, उन्हें वर्षाऋतु में सैंधव लवण के साथ, शरद् में शक्कर के साथ, हेमन्त में सोंठ से, शिशिर में छोटे पीपल के साथ, बसन्त में मधु से और ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करना इष्ट है। मात्रा—१ से ४ माशे तक हरीतकी चूर्ण सेवनीय है।

हरीतकी सेवन के अयोग्य प्राणी—जो मनुष्य मार्ग चलने से श्रान्त हो गया हो, निर्बल हो, उपवास करने से निर्बल हो गया हो, पित्तप्रधान हो एवं गर्भवती स्त्री-इनको हरड़ का सेवन करना अनुचित है।

(७) अमृतफल रसायन

पर्याय–आमलकी, वयस्या, शिव, धात्रीफल, श्रीफल अमृतफल–ये सभी आमले के संस्कृत नाम हैं। आमला हरीतकी के समान ही गुणवान् है, परन्तु इसमें अभया से इतनी विशेषता है कि—यह रक्तपित्त तथा प्रमेह को नष्ट करता है और अत्यधिक धातुवर्धक रसायन है। आमला वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषों को हरने वाला है। स्त्रियों के प्रदर रोग और पुरुषों के वीर्य-सम्बन्धित रोगों में इस रसायन के सेवन से आश्चर्यप्रद लाभ होता है।

"आमलकं वयः स्थापनानां श्रेष्ठम्" (चरक सं० सूत्र० २५)

आयु को स्थिर करने वाली सभी औषधियों में आमला श्रेष्ठ होता है। इसका रस सेवन करने से शरीर में रस, रक्त, मांस आदि धातुवें पुष्ट होती एवं जीवनीय शक्ति की वृद्धि होती है। शुष्क आमले के प्रयोग से भी शरीर का स्वास्थ्य सुधरता एवं दीर्घायु की प्राप्ति अवश्य होती है। इसे निर्धन व्यक्ति भी सुगमता से उपलब्ध कर सकते और इसका सेवन करके अपने अनेक रोगों को शान्त कर स्वस्थ एवं सुखी रह सकते हैं। भारतवर्ष की अधिक जनसंख्या ऐसे धनहीन व्यक्तियों की है, जिनके समीप उदर पूर्ति के लिए अन्न भी पूर्ण नहीं है, ऐसे व्यक्ति भी आमले के सेवन से अपने शरीर को स्वस्थ बनाने में सफल हो सकते हैं। बारह मासो में कभी भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसकी चटनी, मुरब्बा, अचार, अवलेह आदि बनाकर अथवा इसके फलों के छिलकों को छाया शुष्क करके चूर्ण बनाकर प्रयोग में लिया जाता है।

माघ वा फाल्गुन मास में उत्तम आमलों को लेकर, उनकी गुठली पृथक निकाल, छाया में शुष्क कर ले और वस्त्रछन चूर्ण बना ले। यह चूर्ण ३सेर, ३ छटाँक १ तोला लेकर किसी एक मिट्टी के पात्र अथवा शीशे के पात्र में चूर्ण को डालकर ऊपर से श्रेष्ठ आमलों का स्वरस भर दें। इसमें इतनी मात्रा में स्वरस डालें कि यह २१ दिन तक निरन्तर आर्द्र बना रहे, शुष्क न होने पाये। इसके उपरान्त इसे छाया में शुष्क कर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। पश्चात् इस चूर्ण के बराबर गोघृत और उतना ही मधु एवं चूर्ण के अष्टमांश (३२ तोले) छोटी पिप्पली का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण तथा चतुर्थांश (६४ तोले) शुद्ध देशीय खाण्ड को सम्मिश्रण कर घृतलिप्त मृत्पात्र में भर दें और ढक्कन से मुख बन्द कर, श्रावण मास में राख (भस्म) की राशि में रख दें। आश्विन मास पर्यन्त इसी प्रकार से रहने दें। कार्त्तिक के आरम्भ में इसे भस्म राशि से निकाल लें। मात्रा—१ से २ तोले तक अग्निबल के अनुसार सेवन करें। (च० सं० चि० १) यह केवल प्रातः काल ही सेवन करें।

इस रसायन को सेवन कर, ऊपर से अनुपान में गोदुग्ध सेवन करें, अभाव में ईषदुष्ण जल पीवें। औषध पच जाने पर, लाल चावल, साठी के चावल, दूध, मूंग तथा अरहर की दाल, गेहूँ और जौ की रोटी आदि सात्त्विक आहार करें।

गुण—इस रसायन के प्रयोग से बुद्धि, स्मृति, धृति तथा आरोग्यता की उपलब्धि होती है। जो पुरुष जितेन्द्रिय हो कर कुछ समय तक निरन्तर इस रसायन को सेवन करता है, वह स्मृतिमान्, धृतिमान्, बुद्धिमान् और दीर्घायु होता है; एक सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक जीता है। इस रसायन के सेवन से किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं है। निर्भय प्रयोग है॥

(८) त्रिफला रसायन

हरीतकी (हरड़), बहेड़ा और आमला इन तीन प्रकार के फलों को सम भाग में लेकर एकत्र मिलाने से त्रिफला बन जाता है। पर्याय—फलात्रिक, त्रिफला, वरा—ये संस्कृत भाषा के समानार्थक शब्द हैं। त्रिफला को खाने से मलबद्धता (कब्ज) नहीं होती। भोजन का पाचन उचित समय पर हो जाता है। नेत्रों की ज्योति निरन्तर बढ़ती है। प्रमेह, कुष्ठ, कण्डू, दद्रु, विषम ज्वर, कफ वृद्धि जन्य रोग, भोजन में अरुचि, मन्दाग्नि—इन रोगों में त्रिफले का सेवन लाभप्रद है।

एक छटांक त्रिफले को १ सेर जल में सायंकाल भिगो दे और प्रातः काल जीरा, हल्दी, लवण आदि डाल कर त्रिफले का लोहे के पात्र में शाक बना लें और भोजन में सेवन करें। इस प्रकार आठ दिन में एक बार त्रिफले का शाक खाने से उदर रोग, नेत्र रोग, प्रमेह रोग नहीं होते।

रात्रि में त्रिफले के चूर्ण को मिट्टी के पात्र में जल के साथ भिगो ढककर रख दें और प्रातः काल इसे हाथ से मर्दन कर वस्त्र से छान लें। इस जल को कुछ पीने से और इसी जल में नेत्रों को धोने से आँखों की लाली, दुखना, जल स्राव आदि अनेक नेत्र रोग समूल नष्ट हो जाते हैं और नेत्रों की ज्योति में वृद्धि होती है। दाद, कण्डू, कुष्ठ, पामा आदि को त्रिफला के जल से धोने और पीने से अद्भुत लाभ देखा गया है।

वृद्धावस्था में यदि प्रभुभक्ति, आत्मचिन्तन, जप, सदाचार आदि चित्त शोधक साधनों के साथ ही त्रिफले का प्रयोग होता रहे; तो वृद्धावस्था जन्य कास, श्वास, मन्दाग्नि, आदि रोगों का शीघ्र आक्रमण नहीं होता और भजन करने योग्य शरीर की क्षमता बनी रहती है। प्राचीन काल में प्रायः स्त्री-पुरुष केवल त्रिफला चूर्ण के सेवन से अनेक व्याधियों से मुक्त हो करके सुखी रहते और दीर्घायु होने पर भी उनकी कार्यकारिणी शक्ति युवकों के तुल्य होती थी। यह अल्पश्रम और न्यून व्यय साध्य होने पर भी उपयोगी तथा माता के समान हितकर है। आबालवृद्ध सभी स्त्री-पुरुषों के लिए निर्भय प्रयोग है। निर्धन व्यक्ति भी इसका उपयोग करके लाभान्वित हो सकते हैं।

विशुद्ध त्रिफला चूर्ण एक सेर, मुलहठी एक पाव, वंशलोचन एक पाव, पीपल एक पाव और मिश्री एक पाव—इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एकत्र सम्मिश्रण कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से १½ तोला तक। अनुपान—विषम भाग मधु और घृत के साथ प्रातः सायं सेवन करें। गुण—इस रसायन को निरन्तर १ वर्ष तक सेवन करने से, दीर्घायु, स्मृति, धृति, बुद्धि आदि की प्राप्ति होती है। यदि जितेन्द्रिय पुरुष इसका सेवन निरन्तर एक वर्ष तक करेगा, तो वह रसायन जनित सम्पूर्ण गुणों से युक्त होगा॥ च० सं० चि० १॥

(६) निर्गुण्डी-रसायन

निर्गुण्डी के भेद और उसके गुण—निर्गुण्डी के पाँच भेद देखे जाते हैं—१. साधारण, २. कटे हुए कोरदार पत्तों वाली, ३. नील पुष्पा, ४. श्वेतपुष्पा और ५. जंगली भेद से सम्भालू (निर्गुण्डी) पांच प्रकार का होता है। इन सभी में जिसकी त्वचा अथवा पुष्प नीले-काले वर्ण के होते हैं; वह गुणों में श्रेष्ठ मानी गई है। परन्तु यह जाति सर्वत्र उपलब्ध नहीं होती है। श्वेत पुष्पा वा शुभ्र त्वचा निर्गुण्डी सर्वदा सर्वत्र बहुलता से उपलब्ध होती है। अतएव श्वेत पुष्पा निर्गुण्डी के गुण लिखते हैं—

श्वेत निर्गुण्डी के गुण—कटु, तिक्त, कषाय, रूक्ष, उष्ण, मेध्य, चक्षुष्य, केश्य लघु, स्मृतिप्रद, रक्तवर्धक, तथा क्षय, गुदवात, सन्धिवात, केवलवात, सशोथवात, कफ-रोग, गुल्म, प्लीहा और यकृत् की वृद्धि, व्रण, कण्ठरोग, शूल, अरुचि, ज्वर, प्रतिश्याय, कास, श्वास, इन रोगों को शान्त करती है।

रसायन के लिए कौन सी निर्गुण्डी ग्रहण की जाय ?

सम्भालू का वृक्ष गीली भूमि पर अच्छी प्रकार से होता है। यह पतली जड़ों पर उगता है। अङ्कुरित हुए सम्भालू को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। उनमें से प्रथम भाग तो वह है कि जो भूमि से बाहर रहता है। जिसमें वायु लगती है। वह हरित वर्ण और अङ्कुर की कोरों पर मेघवर्ण की छाया सी रहती है। दूसरा भाग वह है—जो भूमि के अन्दर रहता है, जिसमें वायु नहीं लगती है। वह हरिद्रा के समान पीत वर्ण अथवा केशरिया वर्ण का होता है। जिसमें अस्थि नहीं होती। जिसमें कठोरता नहीं हो और पीला रस भरा हुआ हो उसी सम्भालू को रसायनार्थ प्रयोग करना उत्तम है। अन्य को नहीं।

निर्गुण्डी-रसायन की स्वानुभूत विधिः—

प्रथम दिन—जो व्यक्ति रसायन-सेवन करने का इच्छुक हो, तो उसे किसी शुभ दिन और उत्तम नक्षत्र में सद्योगृहीत (ताजी), पीली नव आह्लादक निर्गुण्डी-मूल (जल से घुली हुई) ९ से १२ माशे तक लेकर, गोमूत्र लगभग ५ तोले के साथ सूक्ष्म पीस कर पिला दे। इसके पीने से सम्पूर्ण नाड़ियों का मल विरेचन द्वारा बाहर निकल कर उदर की शुद्धि हो जाती है और शरीर रसायन के उपयोगी हो जाता है।

द्वितीय दिन—सूर्योदय से पूर्व ही रोगी उठकर उष्ण जल से हाथ-मुख धोवे। इसके उपरान्त रोगी के प्रति उत्तम अनुराग है जिसका ऐसे परिचारक के द्वारा १ तोला निर्गुण्डी मूल को ५ तोले गोदुग्ध के साथ सूक्ष्म पिसवा कर पी जाय। सायं

काल पुनः इसी प्रकार औषधि सेवन करे। इस विधि से प्रातः सायं दोनों समय निर्गुण्डी मूल को गोदुग्ध में पिसवाकर ७ मात्रायें (३½ दिन) सेवन करें।

पञ्चम-दिन—निर्गुण्डी की सद्यः प्राप्त (ताजी) जड़ १० तोले, जायफल, जावित्री, छोटी पिप्पली और पिप्पलामूल—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे ले करके जायफल आदि चार द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उक्त १० तोले निर्गुण्डी मूल के साथ मर्दन करें। इसमें सम्भालू की जड़ों का रस डालता जाय और घोटता जाय। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर जब यह औषधि वटी बनाने के योग्य हो जाय, तो इसकी सात वटी बनाकर छाया में शुष्क कर रखें। इसमें से १-१ गोली, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दूध के साथ खावें।

पूर्वोक्त प्रकार से ३½ दिन और वटी के सेवन के ३½ दिन दोनों का योग ७ दिन हुआ। इस विधि से केवल ७ दिन औषधि सेवन करनी है। इसके उपरान्त और सात दिन तक पथ्य का पालन करावें। पथ्य—औषधि सेवन के इन १४ दिनों तक रोगी को निर्वात स्थान में रखना चाहिये। इन दिनों में स्नान न करे। हाथ, मुख धोने और पीने आदि के व्यवहार में उष्ण जल का प्रयोग करे। शीतल जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। चिन्ता, शोक, भय से दूर रहे।

खाने के लिए—अरहर की दाल, गेहूँ की रोटी, शक्कर, दूध और घृत दे। घृत की मात्रा यथाशक्ति प्रयुक्त करे। पन्द्रहवें दिन उष्ण जल से स्नान करना चाहिए। ३ मास तक चना न खाये। हरा धनियाँ, बैंगन, अथवा, गुड़, लाल मरिच का सेवन न करे। हींग, पेठा, और मूली को जन्मभर न खाये। एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे।

गुण—इस रसायन के सेवन से शरीर की पूर्ण शुद्धि, कायिक बल की उपलब्धि, स्फूर्ति और स्मृति शक्ति की प्राप्ति होती है। वात आदि तीनों दोषों की साम्यावस्था होकर, जठराग्नि की दीप्ति और क्षुधा की वृद्धि होती है। जो आहार सेवन किया जाता है उसका उचित पाचन होकर उससे रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं का यथोचित निर्माण होता है। इस रसायन का १५-२० वर्ष तक शरीर में **प्रभाव रहता है। इससे गृहस्थ की ८० से १०० वर्ष तक और ब्रह्मचारी की १५०-२०० वर्ष तक की आयु होती है।** मरण-पर्यन्त सम्पूर्ण इन्द्रियों की कार्य-कारिणी-शक्ति **बनी रहती है।**

यह रसायन वात प्रधान अथवा कफ प्रधान कोई भी व्याधि हो; उसमें कार्य अवश्य करती है। कदाचित् इस रसायन के सेवन से उक्त गुणों की प्राप्ति न होने पर वहाँ विधि दोष, अथवा देश, काल, बल, पथ्य आदि की योजना करने वाले वैद्य की अनभिज्ञता जाननी चाहिये। योजकाभाव में भी रसायन पूर्ण लाभप्रद नहीं होती। यह निश्चित जानिये कि इस रसायन को यथाविधि सेवन करने से यह निष्फल नहीं होगी। इसमें पारद, लौह, ताम्र आदि के तुल्य पूर्व

तथा पश्चात् होने वाली आन्त्र-वायु होने का भय नहीं रहता है। इसके सेवन से प्रारम्भ में कुछ शारीरिक निर्बलता का अनुभव होता है। परन्तु कालान्तर में पुनः पूर्ववत् बल आ जाता है।

वक्तव्य—सात दिन में एक पाव से डेढ पाव तक औषधि और ६ से ७ सेर तक घृत पर्याप्त होता है। किसी-किसी का अग्नि बल बढ़ने से १० सेर तक घी व्यय होता हुआ हमने देखा है। इससे अल्प मात्रा में सेवन की गई औषधि पूर्ण लाभदायक नहीं होती है। औषधि सद्यः (ताजी) रस भरी हुई रुधिर में मिल करके जितना लाभ करती है उतना शुष्क औषधि नहीं करेगी ऐसा मेरा विचार है। कारण—इसमें अनेक ऐसे उड़नशील द्रव्य रहते हैं; जो सूखने पर समाप्त हो जाते हैं। अतएव जहाँ गीली औषधि एक पाव लगती है; वहाँ शुष्क औषधि डेढ़ पाव होनी चाहिए। तभी पूर्ण मात्रा होगी।

(१०) वचादिचूर्ण

श्वेत वचा, सोंठ और शुद्ध भाँग—इन तीनों को समभाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना सुरक्षित रखलें। मात्रा तथा अनुपान—६ रत्ती से १ माशे तक, मधु के साथ प्रातः समय सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण को सेवन करने से कण्ठ का बैठना, वाणी की अस्पष्टता, विस्मृति, कास आदि व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और जठराग्नि की वृद्धि, स्मृति शक्ति और शारीरिक बल का लाभ होता है। उक्त रोगों में इसका सेवन दीर्घकाल तक करना अभीष्ट है। परीक्षित है।

(११) ब्राह्मी रसायन

जल से अच्छी प्रकार शुद्ध धोई हुई ब्राह्मी १ माशा, काली मरिच १० दाने और मीठी वचा ४ रत्ती लेकर शिला पर सूक्ष्म पीसें। सम्यक् प्रकार से पिसने पर एक छटाँक जल में मिलाकर प्रातः समय में पी जावें।

गुण—इस रसायन के सेवन से पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, रुधिर-विकार, उत्सेध, ज्वर आदि रोग शान्त हो जाते हैं। यह कण्ठ के लिए हितकारी, स्मृतिशक्तिवर्धक, मेधा के लिए उपयोगी और आयुर्वर्धक रसायन है। जो व्यक्ति पठित विषय को अथवा श्रुत ज्ञान को शीघ्र ही विस्मरण कर देते हैं उनके लिए यह रसायन लाभप्रद है। विषयों का अधिक चिन्तन करने से स्मृति शक्ति नष्ट हो जाती है। भक्ति, जप, धारणा, आदि के साथ इस ब्राह्मी रसायन को सेवन करने से उक्त स्मृतिभ्रंश नहीं होता और धारणा शक्ति बलवती होती है।

जो विद्यार्थी अपने विषय को स्मरण रखना चाहते हों, तथा जो छात्र विद्या को हृदयङ्गम करने के इच्छुक हों, उनके लिए इस रसायन का सेवन करना अत्युपयोगी है। यदि वे ईश्वर के प्रति श्रद्धा, माता, पिता, गुरुजनों के प्रति आदर भाव और ब्रह्मचर्य का पालन—इन गुणों को धारण करते हुए इस ब्राह्मी रसायन

का सेवन करेंगे, तो यह प्रयोग भगवान श्री रामचन्द्र जी के बाण के तुल्य उनके लक्ष्य को प्राप्त करायेगा।

रसायन सेवन के अधिकारी व्यक्ति

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को संयम में रखते हैं, सदाचार और धर्म का पालन करते हैं, व्यसनों में आसक्त नहीं हैं, सतर्क तथा उत्साही हैं—यदि वे रसायन का विधिपूर्वक सेवन करते हैं; तो उनको रसायन-जनित समस्त गुणों की उपलब्धि होती है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिस किसी रसायन का प्रयोग होने पर मेधा, धृति, स्मृति, दीर्घायु, आरोग्य आदि रसायन जनित प्रशस्त भावों की अवश्य प्राप्ति होती है।

रसायन सेवन के अनधिकारी व्यक्ति

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन नहीं रखते, जो पापकृत् हैं, आलसी, प्रमादी और व्यसनी हैं—वे व्यक्ति रसायन सेवन के अधिकारी नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों को रसायन-जन्य पूर्वोक्त फलों की उपलब्धि सम्भव नहीं है।

अथ वाजीकरण प्रकरणम् ॥२॥

वाजीकरण की परिभाषा—कायचिकित्सा, बालचिकित्सा आदि अष्टाङ्ग आयुर्वेद में "वाजीकरण" भी एक अङ्ग है। वाज शब्द का अर्थ 'वीर्य' है। वीर्यवान् पुरुष को "वाजी" कहते हैं और शुक्रहीन निर्बल पुरुष अवाजी होता है। अधिक चिन्ता, शोक, अतिमैथुन, हस्तमैथुन आदि के कारण वीर्यवान् पुरुष भी निर्वीर्य हो जाता है। जिन उपाय विशेषों के द्वारा निर्वीर्य पुरुष भी वीर्यवान् बन जाता है, उन उपाय विशेषों को "वाजीकरण" कहा जाता है।

गृहस्थ के लिये सन्तान-परम्परा का संरक्षण और उसके लिए वाजीकरण का उपयोग–गृहस्थ आश्रम के लिये सन्तान परम्परा को अविछिन्न बनाये रखना आवश्यक हैं। वंश परम्परा को चलाना धर्म है। प्राचीन काल में महर्षियों द्वारा शिष्यों के लिए अहिंसा, सत्य, आदि जो कल्याणप्रद उपदेश दिये जाते थे, उनमें गृहस्थ धर्म के अनुसार सन्तान परम्परा की सुरक्षा करनी भी महत्त्वपूर्ण थी। तत्त्ववेत्ता गुरुजनों के द्वारा सुसंस्कृत अधीत वेद शिष्यों के लिये कहा जाता था कि—"आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी: ।।"—अर्थात् साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन करने के उपरान्त आचार्य के लिए दक्षिणा स्वरूप प्रिय धन श्रद्धापूर्वक दे करके समावर्त्तन संस्कार करे और गृहस्थ बन कर सन्तान परम्परा को चलावे।

सन्तान परम्परा को चलाने के लिए पुंस्त्व की अनिवार्यता होगी और पुंस्त्व के लिए वाजीकरण अपेक्षित है। वाजीकरण प्रयोगों के सेवन से शुक्र की विशेष उत्पत्ति होती है। जिन पुरुषों की पौरुषी शक्ति किसी कारण से क्षीण हो गई हो, उनके लिए वाजीकरण के योग हितकर हैं। वाजीकरण के सेवन से सन्तानोत्पादन-योग्य क्षमता आती है। इसके साथ ही साथ सन्तानोत्पादनार्थ व्यय हुए वीर्य की पुनः प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष के लिए वाजीकरण उपयोगी साधन है।

रसायन और वाजीकरण में प्रभेद—गृहस्थ पुरुष के अतिरिक्त ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए वाजीकरण के प्रयोग अनिष्टकर हैं। उनके लिए रसायन के प्रयोग उत्तम हैं। रसायन सात्त्विक है और वाजीकरण राजसिक। रसायन के सेवन से ज्ञान, स्मृति, धृति, स्थैर्य, ओज, शान्ति आदि सात्त्विक प्रशस्त भावों की उपलब्धि होती है; अतएव सत्त्वगुणों की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के लिए रसायन का सेवन उत्तम है। वाजीकरण का प्रयोग सात्त्विक व्यक्तियों को नहीं करना चाहिये।

"धर्मानुसार अर्थ तथा काम का उपभोग करने से दोनों लोकों में कल्याण"—

इस लोक और परलोक में कल्याण के इच्छुक गृहस्थ पुरुष के लिए सर्वोत्कृष्ट हितप्रद बात है—धर्मानुसारी अर्थ तथा काम का सेवन। धर्म को प्राथमिकता दे करके जो अर्थ एवं काम का उपभोग होगा वह लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को देगा। धर्म की उपेक्षा करके आचरण करने से दोनों ही लोकों में अशान्ति तथा दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। अतएव अपना हित चाहने वाले पुरुष को वाजीकरण के प्रयोगों में संयम रखना नितान्त आवश्यक है। विषयासक्ति से मन को सुरक्षित रखना ही संयम है।

वाजीकरण के प्रयोगों में संयम की महत्ता—क्योंकि वाजीकरण के सेवन से शरीर और मन में उत्तेजना, चञ्चलता, धृतिशून्यता आदि राजसिक भावों की प्राप्ति होती है; अतएव वाजीकरण प्रयोगों में सभी का अधिकार नहीं होता। जितेन्द्रिय पुरुष के द्वारा ही वाजीकरण का सेवन होना योग्य है। अजितेन्द्रिय पुरुष के द्वारा यदि वाजीकरण का सेवन किया जायगा तो विषयासक्ति की वृद्धि अवश्य होगी। इससे शारीरिक बल का क्षय और मानसिक अशान्ति तथा अनेक रोगों का आक्रमण होना निश्चित है। अतएव चरक संहिता (चि० २।१) में कहा गया है—

"वाजीकरणमन्विच्छेत् पुरुषो नित्यमातमवान्"

अर्थात् आत्मवान् (जितेन्द्रिय) पुरुष पुत्रार्थ नित्य वाजीकरण की इच्छा करे।

भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह करने का उद्देश्य पवित्र आदर्शों की रक्षा करना है। प्राचीन काल से आज तक भारतवर्ष के सुसंस्कृत गृहस्थ परिवारों में परम्परा से यह उदात्त भाव चला आ रहा है। यहाँ के आदर्शवादी, धर्मभीरु, प्रज्ञावती नारी और बुद्धिमान् पुरुष की यह दृढ़ धारणा है कि—"विवाह करने का तात्पर्य विलास नहीं होता, प्रत्युत ईश्वरभक्तिसम्पन्न, दानी, ज्ञानी, देशभक्त, परोपकारी सुसंस्कृत सन्तान की उत्पत्ति करना ही विवाह का उद्देश्य होता है। विवेकी पुरुष यह भी जानता है कि—यदि धर्म की अवज्ञा करके इन्द्रियों पर नियन्त्रण न किया जाय तो घृताहुति से बढ़ी अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के सदृश ही कामनारूपी अग्निशिखा उद्दीप्त हो जाती हैं। जो विषयों के उपभोग से और भी अधिक उग्र बनती जाती हैं। कामनास्वरूप अग्नि की ज्वालाएँ इतनी विकराल होती हैं कि विलासी व्यक्ति के ज्ञान, बुद्धि, शान्ति, स्मृति, बल, तेज आदि सभी पवित्र गुणों को विनष्ट किये बिना शान्त नहीं होतीं।

इसलिए उत्तम **सन्तान की कामना से** ही **वाजीकरण** का सेवन करना न्याय है।

जो गृहस्थ **नवयुवक अपने शारीरिक, मानसिक** तथा बौद्धिक बल को सुरक्षित रखने की इच्छा के साथ ही साथ उत्तम, धार्मिक, बलिष्ठ सुपुत्र की कामना करते हैं; उनके लिए आगे कहे जाने वाले वाजीकरण प्रयोग इष्टकर हैं। इन प्रयागों में से किसी एक का उपयोग करने से लाभ की अनुभूति स्वयं होगी। किन्तु यह बात स्मरणीय है कि—औषधि सेवन काल में संयम का आदर अवश्य होना चाहिये।

विवेक शून्य कामोपहतबुद्धि नवयुवकों के लिए सांसारिक कोई भी वाजीकरण प्रयोग तब तक उपयोगी सिद्ध नहीं होता, जब तक कि वे बौद्धिक भ्रान्तियों को सम्यग् ज्ञान द्वारा शान्त नहीं कर लेते। ऐसे व्यक्तियों द्वारा यह ज्ञान उपासनीय हैं कि—जिस आनन्द का भ्रान्ति से बाहर के विषयों में अनुसन्धान किया जा रहा है, वह सत्य, स्थिर, अविनाशी आनन्द तो अपनी आत्मा में ही उपलब्ध होगा। विषयों के उपभोग में सत्य, आनन्द नहीं है। यदि विषयों के उपभोग से सुख तथा आनन्द की उपलब्धि सम्भव होती, तो भोगी व्यक्तियों के जीवन में सुख, शान्ति तथा आनन्द की अधिकता देखी जाती। परन्तु अधिक विषयोपभोग से—स्त्री तथा पुरुष–ये दोनों, क्षय, राजयक्ष्मा, उन्माद, अपस्मार, अधरङ्ग, अर्दित, श्वास, काम, क्रोध, अशान्ति आदि विविध रोगों से पीड़ित हुए देखे जाते हैं। अतः कहा गया है—"भोगे रोगभयम्"

(१) वाजीकरण-प्रयोग

(१) **हिंगुल योग**—दो तोले हिंगुल (रूमी शिगरफ) की एक डली लेकर उसके ऊपर चारों ओर उत्तम रेशम का सूत्र (डोरा) इस प्रकार लपेटिये कि जिससे हिंगुल का कोई भी अवयव दीख न सके। इसके उपरान्त इन्द्रायण का एक पका हुआ फल लेकर उसमें इतना छिद्र बनाइये कि जिसमें वह रेशम वाली हिंगुल प्रविष्ट हो जाय। अब हिंगुल को उस छिद्र में रखकर ऊपर से कटे भाग से बन्द कर, निर्वात स्थान में १ पाव आरनों (कण्डों) के चूर्ण में फल को रख कर अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर हिंगुल को निकाल कर उसके ऊपर पूर्ववत् रेशमी सूत्र को लपेट इन्द्रायण के फल में रख, पूर्वोक्त विधि से अग्नि दें। इस प्रकार एक-सौ-बार हिंगुल को अग्नि दें। पीछे इस हिंगुल को एक पीतल की कटोरी में रख दें और उस कटोरी को लोहे की कड़ाही में रख, चूल्हे पर कड़ाही को चढ़ा, अग्नि दें। हिंगुल के ऊपर हरे पुदीने का स्वरस एक-एक बिन्दु डालते हुए अग्नि देते रहें। जब एक सेर पुदीने का रस समाप्त हो जाय तब अग्नि जलाना बन्द कर दें और हिंगुल को निकाल लें। इसके पश्चात् कच्ची शिगरफ २ तोले और अफीम २ तोले—इन दोनों को साबुन के तेजाब में मर्दन करें। घोटते-घोटते जब यह लेप लगाने योग्य हो जाय, तो इसे पूर्वोक्त हिंगुल की डली पर लेप लगा, शुष्क करें। लेप के सूखने पर माष (उड़द) के आटे को जल में सान कर हिंगुल के ऊपर एक अङ्गुलि प्रमाण में मोटा लेप चढ़ा, एक हण्डी में एक पाव तिलों का तैल डाल कर चूल्हे पर चढ़ा दें और लेप की हुई हिंगुल को तारों से बान्ध दोला यन्त्र विधि से हण्डी में लटका कर मन्दाग्नि देकर पकावें। इस विधि से इसे तीन बार पकावें। इसके उपरान्त शिगरफ को निकाल लें। पश्चात् हिंगुल के तुल्य भाग में श्वेत हीरा हींग, उतनी ही दालचीनी, पुराना गुड़, बड़ी एला के बीज और कुचले का तैल—इन सबको एकत्र सम्मिश्रण कर खरल करें। अच्छे प्रकार से मर्दन होने पर ६-६ रत्ती प्रमाण की गोली बना, सुखा, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—एक वटी को प्रातः समय निगल करके ऊपर से यथा-

शक्ति दूध पीवें। जब-जब पिपासा की अनुभूति होवे, तब-तब यथेष्ट दुग्ध पान करें। इस वटी से दिन में १५-१६ सेर दूध पच जाता है। यदि घृत पिलाना हो, तो एक छटाँक घी में शक्कर मिलाकर पिलाइये २-३ घण्टे के अन्तर से सम्पूर्ण दिन में १ पाव घृत सेवन करा सकते हैं।

इस योग की प्रशंसा अत्यधिक लिखी है। हमारे अनुभव में भी यह यथार्थ है। हमने इस योग को अनेक बार सिद्ध किया है और अनेक रोगियों पर परीक्षण करके अनुभव प्राप्त किया है। इससे नपुँसक रोगियों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इस योग के प्रभाव से वृद्ध पुरुष भी ४-५ सेर दुग्ध एक दिन में पचाने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। यह अद्भुत वाजीकरण है। इसे अल्प से अल्प ८ दिन और अधिक से अधिक २ मास पर्यन्त सेवन कराने पर हस्तमैथुन आदि कारण से उत्पन्न हुई क्लीबता में आशातीत लाभ होता है। युवावस्था होने के पूर्व ही जो अपनी शक्ति को नष्ट कर चुके हैं उनके लिए यह योग अमृत के तुल्य लाभप्रद है।

(२) अनुपम ताल योग (गुप्त प्रयोग)

प्रथम हरिताल का शोधन करें। "कूष्माण्डे त्रितयेस्विन्नं तालः शुध्यति-नान्यथा" के अनुसार एक पेठे में चार अंगुलि प्रमाण लम्बा तथा उतना ही चौड़ा छिद्र कर, उसमें आठ तोले, अग्नि के तुल्य कान्तिमान्, वंशपत्राख्य (तबकी) उत्तम हरिताल को वस्त्र पोटली में बांध कर रख दें और पेठे के छिद्र को उसी कटे हुए खण्ड के द्वारा बन्द कर, जल से गेहूँ के आटे को सान कर उससे सन्धि बन्द कर दें। इसके उपरान्त इस कूष्माण्ड को मिट्टी के पात्र में रख, चूल्हे पर चढ़ा ४ प्रहर (१२ घण्टे) तक अग्नि जलायें। पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर हरिताल की पोटली को निकाल लें। यह तीन पेठों में इसी प्रकार क्रमशः पकानी होगी। इसके पश्चात् काञ्जी के जल, तैल, चूर्णोदक, गोदुग्ध—इन चारों में क्रमशः दोलायन्त्र विधि से हरिताल पोटली को पकाने पर यह शुद्ध हो जाती है। इसका वर्ण भी (शुद्ध होने पर) परिवर्तित हो जाता है। भस्म के लिए यह उत्तम है।

ताल भस्म विधि—पूर्वोक्त शोधित हरिताल ४ तोले को अर्क दुग्ध के साथ मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा अर्क दूध डालते जायें और खरल करते जायें। जब ३२ तोले अर्क का (मदार का) दूध विलीन हो जाय तब इसे सुखा, पूर्वोक्त विधि से हुण्ड (थूहर) के दूध ३२ तोले में मर्दन करके उसे विलीन करें और शुष्क करें। पश्चात् नवीन उत्तम कुचले का एक पाव चूर्ण लेकर उसे मिट्टी के पात्र में एक सेर जल के साथ भिगो दें और सात दिन पर्यन्त भीगने के उपरान्त मृत्पात्र में चतुर्थांश–शेष क्वाथ बना, शीतल कर, मर्दन कर, छान लें। इस क्वथित जल के साथ उक्त हरिताल को मर्दन करें। पश्चात् २ तोले कच्ची अफीम को ८ तोले जल में २४ घन्टे तक भीगने दें और तत्पश्चात् उसे छान लें, इस छने हुए जल से मर्दन करें। सम्पूर्ण जल का शोषण होने पर ३२ तोले घृतकुमारी के रस में मर्दन करें और अन्त में भांग के स्वरस ३२ तोले को

मर्दन कर उसमें विलीन करें और शुष्क होने पर हरिताल की छोटी-छोटी चक्रिका (टिकिया) बना, एक मास तक छाया में शुष्क होने दें।

एक मिट्टी की हण्डी पर मुलतानी मिट्टी में सने हुए वस्त्र का लेप लगा दें और लेप लगाने के उपरान्त उसे २ दिन तक धूप में शुष्क होने दें। प्रथम लेप के सूखने पर द्वितीय लेप लगावें और पूर्ववत् दो दिन तक सूखने दें। इस विधि से हण्डी पर सात वस्त्र मिट्टी करें। यह क्रिया १४ दिन में सम्पन्न होगी। सात वस्त्र मिट्टी वाली हण्डी में काश्मीरी वरुण वृक्ष के पञ्चाङ्ग की भस्म १ सेर को वस्त्रछन करके डाल दें और उसे हाथ से दबा दें। तत्पश्चात् उसके ऊपर हरिताल की शुष्क हुई टिकियाओं को समीप-समीप में व्यवस्थित रूप से रख कर उनके ऊपर वस्त्रछन वरुण भस्म १ सेर डाल कर, दबा दें और हण्डी के मुख को शरावे से बन्द कर वस्त्र मिट्टी से सन्धि बन्द करें और उसे धूप में सुखा लें। पश्चात् हलवाइयों की भट्टी के समान ऐसी भट्टी बनावें जिसमें एक समान अग्नि लगती रहे। इस भट्टी पर उक्त हण्डी को रख कर १६ प्रहर की अग्नि देकर भस्म सिद्ध कर लें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल सावधानी से हरिताल भस्म को ग्रहण कर लें। सर्वप्रथम इस भस्म की अग्नि पर डालकर परीक्षा करें। यदि अग्नि पर डाली हुई भस्म से धुआँ न निकले तो सिद्ध हुई समझिये। धुआँ निकलने पर इसे असिद्ध मान कर १२ प्रहर की और अग्नि देकर पका लीजिये। अपक्व (कच्ची) हरिताल भस्म महान् अनिष्टकर होती है। कहा भी है—

अशुद्ध तालं खलु पीतवर्णं सधूमकं वातं च पञ्चपित्तम्।
पङ्गु त्वकुष्ठं तनु ते च तेन देहस्य नाशं च करोति सद्यः॥

अर्थात् जिस अशुद्ध ताल का वर्ण पीला हो और अग्नि पर डालने से धूम्र निकलता हो, वह ताल भस्म सेवन करने के योग्य नहीं होती। यदि उक्त अशुद्ध तथा कच्ची हरिताल भस्म का सेवन किया जायगा तो वायु विकार, पित्त रोग, लंगड़ापन, कुष्ठ—ये व्याधियाँ होंगी और शरीर का शीघ्र नाश होगा।

इस विधि से पूर्ण रूपेण सिद्ध की हुई हरिताल भस्म को ही ग्रहण करना इष्ट है। परीक्षा करके जो प्रमाणित सिद्ध हो जावे, उस भस्म को लेकर खरल में सूक्ष्म पीस लें और शीशी में भर कर, उसके ऊपर लिख कर, सुरक्षित रख लें। **यह भस्म** जितनी पुरातन होगी उतनी ही अधिक लाभदायक होती है।

वक्तव्य—काश्मीर में वरुण वृक्ष श्री अमरनाथ के मार्ग में **अधिक होते हैं।** इनकी भस्म अन्य स्थानीय वरुण भस्म की अपेक्षाकृत अधिक गुरु होने से इस कार्य के लिए अत्युपयोगी है। इसमें हरिताल उड़ने नहीं पाती, अन्य राख में उड़ने का भय रहता है। काश्मीरी यवन पुरुष वरुणपञ्चाङ्ग भस्म को विक्रय करते हैं। मैंने अपने मित्र द्वारा वहाँ से भस्म मगायी थी। यह कार्य पलाश क्षार में भी निष्पन्न हो सकता है, परन्तु इसमें अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है।

मात्रा–१ रत्ती तक प्रातः समय रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

स्वानुभूत कतिपय अनुपान लिखता हूँ—१–स्तम्भन करने के लिए—कुछ अफीम को मिला, जायफल में रख, खिला दें और ऊपर से मिश्री युक्त दूध पिला देने पर अद्भुत स्तम्भन देखा गया है। २–उपदंश फिरंग में–ताम्बूल पत्र में रखकर खिलाइये। कण्ठशोष होने पर घृत पिलावें। पथ्य—गेहूँ चने की रोटी घी के साथ दें। लवण निषिद्ध है। इससे पुराना उपदंश रोग भी ७ दिन में नष्ट होगा। ३–शुक्रमेह में—मिश्री के साथ देने पर ९ दिन में लाभ होता है। ४–दोनों प्रकार के अर्श रोग में–पुराना गुड़ १ तोला, यवक्षार ½ तोला के साथ सेवन करके अच्छा लाभ होता है। ५–कर्णशूल में–केशर तथा अदरक के रस के साथ। ६–नेत्रशूल में–पुराने घृत के साथ दें। ७–अपक्व हरिताल जन्य विष में–अकरकरा तथा शीतल जल के साथ दें। ८–शुक्र की तरलता (पतलेपन) में–धारोष्ण गोदुग्ध के साथ ७ दिन तक सेवन करावें और पथ्य में घृत, दूध तथा भात दें। ९–सन्निपात में–आर्द्रक के रस के साथ देकर ऊपर से घृत पिलावें। १०–पाण्डु, क्षय और ज्वर में—मिश्री के साथ दें। पथ्य में मिश्री मिला हुआ दूध और भात दें।

गुण—यह भस्म वाजीकरण है। इसके सेवन से बल और शुक्र की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त अनुपान भेद से यह अनेक व्याधियों को नष्ट करता है। मैंने इस योग को महात्माओं से अति प्रयास करके प्राप्त किया है और परोपकार भाव से यहाँ लिखा है। यह अनेक रोगों पर सुपरीक्षित है। यह कामोत्तेजक है।

(३) क्लीबताहर प्रयोग

शुद्ध श्वेत मल्ल (शंखिया), शुद्ध पीला मल्ल और शुद्ध नाग—प्रत्येक २–२ तोले, शिलाजतु ½ तोला, और काले तिल ८ तोले ले कर सब को एकत्र मर्दन करें। घोटते-घोटते जब औषधि से तैल निकलने लगे तब मर्दन करना (घोटना) बन्द कर दें। इसके उपरान्त एक मिट्टी की हण्डी के तले में समीप-समीप सात सूक्ष्म छिद्र बना कर, उक्त औषध को इस हण्डी में डालें और मिट्टी के ढक्कन (शराव) से हण्डी के मुख को बन्द कर उसके ऊपर वस्त्र मिट्टी करें और इसे सुखाकर पाताल यन्त्र विधि से तैल निकाल लें और इस तैल को सुरक्षित रख लें। पश्चात् हण्डी में अवशिष्ट भाग को सूक्ष्म पीस कर रख लें।

सेवन विधिः—उक्त तैल को इन्द्रिय पर मर्दन करें और पिसी हुई औषध को १ से २ रत्ती तक मक्खन में मिलाकर खावें उसके ऊपर दूध पीवें।

पथ्य – दूध, घी, मिश्री, अरहर तथा मूंग की दाल, ब्रह्मचर्य, आदि हितकर आहार विहार करते रहें।

गुण—यह योग खाने और लगाने के उपयोग में आता है। इसको १५ दिन तक मर्दन करने और खाने से नपुंसकता नष्ट हो जाती है। तैल को उपस्थेन्द्रिय के

ऊपर मर्दन करने के उपयोग में लें और पिसी हुई भस्म को खाने के प्रयोग में लें। पथ्य पूर्वक इन दोनों प्रयोगों से ध्वजभंगता शुक्र की निर्बलता आदि क्लीब-सम्बन्धित दोष नष्ट हो जाते हैं। इससे शरीर में बल और वीर्य की वृद्धि होती है। यह प्रयाग तीस (३०) वर्षों का अनुभूत है।

(४) मल्लादि वटी (महावाजीकरण)

बिल्लौरी शुद्ध श्वेत मल्ल (शंखिया) १ तोला, और स्वर्ण के समान कान्तिमान शुद्ध रूमी हिंगुल २ तोले—इन दोनों को सुदृढ (पक्के) खरल में डाल कर सद्यः प्राप्त कृष्णधत्तूरे-पुष्पों के रस में मर्दन करें। अल्प-अल्प रस डालते रहें और स्थिरता से मर्दन करते रहें। जब इसमें कृष्णधत्तूरे के पुष्पों का ५० तोले रस, शुष्क, हो जाय, तब इसे सुखावें। पश्चात् आध पाव अर्क दुग्ध के साथ मर्दन करके टिकिया बना, छाया में सुखा, नकछिकनी के एक पाव कल्क में रख, सुखा, वस्त्र मिट्टी करके चार सेर उपलों के मध्य में रख अग्नि दें। स्वाङ्ग शीत होने पर युक्ति से भस्म को निकाल लें। इसके उपरान्त इसमें श्वेत एला के बीज ५ तोले मिला कर दृढ़ता से मर्दन करें। जब यह घोटते-घोटते सुरमा (कज्जल) के तुल्म सूक्ष्म हो जाय, तब इसमें तीक्ष्ण ब्राण्डी सुरा को थोड़ा-थोड़ा डालते हुए मर्दन करिये। इतनी घुटाई करिये कि—इसमें ३ शीशी ब्राण्डी मद्य विलीन हो जाय। तीन बोतल सुरा के शोषण होने पर जब यह वटी बनने के योग्य हो जाय, तब १-१ रत्ती की वटी बना कर, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं मक्खन वा मलाई में रख कर निगल जाय और ऊपर से यथेष्ट दुग्ध पान करें। पथ्य—दूध, घृत, हलुवा, बादाम, द्राक्षा, छुवारा, आदि को सेवन करें। अपथ्य—तैल, खटाई, नमक, लाल मरिच आदि पदार्थों का सेवन न करें।

गुण—मल्लादि वटी के सेवन से सर्वप्रकार की नपुंसकता नष्ट हो जाती है। यह महावाजीकरण है। इससे रक्त, आदि धातुओं की वृद्धि होकर शरीरिक बल बढ़ता है। बुद्धिमान् वैद्य इस वटी को अनुपान भेद से अनेक व्याधियों में प्रयुक्त कर सकता है। इसका प्रयोग कभी भी निष्फल नहीं होता है। "शतसोऽनुभूतः" सेकड़ों वार का परीक्षित प्रयोग है।

(५) कस्तूरिकादि-गुटिका

नेपाली कस्तूरी १ माशा, शुद्ध फौलाद भस्म ३ माशे, काश्मीरी केशर १ माशा, शुद्ध वत्सनाभ ३ माशे, लवङ्ग, अकरकरा, छोटी एला के बीच, रूमी मस्तगी, जावित्री, कृष्ण मुशली, चोपचीनी, खुरासानी अजवाइन, वनफ्सा के बीज, तेजो बल, मदनमस्त, मालकांगनी, बड़ा गोखरू, कौंचबीज, हरमल, माली मिर्च, पीपल, शुण्ठी,

समुद्रशोष, उटङ्गन के बीज, तज, चित्रक गोरखमुण्डी, गाजर के बीज, भुने हुए इन्द्र जौ, मोचरस, प्रत्येक—२॥—२॥ माशे और तीन वर्ष पुराना गुड़ ६ तोले लें।

निर्माणविधिः—प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना एकत्र सम्मिश्रण कर मर्दन करें। पश्चात् भस्में मिलाकर खरल करें और गुड़ को सम्मिश्रण कर पुनः घोटें। जितनी अधिक घुटाई होगी औषधि में उतनी ही कार्यकारिणी शक्ति आयेगी। अन्त में कस्तूरी को मिला पुनरपि खरल करें। जब यह औषध मोम के समान हो जाय, तब जंगली छोटे बेर के समान वटी बना, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक सायं समय भोजनोपरान्त गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

गुण—इस कस्तूर्यादिवटी को सेवन करने से बल वीर्य की वृद्धि होती है। यह उत्तेजक वाजीकरण है। गोली सेवन करने के उपरान्त नागर बेल के पान में चूना, सुपारी, श्वेत कत्था, लवंग, जायफल, कस्तूरी, केशर आदि डालकर ३—४ बीड़े एक के पश्चात दूसरा खावे। इससे अद्‌भुत बल की उपलब्धि होती है। अनुभूत है। यथावसर इसे बनाइए और लाभान्वित होइये।

(६) पुष्टराज स्वर्णवटी (महावाजीकरण)

चन्द्रोदय (सिद्ध मकरध्वज) ४ तोले, स्वर्ण भस्म २ तोले, बिना बिंधे मोतियों की भस्म १ तोला, फौलाद की उत्तम भस्म, बंग भस्म, रौप्य भस्म, रस सिन्दूर, मूंगा भस्म, जायफल, जावित्री—प्रत्येक १-१ तोला लें।

निर्माण विधिः—प्रथम चन्द्रोदय के साथ स्वर्ण भस्म को मिलाकर मर्दन करें। पश्चात् सम्पूर्ण भस्में मिला कर, दृढ मर्दन करके शेष चूर्णीय द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें और स्थिरता से घोटें। अन्त में घृतकुमारी स्वरस के साथ खरल करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक प्रातः सायं पान, मक्खन, मलाई, वा अङ्गूर में रखकर खावें।

गुण—यह स्वर्णवटी महावाजीकरण है। इसके सेवन से रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं की वृद्धि होती है। मस्तिष्क, हृदय आदि शरीर के मुख्याङ्गों के लिए अत्युपयोगी है। वात वाहक केन्द्रों तथा ज्ञान वाहक तन्तुओं पर उत्तम प्रभावकर है। यह धनिकों के लिये उपयोगी है। सम्पूर्ण बलवर्धक प्रयोगों का राजा है। वैद्य और डाक्टरों के द्वारा असाध्य घोषित हुआ एक प्रमेह का रोगी मैंने इसी पुष्टराज स्वर्ण वटी के प्रयोग से स्वस्थ किया था।

(७) अद्‌भुत लोहभस्म (गुप्त योग)

रेती से रिता हुआ विशुद्ध उत्तम लोह चूर्ण ८ तोले, शुद्ध पारद ८ माशे—इन

दोनों को खरल में डालकर कुछ मर्दन करके इसमें उत्तम सुरा इतनी डालिए कि जिसमें ये दोनों डूब जाँय। इसके उपरान्त ६ घण्टे तक निरन्तर घोटिये और उत्तम मर्दन होने पर इसकी टिकिया बना, शराव सम्पुट करें, और सम्पुट को सुखा, एक पाव जंगली कण्डों के मध्य में रख अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोलकर औषध को ग्रहण कर लें। इसके उपरान्त शुद्ध पारद २ माशा के साथ इसे पूर्ववत् उत्तम मद्य में घोट, टिकिया बना, शराव सम्पुट कर, १ पाव आरण्य कण्डों में सम्पुट को रख, अग्नि दें। इस विधि से १०१ पुट पूर्ण करने के उपरान्त इसमें शुद्ध सुमल्लक्षार ४ माशे मिला अच्छी मद्य में खरल कर; टिकिया बना, शराब सम्पुट कर, सुखा, १ पाव आरनों के मध्य में रख कर, अग्नि दें। इस विधि से प्रत्येक वार ४ माशे सुमल्लक्षार के साथ मिलाकर श्रेष्ठ सुरा में मर्दन करते हुए ५१ पुट दें। ५१ पुट पूर्ण होने के उपरान्त इस भस्म को तोल लें। इसकी आधी स्वर्ण भस्म सम्मिश्रण कर शीशी में भर लें और इस शीशी को गेहूँ की राशि में रख दें। २१ दिन के उपरान्त शीशी को गेहूँ की राशि से बाहर निकाल, प्रयोग में लें। यह भस्म उत्कृष्टवर्ण की सिद्ध होगी।

मात्रा और अनुपान—१ से २ चावल तक (अवस्था, बल, आदि को विचार कर) मक्खन, वा मलाई में रखकर दिन-रात में १ से ३ बार तक दे सकते हैं; ऊपर से बादाम मिला भैंस का गाढ़ा दूध पिलावें।

गुण—इस भस्म को सेवन करने से वीर्य की विशेष वृद्धि होती है। यह भस्म चन्द्रोदय की अपेक्षाकृत अधिक श्रेयस्कर है। इसकी अनुपान योजना चन्द्रोदय के तुल्य ही होगी। यह भस्म जितनी अधिक पुरानी होगी, उतनी ही अधिक गुणप्रद होती है। इसके सेवन से सर्व प्रकार की नपुंसकता, शुक्रमेह, हस्तिमेह, ओजोमेह स्त्रियों के श्वेत, रक्त आदि प्रदर, प्रसूता रोग, गर्भाशय से जल का स्राव, सन्तान का अभाव, हृदय की धड़कन, व्याकुलता, चिड़चिड़ा स्वभाव होना, नैर्बल्य—आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इन सभी रोगों में हमने इस भस्म को अनेक बार प्रयोग करके आशातीत लाभ प्राप्त किया है। इसके उपयोग से हमें शत प्रतिशत (१००%) पूर्ण सफलता अधिगत हुई है।

यह प्रयोग उत्तम वाजीकरण होने से नपुंसकता में अपूर्व लाभदायक है। जो वैद्य इस गुप्त योग को बना कर अपने समीप रखते हैं, वे निर्भय होकर रोग शत्रुओं पर विजय पाते हैं और संसार में यशोभागी होते हैं। ऐसा कोई भी रोग नहीं है, जिसमें यह योग प्रभाव कर नहीं होता हो। नवीन जीवन प्रदान करने वाली रसायन औषधियों में मैंने इसे श्रेष्ठ अनुभव किया है। मुझे अपने जीवन में सैंकड़ों वार असाध्य और हताश हुए सैंकड़ों रोगियों के दुःख दूर करने में इस भस्म के उपयोग कर का अवसर प्राप्त हुआ है। यह दिव्य महौषधि है।

(८) लौहादि भस्म

उत्तम फौलाद भस्म १ तोला, उत्तम नागभस्म ६ माशे, बंग भस्म और शुद्ध मल्ल—३-३ माशे और विशुद्ध स्वर्णवर्क १॥ माशा लें।

निर्माण विधि— प्रथम स्वर्ण वर्क के साथ फौलाद भस्म को मिला कर घोटिये। फौलाद भस्म में एक-एक स्वर्ण वर्क को मिलाते हुए मर्दन करें। एक के सम्यक् प्रकार मिल जाने पर दूसरा स्वर्ण वर्क डालें और घोटें। स्वर्ण वर्क के घुटने के पश्चात् शेष भस्में मिला कर मर्दन करें। इसके उपरान्त मल्ल को मिला कर खरल करें। पश्चात् घृतकुमारी स्वरस के साथ एक दिन दृढ मर्दन कर, इसका गोला बना, गोले को शुष्क करके मिट्टी की एक हण्डी में रखें। हण्डी सात वस्त्रमिट्टी की हुई होनी चाहिये। अब हण्डी के मुख पर शराव रखकर सन्धि बन्द कर दें और शुष्क होने पर गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर भस्म ग्रहण कर लें। इसके उपरान्त कपास के पुष्पों के रस की १ भावना देकर द्वितीय पुट दें। तृतीय पुट धत्तूर-पत्र के स्वरस से एक दिन मर्दन कर दें और वन मालिनी रस की एक दिन भावना देकर चतुर्थ पुट दें। पश्चात् वटक्षीर की पञ्चम भावना देकर अग्नि दें और स्वांग शीत होने पर भस्म को खरल में सूक्ष्मकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा-१-१ रत्ती प्रातः सायं दो बार। **अनुपान**–दूध आधा सेर, घृत १॥ तोला, मिश्री १ छटाँक, देशीय शक्कर ६ माशे—इन सब को मिलाकर सुखोष्ण करके सेवन करें।

पथ्य—दुग्ध, घृत, पूड़ी, हलुवा, दाल, भात का सेवन करें और ब्रह्मचर्य का विशेष रूप से पालन करें।

गुण—यह भस्म उत्तम वाजीकरण है। इसके सेवन से मल, मूत्र विसर्जन के पूर्व और पश्चात् होने वाला वीर्य स्राव, शीघ्रपतन, स्वप्न-दोष, आदि धातु विकार तथा नपुंसकता आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह शारीरिक बल और वीर्य को पुष्ट करने के लिए अत्युपयोगी योग है। एक मास तक निरन्तर सेवन करने से नपुंसकता और अन्य शुक्र विकार शान्त हो जाते हैं। शरीर में अद्भुत शक्ति आती है। यह योग अव्यर्थ है। सुपरीक्षित सिद्धौषधि है।

अथ ज्वर चिकित्सा प्रकरणम् ॥३॥

आयुर्वेद शास्त्र में ज्वर को शारीरिक व्याधियों में प्रधान होने के कारण रोग-राज माना है। यह देह और मन में सन्ताप उत्पन्न करता है और अतिसार, मन्दाग्नि आदि अनेक उपद्रवों को उत्पन्न करने में हेतु होता है। संसार में मनुष्य शरीर को अस्वस्थ करने वाले रोगों में ज्वर प्रबलतम है। प्रायः देहधारियों की मृत्यु बिना ज्वर हुए नहीं होती। जन्मकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त न्यून-अधिक ज्वर प्रभाव अवश्य रहता है। यद्यपि अनेक पुण्यात्मा, तपोधना, विशुद्धान्तःकरण, महात्मा ऐसे भी होते हैं, जिनके चित्त पर ज्वर व्याधि का प्रभाव नहीं होता, तथापि साधारण व्यक्तियों में इतना उत्कृष्ट सत्त्व बल नहीं होता कि जिससे ज्वर-जन्य कष्ट का प्रभाव उनके ऊपर न हो और ऐसे व्यक्तियों की ही बहुलता होती है। अतएव ज्वर को रोग शिरोमणि कहना युक्तियुक्त ही है।

ज्वर के कारण—रूक्ष, लघु, शीतल आहार के सेवन से, अधिक उपवास करने से, अजीर्ण में भोजन करने से, अधिक खाने से, अत्यधिक श्रम करने से, अधिक व्यवाय से, रात्रि में जागरण करने से, शीत लगने से, गर्मी की अधिकता से, शरीर को विषम रूप में रखने से, अधिक भ्रमण करने से, जलवायु या ऋतु परिवर्तन होने से, चित्त में व्याकुलता की वृद्धि होने से, शोक करने से, अधिक क्रोध होने से, स्वभाव में चिड़-चिड़ापन आ जाने से, ईर्ष्या, द्वेष करने से, माता-पिता, गुरुजन तथा विद्वानों के अना-दर से, विश्वासघात करने से और भय आदि के होने से—शारीरिक वात, पित्त तथा कफ—ये दोष प्रकुपित होने पर जठराग्नि मन्द होती है। आमाशयगत ऊष्मा के साथ तथा आहार के पक जाने पर बनने वाले प्रथम रस नामक धातु के साथ मिलकर कुपित वातादि दोष रसवह और स्वेदवह स्रोतों की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर देते हैं। इससे ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के लक्षण—जठराग्नि का मन्द होना, आलस्य का होना, शरीर, इन्द्रिय और मन में सन्ताप का होना, अङ्गों में पीड़ा, किसी कार्य को करने की इच्छा का अभाव, मुख का स्वाद विकृत हो जाना, चित्त में अप्रसन्नता का होना, जम्भाई अधिक आना, शीत अधिक लगना, देह में उष्णता की वृद्धि होनी, इत्यादि लक्षण होने से ज्वर का ज्ञान होता है। जिस व्यक्ति के शरीर में ये लक्षण पूर्ण रूप से वा अल्पता से प्रकट हो जाँय उस व्यक्ति को ज्वर-ग्रस्त समझना चाहिये। ज्वर के लक्षण अभिव्यक्त होने पर बुद्धिमान् पुरुष को उसकी योग्य चिकित्सा करानी अभीष्ट है।

ज्वर के भेद—

अथ खल्वष्टाभ्यः कारणेभ्यो ज्वरः सञ्जायते मनुष्याणां, तद्यथा—वातात्, पित्तात्, कफात्, वातपित्ताभ्यां, वातकफाभ्यां, पित्तकफाभ्यां, वातपित्तकफेभ्यः, आगन्तोरष्टमात् कारणात् ।।चरक सं० निदान० अ० १।।

मनुष्यों के शरीर में आठ कारणों से ज्वर की उत्पत्ति होती है । जैसे—(१) वायु से, (२) पित्त से, (३) कफ से, (४) वात पित्त से, (५) वात कफ से, (६) पित्त कफ से, (७) वात पित्त तथा कफ से और (८) आगन्तु कारण से ।

ज्वर में लंघन का महत्व—ज्वर की प्रथमावस्था में लंघन (उपवास) कराना अच्छा होता है । उपवास कराने से दोष शीघ्र पच जाते हैं, जठराग्नि की वृद्धि होती है, आलस्य दूर होकर शरीर में स्फूर्ति आती है, क्षुधा की वृद्धि और अन्न में रुचि उत्पन्न हो जाती है ।

लंघन करने के अयोग्य रोगी—ऊपर ज्वर की प्रथम अवस्था में उपवास करने का विचार किया है, परन्तु निम्नलिखित ज्वरों में उपवास कराना निषिद्ध है—जीर्ण ज्वर तथा धातु क्षय से, वात से, भय से, काम से, क्रोध से, शोक से, और श्रम से उत्पन्न हुये ज्वरों में लंघन नहीं कराना चाहिए । इन ज्वरों में अल्पाहार, सूक्ष्माहार की योजना की जाती है । इसमें भोजन सर्वथा नहीं त्यागना चाहिये ।

लंघन कब तक कराना चाहिये—जब तक रोगी के बल का क्षय न हो, सरलता से रोगी सह सके, उसके प्राणों में व्याकुलता न हो, मन की प्रसन्नता नष्ट न हो, तब तक लंघन कराना योग्य है । कभी भी अति मात्रा में उपवास कराना उचित नहीं होता ।

ज्वर में किस प्रकार का जल सेवन किया जाना चाहिए—वात तथा कफ से उत्पन्न होने वाले, वात पित्त जन्य, वात कफ प्रधान सन्निपात और विषम ज्वरों में पकाकर अर्धावशेष किया हुआ जल शीतल करके पिलाना प्रशस्त है । इन ज्वरों में रोगी को पीने के लिए शीतल पानी देना अविधेय है ।

ज्वर में पथ्य—पूर्ण विश्राम, सुन्दर पवित्र स्थान में निवास, ब्रह्मचर्य का पालन, मन को प्रसन्न रखना, प्रभुगुणों का चिन्तन, चित्त में स्थिरता रखना, निर्भय रहना, आस्तिक भावों में चित्त को लगाना, आशावान् होना, श्रेष्ठ महापुरुषों की जीवनी को श्रवण करना उत्तम है । मूंग की दाल, साठी चावल, दूध, घी, मौसमी, सन्तरा, नींबू, आमला, अनारदाना, साबुदाना, काली मिर्च, सौंठ, पिप्पली, हरड आदि की योजना करने से ज्वर में लाभ होता है । इनको चिकित्सक के परामर्श से विवेक पूर्वक ज्वर-रोगी को देना चाहिये ।

ज्वर में अपथ्य—नवीन ज्वर में—दिन में सोना, स्नान करना, मर्दन करना, अन्न का सेवन, व्यवाय (मैथुन), क्रोध करना, शोक करना, निराश होना, अपने रोग

से भयभीत होना, नास्तिकता के भाव उत्पन्न होना, मन में चञ्चलता बनाये रखना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन होना, शीतल जल को पीना, शारीरिक वा मानसिक श्रम करना, अधिक बोलना, कषाय का प्रयोग करना आदि त्याज्य हैं।

ज्वरघ्न प्रयोग—

(१) षडङ्गपानीय

मुस्तपर्पटकोशीर चन्दनोदीच्यनागरैः। शृतशीतं जलं दद्यात् पिपासा ज्वर शान्तये॥
(च० सं० चि० अ० ३)

नागर मोथा, पित्त पापड़ा, खश, रक्त चन्दन, सुगन्ध वाला, और सोंठ—इन छह द्रव्यों को समभाग में लेकर, यवकुट चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर ६४ तोले जल में मिट्टी के पात्र में पकावें। पाक करते समय पात्र का मुख न ढकें। जब यह आधा, ३२ तोले जल रहे तब अग्नि से नीचे उतार कर शीतल करें और वस्त्र से छान लें।

उपयोग—ज्वर वाले रोगी को जब-जब जल पीने की इच्छा हो, तब-तब इस जल को थोडा-थोड़ा पीने के लिए दे। इस "षडङ्गपानीय" के सेवन से पिपासा (जल पीने की इच्छा) शान्त होती है और ताप का वेग भी न्यून होने लगता है। यह शरीर के दोषों को निकलता है और ज्वर में उत्तम पाचन करता है। सभी ज्वरों में इसे दे सकते हैं। इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। यह हमारा परीक्षित योग है।

(२) त्रिभुवन कीर्त्तिरस (यो० र०)

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली, भुना हुआ सुहागा और पिप्पली मूल—इन सात द्रव्यों को समभाग में लेकर, वस्त्र-पूत चूर्ण बना, तुलसी के रस, अदरक के रस और धतूर-पत्रों के स्वरस—इनकी पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर, और प्रत्येक भावना में ६ घण्टे मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रातः, मध्यान्ह और सायं समय अदरक के रस, मधु वा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

उपयोग—त्रिभुवन कीर्त्ति रस के सेवन से वातज, कफज, वातकफज, वातपित्तज, इन ज्वरों में उत्तम लाभ होता है। इससे स्वेद आकर ज्वर वेग शान्त हो जाता है। वातज और कफज कान के रोग में भी यह लाभप्रद है। अनुपान भेद से देने पर प्रायः समस्त ज्वरों में उपयोगी है। परीक्षित है।

(३) ज्वरेभसिंह रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध गन्धक, और काली मरिच प्रत्येक १-१

तोला लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना, १६ तोले अर्कदुग्ध में दो दिन तक मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं समय, सद्यो जल के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

उपयोग—यह वटी ज्वर रूपी हाथी के दन्त तोड़ने के लिए सिंह रूप है। इसे अनुपान भेद से आठ प्रकार के ज्वरों में दें। इसके सेवन से वातज, कफज, वातकफ भूयिष्ठ ज्वर, और सन्निपातज ज्वर में अच्छा लाभ होता है। शतसोऽनुभूतः।

पथ्य—दधि, भात, मट्ठा, सैंधव लवण, मिश्री, दूध हितकर पदार्थों का सेवन करना उत्तम है। **अपथ्य**—लवण, लाल मरिच, हींग, गुड़, तैल, आदि को त्यागना चाहिए।

(४) वाजीवर्मा रस

शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा विष, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध सुहागा, त्रिकटु, (सोंठ, काली मरिच और छोटी पिप्पली) इन छह द्रव्यों को समभाग में लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, शेष द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में सम्मिश्रण करके और समष्टि के तुल्य शुद्ध दन्ती बीजों का वस्त्रपूत चूर्ण मिला, मर्दन करें। इसके उपरान्त धत्तूरे के पत्रों का रस थोडा-थोड़ा डालते हुए १२ घण्टे तक अनवरत दृढ़ता से घोटें। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर काली मरिच के तुल्य गोलियाँ बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—पूर्णायु वाले के लिए १ वटी अदरक के रस और मिश्री के साथ दें। १ से ५ वर्ष तक के बालक के लिए सरसों के दाने के बराबर दें।

गुण तथा उपयोग—इस वटी को सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर में लाभ होता है। इसे १ से ४ वटी तक मिश्री के पानक (शर्बत) वा वनफ्सा के पानक के साथ देने से विरेचन होते हैं। मलावरोध में सोंफ के अर्क के साथ दें। यह योग बालकों के पार्श्व शूल (आक्षेप न्यूमोनिया) और मलावरोध में अत्यन्त लाभप्रद है। परीक्षित है।

(५) मृत्युञ्जय कनक रसायन

कृष्ण धत्तूरे के फल १ पाव, पुष्पसहित (टोपीयुक्त) लवङ्ग १ पाव, जायफल आधा पाव, खुरासानी अजवाइन एक छंटाक लेकर, प्रथम जायफल के छोटे-छोटे खण्ड करके सर्व द्रव्यों को एकत्र मिलालें और मिश्रित औषधियों को एक लोहे की कड़ाही में डाल कर, उसके ऊपर तवा रख, जल से सने हुये गेहूँ के आटे से कड़ाही और तवे की सन्धि बन्द करें। अब बन्द की गई सन्धि के ऊपर लकड़ी अथवा कण्डों की शुष्क भस्म

(राख) २-३ अङ्गुलि प्रमाण में मोटी डाल दें और हाथ से भस्म को अच्छे प्रकार से दबा दें। पश्चात् कड़ाही को चूल्हे पर रख, अत्यन्त मन्दाग्नि जलावें। इसमें तीव्राग्नि कदापि न दें। सिद्ध होने पर अग्नि बन्द करके स्वाङ्गशीत होने दें। स्वाङ्ग शीत होने पर सम्पुट को खोलकर, औषधि को ग्रहण कर लें और इसे खरल में घोट कर, सूक्ष्म बना, शीशी में सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य—इस रस को कड़ाही के बिना, हण्डी में रख, शराव सम्पुट करके भी सिद्ध किया जाता है। सिद्ध करते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखना आवश्यकीय है कि जिस विधि से भी इसे सिद्ध किया जाय, उसमें मन्दाग्नि देना विस्मरण न हो। तीव्र-अग्नि से औषधि में पूर्ण गुण नहीं रहते।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक रोगी की अवस्था, बल, सत्त्व आदि को विचार करके, शुष्क काले द्राक्षा (मुनक्के) में रखकर निगलवा दें ऊपर से जल सेवन करावें।

गुण—यह रसायन वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, सन्निपातज, इन सभी ज्वरों में और प्रसूता स्त्री के ज्वर में अत्युपयोगी है। प्रसूता के ज्वर में अमृतवत् लाभप्रद है। अनुपान भेद से सभी प्रकार के ज्वरों में देना चाहिए। यह सिद्ध योग है। इसकी निर्माण विधि सरल होने से सुखसाध्य है। अतिसार में भी इसके उपयोग से लाभ हो जाता है।

(६) सादर योग (सम्पूर्ण ज्वरों के लिए रामबाण)

सादर (नवसादर) १ पाव को, खरलमें डाल, गुडूची (गिलोय) का स्वरस १ पाव के साथ उत्तम प्रकार से मर्दन करें। जब १ पाव स्वरस उसमें विलीन हो जाय तब उसे छाया में शुष्क करके, कदली (केला) के रस में एक दिन मर्दन करें। मर्दन करके १ पाव कदली स्वरस का शोषण जब हो जाय, तब छाया में सुखाकर काकमाची (मकोय) के १ पाव रस में एक दिन मर्दन करके, मकोय के सारे रस को उसमें विलीन कर दें। पश्चात् छाया में सुखा, डमरू यन्त्र विधि से ऊर्ध्वपातन कर लें। स्वाङ्गशीत होने पर यन्त्र को खोलकर औषध को ग्रहण कर लें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा—४ रत्ती प्रातः सायं समय, उष्ण जल से वा अजवाइन चूर्ण के साथ सेवन करावें।

गुण—इस योग के सेवन से ज्वरों में अच्छा लाभ होता है। इसका प्रभाव इतना शीघ्र होता है कि - औषधि सेवन करने के आध घण्टे के पश्चात् रोगी को लाभ अनुभव होने लगता है। यह प्रयोग आशु प्रभाव कारक है। इसे सभी ज्वरों में (अनुपान भेद से) देना चाहिए। अनुभूत है।

(७) हिंगुलेश्वर रस (भै० र०)

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ (मीठा विष), और छोटी पिप्पली—ये तीनों ३–३

तोले लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र सम्मिश्रण कर, मर्दन करें। इसके उपरान्त अदरक के रस में घोट करके, ½—½ रत्ती प्रमाण की बटी बना, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी को प्रातः सायं दिन में दो बार अदरक के रस वा मधु के साथ मिला कर सेवन करावें।

गुण—यह रस नवीन ज्वर, वात ज्वर, कफज्वर और वातश्लेष्म ज्वर (इन्फ्लुएंजा) के लिए रामबाण के समान अमोघ सिद्ध हुआ है। वातश्लेष्म से उत्पन्न ज्वर में—सन्धियों (जोड़ों) में पीड़ा का होना, निद्रा की अधिकता, देह में गुरुता (भारीपन) का होना, शिर में पीड़ा, नासा द्वारा जल का स्राव होना, अकस्मात् शरीर में स्वेद का निकलना आदि लक्षण होते हैं; ऐसे समय पर इस रस को मधु और अदरक के रस के साथ दिन में दो बार सेवन कराना लाभप्रद है। परीक्षित है।

(८) शीतज्वर कुठार रस

शुद्ध श्वेत मल्ल (संखिया) और शुद्ध हिंगुल—१–१ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना, जल के साथ मर्दन करके, टिकिया बना, सुखा करके, अपामार्ग की भस्म ऊपर नीचे ३–३ तोले एवं मध्य में टिकिया को रख, (लोहे की कड़ाही अथवा तवे में धर करके) मदाग्नि दें। जब टिकिया फूल जाय, तो अग्नि बन्द कर दें और स्वाङ्गशीत होने पर टिकिया को सूक्ष्म पीस करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ चावल, बतासे में रख करके दें।

उपयोग—यह रस शीत पूर्वक आने वाले ज्वर में तथा अन्य ज्वरों में लाभप्रद है। सर्व ज्वरों में और वातव्याधियों में अनुभूत है।

पथ्य—इस रस को सेवन करते समय दूध और भात का सेवन करना इष्ट है।

(९) जयमङ्गल रस (भै० र० ज्वरचिकित्सा०)

हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, ताम्रभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सैंधव लवण, काली मिर्च–प्रत्येक १–१ तोला, स्वर्णभस्म २ तोले, कान्तलोह भस्म तथा चान्दी भस्म १–१ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, भस्में सम्मिश्रण करके, मर्दन करें। पश्चात् शेष काष्ठोषधियों का वस्त्रपूत किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला कर घोटें। इसके पश्चात् काले धत्तूरे के पत्रों के रस, हार सिंगार के पत्रों के स्वरस, दशमूल के क्वाथ और चिरायते के क्वाथ की पृथक्-पृथक् ३–३ भावना दे करके १–१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी जीरे के चूर्ण और मधु के साथ दें।

गुण— इस रस के सेवन से जीर्णज्वर, साध्य तथा असाध्य अष्ट ज्वर, सर्व प्रकार के विषम ज्वर आदि समस्त ताप नष्ट होते हैं। हृदय और मस्तिष्क के लिए हितकर उत्कृष्ट रसायन है। इससे शारीरिक बल वीर्य की वृद्धि होकर उत्तम स्वास्थ्य लाभ होता है। वातवाहिनी नाडियों और ज्ञान वाहक तन्तुओं पर इस रस के सेवन से अच्छा प्रभाव होता है।

(१०) सुदर्शन चूर्ण (शा०सं०म०ख०अ० ६/२७-३७)

बड़ी हरड का छिलका, बेहेड़े का छिलका, आमला, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, कचूर, शुण्ठी, काली मिर्च, छोटी पिप्पली, पिप्पलीमूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण (अभावे–वनपसा), नेत्र-बाला, निम्बमूलत्वक्, पुष्करमूल (पोहकरमूल), मुलेठी, कुड़ा की छाल, अजवाइन, इन्द्रयव, भारंगी, सहिजन के बीज, शुद्ध फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माक्ष, खस, श्वेत चन्दन, अतीस, खरैंटी (वरियार), सरिवन, पिठवन, वायविडङ्ग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, कड़वे परवल की पत्तियाँ, जीवक (अभावे–विदारीकन्द), ऋषभक (अभावे–काकोली), लवङ्ग, वंशलोचन, श्वेतकमल, काकोली (अभावे–शकाकुल मिश्री), तेजपत्र, जावित्री और तालीसपत्र—५३ द्रव्यों को समभाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त सर्वचूर्ण का आधा भाग चिरायते का वस्त्रछन चूर्ण लेकर दोनों को एकत्र मिला, सुरक्षित रख लें। यह सुदर्शन चूर्ण है।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक उष्ण जल के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें। २ वर्ष की अवस्था तक के बालकों के लिए २ से ४ रत्ती तक, इसके ऊपर की अवस्था में १ माशा और १२ वर्ष की अवस्था वालों के लिए २ माशा चूर्ण दें।

गुण तथा उपयोग— सुदर्शनचूर्ण के सेवन से— वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, सन्निपातज, विषम (सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, आदि) ज्वर, आगन्तु-ज्वर (विष, श्रम, अग्निदाह, आदि से उत्पन्न होने वाला), वात जल दोषज आदि समस्त ताप नष्ट हो जाते हैं। इन सभी ज्वरों को और इन ज्वरों में होने वाले—अचेतना, तन्द्रा, मूर्च्छा, दाह, श्वास, कास, कामला, हृद्रोग, पीठ (कमर) की पीड़ा, कटिशूल, पार्श्ववेदना आदि उपद्रवों को यह चूर्ण शान्त करता है।

इस चूर्ण को ज्वर की अवस्था में भी दिया जा सकता है। ताप रहने पर उष्ण जल के साथ सुदर्शन चूर्ण को सेवन करने से स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। सुकुमार व्यक्तियों के लिए यह चूर्ण यदि रुचिकर प्रतीत न होता हो तो इसे ६ गुणा जल में २४ घण्टे भिगो कर अर्क निकाल कर, शीशी में सुरक्षित रख लें। इस अर्क को २ से ५ तोले तक सेवन करावें। भगवान् श्री विष्णु जी के सुदर्शन चक्र से जिस प्रकार राक्षसों का विनाश हो जाता है उसी प्रकार सुदर्शन चूर्ण समस्त प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। परीक्षित है।

(११) अर्धनाडीनटेश्वर रस

तवकी हरिताल ४ तोले लेकर कूष्माण्ड (पेठा) के स्वरस की २१ भावना देकर शुष्क करें। इसके उपरान्त खस्सी ककोड़े की २१ भावना दे करके, इसमें सर्प की केंचुली (कञ्चुकी) १६ माशे सम्मिश्रण कर, एक दिन तक दृढ़ मर्दन करके, सात वस्त्र मिट्टी की हुई शीशी में भर, डाट बन्द कर, वालुका यन्त्र में रख, १२ प्रहर (३६ घण्टा) की अग्नि दे करके सिद्ध करें। स्वाङ्गशीत होने पर यन्त्र से युक्ति पूर्वक औषधि को ग्रहण कर लें। इसके उपरान्त इसमें तुत्थ भस्म ८ माशे मिला कर, मर्दन करके, सुरक्षित रख लें।

गुण तथा उपयोग—इस अर्धनाडीनटेश्वर रस को नेत्रों में अञ्जन किया जाता है। इसे नेत्रों में आञ्जने से ज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है। जिस नेत्र में इसे लगाया जाता है उसी पार्श्व का ताप शान्त होता है। दोनों नेत्रों में एक साथ आञ्जने से सम्पूर्ण शरीर का ताप नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग खाने के उपयोग में नहीं आता। शतसोऽनुभूतः। इस प्रयोग का निर्माण करें और संसार में यशस्वी तथा उपकारी बनें।

(१२) कस्तूरी भैरव रस—(र० सा० सं० ज्वरा०)

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभविष (मीठा विष), अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, जावित्री, जायफल, काली मिर्च, लघु पिप्पली, और कस्तूरी—इन सब औषधियों को समभाग में लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्र छन चूर्ण बना, कस्तूरी को छोड़ कर, शेष औषधियों को एकत्र मिला, मर्दन करके, ब्राह्मी के रस वा क्वाथ के साथ ३ दिन खरल करें। अल्प-अल्प ब्राह्मी रस डालते जाँय और मर्दन करते जायें। तीन दिन पर्यन्त सुदृढ़ता से मर्दन होने के उपरान्त इसमें कस्तूरी को सम्मिश्रण करके ताम्बूल पत्र के रस के साथ ३ घण्टे घोट करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक रोगी का बल, अवस्था आदि को विचार करके, दिन में २-३ बार अदरक के रस वा मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

गुण तथा उपयोग—यह रस ज्वर की तरुणावस्था में आम पाचन और ताप प्रशमनार्थ दिया जाता है। इसके सेवन से १४ वा २१ दिन तक रहने वाला ज्वर, प्रलापकसन्निपात, आन्त्रिक सन्निपात, इन ज्वरों में रोगी की शक्ति स्थिर रहती है और समय पूर्ण होने पर निरुपद्रव रोग शान्त होता है। जिन रोगियों के जीवन की आशा समाप्त हो गई थी ऐसे मोती-झरा के अनेक रोगी "कस्तूरी भैरव रस" को ब्राह्मी क्वाथ के अनुपान के साथ सेवन कराने पर स्वस्थ हो गये हैं। यह रस कोमल प्रकृति वाले व्यक्तियों तथा बालकों के लिए भी लाभप्रद है। सन्निपात में होने वाले—प्रलाप, शीत,

निद्रानाश, वात प्रकोप आदि उपद्रवों को नष्ट करने के लिए भी अत्युपयोगी रस है।

इसके सेवन से प्रसूता के धनुर्वात, कम्प, दान्त भिचना, श्वास, कास और हृदयावरोध—ये सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। योषास्पस्मार (हिष्टिरिया), अपस्मार, उन्माद, और मूर्च्छा में मस्तिष्क को शान्त रखता और हृदय को बल प्रदान करता है। परीक्षित हैं।

(१२) सूतराज रस (सूतप्राणदायी सूतराज)

शुद्ध सूत (पारा), शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष (मीठा विष), शुद्ध टँकण—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, और गौ के मट्ठे में शोधित धत्तूरे के बीच ४ तोले लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जलीं बना, शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में सम्मिश्रण करके, एक दिन मर्दन करें। इसके पश्चात् धत्तूरे के बीजों के क्वाथ और वत्सनाभ के क्वाथ की पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें। इसके उपरान्त त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली) के क्वाथ की ५ भावना देकर १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया–शुष्क करके, सुरक्षित रख लें। इसे "सूतराजरस" अथवा "सूतप्राणदायी सूतराज" कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, प्रातः सायं दो वार, अदरक का रस, तुलसी का रस वा मिश्री आदि में से किसी एक अनुपान के साथ दें।

गुण तथा उपयोग—सूतराज रस के सेवन से शीताङ्ग सन्निपात ज्वर, वातज्वर, कफज्वर, वातश्लेष्मज्वर (इन्फ्लुएंजा), फुफ्फुस सन्निपात, (न्यूमोनिया), प्रतिश्याय (जुखाम), कफ-प्रकोपजनित व्याधियाँ, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफप्रधान संग्रहणी, अर्श,कम्पवात, अपबाहुक, एकाङ्गवायु, अपस्मार, उन्माद—ये सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

इसके सेवन से नाडीगत कफ और आन्त्र में सञ्चित आम का शोषण तथा पाचन होता है। यह रस मल और मूत्र के अवरोध को नष्ट करके जठराग्नि की प्रदीप्ति करता है; फलतः आमाशय, फुफ्फुस यन्त्र, मूत्राशय आदि सभी यन्त्र अपनी-अपनी क्रिया को सुचारुरूपेण करने लगते हैं। कम्पवात, अपबाहुक, एकाङ्गवात, अपस्मार, और उन्माद में—सूतराज रस को—शुद्ध धत्तूरबीज ५ नग और मिश्री के साथ सेवन करावें। इस रस को निर्वल हृदय वालों को देना इष्ट नहीं है। अनुभूत है।

पथ्य—दूध, घृत, दधि, मट्ठा, भात, शक्कर आदि हितकर पदार्थों का सेवन करना उत्तम है।

(१४) हिंगुलयोग (सन्निपातज्वर में)

हिंगुल की एक तोला की एक डली लेकर, उसे लोहे की एक दर्वी (कड्छी) में रखें और प्रज्वलित अग्नि के कोयलों पर कड्छी को रख करके पकावें। शिंगरफ की

डली के ऊपर थोड़ा-थोड़ा काले भृंगराज का स्वरस डालते रहें। जब भृङ्गराज (भांगरा) का रस दो तोले उक्त विधि से अग्नि पर शुष्क हो जाय, तब दर्वी में १ तोला घृत डाल दें और सम्पूर्ण घी के जलने के उपरान्त अग्नि के ऊपर से कड़छी को हटा कर, शीतल होने दें। शीतल होने पर हिंगुल को सूक्ष्म पीस करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ चावल तक, आर्द्रक के स्वरस के साथ दें।

गुण—इस योग के सेवन से सन्निपात ज्वर में उत्तम लाभ होता है। अनुभूत है।

(१५) प्रलापहरी वटी

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभविष (मीठा विष), शुद्ध धत्तूर बीज, काली मिर्च, शुद्ध वर्की हरिताल और स्वर्ण माक्षिक भस्म—प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, भस्म मिला कर मर्दन करें। पश्चात् शेष द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला, घोटें और बृहद् दन्ती के क्वाथ की ३ भावना दें। प्रत्येक भावना में ६ घण्टे तक मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी अदरक के रस के साथ सेवन करावें।

उपयोग—प्रलापक सन्निपात में वात आदि के प्रकुपित होने पर जब रोगी अचेतनावस्था में असम्बंधित, अप्रासङ्गिक, उचित-अनुचित बोलने लगता है, उस समय इस वटी के सेवन से उत्तम लाभ होता है।

(१६) अचिन्त्यशक्ति रस

शुद्ध मल्ल, शुद्ध हरिताल और शुद्ध हिंगुल—प्रत्येक १-१ तोला लेकर एकत्र मिला मर्दन करके, करेले के रस के साथ घोटें। थोड़ा-थोड़ा रस डालते हुए मर्दन करें। जब करेले का रस डेढ़ सेर विलीन हो जाय और औषधि वटी बनाने के योग्य हो जाय तब सरसों के दाने के तुल्य गोली बना कर, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें। इस औषधि को "अचिन्त्यशक्ति रस" कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, रोगी के बल, अवस्था आदि को विचार करके, खाण्ड के साथ दिन में २ बार, प्रातः सायं समय दें।

उपयोग—इस रस के सेवन से सन्निपात, श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया) फुफ्फुस शोथ, श्वास, कास आदि रोगों में अच्छा लाभ होता है। रोग का वेग शान्त होने पर कुछ दिनों तक रोगी को प्रातः सायं समय शृङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म—१-१ रत्ती–दोनों को सम्मिश्रण कर, मधु, घृत और शक्कर के साथ, अथवा केवल घृत के साथ चटावें। इस योग के सेवन काल में केवल दुग्धाहार करें। दूध के अतिरिक्त और कुछ आहार न करें। अनुभव करने पर यह रस वस्तुतः अचिन्त्य शक्तिशाली ही सिद्ध हुआ

है। खाण्ड के साथ सेवन कराने से यह सत्वर चमत्कार दिखाता है। इस औषधि में "यथा नाम तथा गुणा:" यह उक्ति गतार्थ होती है।

(१७) सन्निपात जनित प्रलापावस्था में "हरिताल भस्म" प्रयोग

शुद्ध हरिताल को सेहुँड (थूहर) के दूध, अर्क दूध, सत्यानाशी के दूध में क्रमश: ३-३ दिन पृथक्-पृथक् खरल करके गोला बना लें और स्वर्णक्षीरी के कल्क (लुगदी) में गोले को रख करके धूप में शुष्क करें। उत्तम प्रकार सूखने के पश्चात् एक मिट्टी की छोटी हण्डी में नीचे ऊपर अपामार्ग की भस्म और मध्य में शुष्क गोले को रख करके हाथ से दबा दें। भस्म को हाथ से अच्छी प्रकार दबाने के उपरान्त इस हण्डी को चूल्हे पर चढ़ा करके क्रमश: मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि दें। उस हण्डी के ऊपर अन्न डाल करके सावधानी से देखता रहे। जब हण्डी के ऊपर डाला हुआ अन्न पक जाय; तब अग्नि जलाना बन्द कर दें। स्वाङ्गशीत होने पर हण्डी से भस्म को ग्रहण करके रख लें। इस भस्म को प्रारम्भ में अल्प मात्रा में बनावें। सन्निपात की दशा में जो रोगी, प्रलाप, भागना, मारना आदि करने लगता है; उस रोगी की जिह्वा पर इस भस्म को रखने वा लगाने से तुरन्त लाभ होता है। इसे अनुपान भेद से देने पर—श्वास, कास, कुष्ठ, प्रमेह रोगों में अच्छा लाभ होता है।

(१८) ग्रन्थिक सन्निपातारि रस [प्लेगरोगहर रस]

सुवर्णघटित मकर ध्वज, विना विधे मोती, शुद्ध मीठा विष (शुद्ध वत्सनाभ)—प्रत्येक द्रव्य १-१ माशा, अर्कमूलत्वक्, शुद्ध गन्धक, शुद्ध कर्पूर, काली मरिच और श्वेतवचा—प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम गन्धक और मकरध्वज को एकत्र मिला, स्थिरता से मर्दन करें। पश्चात् मीठा विष और मोती को सम्मिश्रण करके घोटें। इसके उपरान्त शेष द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण मिला, दृढ़ मर्दन करके, तुलसी रस के साथ ३ दिन खरल करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—पूर्णायु के लिए १-१ वटी जल के साथ दिन में एक या दो बार दें। बालकों के लिए चौथाई से आधी वटी तक दें।

उपयोग—इस रस के सेवन से ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) रोग में अच्छा लाभ होता है। प्लेग रोग का आक्रमण होने पर इस रस को ४ से ६ घण्टे के अन्तर से पान के रस वा तुलसी के रस के अनुपान से दिया जाता है। सप्ताह में एक या दो बार इसे जल के साथ सेवन करने से ग्रन्थिक सन्निपात रोग होने का भय नहीं रहता। इस रस के सेवन से निराश हुए प्लेग के रोगी भी स्वस्थ हो गये हैं। परीक्षित है।

(१९) ग्रन्थिक सन्निपात हर प्रयोग

२ से २।। तोले तक जल धनियाँ बूंटी को जल से स्वच्छ धो करके, बिना

पानी डाले पीस लें और रुपये के आकार की दो टिकिया बना लें। इसके उपरान्त रोगी के दोनों हाथों में कलाई के ठीक मध्य भाग में १-१ टिकिया को बांध दें। इसे २-३ घण्टे तक इसी प्रकार बंधी रहने दें। पश्चात् खोल दें। इस टिकिया से रोगी के हाथों में छाले पड़ जाते हैं। इन छालों पर गौ का घृत या मक्खन लगावें। इनसे भयभीत न हों। समय पर ये स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

गुण—इस प्रयोग से साध्य, कष्ट साध्य प्लेग रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है। शतसोऽनुभूतः।

(२०) लोबानादि तैल

कौड़िया लोबान ५ तोले, दालचीनी १ तोला, जायफल, अजवाइन और लवङ्ग—प्रत्येक ३-३ माशे लें। प्रथम इन सब द्रव्यों को यवकुट चूर्ण बना, एक मिट्टी की हण्डी में भर दें। इसके उपरान्त एक कटोरी या प्याले को लेकर तारों से बांध, हण्डी में लटका दें और जल से भरा हुआ पीतल का लोटा हण्डी के ऊपर रख, सन्धि बन्द करके, हण्डी को चूल्हे पर चढ़ा अत्यन्त मन्द अग्नि दें। अथवा १½ सेर कोयलों की अग्नि पर उस हण्डी को रख दें। तीव्राग्नि देने से तैल गुणहीन होगा, अतएव मन्द-मन्द अग्नि के ऊपर ही इसे सिद्ध करना इष्ट है।

इस विधि से अग्नि देने पर हण्डिका में रखे हुए द्रव्यों का तैल निकलकर मध्यस्थ कटोरी में आ जाता है। अग्नि पूर्ण लगने के उपरान्त स्वाङ्गशीत होने पर सन्धि खोलकर कटोरी को हण्डी से निकाल लें। इस कटोरी में आये हुए तैल को दो भागों में विभक्त कर लें। कटोरी के ऊपर जो अर्क के समान है उसे पृथक् करें और उसके निम्न भाग में स्थित काले रंग का जो तैल है, उसे पृथक् शीशी में सुरक्षित रख लें। कटोरी में नीचे जो कृष्णवर्ण का तैल है, वही "लोबानादि तैल" कहा जाता है।

मात्रा और अनुपान—१ से २ बिन्दु तैल को ताम्बूल, बतासे वा दुग्ध में डाल करके खावें।

गुण और उपयोग—यह "लोबानादि तैल" श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) और पार्श्व शूल में—सोंफ वा अजवाइन के क्वाथ से देने पर उत्तम लाभ करता है। सन्धि-वात और कफश्वास में—अदरक रस और मधु के साथ सेवन करना चाहिये। विसूचिका में—पलाण्डु (प्याज) के रस से दें। नपुंसकता में—दुग्ध, घी, कस्तूरी, केशर, जावित्री को मिलाकर इनके साथ देने से अच्छा लाभ-प्रद होता है।

कास और कटिशूल में भी अमोघास्त्र है। कफ की अधिकता से एक रोगी के कण्ठ में घुर-घुर शब्द हो रहा था, मरणासन्न होने के लक्षण प्रकट हो चुके थे। उसकी जिह्वा पर २-३ बिन्दु लोबानादि तैल का मर्दन करने से तुरन्त कफ वेग शान्त होकर रोगी स्वस्थ हो गया था।

इसके ऊपर वाले अर्क को शिर पीड़ा, सन्धिवात आदि की वेदना में मर्दन करना चाहिए और विसूचिका (हैजा) में पिलाना चाहिये। यह तैल अनेक रोगों में अनेक बार का परीक्षित है।

विषम ज्वर (मलेरिया)

यह ज्वरों का एक भेद है। यह अधिकता में देखा जाता है। इस ज्वर के चढ़ने का कोई निश्चित समय नहीं होता। यह पुनः-पुनः चढ़ता उतरता रहता है। कभी-कभी निरन्तर ज्वर बना रहता है; कभी दिन में दो बार अथवा एक बार और कभी रात्रि को दो या एक बार तथा कभी एक दिन के अन्तर से ताप आता है। इस ताप को "मलेरिया" भी कहते हैं।

विषम ज्वर के कारण—किसी ज्वर की उचित चिकित्सा न होने से, ज्वर से पूर्णतया मुक्त न होने पर भी रोगी द्वारा पथ्य नियमों की उपेक्षा हो जाने से, अपवित्र अन्नपान के सेवन से, कृमियों आदि से मलेरिया ज्वर उत्पन्न होता है। प्रायः यह शीत तथा कम्प के साथ आता है। रोगी के शरीर में एक ही साथ शीत लगना आरम्भ होता है और सम्पूर्ण शरीर में कम्पन हो जाता है। मस्तक में पीड़ा का होना, पिण्डलियों में वेष्टन (ऐंठन), तृषा, मानसिक व्यथा आदि लक्षण होते हैं।

सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ये पांच भेद विषम ज्वर के होते हैं।

विषम ज्वर हर प्रयोग —

(२१) करञ्जादि वटी—(विषम ज्वर में)

करञ्ज की गिरी, लघु पिप्पली, प्रत्येक १-१ तोला, बबूल के शुष्क पत्र ६ माशे और श्वेत जीरा ९ माशे ले कर, सबका वस्त्र छन चूर्ण बना, एकत्र सम्मिश्रण करके गुडूची के स्वरस में एक दिन तक सुदृढ़ मर्दन करके, चने प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें। मात्रा—१-१ वटी प्रातः, मध्याह्न और सायं, दिन में तीन बार, ईषदुष्ण जल से सेवन करें।

गुण—यह वटी विषम ज्वर (मलेरिया) को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक–इन सभी विषम ज्वरों में यह औषधि उत्तम लाभप्रद है। अनुभूत है।

(२२) बिल्वादि क्वाथ

बिल्व (बेल) के पत्र १५, पीपल पत्र ५, और तुलसी पत्र ४५ लेकर, इन्हें जल से स्वच्छ धोकर, शिला पर मोटा मोटा कूटकर, आध सेर जल में, मिट्टी के पात्र में डालकर क्वाथ सिद्ध करें। पाक करते समय पात्र के मुख को खुला रहने दें और मन्द-मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश, आधा पाव जल रहने पर अग्नि से उतार लें और शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके, छान लें।

मात्रा—२॥-२॥ तोले, २-२ घण्टे के अन्तर से दें।

गुण—इस क्वाथ को सेवन करने से सन्निपातज विषम ज्वर और ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) में अच्छा लाभ होता है। दो दिन तक नियमित रूप से पीने पर रोगी को स्वयं लाभ की अनुभूति होने लगती है। इस क्वाथ को प्रातः सायंकाल प्रतिदिन आवश्यकता के अनुसार बना लेना चाहिए।

(२३) करञ्जादि प्रयोग

करंज की गिरी २ तोले, काली मरिच १ तोला–दोनों का सूक्ष्म चूर्ण बना, गुडूची (गिलोय) के स्वरस और चिरायते के रस में पृथक्-पृथक् ३-३ घण्टे मर्दन करके चणक के तुल्य वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२-२ वटी उष्ण जल के साथ १-१ घण्टा के अन्तर से ज्वर आने तक ६ वटी सेवन करा दें।

गुण—यह वटी विषमज्वर को नष्ट करने के लिए अच्छी है। ज्वर चढ़ने से पूर्व ६ वटी खिलाने पर ताप का पर्याय (पारी) बन्द हो जाता है। प्रथम दिन के सेवन से ही ज्वर आने का समय चला जाता है।

(२४) कर्पूरादि वटिका

कर्पूर और स्वर्णगेरू १-१ तोला एवं खूबकला ३ तोले लेकर सब को वस्त्र छन चूर्ण बना, तुलसी के स्वरस में ६ घण्टे मर्दन करके, चणक के तुल्य वटी बना छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२-२ वटी, जल के साथ दें।

गुण—इस वटी–सेवन से विषम ज्वर (मलेरिया बुखार) शान्त हो जाता है। औषध सेवन करने पर उसी दिन ज्वर चढ़ने का क्रम दूर हो जाता है।

(२५) ज्वरघ्न कषाय

अतीस, पित्त पापड़ा, निम्ब पत्र–४-४ रत्ती, करंज गिरी २ रत्ती, गिलोय ४ माशे, इमली ३ माशे और आलु बुखारा ६ माशे—इन सबको यवकूट करके, मिट्टी के एक पात्र में आधा पाव जल के साथ सायंकाल भिगो दें और प्रातः काल हाथ से मर्दन करके, छान लें। इसमें मिश्री मिला, ज्वर आने से एक घण्टा पूर्व पिला दें। प्रातः काल दें।

गुण—इस हिमकषाय के सेवन से विषम ज्वर शान्त हो जाता है। इससे प्रथम दिन ही ज्वर का पर्याय (पारी) रुक जाता है।

वक्तव्य—यदि रोगी मलावरोध से ग्रस्त होवे, तो इसमें वनपसा के पुष्प

और गुलाब के पुष्प—३-३ माशे और मिला देने से रोगी के उदर की शुद्धि हो जाती है।

(२६) अतिविषाचूर्ण

केवल अतीस का सूक्ष्म चूर्ण ४-४ रत्ती की मात्रा में ईषदुष्ण जल के साथ खिलाने से विषम ज्वर शान्त हो जाता है। इसे दिन में तीन बार तक दें और ताप की निवृत्ति होने तक नित्य सेवन करावें। केवल "अतिविषा" (अतीस) में कुनैन की अपेक्षाकृत अधिक गुण विद्यमान हैं।

(२७) निम्बफलवटी

निम्बफल की गिरी (निमौली) को जल के साथ पीसकर, १-१ माशे प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें। इसकी १-१ वटी जल के साथ दिन में तीन बार खाने से शीत पूर्वक आने वाला विषम ज्वर शान्त हो जाता है। प्रथम दिन ही ज्वर आने का समय चला जाता है अर्थात् ज्वर की पारी रुक जाती है।

(२८) शीतभञ्जीरस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध खर्पर, शुद्ध वर्की हरिताल और शुद्ध टंकण—प्रत्येक द्रव्य समभाग में लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, शेष द्रव्यों का वस्त्र-छन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में सम्मिश्रण करके, मर्दन करें और करेले के स्वरस में एक दिन मर्दन करके, गोला बना लें। पश्चात् गोले के शुष्क होने पर, उसे एक छोटे ताम्र पात्र में डाल करके, उसके ऊपर ताम्बे का ही ढक्कन लगा, मुख मुद्रा करें और बालुका यन्त्र में रख दें। आध-आध अङ्गुलि प्रमाण में नीचे-ऊपर बालु तथा मध्य में पात्र को रख दें और अग्नि जलावें। अग्नि जलाते समय बालु के ऊपर धान डालकर देखें; जब बालु के ऊपर डाले हुए धान भुन कर खील होने लगें, तब अग्नि जलाना बन्द करें और शीतल होने दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोल कर, रस को ग्रहण कर लें। इसके पश्चात् इस रस के तुल्य भाग में काली मरिच का वस्त्रछन किया चूर्ण सम्मिश्रण करके, मर्दन करें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक, पान के रस अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करें।

उपयोग—शीत भञ्जीरस के सेवन से शीत के साथ आने वाले विषम ज्वर, सन्निपात ज्वर, एकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक—ये सभी विषम ज्वर और कफ ज्वर नष्ट होते हैं। परीक्षित है।

(२९) शीतज्वरहरी वटी

बिना खिले हुए (मुखबन्द) अर्क पुष्प १०० नग और लवङ्ग १०० दाने—इन दोनों को एकत्र मर्दन करें। जितनी अधिक घुटाई होगी, उतनी ही औषधि की कार्यकारिणी शक्ति बढ़ेगी। ६ घण्टे अजस्र (निरन्तर) घुटाई होने पर चणक के तुल्य वटी बना, छाया में शुष्ककर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी—जल के साथ सेवन करावें।

गुण—जिस ज्वर में रोगी को शीत अधिक अनुभव होता है, अधिक वस्त्र ओढ़ने पर भी ठंडक दूर नहीं होती ऐसे विषम ज्वर में इस वटी को सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। इस योग को अनेक रोगियों पर परीक्षण करके देखा गया है। अनुभूत। सुख साध्य तथा अल्प व्यय साध्य होने पर भी उत्तम औषधि है।

(३०) महाज्वराङ्कुशरस

शुद्ध पारद, शुद्ध आमलासार गन्धक, शुद्ध टंकण, शुद्ध वत्सनाभविष, छोटी पिप्पली, शुण्ठी, काली मिर्च, और करञ्ज के बीज—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग और शुद्ध धत्तूरे के बीज ३ भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, शेष द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण कज्जली में मिला, सुदृढ़ मर्दन करें। इसके उपरान्त जम्बीरी निम्बू के स्वरस और आर्द्रक के स्वरस में पृथक्-पृथक् १-१ दिन खरल करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं समय अदरक के रस और मधु के साथ सेवन करावें।

उपयोग—इस रस के सेवन से सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ये सम्पूर्ण विषम ज्वर तथा वातज, कफज, द्विदोषज और सन्निपातज ताप नष्ट होते हैं। अनुपान भेद से इसे सम्पूर्ण ज्वरों में दिया जाता है। शीत ज्वर और नवीन ज्वर में इसे त्रिकटु तथा गुडूची के क्वाथ से दें। वात ज्वर में एरण्ड बीज और मधु के साथ दें। पित्तज ज्वर में—भुना हुआ जीरा, बड़ी एला के बीज, आमला और मिश्री के साथ सेवन करावें। दाह ज्वर में—कर्पूर और कत्था चूर्ण के साथ वटी दे करके ऊपर से गुडूची और चन्दन का क्वाथ पिलावें। कफ ज्वर में—बहेड़े के चूर्ण और मधु के साथ दें।

गिलोय, धनियाँ, निम्ब की अन्तश्छाल, पद्मकाष्ठ और लाल चन्दन—इन पांच द्रव्यों के क्वाथ के साथ सेवन करने पर सम्पूर्ण प्रकार के ज्वरों में लाभ होता है। अन्य अनुपानों के अभाव में केवल जल से सेवन करावें। यह सिद्ध प्रयोग है।

(३१) शतपुष्पाचूर्ण

एक पाव शतपुष्पा (सौंफ) को पुट पाक विधि से पका कर उसका वस्त्रछन

चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। **मात्रा**—१-१ तोला, **अनुपान**—उष्ण जल से सेवन करावें।

उपयोग—इस चूर्ण को १-१ घण्टे के अन्तर से २-३ बार उष्ण जल के साथ दें और रोगी को पर्याप्त उष्ण वस्त्र ओढा दें। इससे स्वेद आकर ज्वर शान्त हो जाता है। यह निरामय प्रयोग है। अल्प श्रम साध्य होने पर भी अत्युपयोगी है। शतसोऽनुभूतः।

(३२) गुडादिवटी

पुराना गुड ३ माशे, अर्कदुग्ध ३ बिन्दु, और सैंधव लवण आधी रत्ती—इन तीनों द्रव्यों को एकत्र सम्मिश्रण करके, एक गोली बना लें। जिस दिन ज्वर आने का नियम हो, उस दिन प्रातः समय जल के साथ इस वटी को खालें। रोगी को उस दिन कोई खाद्य वस्तु न खाने दें और दिन में सोने न दें। जब ज्वर आने का निश्चित समय व्यतीत हा जाय तब रोगी को केवल दूध सेवन करावें।

इस वटी के सेवन से पर्याय से होने वाले तृतीयक (तेय्या), चतुर्थक (चौथइया) आदि ज्वर में उत्तम लाभ होता है। इसे १ से ३ दिन तक खाने से उक्त ज्वर निर्मूल हो जाता है। यह अनुभूत प्रयोग है। ग्रामीण जनता जनार्दन के लिए सुख साध्य है।

(३३) किरातकादि—सार (अर्क)

किरातक (चिरायता) १ सेर, पित्तपापड़ा एक सेर, गुम्मा दो सेर लेकर, जल से स्वच्छ धोने के उपरान्त मोटा-मोटा कूट करके, १६ सेर जल में भिगो दें। २४ घटे तक भीगने के पश्चात् नाडिका यन्त्र से इसका सार (अर्क) निकाल, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें। मात्रा—१-२ तोला तक प्रातः सायं समय, मधु ३ से ६ माशे तक के साथ सेवन करावें।

उपयोग—इस सार (अर्क) को सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क आदि समस्त विषम ज्वरों में, साम, निराम आदि सर्व अवस्थाओं में और प्रलेपक, वातबलासक, अभिन्यास आदि अनेक रोगों में दिया जाता है। उक्त व्याधियों में इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है। गर्भिणी के स्तन्य जनित ज्वर में और बालकों के यकृत तथा प्लीहा युक्त जीर्ण ज्वर में विशेष रूप से लाभ प्रद है; परन्तु शोथ अतिसार युक्त विषम ज्वर में तथा श्वास एवं हिचकी युक्त ताप में—इस अर्क का सेवन कराना अनुचित है।

(३४) पिप्पल्यादि गुटिका

छोटा पीपल, गुम्मा के पुष्प—२॥-२॥ तोले, करञ्ज की गिरी ५ तोले लें और सबको एकत्र मिलाकर मर्दन करें। इसके उपरान्त तुलसी के स्वरस की ३ भावना

दे करके, प्रत्येक भावना में ३ घण्टे तक मर्दन करके, चणक (चना) प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, जल के साथ खिलायें।

उपयोग—इसे ज्वर चढ़ने से पूर्व १-१ वटी, १-१ घण्टे के व्यवधान से ३ बार सेवन करने पर तृतीयक, चतुर्थक आदि पर्याय (क्रम) से आने वाले विषम ज्वर उसी दिन शान्त हो जाते हैं। उक्त विषम ज्वरों को नष्ट करने के लिये यह वटी अत्युपयोगी है। कुनैन सेवन करने से अन्त में जो विकार उत्पन्न होते हैं वे इस वटी के सेवन करने से नहीं होते। यह योग अनेक रोगियों पर सुपरीक्षित है।

पथ्य—इस वटी को सेवन करते समय केवल दूध का सेवन करना अच्छा होता है।

(३५) खर्पर्यादि वटी

शुद्ध खर्परी (खपरिया) २ भाग, काली मिर्च १ भाग लेकर—दोनों का वस्त्र-छन चूर्ण बना, एकत्र सम्मिश्रण करके, मक्खन मिला, मर्दन करें। पश्चात् इसमें नींबू का स्वरस डालते हुए तब तक घोटें, जब तक कि—मक्खन का स्नेह (चिकनाई) सर्वथा समाप्त न हो जाय। नवनीत का स्नेह पूर्णतया हटने पर १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रखलें।

मात्रा तथा अनुपान—१ से २ वटी तक, १ माशा मधु और ४ रत्ती पीपल चूर्ण के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

गुण—इस वटी को सेवन करने से रसगत, रक्तगत, मांसगत आदि विषम ज्वर नष्ट होते हैं। यह जीर्ण ज्वर, रक्त विकार, रक्तातिसार में भी लाभप्रद है। परीक्षित है।

पथ्य—इस औषधि को सेवन करते समय—दूध तथा भात अथवा दुग्ध और रोटी का सेवन करें।

(३६) शुभ्राभस्म

गुलाबी फिटकरी २० तोले—लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना, अर्क दूध में भिगो करके, मर्दन करें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर इसका गोला बना, शुष्क करके, एक मिट्टी के पात्र में गोले को रख, सम्पुट करके ५ सेर कण्डों के मध्य में रख, अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल करके, भस्म को ग्रहण कर लें और इसे सूक्ष्म पीस करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ रत्ती से ४ रत्ती तक, अर्क गुलाब के साथ प्रातः सेवन करावें।

उपयोग—इस भस्म के सेवन से तृतीयक (तीसरे दिन आने वाला) ज्वर नष्ट हो जाता है। ज्वर, कास, श्वास, राजयक्ष्मा आदि रोगों में अनुपान भेद से शुभ्राभस्म को सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। अनुभूत है।

(३७) चातुर्थिकहरी वटी

अपामार्ग के सद्यः प्राप्त पत्र दो तोले और पुराना गुड़ दो तोले लें। प्रथम अपामार्ग के पत्रों को जल से स्वच्छ धो कर, शिला पर सूक्ष्म पीस, उसमें गुड़ मिला, ३-३ माशे की वटी बना लें। यदि चिरचिटा (अपामार्ग) हरा उपलब्ध न हो, तो शुष्क पत्रों का वस्त्र छन चूर्ण बना, समभाग पुराना गुड़ मिला कर, एक-एक माशे की गुटिका बना लें।

मात्रा—१-१ वटी, ज्वर आने के पूर्व १-१ गोली १-१ घन्टे के अन्तर से जल के साथ ३ बार सेवन करा दें।

गुण—इस वटी के सेवन से तृतीयक (तीसरे दिन चढ़ने वाला) और चातुर्थिक (चौथे दिन आने वाला) —ये दोनों विषम ज्वर नष्ट होते हैं।

(३८) तालादि गुटिका

शुद्ध हरिताल १ तोला, शुद्ध चूना ४ तोले—इन दोनों को एकत्र मर्दन करके, तुलसी के रस में ८ घण्टे तक घोट करके चणक के समान वटी बना, छाया में शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी। **अनुपान**—जल।

गुण—इस वटी के सेवन से तृतीयक और चतुर्थक ज्वर शान्त हो जाता है। अनुभूत है। श्री भगीरथ शर्मा से प्राप्त।

पथ्य—इस प्रयोग में घृत के साथ रोटी देनी चाहिए।

(३९) जीर्णज्वरघ्न चूर्ण

जंगी हरीतकी, श्वेत जीरा, सौंफ और मिस्री—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर सबका वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—३ से ४ माशे तक, बकरी के दूध या जल के साथ प्रातः सायं समय सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से जीर्ण ज्वर तथा मल, मूत्र दोषज नित्य ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इससे मन्दाग्नि का क्षय और क्षुधा की वृद्धि होती है।

(४०) त्रिवृतादिक्वाथ

निशोथ, इन्द्रायण मूल, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आमला और अमलतास का

गूदा—इनको समभाग में लेकर यवकुट कर, रख लें। १ तोला इस चूर्ण को लेकर १६ तोले जल में, मिट्टी के पात्र में क्वाथ बनावें। पकाते समय पात्र को ढकना नहीं चाहिये। मन्द-मन्द अग्नि जलायें। चतुर्थांश, ४ तोले जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके, छान लें और सुखोष्ण को पीवें। इसे प्रातः काल दिन में १ बार सेवन करें। वृन्द

गुण—त्रिवृतादि क्वाथ के सेवन से जीर्ण ज्वर में अच्छा लाभ होता है। यह क्वाथ जीर्णसन्निपात के लिए भी लाभप्रद है। इससे दोषों का पाचन होकर जठराग्नि की वृद्धि होती है।

(४१) पञ्चरत्नी क्वाथ

द्रोणपुष्पी, गिलोय, सौंफ, खूब कला, और देशीय अजवाइन—इन पाँच द्रव्यों को समभाग में लेकर, यवकुट चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को एक तोला लेकर, १६ तोले जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष को मर्दन करके, छान लें और अल्पोष्ण पीने के लिए दें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से जीर्णज्वर, विषम ज्वर, शोथ युक्त ज्वर और मोती झरा (मन्थरज्वर) में उत्तम लाभ होता है।

(४२) शिवादिचूर्ण

बड़ी हरड़ का छिलका, आमला, सैंधव लवण, छोटी पिप्पली और चित्रकमूल इन पाँच द्रव्यों को समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे चूर्ण, प्रातः सायं समय जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण जीर्णज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि और कास में अत्युपयोगी है।

वक्तव्य—जीर्णज्वर का सामान्य लक्षण—दो सप्ताह के उपरान्त समस्त ज्वर जीर्ण हो जाते हैं। पुराने ज्वर से प्लीहा की वृद्धि, अग्निमान्द्य, शारीरिक निर्बलता आदि लक्षण होते हैं।

जीर्णज्वर की चिकित्सा में उपयोगी विचार—जीर्ण ज्वर में क्योंकि शरीरगत रस, रक्त, माँस आदि धातुओं की दुर्बलता हो जाती है, अतएव पुराने ज्वर की चिकित्सा में युक्ताहार विहार के साथ औषधि योजना की जाती है। इस ज्वर में शारीरिक धातुओं की पुष्टि करने के लिए—गौ दुग्ध, घृत, मधुर फल, द्राक्षा, छुवारे, आदि शुष्क फल, मिश्री, खाण्ड आदि पदार्थों की योजना करते हुए चूर्ण, वटी, क्वाथ आदि औषध को सेवन कराना हितकर है। इसके साथ-साथ साधारण भ्रमण करना, ब्रह्मचर्य का पालन, मन की शान्ति बनाये रखना, रोग से भयभीत नहीं होना, व्याधि का विनाश होकर मैं पूर्ण स्वस्थ अवश्य हो जाऊँगा, ऐसा विचार मन में बनाए

रखना, किसी प्राणी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकारों को उत्पन्न न होने देना आदि ये रोगनिवारण में सहयोगी होते हैं। इनके अभाव में चिकित्सा पूर्ण सफल नहीं होती।

मधुरक ज्वर (मोतीझरा), मन्थरताप

परिचय—आहार विहार के दोष से मधुरक ज्वर होता है। इसे "मोतीझरा" भी कहते हैं। इसमें—ताप, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमन तथा कण्ठ, छाती और सम्पूर्ण शरीर में छोटे-छोटे मोती के समान दाने निकलते हैं। इस ज्वर का नाम वैद्यों ने मधुरक रखा है। यह सन्निपातज ज्वर का एक भेद माना जा सकता है। आन्त्रिक सन्निपात, मन्थरक, मधुरक, मधुरा, ये मोतीझरा के पर्यायवाचक शब्द हैं।

मधुरक ज्वर नाशक प्रयोग—

(४३) तुलस्यादिक्वाथ

तुलसी के पत्र ५ नग, लवङ्ग ११ दाने, ब्राह्मी पत्र ५ नग, बड़ का पीले रंग का चौथाई पत्र, और शुण्ठी ४ माशे लें। प्रथम सब पत्रों को जल से स्वच्छ धो करके, समस्त औषाधियों को एकत्र मिला, मोटा-मीटा कूट कर, १६ तोले जल में एक मिट्टी के पात्र में डाल कर, बिना ढके, मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें और स्वाङ्गशीत होने पर हाथ से मर्दन करके, छान, पिला दें। यह एक मात्रा है। इसे अल्पोष्ण रहते हुए पिलावें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से मधुरक ज्वर (मोतीझरा) निरुपद्रव शान्त हो जाता है। इसे प्रातः सायं समय दिन में २ बार सेवन कराने से मन्थर ज्वर में उत्तम लाभ होता है। इससे रोगी के शरीर में जो दाह, वमन, भ्रम आदि उपद्रव होते हैं; वे सभी सत्वर नष्ट हो जाते हैं और रोग की अवधि अनिश्चित काल तक नहीं जाती एवं मोतीझरा में निकलने वाले सरसों के तुल्य छोटे-छोटे दाने शीघ्र प्रकट (व्यक्त) हो जाते हैं। मन्थर ज्वर में यह अत्युपयोगी क्वाथ है।

(४४) चित्रकादि कषाय

चित्रक, पिप्पलीमूल, पिप्पली, धनियाँ, गुडूची और दाल चीनी—इन सभी को समान भाग में ले करके, यवकुट चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को २ तोले लेकर, एक मिट्टी के पात्र में, ८ तोले जल में १ घण्टा भिगो दें। पश्चात् मिट्टी का एक छोटा पात्र लें और उसे निर्धूम अग्नि में रखकर, लालवर्ण का बना लें। जब यह अग्नि में तप कर रक्तवर्ण हो जाय, तो इसे अग्नि से बाहर निकाल कर एक थाली में रख दें और पूर्व भीगी हुई औषध को इसमें तुरन्त डाल दें। ईषदुष्ण को छान करके मन्थर ज्वर के रोगी को पिला दें। यह कषाय सायं समय आठ बजे के लगभग पिलावें। केवल सायं काल एक समय ही पिलाना चाहिये।

गुण—यह कषाय मन्थर ज्वर के लिए उत्कृष्ट औषधि है। कभी-कभी कुपथ्य आदि के कारण मधुरक ज्वर विकृत हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप पिडिकायें शीघ्र व्यक्त नहीं होतीं और रोग काल की मर्यादा का अतिक्रमण करके अनिश्चित समय तक चलता है। ऐसी अवस्था होने पर "चित्रकादि कषाय" का सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। इस के सेवन से दूषित (विकृत) हुआ मोतीझरा शीघ्र शान्त हो जाता है। अव्यक्त रहे हुए दाने शीघ्र प्रकट हो जाते हैं और रोग अतिकष्टप्रद नहीं हो पाता।

मोतीझरा की आरम्भिकावस्था में इस कषाय को सेवन कराने से आशु लाभ होता है। तीन बार के सेवन से ही रोगी को स्वतः लाभानुभूति होगी।

(४५) तालादि योग

शुद्ध हरिताल और फिटकरी—१-१ भाग, और गेरू १॥ भाग लें। इन तीनों द्रव्यों का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त एक लोहे के तवे के ऊपर हरिताल चू ॅ को बिछा, उसके ऊपर फिटकरी चूर्ण को डाल दें और फिटकरी के ऊपर गेरू चूर्ण को बिछा दें। पश्चात निर्वात स्थन में चूल्हे पर तवे को रख, बेरी की लकड़ी की मध्यमाग्नि दें। जब हरिताल पिघल कर लाल वर्ण हो जाय और फिटकरी फूल जाय तो अग्नि जलाना बन्द कर दें। और स्वाङ्ग शीत होने दें। शीतल होने पर हरिताल को अग्नि में डाल कर परीक्षा करें। यदि अग्नि पर डालने से हरिताल से धूम्र निकले तो उसे अपक्व समझ कर पुनः अग्नि देकर सिद्ध कर लें। धूम्र न निकलने पर इसे सिद्ध जान लें और सूक्ष्म पीस कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती तक, अर्क गावजवां के साथ प्रातः, मध्याह्न और सायं समय दिन में तीन बार दें।

गुण—यह योग सविकार मन्थर ज्वर, जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से मोतीझरा के रुके हुए दाने शीघ्र निकल आते हैं।

(४६) मधुरान्तक रस

शुद्ध मोती ३२ तोले, बुभुक्षित पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध टंकण (सुहागा) १० तोले, लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, मोती चूर्ण को कज्जली में सम्मिश्रण करके, मर्दन करें। पश्चात् इसमें सुहागे का वस्त्रपूत चूर्ण मिला करके घोटें। इसके पश्चात् चित्रक के क्वाथ, तुलसी का रस और ब्राह्मी के रस में पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना दें। प्रत्येक भावना में ८ घण्टे तक मर्दन करें; पश्चात् टिकिया बना, सुखा, चूना लेपित मृत्पात्र में रख, सम्पुट बना, गजपुट की अग्नि दें। स्वांग शीत होने पर रस को ग्रहण कर, पीस, रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक, मधु ६ माशे तथा ९ दाने काली मरिच के सूक्ष्म चूर्ण के साथ मिला करके रोगी को चटावें। खूबकला के अनुपान से भी दे सकते हैं।

गुण तथा उपयोग—यह रस सोपद्रव मन्थर ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है। जिस रोगी के आन्त्रिक-सन्निपात से (मन्थर ज्वर से) हाथ-पैर की अङ्गुलियाँ वक्र (टेढ़ी) हो गई हों, मस्तिष्क में विकृति आ गई हो अथवा इसी प्रकार के और उपद्रव उत्पन्न हो गये हों—उसके लिए यह रस उत्कृष्ट है। इस रस के सेवन से उक्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इससे आन्त्रिक शोथ भी नष्ट हो जाता है। गलग्रन्थि (टौंसिल) में यह रस अद्भुत लाभप्रद है। पुराने रोगों में भी यह हितकर है। पुराने कष्ट साध्य रोगों में इसका सेवन निरन्तर कुछ समय तक कराना इष्ट है। उक्त सभी रोगों में यह अपना चमत्कार अवश्य दिखाता है। सुपरीक्षित है।

(४७) मधुरान्तक वटिका

मोती पिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशे, केशर ३ माशे, जायफल ४ माशे, जावित्री ५ माशे, लवङ्ग ६ माशे, तुलसीपत्र ७ माशे और अभ्रक भस्म ८ माशे लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण करके, कस्तूरी को छोड़ कर, शेष द्रव्यों को एकत्र सम्मिश्रण करें और स्थिरता से मर्दन करने के उपरान्त, आर्दक के रस में एक दिन घुटाई करें। घुटाई होने के उपरान्त जब यह वटी बनाने के योग्य हो जाय, तो अन्त में कस्तूरी को मिला कर पुनः और मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—½ से २ वटी तक, अदरक के रस वा जल के साथ ३-३ घन्टे के अन्तर से दिन में ३-४ बार सेवन करावें।

गुण—यह वटी मन्थर ज्वर में अत्युत्कृष्ट है। इसके सेवन से २१ दिन तक चलने वाले मोतीझरा में उत्तम लाभ होता है। मधुरा ज्वर की सभी अवस्थाओं में यह रसायन हितकर है। यह शारीरिक विष का शमन और आन्त्रों में बल प्रदान करती तथा दाह शामक है।

अपथ्य सेवन करने से अथवा औषधि सेवन में प्रमाद होने से कभी-कभी आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा) में पिडिकाएं (दाने) अपने समय पर नहीं निकल पातीं; इससे शरीर में विष व्याप्त होकर विविध उपद्रवों की उत्पत्ति हो जाती है। ऐसी अवस्था में इस वटी के सेवन से अद्भुत लाभ होता है। मधुरा में "लक्ष्मी-नारायण रस" के साथ इसे सेवन करने पर सत्त्वर लाभ होता है। सगर्भा स्त्री और बालकों के ताप को उतारने के लिए निर्भय योग है।

(४८) ज्वरघ्न धूप

गुग्गुलु, खस, वचा, लोबान, अर्कत्वक्, अगरचूर्ण, धूप लकड़ी, सरसों, कर्पूर, नागर मोथा, वायविडङ्ग, चन्दन और सुगन्धबाला—इनको समान-समान लें और सबको एकत्र मिला करके, जितना भार होवे, उतने ही निम्बपत्र ले करके, सबका यवकुट चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। आवश्यकता के अनुसार प्रातः सायं इस धूप को

रोगी के निवास कक्ष में प्रज्वलित अग्नि पर डाल, सुगन्ध करें।

इसको नित्य-प्रति प्रयुक्त करने से सभी प्रकार के ज्वरों में लाभ होता है। ज्वर की निवृत्ति करने में यह योगदान कराती है। प्लेग रोग में भी यह अत्युपयोगी है। इसकी सुगन्ध से रोगोत्पादक कृमियों का क्षय होता है।

ऋतु के अनुसार सामग्री द्रव्यों को लेकर चूर्ण बना कर उसमें शुद्ध घृत मिला करके रोगी के निवास कक्ष में विशुद्ध भाव से यदि वैदिक मन्त्रों को बोल करके हवन किया जाय; तो सम्पूर्ण प्रकार के साध्य असाध्य ज्वर विनष्ट होने लगते हैं और रुग्ण का चित्त प्रसन्नता एवं स्फूर्ति से युक्त हो जाता है। हवन करने से वायु-मण्डल में एक प्रकार की दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है। जो वाह्य वातावरण को निर्मल बनाती हुई रोगी की श्वास नली से अन्दर प्रविष्ट होकर आन्तरिक स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

अथ फुफ्फुस सन्निपात रोग चिकित्सा प्रकरणम् ॥४॥

अनेक उपद्रवों के सहित आक्रमण करने से और प्राणियों के लिए अत्यधिक कष्टप्रद होने से सम्पूर्ण व्याधियों में ज्वर वरिष्ठ है—रोगराज है। ज्वरों में सन्निपात ज्वर अतिदारुण है। अतः चिकित्सा के दृष्टिकोण से चरक में—दुश्चिकित्स्यों में सन्निपात को बलिष्ठ कहा है। "सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानां श्रेष्ठः" (च० सं० सूत्र० अ० २५) अर्थात् कष्टसाध्य सभी व्याधियों में सन्निपात रोग प्रधान है। आयुर्वेद शास्त्रों में विस्फारक, आशुकारी, कम्पन आदि १३ प्रकार के सन्निपात कहे गये हैं। उनमें "कर्कटक" यह भी एक सन्निपात का भेद माना गया है। श्री भावमिश्र जी ने भावप्रकाश ग्रन्थ में "कर्कटक सन्निपात" का जो लक्षण लिखा है; वह फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) में पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है।

'कर्क शब्द' केकड़ा, कर्क राशि, अग्नि, दर्पण और जलकुम्भ, आदि अर्थों का बोधक है। इस प्रकरण में कर्क शब्द जलकुम्भ के अर्थ का अभिधायक है। क्योंकि प्रकृतव्याधि में वारि से आपूरितघट के समान ही जलस्वरूप कफ से श्वासयन्त्र पूर्ण होता है, अतएव फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) का कर्कटक नाम रखना सार्थक है।

पर्यायवाचक शब्द—कर्कटक सन्निपात, फुफ्फुस सन्निपात, श्वसनक ज्वर, फुफ्फुस शोथ, फुफ्फुस प्रदाह, फुफ्फुस पाक, पार्श्वरुक्—ये संस्कृत के नाम हैं। अंग्रेजी भाषा में इस रोग को न्यूमोनिया कहा जाता है।

फुफ्फुस सन्निपात के कारण—अधिक मात्रा में आहार करने, ऋतु विरुद्ध अन्नपान सेवन करने, अजीर्ण में खाने, अत्यधिक उपवास करने, शीत निवारण करने योग्य वस्त्रों के न होने, शीतकाल में वर्षा या वायु का नग्न शरीर पर प्रभाव पड़ने, दूषित वायुमण्डल में निवास करने, अनियमित रूप से स्नान, व्यायाम, परिश्रम आदि कार्य को करने, अत्यधिक सुरा, तम्बाकू, चाय आदि के सेवन करने, ब्रह्मचर्य का अभाव होने, क्रोध-चिन्ता-शोक आदि के बढ़ने आदि से श्वसनक ज्वर उत्पन्न होता है। स्वच्छ जलवायु का अभाव तो इस व्याधि का घनिष्ठ मित्र ही है। आच्छादक वस्त्रों के अभाव में जब शीतकाल में वर्षा से शरीर भीग जाता है अथवा तीव्र वायु का प्रभाव वक्षः स्थल, शिर आदि अङ्गों पर हो जाता है; तो उस समय प्रतिश्याय (जुखाम) उत्पन्न होकर फुफ्फुसप्रदाह (न्यूमोनिया) बन जाता है।

पाश्चात्य चिकित्सकों के मत से यह व्याधि जीवाणु से उत्पन्न होती है। श्वास नलिका द्वारा बाहर के रोगाणु अन्दर प्रविष्ट होकर स्वस्थ व्यक्ति को श्वसनक ज्वर-ग्रस्त कर देते हैं। उनके विचार में एक कृमिविशेष फुफ्फुस में जाकर फुफ्फुसपाक को उत्पन्न करता है। यह एक संक्रामक रोग है। फुफ्फुस सन्निपात रोगी के थूक से

रोगाणु बाहर निकल कर धूलिकणों में मिल जाते हैं अथवा थूक के सूखने पर वायु में समाविष्ट हो जाते हैं। इसके उपरान्त जीवाणु वायु से उड़ कर श्वास यन्त्र माध्यम से फुफ्फुस में प्रविष्ट होकर प्रकृत व्याधि को उत्पन्न कर देते हैं।

लक्षण—श्वसनक ज्वर उत्पन्न होने पर रोगी के शिर में शूल, पार्श्व वेदना, और ज्वर का मान १०२ से १०४° फैरनहाइट तक चला जाता है। कास उत्पन्न होता है और रोगी को खांसने में कष्ट होता है । श्वास-प्रश्वास में वेदना होती है तथा फुफ्फुसों में प्रदाह होता है। दक्षिण फुफ्फुस में रोग होने से दाहिने पसलियों में और वाम फुफ्फुस में व्याधि होने से बायें भाग में तीव्र वेदना उत्पन्न होती है। यदि दोनों फुफ्फुस रोगग्रस्त हों तो दोनों ओर के पार्श्व भाग में दारुण शूल होने लगता है। आतुर के थूक में कफ के साथ रक्त भी आता है। लोहे के जंग के समान कफ का वर्ण होता है। रोगी की जिह्वा मलिन, कर्कश तथा लेप चढी सी हो जाती है। शारीरिक दुर्बलता के साथ-साथ मानसिक मोह तथा व्याकुलता की वृद्धि होती है। रोगी प्रलाप करने लगता है—असम्बन्ध वार्तालाप करता है। इन लक्षणों से फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) को जाना जाता है।

फुफ्फुस प्रदाह के भेद—श्वसनक ज्वर को मुख्य रूपेण ३ भागों में विभक्त किया जाता है। ये तीन भेद प्रकृत व्याधि की अवस्थाएँ हैं। चिकित्सा की दृष्टि से इन अवस्थाओं को जानना उपयोगी है। १–**प्रारम्भावस्था**, २–**द्वितीयावस्था** और ३–**तृतीयावस्था**—ये तीन श्रेणी हैं।

१—प्रारम्भावस्था

अयुक्त आहार विहार से जब फुफ्फुस में वात पित्त कफ—ये तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं; तो उस समय फुफ्फुस में शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह शोथ फुफ्फुस के निम्न भाग में, मध्य में और ऊपर के अवयवों में—कहीं भी हो सकता है; किन्तु प्रायः यह श्वयथु फुफ्फुस के नीचे के खण्ड से आरम्भ होता है। इस शोथ के उत्पन्न हो जाने पर धीरे-धीरे उसका प्रभाव दूसरे फेफड़े के ऊपर अथवा उसी फुफ्फुस के स्वस्थ खण्डों पर भी पड़ता है। फुफ्फुस के जितने भाग पर शोथ होगा उसका उतना खण्ड ही अपनी कोमलता को छोड़कर सघन हो जाता है। सघन होने पर उस भाग में शुद्ध वायु नहीं जा पाती और वहाँ से अशुद्ध वायु बाहर निकलने में असमर्थ रहती है। फलतः वहाँ पर प्राण वायु न जा सकने के कारण रुधिर की शोधन क्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

इस अवस्था के प्रारम्भ होने पर रोगी के फुफ्फुस में दाहयुक्त वेदना होती है। दक्षिण फुफ्फुस के रोग ग्रस्त होने पर दाहिने ओर शूल होगा और बायीं ओर के फुफ्फुस में विकार होने से बायें पार्श्व में वेदना होती है। तापमान १०३ से १०४ डिग्री तक हो जाता है। कास वेग में वृद्धि होती है। अधिक कष्ट के साथ खांसने पर अर्धमलिन कफ निकलता है जो गाढा, फेन युक्त, चिपचिपा तथा लोहमल (लोहे के जंग) वा ईंट

के समान होता है। आतुर के शिर में पीड़ा, अङ्गों में ऐंठन, आलस्य (गुरुता), सन्धियों, कसेरुकाओं और स्कन्धास्थियों में कञ्चित् वेदना होती है। रोगी की व्याकुलता में वृद्धि होती है। नेत्र कुछ उभारयुक्त होते हैं। पिपासा की अधिकता हो जाती है। जिह्वा श्वेत, मलिन लेपचढ़ी और रूक्ष हो जाती है। मलावरोध हो जाता है और आतुर के ओठ नीले हो जाते हैं। निद्रा का नाश और शारीरिक निर्बलता होती जाती है। श्वास प्रश्वास कष्ट पूर्वक होते हैं—इत्यादि विविध लक्षण प्रारम्भावस्था में देखे जाते हैं। इसकी योग्य चिकित्सा होने पर व्याधि शान्त हो जाती है और उपेक्षा करने से रोग और भी प्रवल हो जाता है।

२—द्वितीयावस्था

प्रथमावस्था में उचित चिकित्सा न होने पर तथा रोग के उत्पादक कारणों का बहिष्करण न होने से २ से ८ दिन में द्वितीयावस्था आ जाती है। यह दशा पूर्वोक्त अवस्था से अधिक भयावह होती है। इसमें फुफ्फुसीय शोथ और भी अधिक बढ़ता है और विद्रधि (बड़ा फोडा) उत्पन्न हो जाती है। पूय (मवाद) बन करके दुर्गन्ध आने लगती है। इसमें कास का वेग बढता है और थूक में पूययुक्त रक्त के साथ कफ निकलता है। आतुर चेतना शून्य होकर कभी रोता है, कभी हंसने लगता है और कभी असम्बन्ध भाषण करता है। इस प्रकार अनेक चेष्टाएँ करने पर भी रोगी को यह ज्ञान नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूँ और क्या बोल रहा हूँ। ऐसी दशा में वह आत्मीय बन्धु-बान्धव, मित्र, गुरुजन आदि संरक्षकों को भी विस्मृत कर लेता है—उन्हें जान नहीं पाता है। रोगी का शरीर कभी शीतल और कभी उष्ण होता है। हृदय की गति मन्द हो जाती है और नाड़ी की गति का ज्ञान यथार्थ नहीं हो पाता।

कास का वेग प्रवल होने से रोगी थोड़े-थोड़े समय में खांसता रहता है और खाँसते हुए उसे दारुण वेदना की अनुभूति होती है। शारीरिक निर्बलता से कास के वेग में जो आतुर की दयनीय दशा होती है; उसे देख करके यह अनुमान होता है कि—यह आत्मा मानो इस दुःख सागर से पार होने के लिए भगवान् श्री विष्णु जी के स्वरूप में अवस्थित होना चाहती है। अखण्ड चैतन्य स्वरूप परात्पर ब्रह्म में संस्थिति लाभ के लिए उत्सुक है।

द्वितीयावस्था में आया हुआ रोगी यदि निर्धन है—भौतिक साधनों से शून्य है। योग्य चिकित्सा के तीनों पादों से (वैद्य, परिचारक और औषधि–इन तीनों से) रहित है और अन्धकार पूर्ण अर्धरात्रि में एक साथ कास, शूल, ज्वर, प्रलाप आदि उपद्रवों से ग्रस्त है, दोनों फुपफुसों में असह्यवेदना, पिपासा, तीव्र शिरः पीड़ा की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है; तो ऐसी अनुकम्पनीय दशा को देखकर पाषाण हृदय व्यक्ति भी सरस होकर कहने लगते हैं कि–हे सर्वान्तिर्यामिन् ! परमात्मन् ! ऐसा रोग किसी को न होवे।

३–तृतीयावस्था वा रोगोपशमावस्था

जिन रोगियों की संसार-यात्रा समाप्त हो चुकी है वे द्वितीयावस्था में ही दिवङ्गत हो जाते हैं और प्रभु की अनुकम्पा से जिन आतुरों के पुण्यकर्मों का फल उदय हो गया है वे योग्य चिकित्सक, उत्तम परिचारक और श्रेष्ठ औषधि की योजना से तथा सर्वान्तर्यामी की अचिन्त्य शक्ति से स्वस्थ होने लगते हैं। कुछ समय के उपरान्त उनका ज्वर तथा पार्श्व-वेदना क्रमशः न्यून होते जाते हैं। फेफड़ों की सघनता समाप्त होने लगती है और फुफ्फुस पूर्ववत् स्वाभाविक कोमल होते जाते हैं। जैसे-जैसे फुफ्फुसों की अस्वाभाविक अवस्था (घनीभूतदशा) दूर होती है; वैसे-वैसे उनकी कोमलीभूत अवस्था वृद्धिगत होती जाती है। कोमलीभूत अवस्था के होने पर फुफ्फुस में वायु का आवागमन होने लगता है और रक्त के शोधन की क्रिया यथापूर्व ही चलने लगती है। इस समय रोगी को स्वस्थ होने की दिशा प्रत्यक्ष दीखने लगती है। यह इस रोग की तृतीय-अवस्था है। इसे "रोगोपशमावस्था" भी कहते हैं। इस दशा में प्रायः सभी उपद्रव शान्त होने लगते हैं।

फुफ्फुस सन्निपात की तृतीयावस्था एक प्रकार से नवीन जीवन है। इस व्याधि की द्वितीय अवस्था से सुरक्षित रहकर उपशमावस्था में जाना साधारण कार्य नहीं है। इसे रोगी का द्वितीय जन्म ही कहा जा सकता हैं।

अब यहाँ रोग उपशमनार्थ कतिपय स्वयं परीक्षित योग समर्पण करता हूँ। यथाविधि समय पर उपयोग करके लाभ उठाइये।

फुफ्फुस सन्निपात की प्रथमावस्था में चिकित्सा क्रम—

क्योंकि फुफ्फुस प्रदाह (न्यूमोनिया) श्वासयन्त्र में उत्पन्न होने वाली व्याधि है; इसमें शुद्ध प्राणवायु की महती आवश्यकता होती है; अतएव सर्वप्रथम श्वसनक ज्वर के रोगी का निवास पवित्र, शान्त, एकान्त वायुमण्डल में स्थित कक्ष में करना अच्छा है। निवास गृह में खिड़कियाँ बनी हुई हों और सूर्य का प्रकाश तथा शुद्ध वायु का आवागमन निर्बाध-रूप से होता हो। आवाम कक्ष में सीलन न हो।

फुफ्फुस-पाक रोग का पूर्ण निश्चित होने के उपरान्त रोगी को पूर्ण विश्राम करना इष्ट है। चलना, फिरना, अधिक बोलना, काम, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, भय, निराश होना आदि इन शारीरिक वाचिक और मानसिक क्रियाओं पर नियन्त्रण अत्यावश्यक है। धैर्य तथा शान्ति के साथ रोगी अपने मन को चञ्चलता, भय, निराशा आदि चित्तविकारों से सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयास करे। इस कार्य में चिकित्सक भी प्रोत्साहन देकर आतुर के मनोबल की रक्षा यदि करे; तो चिकित्सा में अच्छा लाभ होगा।

१—पिपासा लगने पर आतुर को, अग्नि पर पका, षोडशांश अवशेष किया हुआ जल शीतल करके दें अथवा बनफसा का क्वाथ पिलावें। २—ऐरालु के रस की ६ से १० बिन्दु तक उष्ण जल के साथ सेवन करावें। यह केवल प्रथम दिन प्रातः सायं दो बार पीने के लिए दें।

वक्तव्य—"ऐरालु" एक प्रकार का फल होता है और इसकी आकृति खीरे के सदृश ही होती है। खीरे से यह अधिक कड़ुवा होता है; केवल इतना अन्तर ऐरालु में होता है। झाड़ियों में बिना बोये ही स्वत: उत्पन्न हो जाता है।

३—अडूसा (वासा) अर्क १-१ तोला दिन में ३-४ बार चटाइये। ४- "मृत्युञ्जय रस" को ताम्बूल रस वा मधु के साथ दिन में दो बार सेवन करावें।

५—शुद्ध वत्सनाभ, छोटी पिप्पली और अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा—इन तीनों द्रव्यों को समभाग में ले करके वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र सम्मिश्रण करके बंगला ताम्बूल के रस में ३ घण्टे मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की गुटिका बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी ताम्बूल (पान) के रस के साथ प्रातः सायं दिन में दो बार दें।

गुण—यह वटी फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) रोग में लाभप्रद है। इससे कास का शमन होकर रोग में शान्ति होती है। कफ को तरल करके बाहर निकालने के लिए यह हितावह है।

६—योग शक्ति रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली, अनार के बीजों का रस, शुद्ध धत्तूरे के बीज, पिप्पली मूल, केशर, लवङ्ग और जायफल–इनको सम भाग ले करके, प्रथम गन्धक तथा पारद की कज्जली बना, शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण तथा अनार का रस कज्जली में सम्मिश्रण करके मर्दन करें और ताम्बूल के स्वरस और आर्द्रक के रस में १-१ दिन दृढ मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना; छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी बंगला पान के रस में वा अदरक के रस में दिन में ४–५ बार दें।

गुण—योग शक्ति रस फुफ्फुस सन्निपात के लिए अत्युपयोगी औषधि है। इसके सेवन से कफ का स्राव, वेदना का नाश तथा ज्वर की शान्ति होती है। प्रकृत रोग में यह परीक्षित विशिष्ट योग है।

७—सुमल्ल योग

श्वेत सुमल्ल (शंखिया) ५ तोले को सूक्ष्म पीस करके, एक स्वच्छ वस्त्र में बान्ध, पोटली बना लें। पश्चात् इस पोटली को एक स्थूल केले के वृक्ष में गड्ढा कर, उस में रख दें और ऊपर से उसके छिद्र को बन्द कर दें। इससे ४५ दिन तक इसी प्रकार अन्दर रहने के उपरान्त निकाल लें और घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस में २१ भावनाएँ दें तथा प्रत्येक भावना में ३ घण्टे घोटें। इसके उपरान्त तोल करके इसके तुल्य भाग में कच्ची फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके, डमरूयन्त्र में रख, मन्दाग्नि देकर, ऊर्ध्व पातन करें। सिद्ध होने पर अग्नि देना बन्द करें और

स्वाङ्गशीत होने के पश्चात् यन्त्र को खोल करके संपूर्ण औषधि ग्रहण कर लें और उसे सूक्ष्म पीस कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ चावल, पान के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

गुण—यह योग श्वसनक ज्वर (फुफ्फुस सन्निपात) में लाभप्रद है। इसके सेवन से शीताङ्ग सन्निपात में भी लाभ होता है।

८—मल्लादि वटी

उपर्युक्त मल्ल योग वाली औषधि ३ माशे, शुद्ध कुचला ६ माशे, कुनैन १ तोला और कज्जली १ तोला ले करके एकत्र सम्मिश्रण करें और अपामार्ग के रस, तुलसी के स्वरस तथा करंज के रस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावनायें दे करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, आर्द्रक के रस के साथ दिन में दो बार सेवन करावें।

गुण—यह वटी फुफ्फुस सन्निपात में होने वाले ताप को शान्त करती और कास को न्यून करती है। इसके सेवन से सन्तत ज्वर, शीतपूर्वक चढ़ने वाला ज्वर और तीव्र ज्वर—इन रोगों में अच्छा लाभ होते देखा गया है। इन सभी रोगों में अव्यर्थ प्रयोग है।

९—कासकुठार रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, काली मरिच, त्रिकुटा, एवं भृष्ट टंकण (भुना हुआ सुहागा)–प्रत्येक द्रव्य समभाग में लें। इसके उपरान्त इन औषधियों का पृथक्-पृथक् वस्त्रछन चूर्ण बना लें और सब को एकत्र मिला, मर्दन करें। पश्चात् आर्द्रक के रस में एक दिन मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रख लें। र० रा० सु०

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, आर्द्रक के रस तथा मधु के साथ प्रातः सायं दिन में दो बार दें।

गुण—कास कुठार रस के सेवन से फुफ्फुस प्रदाह जनित कास में अच्छा लाभ होता है। इससे कफ तरल होकर बाहर निकल जाता है और खांसी का बेग शान्त हो जाता है।

१०—गोमूत्र शोधित वत्सनाभ (मीठाविष)—१-१ रत्ती की मात्रा में ताम्बूल में रखकर प्रातः सायं दिन में दो बार देने से अच्छा लाभ होता है।

११—शंखभस्म—१-१ रत्ती, पान के साथ प्रातः सायं दें।

१२—शृंगभस्म—१-१ रत्ती दिन में २–३ बार, पान के रस में दें।

१३—सहस्रपुटी अभ्रकभस्म— १-१ रत्ती ताम्बूल में दें।

१४—वासकादि क्वाथ

वासा पत्र (अडूसा) ३ तोले, वनफसा ४ तोले, तुलसी पत्र २ तोले, शुष्क ताम्बूल–पत्र १ तोला, सोंठ, काली मरिच, छोटी पिप्पली-प्रत्येक १-१ तोला, जावित्री, जायफल–६-६ माशे, लवङ्ग ३ माशे, और तज ६ माशे लें। इनको यवकुट चूर्ण करके सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को १ तोला ले करके ६४ तोले जल में पकावें। षोडशांश, ४ तोले जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार, शीतल होने के पश्चात् हाथ से मर्दन करके, छान लें और इसमें मिश्री तथा दूध मिला, अल्पोष्ण पीने के लिए दें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से इसे दिन में ३ बार प्रातः, मध्याह्न तथा सायं काल सेवन करावें।

गुण—यह क्वाथ फुफ्फुस सन्निपात के लिए अत्युपयोगी है। इसके सेवन से कफ का स्राव होकर के कास का वेग शान्त हो जाता है। यह ज्वरघ्न, हृद्य, पाचन, दीपन और शूलघ्न है।

१५—यष्टीमध्वादि क्वाथ

यष्टीमधु (मुलहठी), अडूसा पञ्चाङ्ग, गुलवनफसा, उन्नाव, सोंफ, काकड़ा सिंगी,—इन को समभाग में ले करके, यवकुट चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। १ तोला चूर्ण को ६४ तोले जल में मृत्पात्र में मन्दाग्नि पर, विना ढक्कन से ढके पकावें। षोडशांश, ४ तोले जल शेष रहने पर उतार, छान लें और इसमें—वंशलोचन, मधु और खाण्ड वा चीनी मिश्रण करके अल्पोष्ण पिलावें। यह क्वाथ इस रोग में उत्तम लाभप्रद है। दिन में ३-४ बार दें।

१६—द्राक्षादि क्वाथ

द्राक्षा (मुनक्के), वनफसा, बिहीदाना, खतमी के बीज और दालचीनी—समान-समान लेकर, ६४ गुणा जल में क्वाथ करें और १६ वाँ भाग शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार करके, मर्दन कर, छान लें। इसके पश्चात् इसमें घृतकुमारी का गूदा, वंशलोचन, मधु और आर्द्रक का रस सम्मिश्रण करके सुखोष्ण पिलावें। यह क्वाथ कासघ्न, कफ स्रावक, रेचक और हृद्य है। श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) के लिए विशेष हितकर है।

१७—अमृतक्षारादि योग

अमृतक्षार (नवसादर), अपामार्गक्षार, यवक्षार, कण्टकारीक्षार, वासकक्षार—

इनको समभाग में ले करके एकत्र मर्दन करें और सुरक्षित रख लें। मात्रा--२ से ३ रत्ती तक मधु के साथ दें। इसके सेवन से कफ का स्राव होता है। कास के वेग का शमन एवं जठराग्नि की वृद्धि होती है।

१८ सितोपलादिचूर्ण (च० स० चि० अ० ८/१०३-१०४)

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम्। अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधु सर्पिषा ।।

चूर्णितं प्राशयेद्वा तच्छ्वासकासकफातुरम्। सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ।।

मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी एला के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला—इन सब को वस्त्रछन चूर्ण बना कर सुरक्षित रख लें। इसको "सितोपलादिचूर्ण" कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशा, मधु १ माशा और घृत ६ माशे के साथ मिला करके चाटें। अथवा चूर्ण को खा कर, ऊपर से जल पान करें।

गुण—इस चूर्ण को सेवन करने से श्वास, कास, नष्ट होता है और कफ से पीड़ित रोगियों का कफ दूर होता है। तथा जिह्वा की शून्यता, अरुचि, मन्दाग्नि और पार्श्व शूल से पीड़ित रोगियों के लिए अत्युत्तम है। फुफ्फुस सन्निपात की सभी अवस्थाओं में यह हितावह है।

द्वितीयावस्था में चिकित्सा क्रम

फुफ्फुसपाक (न्यूमोनिया) की दूसरी दशा में चिकित्सक को ज्वर नाशक औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि ज्वर नष्ट होने से शारीरिक उष्णता का अभाव हो करके हाथ, पैर आदि अङ्ग शीतल हो जायेंगे और ऐसी अवस्था में पुनः गर्मी लाने का प्रयास करना पड़ेगा। अतएव ताप को नष्ट करने की चिन्ता न करके ज्वर को स्थिर बनाये रखने का उपचार होना इष्ट है। इस अवस्था में अकस्मात् उष्णता समाप्त होकर कायिक शीतलता की वृद्धि होना, अचेतना (संज्ञाशून्यता), और प्रलाप ये तीन लक्षण भयङ्कर होते हैं। शारीरिक उष्णता को बनाये रखते हुए ही सञ्ज्ञाशून्यता आदि उपद्रवों की चिकित्सा करनी अभीष्ट है। इसके साथ-साथ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि—श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) की द्वितीयावस्था में रोगी का हृदय निर्बल न होने पाय। ऐसी दशा में रोगी के चित्त को धैर्य तथा शान्ति वर्धक वाक्यों से प्रोत्साह देना आवश्यक है और साथ में हृदय को बल प्रदान करने वाले योगों को विवेकज्ञान पूर्वक सेवन कराना वाञ्छनीय है।

नाड़ी और श्वास की गति को सम्यक् प्रकार से देखना चाहिये। भयावह दशा में आध-आध घण्टे पर ज्वर मापक यन्त्र से तापमान जानते रहें। रोगी की प्रत्येक चेष्टा को सावधानी से देखकर, उस पर मनन करता रहे। यथावसर औषधियों

में परिवर्तन करना, उचित अनुपान के साथ योग्य मात्रा में बुद्धिपूर्वक योगों का देना, शीघ्रता करके मन को चञ्चल न होने देना, भयभीत न होना आदि बुद्धि के गुणों का संवर्धन करना चिकित्सक के लिए अभीष्ट होता है। धैर्यपूर्वक शास्त्रीय वाक्यों को स्मरण रखते हुए युक्तियुक्त चिकित्सा करने पर अतिकष्ट साध्य व्याधियों में भी सफलता उपलब्ध होती है। ईश्वर के अनुग्रह और गुरुजनों के आशीर्वाद से हमें इस रोग से पीड़ित **अनेक** आतुरों की चिकित्सा करने में सफलता प्राप्त हुई है।

हृदय की निर्बलता का प्रतीकार

१—"सहस्रपुटी अभ्रक भस्म" १-१ रत्ती, प्रातः सायं समय, मधु और वंशलोचन के साथ सेवन करावें।

२—"मकरध्वज" को सितोपलादि चूर्ण में सम्मिश्रण कर, उपयोग करें।

३—"वसन्त कुसुमाकर रस"—१-१ रत्ती प्रातः सायं मधु के साथ सेवन करावें।

४—"द्राक्षासव" को अडूसा के रस के साथ सेवन करावें।

कफ नाशक उपाय

फुफ्फुस सन्निपात व्याधि में रोगी के वक्षः स्थल, श्वासयन्त्र, कण्ठ—इन स्थानों में कफ का सञ्चय हो जाता है। इससे आतुर को पुनः-पुनः कास का वेग उठता है और उसे श्वास प्रश्वास क्रिया में कष्ट का अनुभव होता है। कफ की वृद्धि से रोग के लक्षण अल्प नहीं होते और अनेक उपसर्ग भी उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव कफ का प्रतीकार करना चाहिये। तदर्थ निम्नाङ्कित प्रयोग उपयोगी हैं—

१—कुमारी (ग्वार पाठा) का रस २ तोले, मधु ४ तोले, मिश्री १ तोला—इन तीनों को एकत्र सम्मिश्रण करके अङ्गुली से चटावें।

२—"सितोपलादि चूर्ण" १ माशा, अदरक के रस और मधु के साथ दिन में ३-४ वार सेवन करावें।

३—अडूसा, काकड़ा सिंगी, अतीस, मुलहठी और उन्नाव—इन पांच द्रव्यों को समभाग ले करके मोटा-मोटा कूट लें और सुरक्षित रख लें। १ तोला की मात्रा में इस चूर्ण को ले करके ३२ तोले जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। अष्टमांश जल शेष रहने पर अग्नि से उतार, मर्दन कर, छान लें और इसमें मधु मिला कर रोगी को पिला दें। इसके सेवन से कफ सरलता से निकल जाता है।

४—शुद्ध मीठा विष आधी रत्ती, मधु के साथ सेवन करावें।

५—वासावलेह—३-३ माशे, सितोपलादिचूर्ण के साथ दिन में तीन बार चटावें।

६—कफकेतु रस (बृहत्) (भै.र.)

शंख भस्म, सौंठ, काली मिर्च, पिप्पली और शुद्ध सुहागा १।-१। भाग, और शुद्ध वत्सनाभविष ५ भाग लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना; सबको एकत्र सम्मिश्रण करके, आर्द्रक के रस की ३ भावना देकर आधी-आधी रत्ती की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—आधी से १ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, आर्द्रक के रस के साथ दें।

गुण—यह वटी कफ को तरल करके बाहर निकालने के लिए अत्युपयोगी है। फुफ्फुस सन्निपात की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद है।

७—कफकेतु रस (र० रा० सु०)

अकरकरा, शुद्ध वत्सनाभविष (मीठा विष), और समुद्रफल १-१ भाग और काली मिर्च ६ भाग लें। सब का वस्त्र छन चूर्ण बना, एकत्र मिला अदरक के रस की एक भावना देकर, एक दिन सुदृढ़ मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी प्रातः सायं दिन में २ बार दें।

अनुपान—आर्द्रक के रस के साथ।

गुण—यह वटी कफ की वृद्धि को तुरन्त नष्ट करती है। सभी अवस्थाओं में लाभप्रद है।

८—कस्तूरी भैरव रस (र०सा० सं० ज्वर०)

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध टंकण, जावित्री, जायफल, काली मिर्च, लघु पिप्पली और कस्तूरी—इनको समभाग में लें और वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र मिला, घोटें। इसके उपरान्त अदरक के रस की ३ भावना दे करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी पान के रस में मिला करके सेवन करावें।

गुण—यह वटी फुफ्फुस प्रदाह (न्यूमोनिया) की तीनों अवस्थाओं में लाभप्रद है। इसके सेवन से कफ का स्राव और प्रलाप में शान्ति होती है। यह रस हृदय और मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। सभी प्रकार के ज्वरों को विनष्ट करने के लिये अत्युत्कृष्ट महौषधि है। अनुपान भेद से समस्त तापों में प्रयुक्त होता है।

९—राजवल्लभ रस

चन्द्रोदय ४ माशे, शुद्ध हिंगुल १ तोला, काली मिर्च, पिप्पली, नवसार सत्त्व, कूठ, सुहागा, तज, और शुद्ध मनः शिला—प्रत्येक द्रव्य २॥-२॥ तोले लें। प्रथम

चन्द्रोदय के साथ हिंगुल को मिला कर मर्दन करें। पश्चात् इसमें मन: शिला का सूक्ष्म चूर्ण डाल सुदृढ़ घोटें और अन्त में शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके स्थिरता से घुटाई करके, आर्द्रक के रस, ताम्बूल के स्वरस और काले धत्तूरे के रस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावनाएं दे करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, चार-चार घण्टे के अन्तर से, अदरक के रस के साथ सेवन करावें।

गुण—इस रस के सेवन से श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) में होने वाले, कफ, कास, प्रलाप, अचेतना, शीताङ्ग आदि उपद्रव शांत होते हैं। यह और भी अनेक रोगों में अनुपान भेद से दिया जाता है। फुफ्फुस सन्निपात के लिए अत्युत्तम रसायन है।

१०—द्राक्षादि क्वाथ

द्राक्षा (मुनक्का) १० दाने, गावजवां ६ माशे, उन्नाव १० दाने, खतमी, मुलहठी, अपामार्ग पञ्चाङ्ग, प्रत्येक ६-६ माशे, लिसोड़ा १० दाने, वनफसा १ तोला, विलायती अञ्जीर ३ दाने ले करके यवकुट चूर्ण बना (मोटा-मोटा कूटकर) आधा सेर जल में, मिट्टी के पात्र में, मन्दाग्नि पर पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार, शीतल होने के उपरान्त, हाथ से मर्दन करके, छान लें और इसमें मिश्री मिला, दो बार में पिला दें। प्रातः और मध्याह्न में पिलायें इसकी मात्रा ५ तोले है। आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार सेवन करावें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से फुफ्फुसपाक (न्यूमोनिया) का कफ सरलता से बाहर निकल जाता है और कास का वेग अल्प हो जाता है। कफ के शुष्क हो जाने पर जब रोगी की श्वासनली और वक्षः स्थल में कफ जम जाता है, तो उस समय रोगी को बार-बार खाँसी का वेग उठता है और अधिक समय तक खांसने पर भी श्लेष्मा बाहर नहीं निकलता और आतुर संकटापन्न हो जाता है। इस अवस्था में इस क्वाथ के सेवन से कफ तरल होकर सुगमता से बाहर निकल जाता है। यह क्वाथ उरोग्रह (छाती की जकड़न), प्रतिश्याय (जुखाम), वातश्लेष्म ज्वर (इन्फ्लुएंजा) में भी लाभ-प्रद है।

११—कफघ्नयोग

अपामार्गक्षार, पान का रस और अदरक का रस—प्रत्येक १-१ तोला लेकर; एकत्र सम्मिश्रण कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—३-३ माशे, प्रातः, मध्याह्न और सायं काल में दिन में ३ बार दें। इस योग से कफ का स्राव हो जाता है। फुफ्फुसप्रदाह के लिए उपयोगी है।

१२—अर्कादि चूर्ण

अमूल की छाल २ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती, अतीस ४ रत्ती, और अभ्रक

भस्म ४ रत्ती लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। उसके उपरान्त समस्त औषधियों को एकत्र सम्मिश्रण करके ३ घण्टे मर्दन करें और सुरक्षित रख लें। इसकी चार मात्रा बना लें। १-१ मात्रा देकर, ऊपर से द्राक्षारिष्ट २॥ तोले दें। दिन में ४ बार सेवन करावें।

गुण—यह चूर्ण फुफ्फुस सन्निपात में अत्युपयोगी है। इससे कफ का स्राव होकर, कास का वेग निर्बल हो जाता है।

१३—एलादि वटी

बड़ी इलायची के दाने, बहेड़ा, कत्था, मधुयष्टी, लवङ्ग, सौंफ, काली मिर्च, प्रत्येक द्रव्य ४-४ भाग, मधुयष्टी सत्त्व १६ भाग, शुद्ध नवसार तथा कर्पूर २-२ भाग और पिपरमेण्ट पुष्प १ भाग लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना, सबको एकत्र सम्मिश्रण कर, ब्राह्मी रस और वासा रस की १-१ भावना दें और प्रत्येक भावना में ८ घण्टे मर्दन करके, २-२ रत्ती प्रमाण की गुटिका बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी को मुख में रख कर धीरे-धीरे चूसें।

गुण—यह वटी फुफ्फुस सन्निपात की सभी अवस्थाओं में लाभ प्रद है। इसके सेवन से कफ तरल होकर, वहिर्गमन करता है। फुफ्फुसों में पूय बनना, सप्त पथदाह, वागिन्द्रियप्रदाह—इन रोगों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। यह फेफड़ों के विकार में अत्युपयोगी है। अन्य उपचार करते हुए इस वटी को सेवन करना "सुवर्ण में सुगन्ध" के तुल्य होता है। इसे २४ घण्टे में १०-१२ बार तक चूसना चाहिये।

१४—धत्तूरादि गुटिका

काले धत्तूरे के पत्र, अर्क पत्र, अपामार्ग पञ्चाङ्ग, वासे के पत्र, कटेली पञ्चाङ्ग प्रत्येक २०-२० तोले लें। इन सबको छाया में सुखा, एक मिट्टी के पात्र में भरकर, उसके ऊपर मिट्टी का ही ढक्कन लगा, सन्धि बन्द कर दें तथा अग्नि देकर कोयले के समान बना लें। ध्यान पूर्वक इसे इस विधि से जलायें कि—न तो यह अपक्व ही रहे और न ही अधिक जलकर, श्वेत राख बन जाय, प्रत्युत निर्धूम कोयलों के सदश जल जाय। इस विधि से जलाकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। यह क्षार ५ तोले, काकड़ासिंगी, लघु पिप्पली, श्वेत खदिर सार (कत्था), कट्फल की छाल, बहेड़े की छाल, यवक्षार, मधुयष्टी और नरसार (नवसादर), प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोले लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना, सबको एकत्र मिला लें। इस चूर्ण को अड़ूसा (वासा) के रस, भृङ्गराज के रस और जूफा के क्वाथ की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना दें और प्रत्येक भावना में ८ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करें। अन्तिम भावना पूर्ण होने के उपरान्त २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, वायु का प्रवेश न हो सके, ऐसी बन्द शीशी में रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-२ वटी तक, मधु के साथ, दिन में ४-५ बार सेवन करें।

गुण—इस वटी के सेवन से कफ तरल होकर बाहर निकल जाता है। पुराने कास (खांसी) और श्वास में उत्कृष्ट औषधि है। फुफ्फुस सन्निपात की सम्पूर्ण अवस्थाओं में रामबाण के तुल्य अव्यर्थ है। सभी प्रकार की खांसी में लाभप्रद है।

१५—कवल प्रयोग

सौंठ, काली मिर्च, छोटी पिप्पली और सैंधव लवण—इन चार द्रव्यों को समभाग में ले करके, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को आधा से १ तोले तक लेकर, द्विगुण अदरक-रस में मिला, रोगी के मुख में डाल दें। इसे कण्ठ के नीचे न जाने दें। कुछ काल तक मुख में इसी प्रकार से धारण करें। यथा शक्ति इस औषधि को मुख में रखने के पश्चात् बाहर निकाल दें। आवश्यकतानुसार इस प्रयोग को दिन में ३-४ बार सेवन करें।

गुण—इस कवल के प्रयोग से अद्भुत लाभ होता है। श्वास यन्त्र, कण्ठ और मुख में भरे हुए कफ को बाहर निकालने के लिए तथा मुख के दुर्गन्ध को नष्ट करने के लिए यह कवल अत्युत्कृष्ट उपचार है। फुफ्फुस सन्निपात तथा अन्य सन्निपात रोगों में जो अरुचि, मुख की विरसता, वमन आदि उपद्रव होते हैं, उनमें यह प्रयोग उत्तम प्रभावकर है। इस प्रयोग के करने से रोगी तुरन्त लाभ प्राप्त करता है। इससे किसी भी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं है।

वेदना की चिकित्सा

फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) व्याधि का मुख्य उपद्रव है "पार्श्वशूल"। कोई एक फुफ्फुस विकृत होने से उसी ओर पार्श्ववेदना होती है और वह अर्धश्वसनक होने से उतनी भयावह नहीं होती; जितनी कि—दोनों फुफ्फुसों के रोगाक्रान्त होने पर होती है। किसी भी प्रकार की पीड़ा, क्यों न हो वह आतुर के स्वाभाविक सुख में प्रतिबन्धक तो होती ही है। पीड़ा, निद्रा का क्षय, शारीरिक निर्बलता, मनोव्यथा, चित्त की चञ्चलता आदि अनेक उपसर्गों को उत्पन्न कर देती है। अतएव प्रकृत रोग में सहजात पार्श्व वेदना का प्रतिकार करना अत्यावश्यकीय है।

पार्श्वशूल की चिकित्सा दो उपायों के द्वारा होती है। वे हैं—१-बाह्य प्रयोग, और २-आन्तरिक प्रयोग। प्रलेप तथा सेंकना आदि बाह्य उपचार हैं और मुख द्वारा अथवा त्वचोऽधःक्षेपणम् (सूचिका भरण) से दिये जाने वाले औषधि प्रयोग आन्तरिक उपाय हैं। यहाँ पर प्रथम बाह्य प्रलेप, सेंक आदि उपाय लिखने के उपरान्त आभ्यन्तरिक प्रयोग लिखे जायेंगे।

१—शूलघ्न प्रलेप

खड़िया मिट्टी आधा सेर, कतीरे का गोंद, कर्पूर, बबूल का गोंद, सैंधव लवण

राई का तेल, जैतून का तेल, बादाम का तेल और नारियल का तेल—ये आठ द्रव १-१ छटांक, अलसी का तेल एक पाव, काशगरी आध सेर और मोम एक पाव लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त एक लोहे की कड़ाही में सर्व औषधियों को एकत्र सम्मिश्रण करके, चूल्हे पर चढ़ा, मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें और कड्छी से उसे चलाते रहें। जब यह मिलकर, एकाकार हो जाय, तो इसे अग्नि से नीचे उतार, लोहे के बन्द डिब्बे में सुरक्षित रख लें।

प्रलेप लगाने की विधि—सर्व प्रथम प्रलेप के पात्र को (डिब्बे को) उष्ण जल में कुछ समय तक रखकर, उसे कोमल बना लें। जब यह प्रलेप ऊष्ण होकर, कोमल हो जाए–पिघल जाय, तो पार्श्वशूल जितने भाग में हो रहा हो उतने कटे हुए वस्त्र खण्ड पर इस लेप को चम्मच से लगाकर, वेदना स्थल पर ठीक प्रकार से चिपका दें और उसके ऊपर धुनी हुई रूई लगाकर, साधारण पट्टी बान्ध दें। इस लेप को २४ घण्टे तक रहने दें और पश्चात् उष्ण जल की सहायता से इसे हटाकर द्वितीय प्रलेप लगावें। प्रलेप को लगाते समय ध्यान रखिये कि आतुर के वक्षः स्थल में वायु न लगे।

गुण—इस प्रलेप के लगाने से फुफ्फुस प्रदाह (न्यूमोनिया) की पार्श्व वेदना अवश्य नष्ट हो जाती है। यह लेप इस व्याधि में अत्युपयोगी है। अनुभूत है।

२—कनकादि प्रलेप

कनक (धत्तूरे) का रस और तिलों का तेल—१-१ छटांक, सौंठ का चूर्ण और वत्सनाभ विष का चूर्ण—१-१ माशा, अहिफेन (अफीम) १ माशा लें। प्रथम अफीम को ऊष्ण जल में सम्मिश्रण करके, एक कड़ाही में सम्पूर्ण द्रव्यों को एकत्र मिला, मन्दाग्नि पर पकावें। जब धत्तूरे का रस आदि जलने पर केवल तेल शेष रह जाए, तब अग्नि से नीचे उतारें, और शीतल होने पर छानकर, इसमें मोम १ तोला तथा मुष्क कर्पूर १ माशा—इन दोनों को मिला कर, मर्दन करें। अच्छी प्रकार से घोटने पर जब यह एकरूप हो जाय, तो इसे बन्द पात्र में सुरक्षित रख लें।

उपयोग और गुण—इस लेप को अल्पोष्ण करके, वस्त्र पर चिपका, वेदना स्थान पर लगा दें और उसके ऊपर धुनी हुई रूई रखकर, ऊपर से बाँध दें अथवा गर्म-गर्म की मालिश करके, सेंक दें और ऊपर से रूई रखकर बाँधें। यह प्रलेप पसलियों की पीड़ा और फुफ्फुस सन्निपात रोग में होने वाली पार्श्ववेदना को तुरन्त शान्त कर देता है। इस रोग में यह प्रलेप चमत्कारिक प्रयोग है।

३—पलाण्डु प्रलेप

पलाण्डु (प्याज) का रस १ तोला और गेरू चूर्ण १ तोला—दोनों को एकत्र मिलाकर दृढ़ता से मर्दन करें। घोटने पर जब यह मक्खन के तुल्य बन जाय, तब इसे

उष्ण कर, पार्श्वशूल के स्थान पर लगा दें और ऊपर रुई रख कर बाँध दें। आवश्यकता के अनुसार इसे प्रातः सायं दिन में दो बार लगावें।

गुण--इस प्रलेप के लगाने से--वक्षः स्थल की जकड़न, फुफ्फुस सन्निपात में में होने वाली पार्श्ववेदना और वातश्लेष्म ज्वर (इन्फ्लुएंजा) आदि में उत्तम लाभ होता है। शतसोऽनुभूतः।

पुल्टिश---

४---घृतकुमार्यादि प्रयोग

ग्वार पाठे की वपा (गूदा), ईसबगोल, अलसी--इन तीन द्रव्यों को समभाग में और नवसादर चौथाई भाग ले करके, इनको मन्दाग्नि पर पकावें। चलाते रहें। जब यह हलुवे के समान एकाकार हो जाय, तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर, सहने योग्य गर्म को पीड़ा के स्थल पर मोटा-मोटा (एक अङ्गुलि प्रमाण में स्थूल) व्यवस्थित कर रख दें, और उसके ऊपर उष्ण वस्त्र रखकर बाँध दें। यह प्रयोग "पुल्टिश" नाम से प्रसिद्ध है। इसे दिन के समय बाँधना चाहिए। रात्रि में पुल्टिश का प्रयोग न करें। यदि अत्यधिक वेदना होती होती हो, तो इसमें कुछ पिसी हुई राई डालकर बनावें। ध्यान रखें कि--पुल्टिश को खोलने और लगाने के समय पर रोगी के शरीर में वायु न लगने पाये। यह प्रयोग पार्श्वशूल में लाभप्रद है।

५---कनक प्रयोग

काले धत्तूरे के पञ्चाङ्ग चूर्ण को ग्वार पाठे के रस में अच्छी प्रकार से मर्दन करके, अग्नि पर गर्म करें और सह्य उष्ण को वेदना के स्थान पर मोटा लेप लगाकर ऊपर से बांध दें। इस प्रयोग से पसलियों की वेदना में लाभ होता है।

६---मृगशृङ्ग प्रयोग

बारह सिंगा मृग के सींग को जल के साथ पत्थर पर घिस करके अग्नि पर गर्मकर, पीड़ा के स्थान पर लेप लगाने से पार्श्व वेदना में अच्छा लाभ होता है।

सेंकना---

१---"ऐरालु"---

फल को काट कर दो खण्ड बनालें। अग्नि के जलते हुए कोयलों पर इसे गर्म करें। अब आतुर की पसलियों को ऊनी वा फलालेन के सूक्ष्म वस्त्र से ढककर, ऊपर से उक्त गर्म ऐरालु से वेदना के स्थल को सेक दें। दोनों खण्डों को एक के पश्चात् दूसरे को गर्म करते हुए क्रमशः सेंक दें। सेंक देते समय सावधान रहें कि--रुग्ण के वक्षः स्थल में वायु न लगने पाये। रोगी की छाती को उष्ण वस्त्र से ढककर ही सेंकना चाहिये। अनावरण वक्षःस्थल में सेंक न दें।

गुण—इस सेंक से पार्श्व वेदना में तुरन्त लाभ होता है । यह सेंक श्वास यन्त्र के शोथ को नष्ट करता है और कफ को पिघला कर, बाहर निकाल देता है ।

२—इष्टका सेंक

एक ईंट के खण्ड को अग्नि में अच्छी प्रकार से तप्त करके, जल में डाल बुझा दें और जल से तुरन्त बाहर निकाल, उसके ऊपर बांसे के पत्रों को लपेट कर ऊपर से वस्त्र लपेट दें और सह्य उष्ण को पार्श्वशूल स्थल पर रख कर, सेंक दें। यह सेंक पसलियों की वेदना को शान्त करता है ।

३—लवणादि प्रयोग

सैंधव लवण (लाहौरी नमक) आधा पाव, सरसों का तेल आधा पाव लें । नमक को पीस कर तैल में सम्मिश्रण कर दें । इसके उपरान्त एक हाथ (१॥ फीट) लम्बा और उतना ही चौड़ा हो, ऐसा एक खद्दर का मोटा वस्त्र ले करके उसको चीरकर, दो बराबर-बराबर खण्ड कर लें । इसके पश्चात् उक्त तैल मिश्रण सैंधव लवण को आध-आध करके, पूर्वोक्त दोनों वस्त्रों में पृथक्-पृथक् डाल, दो पोटली बना, तवे पर उष्ण करें । पश्चात् रोगी के वक्षः स्थल को वस्त्र से ढककर, उसके ऊपर सहने योग्य गर्म पोटली से सेंकना चाहिये और एक के पीछे दूसरी पोटली को रखते हुए क्रमशः दोनों पोटलियों की सेंक देना चाहिए । दिन में दो बार सेंके ।

गुण—यह सेंक पार्श्व वेदना, छाती की जकड़न, कफ शोषण, प्रतिश्याय (जुखाम)—इन रोगों में अत्युपयोगी हैं । अनेक रोगियों पर बहुत बार का परीक्षित है ।

४—बालुकादि प्रयोग

भाड़ का बालु (रेत) और गुड़ का सिरका—आध-आध पाव लेकर, दोनों को मिला, दो वस्त्र पोटली बना, तवे पर उष्ण कर, पार्श्व वेदना स्थल को सेंक देने से पसलियों की वेदना शान्त होती है । यह अनुभूत प्रयोग है । इसे आवश्यकता के अनुसार दिन में दो वार प्रयोग करें । आध घण्टे से १ घण्टा तक सेंकना चाहिये ।

५—मधुपुष्प प्रयोग

मधुपुष्प (महुआ) एक पाव को, एक पाव जल में भिगों दें । भीग जाने पर इसे सूक्ष्म पीस कर, रोटी बना, पीड़ा स्थल को इससे सेकें और सह्य उष्ण कर, जिस भाग में शूल हो, वहाँ पर बान्ध दें । एक घण्टे के उपरान्त इसे खोल दें । दिन में दो बार प्रातः सायं इस प्रयोग को करने से फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) में अच्छा लाभ होता है । यह "शतसोऽनुभूतः" है

६—एरण्डपत्र प्रयोग

एरण्ड के पत्र को जल से स्वच्छ धोकर, जल को शुष्क करके इस के कोमल पृष्ठ भाग पर तिल का तैल लगा, पत्र को उष्ण करें और शूल स्थल पर रख कर, बान्ध दें। इसके सेंक से पार्श्व शूल में लाभ होता है। इस विधि से तम्बाकू के पत्र से भी सेंकना हितकर होता है।

तैल—

१—शूलघ्न तैल

अलसी का तैल ४ तोले, तारपीन का तैल ३ तोले, दालचीनी का तैल २ तोले, लवङ्ग का तैल १ तोला, देशीय कर्पूर १ तोला लेकर, सब को एकत्र शीशी में डाल कर, डाट लगा, रख दें। अच्छी प्रकार से मिलने पर इस तैल में गर्म फलालैन का एक खण्ड (टुकड़ा) भिगो कर, जिस भाग में वेदना होती हो, उस भाग में रख दें और उसके ऊपर धुनी हुई रूई लगा कर, ऊनी पट्टी से बान्ध दें।

वक्तव्य—यदि इस तैल से शरीर में जलन होवे; तो इसमें अलसी का तैल ८ तोले और मिला लें।

गुण—इस तैल के उपयोग करने से फुफ्फुस सन्निपात रोग में उत्पन्न होने वाली पार्श्व वेदना नष्ट हो जाती है। इस तैल का प्रभाव आन्तरिक शूल पर उत्तम होता है। भीतरी वेदना को शान्त करने के लिए तथा रोगोत्पादक कृमियों को विनष्ट करने के लिए अत्युत्तम तैल है। यह शोधक है और श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद होता है।

२—त्वगादि तैल

त्वक् (दालचीनी) का तैल २ तोला, इलायची का तैल १ तोला, लवङ्ग का तैल डेढ़ तोला, सोंठ का तैल २ तोले, तम्बाकू का तैल ५ तोले, पिपरमेण्ट १ तोला, अजवाइन का सत्व १ तोला, देशीय कर्पूर १ तोला, कारबोलिक एसिड ६ माशे, यूके-लिप्टस तैल ६ तोले लेकर, सबको एक ढक्कन वाली शीशी में डाल कर, रखलें। इस तैल में गर्म फलालैन का एक खण्ड भिगो कर पार्श्वस्थल पर रख दें और ऊपर से धुनी हुई रूई लगाकर पट्टी बान्ध दें।

गुण—इस तैल के प्रयोग से पसलियों की वेदना तुरन्त शान्त हो जाती है। प्रकृत व्याधि की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद है। फुफ्फुस सन्निपात में उत्पन्न होने वाले पार्श्व शूल के लिए अत्युत्कृष्ट प्रयोग है।

३—मद्यप्रयोग

ब्राण्डी सुरा में उष्ण तथा कोमल फलालैन का एक खण्ड भिगो कर, वेदना स्थल पर रखकर बान्धने से पार्श्वशूल में उत्तम लाभ होता है। यह प्रयोग तीनों अवस्थाओं में हितकर है।

४—स्प्रिट मेथोलेट १ औंस और देशीय कर्पूर १ तोला, दोनों को एकत्र मिलाने पर कर्पूर गल जाता है। इसे १ तोला की मात्रा में लेकरः वेदना स्थल पर मर्दन करने से उत्तम लाभ होता है। इसे प्रातः सायं दिन में दो बार मलिए यह अनुभूत प्रयोग है।

१—यवानिकादि भस्म

देशीय यवानिका (अजवाइन), कलमी शोरा,–प्रत्येक एक-एक तोला, श्वेत अर्कमूल की छाल ४ माशे, और अहिफेन (अफीम) ३ माशे—इन चारों को एकत्र सूक्ष्म पीस करके, इसमें शृङ्गराज १ तोला डाल, मर्दन करें। पश्चात् घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस में एक दिन घोट कर, टिकिया बना लें और टिकिया के शुष्क होने पर, शराव सम्पुट कर, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर, भस्म ग्रहण कर लें। यह भस्म कृष्णवर्ण की सिद्ध होगी।

मात्रा और अनुपान—½ से २ रत्ती तक, रोगीके बल, अवस्था, आदि को विचार कर ही मात्रा दें। मधु और अदरक के रस में सेवन करावें। रोगी यदि पित्त-प्रकृति हो तो गावजवां के अर्क, अथवा बनफसा के पानक के साथ खिलाइये।

गुण—इस भस्म को सेवन करने से फुफ्फुस सन्निपात व्याधिजनित पार्श्वशूल, कफ की अधिकता, कास, श्वास आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इन सम्पूर्ण उपसर्गों को विनष्ट करने के लिए यह भस्म सर्वोत्कृष्ट है। इस के अतिरिक्त यह योग हृदय की वेदना के लिए भी अत्युपयोगी है। यह भस्म बहुत बार की अनुभूत है।

२—शृङ्गभस्म

मृग के सींग के छोटे-छोटे खण्ड कर लें और उनको एक मिट्टी के पात्र में भर लें। पश्चात् सींगों का अष्टम भाग त्रिकटु चूर्ण और घृतकुमारी (ग्वारपाठा) का स्वरस उसी पात्र में डाल दें, और उसके ऊपर शराव रख कर, सम्पुट बन्द कर, महापुट की अग्नि देकर भस्म सिद्ध करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर, भस्म को ग्रहण कर लें। यदि पूर्ण रूप से भस्म सिद्ध न हुई; तो इसे ग्वारपाठे के रस में मर्दन करके, गोला बना, शुष्क कर, एक मिट्टी के पात्र में गोले को रख, सम्पुट बन्द कर, अल्पपुट की अग्नि दें। **मात्रा**—१ से २ रत्ती तक, **अनुपान**—मधु के साथ।

गुण—यह भस्म फुफ्फुसपाक (न्यूमोनिया) की पार्श्व वेदना तथा पसलियों के शूल में सत्वर लाभ करती है। इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वर आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। पार्श्व वेदना के लिए शृङ्ग भस्म अद्भुत प्रभावकर है।

३—सुरा प्रयोग—ब्राण्डी मद्य १ से ३ ड्राम तक, उष्ण दुग्ध में मिला कर, पिलाने से अच्छा लाभ होता है। विशेष कर प्रथमावस्था तथा द्वितीयावस्था में शरीर

के अङ्गों के शीतल पड़ने पर, मद्य को उचित मात्रा में उष्ण दूध में सम्मिश्रण करके, पिलाने से तुरन्त लाभ होता है। आरम्भ में ही इसका प्रयोग करने से रोग की उग्रता नहीं होती।

कफमिश्रित रक्त के स्राव का प्रतीकार

फुफ्फुस सन्निपात में रोगी जब कफ के साथ रुधिर को थूकने लगता है, तो उस अवस्था में निम्नाङ्कित उपाय लाभप्रद हैं—

द्राक्षासव, वासावलेह, वा वासारिष्ट, अर्जुनारिष्ट–इनको उचित्र मात्रा में सेवन करने पर कफ के साथ रक्त का निकलना बन्द हो जाता है।

शरीर के अत्यधिक शीतल होने पर—श्वसनक ज्वर में जब आतुर के शरीर में स्वाभाविक उष्णता नहीं रहती और हाथ, पैर आदि शरीराङ्गों में शीतलता की वृद्धि होने लगती है; तब—विशुद्ध ब्राण्डी मद्य, मकरध्वज, मल्लचन्द्रोदय, कस्तूरी, विशुद्ध केशर, "अभ्रकभस्म", "लक्ष्मी विलास रस"—इनका प्रयोग करने से लाभ होता है। कायफल, पिप्पली, लशुन और शुद्ध कुचला, इन चारों को समभाग में लेकर—इसका क्वाथ पीने से शीताङ्ग सन्निपात नष्ट हो जाता है।

ऊर्ध्वश्वास तथा श्वास-प्रश्वास की तीव्रगति की चिकित्सा

प्रकृत रोग में जब रोगी के श्वास और प्रश्वास की गति में वृद्धि होती है। आतुर शीघ्रातिशीघ्र श्वास को लेता और त्यागता है; तो उस समय उसे अत्यधिक कष्ट होता है। उस अवस्था में— "कनकासव", वासारिष्ट, ताम्ररस, ताम्रसिन्दूर, 'श्वास चिन्तामणि', महाकालेश्वर और श्वासकुठार'—इनका प्रयोग करना हितकर होता है।

कालारि रसः—शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध वत्सनाभ (मीठा विष) ३ भाग, छोटी पिप्पली १० भाग, लवङ्ग ४ भाग, शुद्ध धत्तूरे के बीज ३, शुद्ध सुहागा ३ भाग, जातिफल (जायफल) और काली मरिच ५-५ भाग, तथा अकरकरा ३ भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लें। इसके उपरान्त शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन चूर्ण कज्जली में मिला कर, मर्दन करें। पश्चात् बबूल की कोपलों के क्वाथ, निम्बू के स्वरस और अदरक के रस में पृथक्-पृथक् तीन-तीन दिन तक मर्दन करके २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, स्वच्छ शीशी में सुरक्षित रख लें

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी मधु के साथ दिन में ३—४ बार दें।

गुण—इस रस के सेवन से श्वास-प्रश्वास की तीव्रगति में अन्तर हो जाता है। यह श्वास की गति को नियन्त्रित करता है। फुफ्फुस पाक (न्यूमोनिया) की तीनों अवस्थाओं में लाभप्रद है। इससे प्रलाप भी शान्त हो जाता है।

रोगोपशमावस्था वा तृतीयावस्था में चिकित्सा क्रमः—

फुफ्फुस सन्निपात व्याधि की तृतीयावस्था में—दीपन, पाचन, रुचिकारक, कफ निःसारक और हृदय को बल प्रदान करने वाली योग्य औषधि देनी चाहिये। इस अवस्था में मलावरोध न होने पाय, इसका ध्यान रखना भी आवश्यक है। रोग की सभी दशाओं में मलावरोध (कब्ज) का होना अनिष्ट कर होता है। किसी भी अवस्था में मलबद्धता होने पर उसका प्रतीकार किया जाना योग्य है। उदर में मल रुकने से प्रलाप, वेदना आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न हो कर, आतुर को कष्ट देते हैं। अतएव मलावरोध का प्रतीकार अवश्य होना चाहिये।

मलावरोध (कब्ज) का प्रतीकार—

१—सामान्य साबुन की एक अङ्गुलि प्रमाण में मोटी, ४—६ अङ्गुलि प्रमाण लम्बी एक बत्ती बना, उसे एक ओर से कलम के समान नुकीली बना, ग्लीसरीन में डुबो कर, इसे रोगी की गुदा में हाथ से अन्दर कर दें। इस क्रिया के करने से सरलता से मल रेचन हो जाता है। आवश्यकता के अनुसार इसे सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त करें।

२—**ग्लीसरीन सपोजिटरी**—यह अंग्रेजी औषधि विक्रेताओं के यहाँ से मिल जाती है। हाथ को—"परमेगनेट ऑफ पोटास" के लोशन से धो करके, आवश्यकता के अनुसार १-२ सपोजिटरी को गुदा के अन्दर प्रविष्ट करने से अनायास मलरेचन क्रिया हो जाती है। यह सभी दशाओं में लाभप्रद है।

३—एरण्ड तैल को दूध में मिलाकर, पिलाने से मलरेचन हो जाता है। यह केवल तीसरी अवस्था में ही प्रयुक्त करें।

४—शुष्क द्राक्षा (मुनक्का) के अन्दर से बीजों को निकाल कर उष्ण जल से स्वच्छ धो लें और उनको एक लोहे की शलाका में पिरोकर, अग्नि पर फुलाकर, जल में उबाल लें और उत्तम प्रकार से उबलने पर रोगी को पिला दें। यह प्रयोग इस रोग की समस्त अवस्थाओं में उपयोगी है।

५—**एनिमा उपचार**—जब पूर्वोक्त उपायों के करने पर भी सफलता न मिले, तो उस समय एनिमा का प्रयोग करना चाहिए। एनिमा का प्रयोग करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें—

(अ) अल्पोष्ण जल का प्रयोग करें। शीतल जल को प्रयुक्त न करे।

(आ) प्रथम एनिमा की नली से किञ्चित् जल बाहर निकालने के उपरान्त ही गुदा में प्रविष्ट करें, अन्यथा एनिमा की नलिका द्वारा बाह्य वायु उदर में जा करके हानि करेगी।

(इ) भयंकर सन्निपात की अवस्था में यह उपाय निषिद्ध है।

६—रीठे की छाल, बड़ी हरड़ की त्वचा, दोनों को समभाग में लेकर, सूक्ष्म चूर्ण बना, साबुन मिला, अच्छी प्रकार से मर्दन करें। पश्चात् मध्यम-अङ्गुलि के

समान मोटी बत्ती बना, साबुन के घोल में वर्त्तिका को भिगो कर, गुदा में लगाने पर मलरेचन क्रिया हो जाती है। इसे तृतीयावस्था में करें।

७—सनाय, काला दाना, काला नमक और बड़ी हरड़ की छाल—इन चार द्रव्यों को समभाग में लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—३ माशे।

अनुपान—उष्ण जल से सोते समय खावें।

उपयोग—यह चूर्ण तृतीयावस्था के एक सप्ताह के उपरान्त सेवन किया जाना चाहिए। इसके सेवन से मलरेचन हो जाता है।

८—उन्नाव, वनफसा के पुष्प, मुनक्का, गुलाब के पुष्प, अमलतास की वपा (गूदा), सोंफ, हरड़—इनको समभाग में लेकर, क्वाथ करें। मिश्री मिलाकर, अल्प दूध युक्त ईषदुष्ण पिलावें।

मात्रा—५ से १० तोले तक।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से मलावरोध (कब्ज) नहीं रहता। इसे सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त करें।

९—सनाय चूर्ण ३ माशे और शुद्ध जयपाल चौथाई रत्ती—दोनों को मिला कर, उष्ण जल के साथ सेवन करने पर मलरेचन होता है।

१०—भुनी हुई सोंफ १ तोला, जीरा, धनियां, सैंधव लवण–प्रत्येक ६-६ माशे, त्रिकुटा (सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली) २ तोले, देशीय खाण्ड ५ तोले, निम्बू का सत्त्व ६ माशे, शुद्ध जयपाल ३ माशे—इनका पृथक्-पृथक् वस्त्रछन चूर्ण बना, सब को एकत्र मिला, शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ४ माशे तक, उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण दीपन, पाचन, रेचक, तथा रुचिकारक है। उपशमावस्था के लिए अत्युपयोगी है।

१—**शतपुष्पादिक्वाथ**—शतपुष्पा (सोंफ) ४ माशे, द्राक्षा (मुनक्का) ७ दाने, अञ्जीर २ दाने, वनफसा के पुष्प ४ माशे, उन्नाव ५ दाने, सनाय ४ माशे,—इन सब द्रव्यों को यवकुट करके एक पाव जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से उतार कर, हाथ से मर्दन कर, छान लें और २ तोले मिश्री मिलाकर, अल्पोष्ण पिलावें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से प्रातः सायं समय दिन में दो बार सेवन करावें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से उदर शोधन हो जाता है और ज्वर, कास आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। यह यूनानी योग है।

२—"वासा घृत" और "कण्टकारी घृत"—इनका सेवन तृतीयावस्था में लाभप्रद होता है।

३—"दाडिमाष्टक चूर्ण" को भोजनोपरान्त सेवन करावें। यह चूर्ण दीपन,

पाचक और रोचक है। इसके सेवन से जठराग्नि की वृद्धि होती है और खाया हुआ भोजन पच जाता है।

४—"द्राक्षासव" और द्राक्षा (मुनक्का) का सेवन करने से इस अवस्था में अच्छा लाभ होता है। इनके उपयोग से रोगी के शरीर में स्फूर्ति तथा बल की उपलब्धि होती है।

कफघ्नचूर्ण—मिश्री ८ तोले, वंशलोचन ४ तोले, पिप्पली ३ तोले, छोटी इलायची १॥ तोला, कलमी तज ६ माशे, वसन्तमालती ४॥ माशे—इनका वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशे, मधु वा रोगानुकुल योग्य अनुपान के साथ दिन में ३ बार सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से कफ का स्राव होता और ज्वर तथा कास का शमन हो जाता है।

प्रथमावस्था में आहार

फुफ्फुस सन्निपात की प्रथमावस्था में—उबाला हुआ जल शीतल करके दें। उबाला हुआ दूध अल्पोष्ण करके दें। शंख भस्म १ रत्ती को ताम्बूल-पत्र में रखकर, दिन में एक बार दें। भूख लगने पर फूली हुई रोटी का छिलका मूंग के यूष के साथ सेवन करावें।

द्वितीयावस्था में आहार

यद्यपि इस अवस्था में क्षुधा नष्ट हो जाती है, तथापि आवश्यकता के होने पर निम्न प्रकार से पथ्य देने की योजना करें—गो दुग्ध एक छटांक, जल एक पाव वनफसा, छोटी पिप्पली और सोंठ—इनका चूर्ण १-१ तोले ले करके—सब को एकत्र मिलाकर, मन्दाग्नि पर पकावें। केवल दूध के शेष रहने पर अग्नि से उतार कर छान लें और अल्पोष्ण रहते हुए पिलावें।

तृतीयावस्था में आहार

फुफ्फुस सन्निपात व्याधि की तीसरी अवस्था में रोगी के बल, अवस्था, सात्म्य आदि को विचार करके, सुपाच्य, लघु आहार क्रमशः वृद्धि करते हुए देना इष्ट होता है। अविवेक पूर्वक, गरिष्ठ, वातवर्धक, रूक्ष, अपवित्र, बासी भोज्य द्रव्यों के सेवन करने से पुनः रोग का आक्रमण होने की सम्भावना होगी और आतुर की जीवनाशा संकटमय हो जाएगी। प्रारम्भ में—रोगी को केवल "द्राक्षासव" दूध में सम्मिश्रण करके देना चाहिए। तत्पश्चात्—छिलका रहित यव आधा पाव, बिना दली हुई पुरानी मूंग एक छटाँक, धनिया आध छटाँक, जीरा १। तोले, सैंधव लवण १ तोला, इन सबको एकत्र ४ सेर जल में मन्द-मन्द अग्नि देकर, पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से उतार कर, छान लें और सूर्योदय के पूर्व ही, अल्पोष्ण रहते हुए रोगी को पिला दें। औटाया हुआ जल अल्पोष्ण दें। दाडिमाष्टक चूर्ण" आदि को देना अच्छा है। "दाडिमाष्टक चूर्ण" उरः क्षय प्रकरण में देखिये।

तीनों अवस्थाओं में हितकर विहार

(१) रोगी का वक्षः स्थल खुला न रहे और वस्त्र परिधान आदि के समय, अथवा शरीर में जब स्वेद (पसीना) आया हुआ हो, तब रोगी की वायु के झोंके से रक्षा करनी चाहिये। आतुर के वस्त्रों को प्रतिदिन धूप में डालना उत्तम है और सूर्य की उष्णता हट जाने पर विस्तृत (खुले हुए) निवास गृह में रोगी को रखना इष्ट है। आवास कक्ष के गवाक्ष बन्द न किए जाँय और निवास-गृह में अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं हो, तथा अन्य व्यक्तियों का अधिक आवागमन अनिष्टकर होता है। रोगी को सूर्यताप में बैठाना वा शयन कराना उत्तम नहीं है।

२—निवास कक्ष की वायु शुद्धि करने के लिए तथा कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए हवन करना उत्तम है। अभाव में कोयलों की प्रज्वलित अग्नि पर उबलते हुए जल में—तारपीन का तैल और कार्बोलिक लोशन डालना चाहिये और कार्बोलिक लोशन को आवास-गृह में छिड़कना चाहिये। रात्रि के समय प्रकोष्ठ में निर्धूमाग्नि के कोयले रखने लाभप्रद हैं और सरसों के तैल का दीपक (प्रकाशार्थ) जलाना हित-कर है।

३—जिन से शीत निवारण किया जा सके उतने आवश्यकीय वस्त्रों का प्रबन्ध रोगी के लिए होना चाहिये और उसके वस्त्रों को कार्बोलिक साबुन अथवा उबलते हुए जल में एक सप्ताह में २–३ बार धोना अच्छा होता है। मल, मूत्र आदि के त्याग के लिए रोगी का बाहर जाना उत्तम नहीं है, अतएव उसके लिए आवास-गृह में ही मलपात्र एवं मूत्र-पात्र की व्यवस्था की जानी योग्य है। मल–मूत्र आदि को बाहर डालने के उपरान्त, हाथों को गोबर, मिट्टी आदि से स्वच्छ धोना इष्ट है।

४–मनोविज्ञानज्ञ भिषक आतुर की सभी चेष्टाओं को सूक्ष्मता से मनन करे और तदनुसार चिकित्सा में यथावसर संशोधन करता रहे। रोगी का मनोबल न गिरने पाए अतएव धैर्यवर्धक वाक्यों से आतुर को सान्त्वना देनी अभीष्ट है।

५—इस अवस्था में ज्वर को एक साथ ही न गिरने दिया जाय और मला-वरोध (कब्ज) की चिकित्सा करनी चाहिये।

अथ-उरःक्षय रोग चिकित्सा प्रकरणम् ॥५॥

क्षयव्याधि शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में हो सकती है। जब यह फुफ्फुस में हो, जैसा कि—प्रायः होती है; तो उसे "उरः क्षय" रोग कहते हैं। पर्यायवाचक शब्द—यक्ष्मा, क्षय, शोष, ये उरः क्षय के नाम हैं। इसे टी० बी०, तपेदिक, थाइसिस प्रभृति और अनेक संज्ञा दी गई हैं। यह रोग कष्टसाध्य और संक्रामक है। प्राचीन काल की अपेक्षा कृत आधुनिक समय में इस व्याधि का क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तृत होता जा रहा है। प्रतिवर्ष लगभग ११ लक्ष स्त्री-पुरुष केवल यक्ष्मा रोग के द्वारा मरते हैं।

उरःक्षय रोग का कारण

अयथाबलमारम्भं वेगसंधारणंक्षयम्
यक्ष्मणः कारणं विद्याच्चतुर्थं विषमाशनम् ॥च०स०चि०८/१३॥

१—अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक कार्य करना,

२—मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आये हुए वेगों को बलपूर्वक रोकना,

३—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र—इन शारीरिक धातुओं का क्षय हो जाना, और ४—विषम भोजन करना—यक्ष्मा रोग के ये चार कारण होते हैं।

उपर्युक्त चार कारणों से क्षय रोग उत्पन्न होता है। ये चार हेतु मिल करके अथवा पृथक्-पृथक् रहते हुए ही शोष व्याधि को उत्पन्न करते हैं। सामान्य रूप से इनकी व्याख्या की जा रही है—

१—जो पुरुष अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक साहसिक कर्म करते हैं, अधिक चलते हैं, अत्यधिक उच्च ध्वनि से बहुत समय तक अध्ययन करते हैं, जो अत्यधिक भार उठाते हैं, अधिक दौड़ते हैं, जो अधिक व्यायाम करते हैं, जो अधिक दूर तक जलमें तैरते हैं, जो अपने से अधिक बलवान् के साथ युद्ध करते हैं अथवा अन्य किसी भी प्रकार का अनुचित साहसिक कार्य करते हैं, पुरुष हों वा स्त्री, वे उरःक्षय (टी० बी०) व्याधि से अवश्य आक्रान्त हो जाते हैं। उनके फेफड़े विकृत होकर, धीरे-धीरे प्रक्षीण होने लगते हैं। फुफ्फुसों में विकृति आने से रक्त शोधन क्रिया नहीं हो पाती और रोगी के शरीर का स्वाभाविक बल नहीं रहता। शिरः शूल, कास, स्वरभेद आदि उपद्रव हो जाते हैं।

२—जो स्त्री, पुरुष, (लज्जा, भय, घृणा आदि के कारण) अपान वायु, मूत्र, मल के वेगों को बलपूर्वक रोक लेते हैं; तो उन वेगों को रोकने से उनके शरीर में रहने वाली वायु प्रकुपित हो जाती है। पित्त तथा कफ के सहयोग से कोपाविष्ट वात

"क्षय" रोग को उत्पन्न कर देती है। इससे—प्रतिश्याय (जुखाम), कास, स्वरभेद, आदि अनेक उपद्रव एक साथ आक्रमण करते हैं।

आधुनिक सभ्य समाज में लाखों स्त्री-पुरुष अपने मानव जन्म को सार्थक नहीं कर पा रहे हैं। उसके अनेक प्रबल कारणों में—एक यह भी कारण है कि–किसी सभा आदि में बैठे हुए यदि अधोवायु को कोई निकालता है तो अन्य व्यक्ति उसकी आलोचना करने लगते हैं। ऐसे समय पर व्यक्ति को स्वयमेव लज्जा और भय होता है। फलतः वह स्वाभाविक आई हुई अपान वायु के वेग को बाहर नहीं निकलने देता और बल पूर्वक उसे रोक लेता है। अनेक देवियाँ इसी प्रकार से लज्जा तथा निन्दा के भय से अधोवायु के वेग को हठपूर्वक रोकने का व्यर्थ प्रयास करती हैं। केवल अपानवायु के वेग को रोकने से ही शारीरिक स्वास्थ्य में विकार आ जाता है और अमूल्य मनुष्य जन्म का सदुपयोग नहीं हो पाता। इसी प्रकार से किसी कार्य में संलग्न रहते हुए जब मल वा मूत्र का वेग उपस्थित होता है तो—अनेक सभ्य स्त्री-पुरुष, कार्य करने की लालसा आदि से मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करते और उनके वेग को बलपूर्वक निग्रह करने का प्रयास करते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुष अपने शारीरिक स्वास्थ्य को स्वयमेव नष्ट कर लेते हैं। उनके द्वारा लौकिक वा पारलौकिक किसी भी प्रकार की प्रगति नहीं होती और वे जीवन को दुःख, चिन्ता, शोक, उदासी आदि की प्रज्वलित अग्नि में भस्मीभूत बना लेते हैं।

३—ईर्ष्या, भय, शोक, चिन्ता, क्रोध आदि मनोविकार से जिनका शरीर दुर्बल हो गया है उन व्यक्तियों के शरीर में तथा जो व्यक्ति अत्यधिक मैथुन और उपवास करते हैं, उनके शरीर में शुक्र और ओज का क्षय हो जाता है। शरीर में शुक्र और ओज ही तो मुख्य रूप से स्नेहांश हैं। उन दोनों के प्रक्षीण होने पर शरीरस्थ वायु की वृद्धि हो जाती है। वृद्ध वायु, पित्त तथा कफ को साथ लेकर उरः क्षय रोग को उत्पन्न कर देती है।

द्वेष, भय, चिन्ता, शोक, क्रोध—इन मनोविकारों के रहने पर व्यक्ति के द्वारा जो उत्तम से उत्तम भोजन सेवन किया जाता है; उसका उचित पाचन नहीं हो पाता और जठराग्नि मन्द हो जाती है। इससे खाये हुए भोजन का रस नहीं बनता और रस के अभाव में रक्त, मांस, मेद आदि उत्तरोत्तर बनने वाली शारीरिक धातुवों का उचित निर्माण नहीं होता। इससे शुक्र और ओज क्षीण होते हैं और उरः क्षय रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त अति मैथुन करने से व्यक्तियों के शरीर में वीर्य तथा ओज धातुवों का ह्रास हो करके यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति हो जाती है। ईर्ष्या, भय, शोक, चिन्ता, क्रोध और उपवास—ये अनुलोम क्रम से और अत्यधिक व्यवाय प्रतिलोम क्रम से शोष-रोग को उत्पन्न करते हैं।

४—चतुर्थ कारण है विषम भोजन करना। जो व्यक्ति संयोग विरुद्ध, स्वभाव विरुद्ध, वीर्य विरुद्ध, देश विरुद्ध, अन्न-पान का सेवन करते हैं तथा जो व्यक्ति अत्यधिक,

मदिरा, चरस, भंग, धूम्रपान आदि व्यसनों का सेवन करते हैं, उन व्यक्तियों के शरीर में वात आदि तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं। वात, पित्त और कफ के कोपाविष्ट होने से उर: क्षय (तपेदिक) व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

उक्त चार कारणों के अतिरिक्त कुछ और हेतु भी हैं जिनसे यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। उनमें से कतिपय कारण नीचे लिखे जाते हैं—

१—**पैत्रिक परम्परा**—शोष रोग पैत्रिक परम्परा से भी उत्पन्न होता है। जिन स्त्री पुरुषों को यह व्याधि होती है, उनकी सन्तान भी उससे ग्रस्त हो जाती है। राज्यक्ष्मा रोग से आक्रान्त कुल में उत्पन्न हुए बालक तथा बालिकाओं को क्षय प्रकृति वाले कह सकते है। देखने में ऐसे बालक तथा बालिकाओं का शरीर विशेष सुकुमार और कोमल होता है। उनकी त्वचा सुकुमार, गौरवर्ण, सूक्ष्म और कोमल होती है। उनका वक्षःस्थल निर्बल होता है और उनको साधारण कारणों से भी शीघ्र-शीघ्र प्रतिश्याय (जुखाम), शुष्क कास (खांसी) उत्पन्न हो जाता है। यदि ऐसे युवक और युवतियों को निर्धनता के कारण उचित पौष्टिक आहार उपलब्ध न हो, उनके ऊपर अध्ययन आदि का मानसिक परिश्रम अधिक डाल दिया जाय अथवा उनको अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक साहसिक कार्य, निरन्तर कुछ दिन तक करना पड़ जाय, कुक्कुर कास (काली खांसी), आन्त्रिक ज्वर आदि का उनके ऊपर आक्रमण हो जाय; अथवा उनके शुक्र वा शोणित का क्षय हो जाय, वा उक्त रोगवाली युवति को शीघ्र-शीघ्र प्रसव हों एवं प्रसव के उपरान्त शिशु को चिरकाल तक दूध पिलाना पड़ जाय अथवा यक्ष्मा प्रकृति वाले उक्त युवक और युवतियों को विशाल नगरों की ऐसी संकीर्ण गलियों में चिरकाल तक निवास करना पड़ जाय, जहाँ उनको स्वच्छ वायु और सूर्य का प्रकाश उपलब्ध नहीं हो सके अथवा उनको जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक साधनों के अभाव में चिन्तामय जीवन व्यतीत करना पड़ जाय इत्यादि कारणों से शरीर की क्षीणता हो जाने से यक्ष्मा रोग उत्पन्न हो जाता है।

२—क्षय रोग के कीटाणुओं से भी यह व्याधि हो जाती है।

पाश्चात्य विचारकों के मत से यह रोग क्षयाणुओं से उत्पन्न होता है। उनके विचार से मानवीय क्षयाणु और पाशविक क्षयाणु—ये २ जाति के जीवाणु क्षय व्याधि को उत्पन्न करने में मुख्य हेतु होते हैं। शोष–ग्रस्त मनुष्य और पशु यक्ष्मा रोग को उत्पन्न करते हैं। जीवाणुओं का मनुष्य के शरीर में दो मार्गों से प्रवेश अधिक होता है। (१) श्वास–मार्ग तथा (२) आहार नली। इनमें श्वास–पथ से क्षयाणुओं का संक्रमण अधिकता से होता है। जब यक्ष्मा का रोगी भूमि पर थूकता है; तो उसके थूक में बहुत से क्षयाणु होते हैं। वे कफ में मिले हुए रहते हैं। कफ के सूखने पर वे जीवाणु पृथ्वी पर धूल में मिल जाते हैं अथवा वायु में उड़ जाते हैं। पश्चात् वायु में मिले हुए जीवाणु श्वास–मार्ग से स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। और क्षय–व्याधि को उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार क्षय–पीड़ित व्यक्ति के बोलने, खांसने,

छींकने और प्रश्वास के समय जो क्षयाणु बाहर निकलते रहते हैं, वे समीप में बैठे हुए स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर में श्वास-पथ से प्रविष्ट हो जाते हैं और क्षय-रोग को उत्पन्न कर देते हैं।

आहार नली—के द्वारा भी क्षयाणुओं का शरीर में प्रवेश होता है। मलिन भोजन, दूषित जल, शोष-ग्रस्त पशुओ का दूध, क्षय-पीड़ित जन्तुओं के मांस—का सेवन करने से इन द्रव्यों में मिले हुए क्षयाणु शरीर में समाविष्ट हो जाते हैं और प्रकृत व्याधि को उत्पन्न कर दते हैं।

जिन मनुष्यों का जीवन स्वाभाविक नहीं है; आहार, विहार, विचार, आदि में कृत्रिमता आ गई है और जिनका निवास शुद्ध वायु और विपुल सूर्य-प्रकाश की सुविधा से हीन है, उन मनुष्यों में यह व्याधि विशेष रूप से देखी जाती है। विशुद्ध वायु मण्डल, तथा सूर्य-प्रकाश से युक्त स्थान में निवास करते हुये स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले स्त्री पुरुषों में यक्ष्मा रोग नहीं होता। यदि वे ही स्त्री पुरुष विशुद्ध वामुमण्डल को त्याग कर विशाल नगरों में निवास करते हुए कृत्रिम जीवन-यापन करने लगते हैं; तो उन पर क्षय-रोग का शीघ्र आक्रमण हो जाता है।

उरः क्षय व्याधि के भेद

यक्ष्मा रोग को लक्षणों के अनुसार तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। उन भेदों को नीचे लिखा जाता है।

१—प्राथमिक-अवस्था—अनेक बार यह रोग "रक्त वमन" से आरम्भ होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति को अकस्मात् मुख से रुधिर गिरने लग जाता है। उसके पश्चात् १-२ दिन तक थूक में कफ के साथ मिला हुआ रक्त निकालता रहता है। एवम्प्रकारेण १०% व्यक्तियों में क्षय व्याधि का आरम्भ रुधिर-वमन से होता है। फुफ्फुसावरण में शोथ हो जाता है; जैसा कि प्राय: क्षय-पीड़ित व्यक्तियों में हुआ करता है। जिस फुफ्फुस में यह शोथ उत्पन्न होता है, उसी पार्श्व में रोगी को शूल होता है। प्रारम्भावस्था में फेफड़ों में होने वाला श्वयथु एक गुठली के सदृश कठोर होता है, इसको यक्ष्मिका नाम से बोला जाता है। कुछ काल के उपरान्त यह यक्ष्मिका ग्रन्थि गल कर फूट जाती है और थूक अथवा मल-मूत्र द्वारा बाहर निकल जाती है। आरम्भ में यह ग्रन्थि एक वा दो होती हैं। परन्तु पक कर फूटने के पश्चात् उसका प्रभाव अन्य स्वस्थ फुफ्फुसीय खण्डों पर पड़ने से वहाँ नवीन क्षय-ग्रंथि उत्पन्न हो जाती हैं। यह वृद्धि-क्रम चलने लगता है। पकी हुई यक्ष्मिका के फूटने पर वहाँ एक गर्त (गड्ढा) बन जाता है। इससे उस स्थान पर दारुण शूल होता है!

जिस फेफड़े में ये गांठें होती हैं, रोगी के उसी पार्श्व में शूल होने लगता है। वर्षा पड़ने पर और शीतकाल में यह वेदना तीव्र हो जाती है। अथवा सामान्य ज्वर

के साथ पार्श्व-शूल के पुन: पुन: आक्रमण होते रहते हैं। बिस्तरे पर पूर्ण विश्राम करने से पार्श्व-वेदना में शान्ति होती है और शारीरिक वा मानसिक अधिक श्रम करने से पुन: पीड़ा होने लगती है । कई व्यक्तियों में यह क्षय-व्याधि चिरस्थाई कास से प्रारम्भ होती है । जिसमें महीनों वा वर्षों तक शुष्क कास (सूखी खांसी) बना रहता है । इसका वेग रात्रि में अधिक होता है और अधिक खांसने पर भी कफ का स्राव नहीं होता । कुछ समय के उपरान्त खांसने पर पतला, फेनयुक्त कफ आना प्रारम्भ होता है और कालान्तर में कुछ कठिन (कड़ा) कफ थूक में आता है । यदि किसी युवक वा युवति को निरन्तर कुछ काल तक उक्त प्रकार का कफ आता रहे, तो क्षय-रोग होने की पूर्ण सम्भावना होती है ।

श्वास-प्रश्वास की गति में तीव्रता का होना भी यक्ष्मा रोग का प्रारम्भिक मुख्य लक्षण माना जाता है । फुफ्फुस के क्षय-ग्रस्त होने पर अल्प श्रम करने से भी श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है । रोगी का श्वास फूलने लगता है । शारीरिक श्रम करने की शक्ति रोगी में नहीं रहती और उसके शरीर में निरन्तर शिथिलता तथा निर्बलता आती जाती है । शारीरिक श्रम के बिना भी शरीर थका सा रहता है । साधारणत: किसी ज्वर के उपरान्त रोगी शीघ्र ही पूर्ववत् स्वस्थ हो जाता है, परन्तु यदि किसी युवक वा युवति को कफ ज्वर, कुक्कुर-कास (काली खांसी) अथवा श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) रोग के पश्चात् निरन्तर निर्बलता बनी ही रहे, पौष्टिक आहार का सेवन करते हुए भी शारीरिक निर्बलता नष्ट न होती हो; तो उनको क्षय-व्याधि से ग्रस्त मानना चाहिये । अनेक रोगियों में उक्त रोगों के उपरान्त ही फुफ्फुस-क्षय व्याधि प्रारम्भ होती है ।

यदि शरीर निर्बल रहे, नेत्रों के श्वेत पटलों में धवलता (सफेदी) अधिक बढ़ती जाय, धीरे-धीरे शारीरिक भार निरन्तर न्यून हो रहा हो, जठराग्नि मन्द हो रही हो, अरुचि, हृदय का कम्पन तथा नाड़ी की गति में तीव्रता हो और रक्ताभिनोदन (रुधिर का दबाव) में अल्पता हो; तो यक्ष्मा रोग जानना चाहिये । क्षय-पीड़ित रोगी की नाड़ी की गति एक मिनट में ८० से अधिक हो जाती है और रुधिराभिशरण १०० से अल्प हो जाता है ।

यक्ष्मा रोग के आरम्भ में शारीरिक तापमान प्रात: समय साधारण से अधिक नीचे होता है और सायं काल ४ से ६ बजे के मध्य में अथवा इसके उपरान्त सामान्य तापमान से आध डिग्री अधिक हो जाता है । अतएव यदि प्रात: कालीन और सायं कालीन तापमान में पर्याप्त अन्तर हो और कुछ शारीरिक श्रम (२–२½ मील भ्रमण करने आदि से) करने से वा मानसिक श्रम से ज्वर बढ़ जाता हो जो एक डेढ़ घण्टे तक बना रहता हो; तो क्षय-रोग का प्रबल लक्षण समझना चाहिये ।

किन्तु स्त्रियों में सायं काल के समय ½ डिग्री ज्वर अधिक हो; तो भी वह स्वाभाविक ही होता है; विशेषकर आर्त्तव से एक सप्ताह पूर्व उनका तापमान स्वाभाविक ही कुछ अधिक हो जाता है । रात्रि वा प्रात: काल के समय जब यह ज्वर

उतरता है; तो शरीर मे कुछ स्वेद भी आ जाता है; इसे रात्रि स्वेद कहते हैं। अनेक क्षय-पीड़ित रोगियों में यह लक्षण भी देखा जाता है।

कतिपय आतुरों में शोष (टी० बी०) के अन्य लक्षण प्रकट नहीं होते; परन्तु उनको कालान्तर में शीत और कम्प के साथ "विषम ज्वर" (मलेरिया) के वेग आते रहते हैं, जो "विषम ज्वर" की चिकित्सा करने पर भी शान्त नहीं होते; ऐसे ज्वर के वेगों के होने से क्षय रोग होने की आशंका की जाती है। यदि किसी रोगी को चिरस्थाई प्रतिश्याय (जुखाम) और गल शोथ हो, साधारण ज्वर के साथ शीघ्र-शीघ्र जुखाम होता हो, और प्रतिश्याय तथा गल-शोथ के उपरान्त कास (खांसी) आरम्भ हो गया हो; जो प्रयत्न से दूर न हो; तो क्षय-व्याधि के होने का लक्षण माना जाता है।

गण्डमाला वा ग्रीवा के एक पार्श्व में कान के पीछे-पीछे की लसिका ग्रन्थियाँ शोथ युक्त हों, उभर गई हों तो कालान्तर में क्षय-रोग के होने की आशंका होती है। कोई-कोई रोगी क्षय-ग्रस्त होने पर उदासीन, खिन्नचित्त और एकान्त प्रिय हो जाता है; उसमें वातिक निर्बलता अधिक हो जाती है। किसी में मद्य, मांस मैथुन,—इनके सेवन की इच्छा अधिक हो जाती है। कोई आतुर भयङ्कर स्वप्नों को देखता है और किसी को उत्तम भोजन के पदार्थ आदि में दोष दीखने लगते हैं। युवतियों को इस रोग के आरम्भ में आर्तव होने की आशंका रहती है।

२—द्वितीयावस्था

उरः क्षय (तपेदिक) की द्वितीय श्रेणी में—पार्श्व–शूल की अधिकता होने से रोगी को अत्यधिक कष्ट होता है। मुख से रक्त निकलता है अथवा कफ के साथ मिला हुआ रुधिर, और पूय (मवाद-पीप) निकलते हैं। जो क्षय-ग्रन्थियाँ पक कर फूट जाती हैं, फूटने के उपरान्त वहाँ गह्वर (गड्ढा) बन जाता है। पुरानी यक्ष्मिका (क्षय-ग्रन्थी) फूटती रहती हैं और फुफ्फुस के अन्य खण्डों में नई ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। कास-वेग में वृद्धि, शिर में वेदना का होना, स्वरभेद (कण्ठ बैठना), ज्वर का बना रहना, भोजन में अरुचि का होना, शारीरिक निर्बलता तथा शिथिलता का उत्तरोत्तर बढ़ना, निद्रा का नाश, दोनों कन्धों में शूल होना, अतिसार (पतली टट्टियों का आना) आदि लक्षण देखे जाते हैं।

३. तृतीयावस्था

शोष (टी० बी०) रोग की तृतीयावस्था पूर्वोक्त दोनों अवस्थाओं की अपेक्षाकृत अधिक भयानक होती है। क्षय—अर्बुद (यक्ष्मा की रसोली) पककर फूटने पर जो उस स्थान पर कोटर (खोखला-गर्त) बन जाता है, उसमें से रक्त मिश्रित दुर्गन्ध युक्त पूय का स्राव होता रहता है और रोगी आन्तरिक व्रणवेदना से अत्यधिक पीड़ित होता है। ये क्षय जन्य गह्वर एक ही समय में अनेक होते हैं और फुफ्फुस के जिस

भाग में ये गर्त होते हैं उस भाग को निस्तेज तथा निर्बल बना देते हैं। जिस प्रकार पक्षी अपनी चोंच से एक ही वृक्ष में स्थान-स्थान पर निवास घर बना लेते हैं, उसी प्रकार क्षय-ग्रन्थियों के पक कर फूटने पर फेफड़ों में अनेक कोटर बन जाते हैं। इनसे आतुर को असह्य वेदना होती है। तृतीयावस्था में फुफ्फुसों का अधिक भाग प्रक्षीण हो जाता है। वक्ष स्थल अन्दर की ओर चला जाता है और छाती शुष्क होने से वहाँ की पसलियाँ स्पष्ट रूप से उभरी हुई दीखने लगती हैं। पूर्णविश्राम करने से पूर्व काल में जैसे ज्वर शान्त हो जाता था, उस प्रकार से अब शान्त नहीं होता। प्रातः काल की अपेक्षा सायंकाल में तापमान अधिक होता है। सायं समय तापमान १०४ डिग्री तक हो जाता हैं। रात्रि के अन्तिम समय ज्वर का वेग मन्द होने पर भी रात्रि-स्वेद अधिक आता है। कास (खांसी) का वेग प्रायः निरन्तर बना रहता है। खांसी की अधिकता होने के कारण रोगी रात्रि में सो नहीं पाता। खांसने पर थूक में रक्त मिश्रित कफ अथवा पूययुक्त कफ निकलता है। रोगी का श्लेष्मा उबले हुए साबुदाने की टिकिया के तुल्य होता है। शरीर की निर्बलता और शिथिलता अत्यधिक हो जाती है और भोजन में सर्वथा अरुचि रहती है। अङ्गुलियों के अग्र भाग अधिक स्थूल हो जाते हैं और ऊपर के नख कछुवे की पीठ के समान उभर जाते हैं। यदि वात प्रधान उरः क्षय होता है; तो शारीरिक अवयवों तथा धातुओं में क्षीणता होती जाती है और पित्त प्रधान होने पर हाथ-पैर में दाह, रक्त-वमन और अतिसार होता है। कफ भूयिष्ठ क्षय-रोग में अरुचि, वमन, प्रतिश्याय (जुखाम), कास, सर्वाङ्गों में गुरुता आदि लक्षण देखे जाते हैं।

फुफ्फुस-आवरण में क्षय-जन्य शोथ होने पर कालान्तर में वहाँ श्वयथु के गलने पर पूय हो जाता है, इससे पार्श्व शूल, श्वास-प्रश्वास की कठनाई और ज्वर— ये लक्षण देखे जाते हैं। कभी-कभी वक्ष तथा उदर के मध्यवर्त्ती कोष्ठ की प्राचीर (दीवार) में क्षय जन्य शोथ उत्पन्न होने से वहाँ तीव्र शूल होता है, इससे उदर व्याधि होने का सन्देह हो जाता है। परन्तु यह शूल क्षय-जनित ही हुआ करता है।

अनेक बार कण्ठ में क्षय--व्रण होने से स्वर भेद उत्पन्न होता है और कभी-कभी कण्ठभेद इस व्याधि का आरम्भिक लक्षण भी होता है। परन्तु प्रायः यह उरः क्षय-रोग का उपद्रव ही हुआ करता है। १० से १५ प्रतिशत यक्ष्मा के रोगियों में स्वरभेद का होना देखा जाता है। इससे रोगी को भोजन निगलने में कष्ट होता है। क्षुद्र—आन्त्र के अग्रभाग की ग्रन्थियों में प्रायः क्षय-जन्य शोथ होता है, इससे अतिसार होता है। ५०% यक्ष्मा के रोगियों में कालान्तर से अतिसार हो जाता है। अनेक वार कोष्ठ पर्यावरण, यकृत्, प्लीहा, वृक्क और उपाण्ड—इन भागों में क्षय-व्याधि का विषैला प्रभाव पड़ने से इन स्थानों में वेदना होने लगती है।

यदि रोगी के शरीर में धातुओं का क्षय होकर रुधिर अधिक आता हो, प्रबल कास वेग हो, श्वास प्रश्वास में कष्ट हो, ज्वर, स्वर भेद, आदि उपद्रव बलवान् हों; तो ये इस रोग के अशुभ सूचक लक्षण माने जाते हैं।

कुछ बालकों और नवयुवकों के उदर के भीतर अन्त्रबन्धनी स्नायु (आन्तों को पिछले भाग की ओर बान्धने वाली स्नायु) के अन्दर विद्यमान लसिका ग्रन्थियों में क्षय-जन्य शोथ हो जाता है और उसके प्रभाव से उनके कोष्ठ पर्यावरण में भी यक्ष्मा का सूजन होता है। ऐसे बालक और युवकों का स्वास्थ्य विकृत हो जाता है। उनका शरीर दुर्बल, पीले वर्ण का होता है और जठराग्नि के मन्द होने से क्षुधा नष्ट हो जाती है। सायं काल वा रात्रि में ज्वर बना रहता है। उनके उदर को दबाने से पीड़ा होती है और कभी-कभी बिना दबाये भी पेट में शूल होता है। उनको मलावरोध (कब्ज) रहता है। उनका पेट कुछ बढ़ा हुआ होता है और नाभि के आस पास के भाग को दबाने से कोष्ठ भित्ति के अन्दर कुछ ग्रन्थियाँ भी देखी जाती हैं।

उरः क्षय रोग की प्रबलावस्था होने पर तरुण पुरुषों में भी कोष्ठ पर्यावरण के अन्दर ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दबाने पर वहाँ वेदना होती है। उदर-प्राचीर कठोर और वहाँ ऊपर की त्वचा रूक्ष हो जाती है।

चिकित्सा

उरः क्षय रोग के लक्षण प्रकट होने पर उसकी योग्य चिकित्सा करनी अभीष्ट है। क्षय-व्याधि प्रारम्भ से ही कष्ट साध्य होती है। क्योंकि इस रोग में वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं और त्रिदोषजव्याधि "सन्निपात" कहलाती है। "सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानां श्रेष्ठः" (चरक सू० २५) इस वचनानुसार "सन्निपातज आमय" दुश्चिकित्स्य होता है; अतएव यक्ष्मा रोग भी दुश्चिकित्स्य है। प्रारम्भ में ही यदि युक्त आहार और हितकर विहार के साथ औषधि योजना होती है, तो प्रभु कृपा से रोगी स्वस्थ हो जाता है। उपेक्षा करने पर रोग असाध्यकोटि में चला जाता है और उसका परिणाम विविध कष्टों की तीव्र वेदना के साथ जीवन की समाप्ति के रूप में क्षय-रोगी को भोगना पड़ता है।

अब यहाँ पर यक्ष्मा रोग की उपयुक्त चिकित्सा लिखी जाती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि क्षय–रोग में संसार की कोई उच्च से उच्च बहुमूल्य औषधि भी तब तक पूर्ण लाभप्रद नहीं होती, जब तक कि रोगी पथ्य का सेवन और कुपथ्य का परित्याग नहीं करता। अपथ्य का वर्जन और पथ्य का सेवन करने से असाध्य रोगों का भी विनाश होता है। इसके विपरीत अपथ्य के सेवन तथा पथ्य के परित्याग करने से स्वस्थ व्यक्ति भी रोगी हो जाते हैं; तो आतुरों की चर्चा ही क्या? पथ्य शब्द का अर्थ केवल हितकर पदार्थों का खाना वा पीना—इतना ही नहीं होता; प्रत्युत जिनके द्वारा व्याधि का शमन हो करके स्वास्थ्य की उपलब्धि होती हो; ऐसे मानसिक, वाचिक, तथा शरीरिक समस्त व्यापार पथ्य कहलाते हैं। जैसे—शुद्ध वायु का सेवन, ब्रह्मचर्य, मन की शान्ति, धैर्य, वाणी का संयम, ये सभी रोगों में हितकर होने से पथ्य कहलाते हैं इसी प्रकार से अपथ्य शब्द का भावार्थ ग्राह्य है। जो रोग की वृद्धि करने

वाले हों तथा स्वास्थ्य को नष्ट करते हों; ऐसे मन, वाणी और शरीर से होने वाले सम्पूर्ण व्यापार-क्रिया कलाप अपथ्य में समाविष्ट होते हैं। यथा—क्रोध की अधिकता, चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, अत्यधिक भाषण, विना विचारे बोलना, निन्दा, परुष वाक्य कहना इत्यादि अहितकर होने से अपथ्य माने जाते हैं।

१—शुद्ध वायु का सेवन

क्योंकि उरः क्षय (तपेदिक) फुफ्फुसों में होने वाला रोग है और फुफ्फुसों के लिए विशुद्ध वायु की विशेष आवश्यकता है, अतएव यक्ष्मा के रोगी को पवित्र वायु का सेवन करना अत्यधिक हितकर होता है। यदि रोग के प्रारम्भ में ज्वर न रहे अथवा सामान्य ताप हो और रोगी साधन सम्पन्न हो; तो उसे ऐसे पर्वतीय क्षेत्रों में जा कर निवास अवश्य करना चाहिये; जहाँ देवदारु, चीड़ वा यूकेलिप्टस के वृक्ष उपलब्ध हों। जिन वनों में देवदारु तथा चीड़ के वृक्ष पाये जाते हैं; ऐसे अरण्य में निवास करने से क्षय--व्याधि नष्ट हो जाती है। एसे जंगलों में निवास करते हुए मन की शान्ति के साथ, भ्रमण, शास्त्र चिन्तन तथा दीर्घ श्वास--प्रश्वास के अभ्यास से बिना अन्य औषधि के भी यक्ष्मी स्वस्थ हो सकता है। किन्तु यदि ज्वर आता हो, श्वास-प्रश्वास में कष्ट होता हो; नाड़ी की गति मिनट १०० से अधिक चलती हो, हृदय की निर्बलता हो, थूक में रुधिर आता हो; ऐसे लक्षण विद्यमान होने पर अथवा साधन हीन होने की अवस्था में पर्वतीय क्षेत्रों में जाना उचित नहीं होता।

उक्त प्रकार के रोगी के लिए समुद्र तटवर्ती कोई ऐसा प्रदेश; जहाँ पर दिन-रात और भिन्न-भिन्न ऋतुवों में वायुमण्डल का ताप समान रहता हो; वहाँ पर निवास करना लाभप्रद है। कास तथा प्रतिश्याय (जुखाम) के अधिक होने पर उष्ण तथा शुष्क समुद्र से दूरवर्त्ती स्थानों पर निवास करने से यक्ष्मा-रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है।

यदि बाहर जाने की सुविधा न हो, तो शुद्ध वायु के लिए किसी ग्राम के बाहर, अथवा नगर से दूर; ऐसे स्थान पर, जहाँ की वायु शुद्ध हो; वहाँ जाकर निवास करने से अत्यधिक लाभ होता है। ऐसे शुद्ध वायुमण्डल में प्रतिदिन भ्रमण करने पर फुफ्फुसीय व्रण सूख कर भर जाते हैं। मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि दीप्त होती है। खाया हुआ भोजन पचकर, रस, रक्त, मांस आदि सभी धातुओं का उचित रूप से निर्माण होने लगता है।

२—प्राणायाम

उरःक्षय रोग में प्राणायाम अत्युपयोगी है। एकान्त, शान्त, पवित्र वायुमण्डल में किसी एक आसन पर पूर्वाभिमुख वा उत्तराभिमुख होकर, बैठ जाय और अपनी रीढास्थि (मेरुदण्ड) को सीधा रखकर, शरीर को तनाव-रहित--शिथिल कर ले। मन को सभी प्रकार की चिन्ताओं से शून्य करके अपनी नासिका के द्वारा उदर की वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। निकालते समय शीघ्रता न करे और झटके के साथ

वायु न निकाले। उदर की वायु को निकालते समय अपनी नाभि को मेरुदण्ड के साथ लगाने का और मूत्रेन्द्रिय तथा गुदेन्द्रिय को ऊपर आकर्षण करने का प्रयास करे। इस प्रकार से धीरे-धीरे जब उदर की वायु बाहर निकल जाय; तो नासा छिद्रों से बाहर की वायु को धीरे-धीरे अन्दर भर ले। अपनी शक्ति से अधिक न भरे। भरने के उपरान्त कुछ समय तक वायु को अन्दर ही रोक ले और उस समय "ओम्" वा और कोई ईश्वर का नाम स्मरण करता रहे। मन में चञ्चलता न आने दे। यदि अपनी शक्ति १ मिनट तक वायु को रोकने की हो तो उससे आधे समय तक ही (½ मिनट) रोककर धीरे-धीरे अन्दर की वायु को बाहर निकाल दे। पुनः पूर्ववत् अन्दर भरकर रोके और बाहर निकाल दे। प्रारम्भ में केवल तीन बार ही रोकने का अभ्यास करे।

योगशास्त्र में—उदर की वायु को बाहर निकालना—"**रेचक**", कहलाता है और बाहर की वायु को अन्दर भरना "**पूरक**" संज्ञक होता है तथा वायु को भरकर अन्दर ही रोकना "**आन्तरिक कुम्भक**" कहा जाता है। मन की एकाग्रता, धैर्य तथा मात्रा पूर्वक किया हुआ प्राणायाम क्षय-रोग को समूल नष्ट कर देता है। परन्तु मन की चञ्चलता, शीघ्रता और शक्ति से अधिक किया गया प्राणायाम रोग की वृद्धि करता है।

प्राचीन काल के ऋषि महर्षि प्राणायाम के बल से दीर्घजीवी और स्वस्थ होते थे। उनको क्षय आदि व्याधि सन्तप्त नहीं कर पाती थी। आज भी कोई अभ्यास करके प्रत्यक्ष अनुभव करना यदि चाहे तो कर सकता है। विधिपूर्वक प्राणायाम करने से अनेक असाध्य रोग भाग जाते हैं। इसमें सन्देह के लिए अवसर नहीं है।

३—सूर्यताप का सेवन

यक्ष्मा रोग में सूर्य के ताप का सेवन अत्यधिक लाभप्रद है। प्रातः काल ७ बजे से ७॥ बजे के समय में शिर पर साधारण वस्त्र रखकर सूर्य की सीधी किरणों में शान्त भाव से बैठना हितकर है। शिर को छोड़कर शरीर के सभी अङ्गों में सूर्य की किरणें पड़ें ऐसा प्रयास करे। इस क्रिया को ५ मिनट से आरम्भ करके १ घण्टा तक चलावें। शीत काल में और भी अधिक बैठ सकते हैं। उरःक्षय रोग को नष्ट करने के लिए सूर्यदेव में अद्भुत शक्ति है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक व्याधियों को सूर्य किरण पूर्ण नष्ट करती हैं। शुद्ध वायु तथा सूर्य प्रकाश के अभाव में उरःक्षय रोग की वृद्धि और इन दोनों के सदुपयोग करने से क्षय-व्याधि प्रक्षीण होती है। रोगी यदि दृढ़ विश्वास के साथ नित्य प्रति सूर्य की रश्मियों का सेवन करने लगेगा तो उसके शरीर से शोष-रोग द्रुतगति से पलायन करेगा।

४—पूर्णविश्राम

क्योंकि उरःक्षय रोग एक भयानक आमय है। यह अति साहसिक कार्य करने से भी उत्पन्न होता है और शारीरिक श्रम के त्याग किये बिना नष्ट नहीं होता,

अतएव यक्ष्म-रोगी को पूर्ण विश्राम करना आवश्यकीय है। धूप में अधिक चलना, अथवा शरीर द्वारा अन्य कार्यों को अधिक करना, आदि अनिष्टकर होने से त्याज्य हैं यदि रोगी—क्रोध, शोक, चिन्ता, भय आदि मनोविकार तथा अतिभाषण, असम्बन्ध, परुष तथा असत्य बोलना इन वाचिक दोषों को परित्याग करके शारीरिक विश्राम करेगा तो रोग निवृत्ति होने में अत्यधिक सहयोग मिलेगा। अन्यथा पूर्ण विश्राम के अभाव में रोग की वृद्धि होगी। पूर्ण विश्राम होना तभी सम्भव होगा जब आतुर अपने मन को शान्त रखते हुए शरीर को निष्क्रिय (आयास हीन) बना लेगा। शारीरिक क्रियाओं का त्याग करके भी, मानसिक अशान्ति होने पर पूर्ण विश्राम नहीं होता। अतएव चित्त को शान्त बनाने के लिए भी प्रयास करणीय है। इसके साथ ही अधिक बैठना, रात्रि जागरण, आदि अनिष्टकर चेष्टाओं को त्यागना चाहिये। रोग की प्रबल अवस्था को छोड़कर, रोगी समय पर उठना, स्वाध्याय करना, शुद्ध वायु में यथाशक्ति भ्रमण करना, सूर्यताप-सेवन, इत्यादि हितकर चेष्टाओं को विचारपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य करता रहे।

५—ब्रह्मचर्य का परिपालन

वीर्य का अधिक क्षय होने से भी यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। जिन स्त्री-पुरुषों का जीवन असंयमित होता है; जो विवाहित स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य-व्रत का अनादर करते हैं; उनमें यक्ष्मा व्याधि (टी० बी०) अधिक होती है। रोग ग्रस्त होने पर भी यदि ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिए कोई प्रयास न हुआ, तो मृत्यु के अतिरिक्त और क्या फल होगा? शुक्र के संरक्षण से रोग-निवृत्ति शीघ्र होती है। प्रकृत रोग में प्रायः मैथुन, मद्य तथा मांस सेवन की इच्छा बलवती हो जाती है; अतएव यक्ष्मा के रोगी को इनसे सुरक्षित रखना चाहिये।

कामोत्तेजक अभद्र पुस्तकों का अध्ययन, वैषयिक संकल्प तथा कामवर्धक स्मरण आदि जो वीर्यनाशक व्यापार है उसे त्यागना अच्छा है। इसमें आध्यात्मिक तथा धार्मिक ग्रन्थों और महापुरुषों के जीवन चरित्रों को पढ़ने आदि से अत्यधिक लाभ होता है। मन को प्रभु भक्ति, गायत्री आदि पवित्र मन्त्रों के चिन्तन, अध्यात्म-चर्चा, योगचर्चा आदि में लगाने से मानसिक शान्ति अवश्य मिलती है। इससे वीर्य की सुरक्षा होगी। शुक्र संरक्षण होने पर मन्दाग्नि की निवृत्ति और जठराग्नि की दीप्ति के साथ-साथ भुक्त भोजन से रस, रक्त, मांस आदि सम्पूर्ण शारीरिक धातुओं का यथोचित निर्माण होगा। फलतः यक्ष्मा व्याधि सोपद्रव शान्त होने लगेगी।

पुरुष रोगी की सेवा करने के लिए नर व्यक्ति और रुग्णा नारी की परिचर्या करने के लिए स्त्री की नियुक्ति होनी योग्य है। कभी भी एकान्त पाकर पुरुषों के प्रकोष्ठ में नारियों का तथा नारी के निवास कक्ष में पुरुषों का प्रवेश नहीं होना चाहिए। हमारा स्वकीय अनुभव है कि—इस प्रकार के प्रमाद करने से अनेक यक्ष्मा के रोगी अकाल मृत्यु के ग्रास बन गये हैं। आधुनिक सभ्यता में जो इन नियमों की अवहेलना

देखी जाती है। उस विषय में हम अधिक लिखना उचित नहीं समझते, क्योंकि हमारा यह विषय नहीं है। परन्तु यहाँ इतना कथन करना पर्याप्त है कि—जब से ब्रह्मचर्य की उपेक्षा होने लगी है, तभी से यक्ष्मा, अपस्मार, उपदंश आदि नाना रोगों का अधिक आक्रमण होने लगा है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इससे मानवता संकटापन्न होती जा रही है। प्राचीन भारतीय इतिहास का अवलोकन करने से यह जानना सरल है कि—वीर्य की रक्षा में तत्पर रहने के कारण प्राचीन काल में आजकल के समान, राजयक्ष्मा, प्रमेह आदि व्याधियाँ तथा काम, क्रोध, लोभ आदि आधियाँ नहीं थीं। समाज में शान्ति तथा सुख की विपुलता थी। अपिच साम्प्रतिक अनेक ऐसे स्त्री-पुरुष विद्यमान हैं; जो ब्रह्मचर्य-व्रत के अनुष्ठान से, शान्तचित्त, सुखी और स्वस्थ देखे जाते हैं।

६—यज्ञ द्वारा यक्ष्मा रोग की चिकित्सा

दान, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण मन्त्रों का पाठ, जप, पूजा, सत्संग आदि श्रेष्ठ कर्मों को श्रद्धापूर्वक करना यज्ञ कहा जाता है। यज्ञ शब्द हवनार्थक भी होता है। उरः क्षय व्याधि को नष्ट करने में हवन की विशेष उपयोगिता देखी गई है। नीचे हवन की विधि लिखी जा रही है। इस विधि से यज्ञ करने पर यक्ष्मा रोग में अवश्य शान्ति होती है—

हवन सामग्री के द्रव्य—१—मण्डूरपर्णी, २—ब्राह्मी, ३—इन्द्रायण मूल, ४—पानड़ी, ५—नागरमोथा, ६—शतावरी, ७—अश्वगन्ध, ८—नेत्रबाला, ९—विधारा, १०—शालपर्णी, ११—पृष्ठपर्णी, १२—मकोय, १३—अडूसा (वासा), १४—गुलाब के पुष्प, १५—अगर, १६—तगर, १७—रास्ना, १८—वंशलोचन, १९—छोटी इलायची, २०—क्षीर काकोली, २१—जटामांसी, २२—पराडरी, २३—गोखरू, २४—तालमखाना, २५—पिस्ता, २६—बादाम, २७—मुनक्का, २८—जायफल, २९—लवङ्ग, ३०—बड़ी एलायची, ३१—बड़ी हरड़, ३२—आमला, ३३—जीवन्ती, ३४—पुनर्नवा, ३५—नागेन्द्र, ३६—बामड़ी, ३७—चीड़ का बुरादा और ३८—खूबकला—इन सबको एक-एक भाग में लेकर, यवकुट बना, सुरक्षित रख लें। गुडूची तथा गुग्गुलु—चार-चार भाग, केशर, कर्पूर, तथा देशीय मधु चौथाई-चौथाई भाग और शक्कर १० भाग लेकर कूटने योग्य द्रव्यों को सूक्ष्म बना, सबको एकत्र सम्मिश्रण करके रख लें। हवन करते समय इसमें घी इतनी मात्रा में मिलाया जाय कि—जिससे लड्डू बन सकें। यदि सामग्री शुष्क रहेगी; तो रोगी को कास होगा। अतएव उचित मात्रा में ही सामग्री में घृत को मिलाना चाहिये।

हवन के लिए साठी के चावलों अथवा शालि के चावलों की खीर प्रतिदिन (आवश्यकता के अनुसार) सिद्ध करें। इस यज्ञ में एक साथ तीन आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रथम घृत की, द्वितीय खीर की और तृतीय सामग्री की आहुति दी जाती है।

यह हवन प्रातः सायं दोनों समय होता है। प्रातः सूर्योदय के उपरान्त तथा सायं समय सूर्यास्त होने से पूर्व किया जाता है।

समिधायें—आम, ढाक (पलाश) आदि के वृक्षों की बनी हुई, सूखी लेनी योग्य हैं। गीली समिधायें धुवाँ उत्पन्न करती हैं। मत्रोच्च।रण करते हुए यथा विधि हवन किया जाता है। इसमें साधारण वस्त्रों का परिधान करके रोगी भी मंत्रोच्चारण के साथ आहुतियाँ देता है। **पथ्य**—रोगी सुपाच्य सात्त्विक आहार करे।

यज्ञ के योग्य स्थान—शास्त्रीय विधि के अनुसार यह हवन चीड़ वा बांस के सघन वन में किया जाता है। ऐसे स्थान पर आतुर के निवास की सुविधा करने के उपरान्त यह यज्ञ होता है। यद्यपि ऐसे स्थान पर यज्ञ करने से अधिक लाभ की उपलब्धि होती है; तथापि उक्त स्थान की सुविधा न होने पर अन्य पवित्र स्थान में भी उक्त हवन से यक्ष्मा–रोग में अवश्य लाभ होगा।

गुण—हवन को करने से राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है। यज्ञ के प्रभाव से वायुमण्डल और चित्त ये दोनों पवित्र होते हैं। हवन जनित सूक्ष्म परमाणु रोगी के फुफ्फुसों में जाकर क्षय–रोग के अणुओं को नष्ट करते हैं और यक्ष्मा–रोग जन्य फुफ्फुसीय व्रणों को सुखा कर भर देते हैं। इस हवन के द्वारा जो अचिन्त्य शक्ति उत्पन्न होती है, वह लोह निर्मित यन्त्रों के द्वारा देखी नहीं जा सकती; परन्तु शुद्ध सात्त्विक बुद्धि के माध्यम से उसका अनुभव होता है।

राजयक्ष्मा के अतिरिक्त, श्वास, कास, ज्वर आदि विविध रोगों में भी यह हवन लाभप्रद है। रोगमात्र को शान्त करने के लिए एवं स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिए हवन अत्युत्कृष्ट साधन है।

कविराज पं० सीताराम जी आयुर्वेदाचार्य ने लिखा है कि—"मैंने अपने अनेक वर्षों के अनुभव करने के उपरान्त यह निश्चय किया है कि— जो महारोग औषधि-भक्षण से नष्ट नहीं होते; वे वेदोक्त विधि के अनुसार यज्ञ करने से शान्त हो जाते हैं।"

यक्ष्मा रोगी के लिए आच्छादक वस्त्र और स्नान आदि की योजना—उर: क्षय के रोगी के लिए ऐसा एक उष्ण वस्त्र वक्षःस्थल की रक्षार्थ होना इष्ट है; जो उस स्थान को शीत आदि से सुरक्षित रख सके। "लाक्षादि तैल" अथवा तिल वा सरसों के तैल का मर्दन करके स्नान करें। यदि रोगी अधिक निर्बल हो, तो सुखोष्ण जल से स्नान करे। राजयक्ष्मा के रोगी को सर्वथा एकान्त शान्त तथा शुद्ध वायु मण्डल में निवास करना अत्यधिक लाभप्रद है। आतुर के ओढने-बिछाने के वस्त्र और उसके भोजन में प्रयुक्त होने वाले पात्रों को नित्यप्रति प्रातःकाल से सूर्यास्त तक सूर्य ताप में रखना अच्छा होता है। पन्द्रह दिन के उपरान्त उसकी प्रत्येक वस्तु को परिवर्तित करते रहें। क्योंकि यक्ष्मा रोग संक्रामक होने से स्वस्थ व्यक्तियों पर भी

तुरन्त प्रभाव करता है, अतएव शोषी के थूक, वार्तालाप, श्वास-प्रश्वास, वस्त्र आदि से यथासम्भव सावधान रहना अच्छा है। परिचारक के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को उसके साथ अधिक सम्पर्क करना योग्य नहीं होता। परन्तु उसे घृणा की दृष्टि से देखना भी अनिष्टकर है।

क्षय-रोग में हितकर आहार—यक्ष्मा-रोगी को उष्ण करके शीतल किया हुआ जल पीने के लिए दें। इस रोग में बकरी का दूध सेवन करना अत्यधिक लाभप्रद होता है। उसके अभाव में मुलहठी, बलात या अर्जुन की छाल से सिद्ध किया हुआ गोदुग्ध देना चाहिए। परन्तु दूध स्वस्थ गाय का होना चाहिए। दूध, मक्खन, मलाई, मिश्री, द्राक्षा, साठी तथा शालि चावल, जौ, गेहूँ की पतली रोटी, लौकी, परवल, तोरई, बथुवा, कच्चा केला, आदि सद्यः प्राप्त शाक, मूंग, अरहर की दाल, आमला, साबुदाना, फलों में–आम, अंगूर, अनार, नारंगी, सन्तरा, सेव आदि देना लाभप्रद है। तैल, खटाई और लवण का सेवन अति न्यून मात्रा में करना चाहिए।

भोजन करने से एक घण्टा पूर्व तथा भोजन के एक घण्टा पश्चात् पूर्ण विश्राम करना अभीष्ट है। क्षय-रोगी को शिष्ट मनोरंजन के द्वारा अपने मन को प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए। भक्ति-भाव के भजन, स्तोत्र, मन्त्र तथा श्लोकों का श्रवण करना अच्छा है।

यक्ष्मानाशक औषध-प्रयोग

उरःक्षय (तपेदिक) व्याधि में स्वर्णभस्म अत्युपयोगी होती है। स्वर्णभस्म क्षय-रोगजनित धातुओं की क्षीणता, ज्वर, श्वास, कास आदि को नष्ट करती है। इसके सेवन से हृदय और मस्तिष्क में बल आता है। उरःक्षय रोग में स्वर्णभस्म घटित योग विशेष लाभप्रद सिद्ध हुए हैं। अब यहाँ कुछ स्वर्ण घटित योग लिखे जाते हैं।

(१) वसन्तमालती रस

स्वर्णभस्म १ तोला, मुक्तापिष्टी २ तोला, शुद्ध हिंगुल चूर्ण ३ तोले, काली मिर्च का चूर्ण ४ तोले, तथा खर्पर भस्म ८ तोले लेकर एकत्र मिला, मर्दन करें। इसके उपरान्त इसमें गाय का मक्खन २ तोला मिलाकर एक दिन तक घुटाई करें। इसके पश्चात् कागजी नींबू का छना हुआ रस मर्दन करने योग्य हो, उतना ही प्रति-दिन डालकर सम्पूर्ण दिन दृढ़ता के साथ मर्दन करें। एक बार डाला हुआ नींबू का रस घोटते-घोटते जब विलीन हो जाय; तब दूसरी बार रस डालना चाहिए। इस प्रकार से थोड़ा-थोड़ा नींबू का रस डालते हुए स्थिरता से मर्दन करते रहें। इसे तब तक घोटें जब तक कि मक्खन की चिकनाई पूर्णरूप से नष्ट न हो जाय। औषधिगत मक्खन का स्नेह (चिकनाहट) समाप्त होने के उपरान्त १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें। सि० यो० सं० ॥

मात्रा—१-१ वटी प्रातः सायं समय दिन में दो बार दें।

अनुपान—अभ्रक भस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती और गुडूचीसत्त्व १ माशा के साथ मिलाकर सेवन करें। ऊपर से बकरी वा गाय का दूध पीवें।

गुण—यह रस राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर आदि अनेक रोगों में लाभप्रद है। इसके सेवन से धातुओं की क्षीणता नष्ट होकर बलवृद्धि होती है। जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा मन्दाग्नि का क्षय होता है। यह रस क्षय-रोग की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद है।

(२) राजमृगाङ्क रस

रस सिन्दूर ३ तोले, स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरिताल, और शुद्ध गन्धक २-२ तोले लें। सबको एकत्र मिलाकर, स्थिरता से मर्दन करके इस चूर्ण को शुद्ध कौड़ियों में भर दें। इसके उपरान्त बकरी के दूध में सुहागे को घोटकर, उससे कौड़ियों का मुख बन्द करें और उनको धूप में शुष्क कर लें। पश्चात् इन कौड़ियों को शराव सम्पुट में रख, ऊपर से वस्त्र मिट्टी कर, शुष्क करके, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर, सम्पुट खोलकर कौड़ियों के सहित औषधि को लेकर, सूक्ष्म पीस लें और ढक्कन वाली शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती प्रातः, मध्याह्न तथा सायं समय सितोपलादि चूर्ण, मधु तथा काली मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करें।

गुण—राजमृगाङ्क रस यक्ष्मा रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से सोपद्रव उरःक्षय व्याधि नष्ट होती है। शोष-रोग की सभी अवस्थाओं में उपयोगी है। यह रस क्षयाणुओं को नष्ट करता है तथा हृदय एवं मस्तिष्क को बल प्रदान करके मानसिक अशान्ति को दूर करता है।

(३) महामृगाङ्क रस

स्वर्णभस्म १ भाग, रस सिन्दूर २ भाग, मोती भस्म ३ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ५ भाग, रजत भस्म ७ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग और शुद्ध टंकण ४ भाग लें। इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, ६ घण्टे तक मर्दन करें। पश्चात् विजौरा नींबू के रस में ३ दिन मर्दन करके, इसका गोला बना, धूप में सुखा लें। गोले के शुष्क हो जाने पर सैंधव नमक से भरे पात्र के मध्य में गोले को रखकर, पात्र का मुख शराव से बन्द कर, वस्त्र मिट्टी से सन्धिबन्द कर, शुष्क करें। इसके उपरान्त इस लवणपूरित पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे क्रमशः मन्द और मध्यम अग्नि दें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट खोल कर, गोले को निकाल कर, खरल में मर्दन करें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—आधी रत्ती से एक रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, पिप्पली चूर्ण और विषम भाग मधु तथा घृत के साथ दें।

गुण—यह रस यक्ष्मा-रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से क्षय-व्याधि में उत्पन्न होने वाले कास, श्वास, स्वरभंग, नैर्बल्य आदि समस्त उपद्रव शान्त होने लगते हैं। हृदय तथा मस्तिष्क में बल आता है और वातवाहक नाड़ियों तथा ज्ञान-वाहक केन्द्रों की कार्य क्षमता प्रबल होती है। उरःक्षय व्याधि की सम्पूर्ण अवस्थाओं में लाभप्रद है।

(४) हेमगर्भपोट्टली रस

शुद्ध पारद ४ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग, शुद्ध गन्धक १२ भाग, मुक्ता-पिष्टी १ भाग, शंख भस्म २४ भाग और शुद्ध टंकण १ $\frac{1}{4}$ भाग लेकर, सबको एकत्र मिला ६ घण्टे तक मर्दन करें। इसके पश्चात् कागजी नींबू के रस में ३ दिन मर्दन करके, गोला बना लें और धूप में शुष्क करके, मिट्टी के पात्र में गोले को रखकर, शराव सम्पुट करें। इसके उपरान्त वस्त्र मिट्टी से सन्धिवन्द कर, सुखाकर, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट को खोल लें और रस को निकाल कर, खरल कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती, दिन में २-३ बार, सितोपलादि चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर दे। अथवा पिप्पली चूर्ण और विषम भाग मधु तथा घृत के साथ सेवन करें।

गुण—यह रस राजयक्ष्मा के सभी उपद्रवों को नष्ट करता है। इससे क्षय-रोग में उत्पन्न होने वाले—ज्वर, कास, श्वास, स्वर भेद, मन्दाग्नि, आदि उपसर्ग नष्ट तेहो हैं। उरःक्षय व्याधि की तीनों अवस्थाओं में हितकर है।

(५) लोकेश्वरपोट्टली रस

रस सिन्दूर ४ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर, सबको एकत्र मिलाकर ६ घण्टे तक मर्दन करें। इसके उपरान्त चित्रक-रस में तीन दिन घोटकर, शुष्क करके, इसे शुद्ध कौड़ियों में भर कर, दूध में टंकण को घोट कर, उससे वराटिका (कौड़ी) के मुख बन्द कर, शुष्क करें। इसके पश्चात् इन वराटिकाओं को मिट्टी के पात्र में रखकर, शराव सम्पुट करें। पश्चात् वस्त्र से सन्धि बन्द कर, धूप में सुखा कुक्कुट-पुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से कौड़ियों सहित औषधि को लेकर, खरल में सूक्ष्म पीस लें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती, प्रातः सायं दिन में दो बार, पिप्पली चूर्ण और विषम भाग घृत तथा मधु के साथ दें।

गुण—यह रस उरःक्षय व्याधि में लाभप्रद है।

(६) चतुर्मुख रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म—प्रत्येक द्रव्य एक-एक भाग और स्वर्णभस्म १/४ भाग लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर, उसमें

सभी भस्में मिलालें। इसके उपरान्त ग्वार पाठा, गुडूची, त्रिफला, नागरमोथा, ब्राह्मी, लवङ्ग, चित्रकमूल की छाल–इनके स्वरस अथवा क्वाथ में–पृथक्-पृथक् १-१ दिन मर्दन कर, एक गोला बना कर, उसको धूप में शुष्क करें। गोले के सूखने पर, उसके ऊपर एरण्ड के हरे पत्र लपेट कर, ऊपर से सूत द्वारा बांध दें। इसके पश्चात् उसको धान्य की कोठी में रख दें। तीन दिन इसी प्रकार से रहने दें और चतुर्थ दिन धान्य राशि से उसे बाहर निकाल लें और एरण्ड पत्र को हटा कर, औषधि को खरल में सूक्ष्म पीस लें और शीशी में सुरक्षित रख लें। सि०यो०सं० ॥

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ दें।

गुण—यह रस उर:क्षय को नष्ट करता है। इसके सेवन से यक्ष्मा में होने वाले सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। क्षय-रोग की सभी अवस्थाओं में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त, पाण्डु, अम्लपित्त, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, मूर्च्छा, प्रमेह आदि रोगों में भी यह अत्युपयोगी महौषधि है।

(७) सुवर्णभूपति रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, कान्तलोह भस्म, स्वर्णभस्म, रजतभस्म तथा शुद्ध वत्सनाभ—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, ताम्रभस्म दो भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर, कज्जली में स्वर्णभस्म सम्मिश्रण कर, मर्दन करें। इसके पश्चात् शेष भस्में मिलाकर घोटें, अन्त में वत्सनाभ का वस्त्रछन चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। पश्चात् हंसराज के रस में १२ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करके, सुखा लें। शुष्क होने पर आतशी शीशी में भरकर, बालुका यन्त्र में रखकर, २ प्रहर की मन्दाग्नि दें। इस रसायन को तीव्राग्नि न दें। मन्द-मन्द अग्नि ६ घण्टे तक जलावें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर काचकूपी से औषधि को ग्रहण कर लें। यह रस तलस्थ सिद्ध होगा। इसे "सुवर्णभूपति रस" कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—आधी से एक रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, अदरक के रस और मधु के साथ, अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—"सुवर्णभूपति रस" सर्व सन्निपात एवं यक्ष्मा रोग की द्वितीयावस्था में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से क्षयाणु नष्ट होते हैं। इसके साथ-साथ यक्ष्मा जन्य कास, श्वास, शूल आदि उपद्रवों का शमन होता है। आमवात, धनुर्वात, कटिवात, मन्दाग्नि, सर्व प्रकार के शूल, गुल्म, उदावर्त, भयङ्कर संग्रहणी, प्रमेह, उदर रोग, सर्व प्रकार का अपस्मार, मलावरोध, मूत्रविबन्ध, भगन्दर, सर्व प्रकार के कुण्ठ, विष-विकार, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, सर्व प्रकार के ज्वर, कामला, पाण्डु, शिरो-रोग–आदि व्याधियों में हितकर है। अनुभूत है।

(८) जयमङ्गल रस (भै०र०)

हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, ताम्र भस्म, बंग भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, सैंधव लवण, चूर्ण, काली मिर्च का चूर्ण, कान्तलोह भस्म, रजतभस्म–प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, स्वर्ण भस्म २ तोले लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर, कज्जली में स्वर्णभस्म मिला, मर्दन करें। इसके उपरान्त शेष सभी द्रव्यों को मिला दें और अच्छी प्रकार से मर्दन करें। पश्चात् धत्तूरे के पत्रों के रस, शेफालिका (सम्भालु) के पत्रों के रस, दशमूल के क्वाथ और चिरायते के क्वाथ की पृथक्-पृथक् ३-३ भावना देकर, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं दिन में दो बार, पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

गुण—यह रसायन क्षय-व्याधि में लाभप्रद है। यक्ष्मा की सभी अवस्थाओं में प्रयोग करें। इसके सेवन से क्षयजन्य ज्वर, निर्बलता, कास और श्वास में लाभ होता है। अनुभूत है।

(९) रास्नादि लौह

रास्ना की जड़, अश्वगन्ध, शुद्ध कर्पूर, विशुद्ध शिलाजीत, हरड, बहेड़ा, अमला, काली मिर्च, सोंठ, पिप्पली तज, पन्नज, छोटी इलायची–प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला और लौहभस्म १३ तोले लें। चूर्ण करने के योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, लौहभस्म के साथ चूर्ण को एकत्र सम्मिश्रण कर, मर्दन करें। एक दिन तक खरल में घोटने के उपरान्त इसे शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दो बार घृत, मिश्री के साथ दें। रोगानुसार और उचित अनुपानों की योजना बना लें।

गुण—यह रास्नादि लौह क्षय रोग में आशातीत लाभप्रद है। इसके सेवन से उरःक्षय में—होने वाले पार्श्वशूल, शिरःशूल, रक्तवमन, काम, श्वास, स्वर भेद, अरुचि, ज्वर, अतिसार, प्रतिश्याय आदि समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। सुख साध्य, कष्ट साध्य, याप्य और असाध्य उरःक्षय (टी० बी०) में यह लाभप्रद रसायन है। इससे धातुओं की वृद्धि तथा पुष्टि होकर शारीरिक बल तथा कान्ति की उपलब्धि होती है। अनुपान भेद से सेवन कराने पर और भी अनेक रोगों को नष्ट करता है। अनुभूत है।

(१०) सहस्रपुटी अभ्रकभस्म (मृत्युञ्जय-अभ्रक)

शुद्ध धान्याभ्रक ४० तोले, पुराना गुड़ ४० तोले—इन दोनों को एकत्र मिला कर, ४ हर तक कूटें। कूटने पर जब यह मिलकर, एकाकार हो जाय, तब इसकी टिकिया बनाकर मृत्पात्र में रखकर, सम्पुट बना, वस्त्र मिट्टी कर, धूप में सुखा, बीस सेर उपलों में रखकर, अग्नि दें। स्वाङ्गशीतल होने पर, सम्पुट से अभ्रक को निकाल

कर, इसे जल से अनेक वार धोकर, स्वच्छ बना लें। इसके उपरान्त इसे तोल लें और इसका जितना भार हो, उतना ही इसमें कल्मी शोरा मिलाकर, आठ प्रहर तक खरल करके, सम्पुट में बन्द कर, २० सेर उपलों की अग्नि दें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से औषधि को निकाल लें और जल से धोवें। जिह्वा पर रख कर देखें कि अभ्रक से क्षारांश (खारपना) नष्ट हुआ अथवा नहीं ? जब इसमें क्षारांश न रहे, तब धोना बन्द करके, सुखा लें। अभ्रक के शुष्क होने पर इसमें शुद्ध पारद ४० माशे मिलाकर, अर्कदूध (अभावे–मदार पत्रों के रस) में मर्दन करें। घोटते-घोटते जब पारद तथा अभ्रक एकाकार हो जाय, तब इसकी टिकिया बना, सुखा लें। अच्छी प्रकार से शुष्क होने पर, सम्पुट में बन्द कर, चार सेर उपलों के मध्य में रखकर, अग्नि दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर, सम्पुट से औषधि को ग्रहण कर, इसमें शुद्ध पारद ४० माशे मिलाकर, अर्क के दूध में घोटें और टिकिया बना, सुखा, सम्पुट में रखकर, चार सेर उपलों में सम्पुट को रख, अग्नि दें। इस प्रकार प्रत्येक वार शुद्ध पारद ४० माशे मिलाना और अर्क दूध में मर्दन करके, टिकिया बना, टिकियाओं को सुखा, सम्पुट में बन्द करके चार सेर उपलों के अन्दर रखना आदि करते हुए सहस्र १००० वार की अग्नि संख्या पूर्ण करके यह सहस्र पुटी अभ्रक सिद्ध होती है।

इस भस्म में से पारद उड़ता नहीं है। अभ्रक के साथ पारद की भी भस्म बन जाती है। अभ्रक के साथ पारे की भस्म मिलने के कारण यह भस्म अधिक भार युक्त होती है और देखने में अति सुन्दर होती है। इसका नाम "मृत्युञ्जय-अभ्रक" है।

मात्रा—एक तिनके के अग्रभाग पर जितनी भस्म आ जाय, वह एक मात्रा है। **अनुपान**–मक्खन में रखकर सेवन करें अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण– यह भस्म राजयक्ष्मा के लिए अमोघास्त्र है। एक सप्ताह तक निरन्तर सेवन करने से विचित्र लाभ होता है। पाश्चात्य चिकित्सकों तथा वैद्यों के द्वारा असाध्य घोषित हुए, निराश, यक्ष्मा के अनेक रोगियों को इस भस्म का सेवन कराकर ईश्वरानुग्रह से हमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से ज्वर, श्वास, कास, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हृदय और शरीर की निर्बलता, १८ प्रकार के कुष्ठ, नपुंसकता आदि रोगों में लाभ होता है। संसार में ऐसा कोई रोग नहीं हैं जिसमें यह भस्म लाभप्रद न हो। अनुपान भेद से सभी प्रकार के रोगों में उपयोगी है।

(११) जीवन बल्लभावलेह

अडूसा की छाल एक पाव, मुलहेठी आधा पाव, छोटी पिप्पली एक छटाँक, वंशलोचन २॥ तोला, दाल चीनी १। तोला, केशर ९ माशे, मुक्ता भस्म ४॥ माशे,

कान्त लोह भस्म १ तोला लें। प्रथम काष्ठौषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर, भस्मों के साथ चूर्ण को मिलाकर, मर्दन करें। पश्चात् इसमें मधु मिलाकर, अवलेह बना, बन्द पात्र में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ तोला तक, दिन में ३ बार सेवन करें।

गुण—यह अवलेह साध्य तथा कष्ट साध्य क्षय रोग में लाभ करता है और असाध्य यक्ष्मा में शान्ति देता है। अनुभूत है।

(१२) यक्ष्मारि दुग्ध प्रयोग

श्वेत वर्णा गौ का (धारोष्ण वा गर्म किया हुआ) दुग्ध ५ छटाँक, गोघृत १।। तोला, मधु १ तोला, मिश्री ५ तोले, छोटी पिप्पली का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण ६ माशे, इन पाँच द्रव्यों को कलई किये हुए पात्र में एकत्र मिलाकर, रोगी को पिला दें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से दिन में ९-१० बजे और सायं समय ५-६ बजे पर नित्य पिलावें। इसके सेवन से ३ सप्ताह में यक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है। उक्त पाँच औषधियों को कलई किए हुए पात्र में उत्तम प्रकार से मिलाने के पश्चात् पिलाना चाहिये। अनुभूत है।

(१३) अटरूषादि-सार (अर्क)

अटरूष (अडूसा-वासा), मकोय, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, धनिया, कमल के पुष्प, अमृता (गिलोय), गुलाब के पुष्प, मधुयष्टी (मुलहठी), मुण्डी बूंटी, शाहतरा, जल धनिया, प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोले, लाल सेव १० दाने, कर्पूर १ तोला, भेड़ वा गौ का दूध १० सेर, वर्षा अथवा नदी का जल ६ सेर लें। सम्पूर्ण काष्ठौषधियों का कूटकर, जल तथा दूध में एकत्र भिगो दें। दो दिन भीगने के उपरान्त नाडिका यन्त्र से इसका सार (अर्क) खींच लें। ६ शीशी अर्क निकाल लें।

मात्रा—४ तोले, प्रातः सायं दिन में दो बार दें।

गुण—यह सार (अर्क) उरः क्षय (टी० बी०), कफ, ज्वर, जीर्णज्वर, दाह, आदि रोगों में अत्युपयोगी है। अन्य औषधि के अभाव में केवल इसी अर्क के सेवन से यक्ष्मा रोग में अच्छा लाभ होता है। यह योग सैंकड़ों बार का सुपरीक्षित है।

।।उरःक्षय रोग की लाक्षणिक चिकित्सा।।

रक्तवमन की चिकित्सा

उरःक्षय रोग में मुख से रुधिर का स्राव होता है। इससे रोगी के शारीरिक बल का क्षय होकर अधिक निर्बलता आती है और आतुर के चित्त में भय उत्पन्न हो जाता है। अतः रक्त वमन का प्रतीकार करना अभीष्ट है। जब रोगी के मुख से रुधिर निकलने लगे, तो उस समय उसे पूर्णरूप से विश्राम करना अनिवार्य है। उस अवस्था में निम्नांकित उपाय लाभप्रद होते हैं।

१—रोगी को उत्तान अवस्था में लिटा दें और एक हिमखण्ड को वस्त्र में लपेट कर, उसके वक्षः स्थल पर रख दें। इसके साथ ही शाखाओं की शिराओं से रक्त के आगमन को बन्द करने के लिये जंघाओं तथा बाहुओं के ऊपर के भाग पर दृढ़ता से वस्त्र पट्टी बान्ध दें।

२—निशोथ (त्रिवृत्) का चूर्ण २ से ३ माशे तक, मिश्री के पानक (शर्बत) में घोल कर पिला दें।

३—त्रिफला चूर्ण को जल में घोट, छान कर पिला दें। जिससे विरेचन हो जाय।

४—लाक्षा (लाख) का चूर्ण १-१ माशा, प्रवाल भस्म २ रत्ती और मधु १ तोला, तीनों को मिला कर चटावें।

५—आमला, धान्यक (धनिया), अडूसा, मधुयष्टी (मुलहठी) और द्राक्षा (मुनक्का) इनको समभाग में लेकर, यवकुट चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को ४ तोले की मात्रा में लेकर, उबलते हुए १६ तोले जल में डालकर, ढक कर, रख दें। कुछ समय के उपरान्त शीतल होने पर, इसे हाथ से मर्दन करके, छान लें।

मात्रा—४ से ८ तोले तक दें। इसमें अल्प मिश्री मिलाकर २-२ घण्टे पर सेवन करावें।

६—वासावलेह

अडूसा (वासा) १०० भाग, को अष्ट गुणित जल में मन्द-मन्द अग्नि पर पका कर, क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थ भाग जल शेष रहने पर अग्नि जलाना बन्द करके, स्वाङ्गशीतल होने दें। पश्चात् हाथ से मर्दन कर, वस्त्र से क्वाथ को छान लें और क्वथित जल में, १००० भाग खाण्ड मिलाकर, मन्दाग्नि पर चाशनी बना लें। सम्यक् प्रकार से चाशनी के सिद्ध होने पर इसमें—हरीतकी ६४ भाग, पिप्पली २ भाग, मधु ४ भाग, चतुर्जात १ भाग (दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और नाग केशर—इन चार द्रव्यों को एकत्र मिलाने पर, इनका नाम "चतुर्जात" हो जाता है), इनका वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर, नीचे उतार कर, अन्त में मधु मिला दें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ तोले तक, प्रातः सायं दिन में दो बार दें।

गुण—वासावलेह के सेवन से—क्षयज रक्त--वमन, कास, श्वास आदि रोगों में अच्छा लाभ होता है।

७—वासाकूष्माण्डावलेह

वासा १०० भाग, कूष्माण्ड (पेठा) १०० भाग लें। प्रथम वासा को यवकुट करें। पेठे को छीलकर, उसके छोटे-छोटे खण्ड करके ४०० भाग जल में वासा के चूर्ण तथा कष्माण्ड को डालकर, कलई युक्त पात्र में मन्दाग्नि देकर क्वाथ सिद्ध करें।

चतुर्थांश जल शेष रहने पर, अग्नि से उतार कर, शीतल होने दें। इसके पश्चात् क्वाथ से पेठे को बाहर निकालकर, उसे निचोड़ कर, जल रहित करके, कुछ समय तक धूप में शुष्क करें। पश्चात् इस सूखे पेठे को घी में भून लें और चूर्ण बना कर रखें। शेष अडूसा क्वाथ को हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें और इस जल को चूल्हे पर चढ़ा दें। मन्दाग्नि जलाकर, इस जल को चाशनी बनने योग्य रहने दें। जब जल चाशनी के बनाने योग्य उचित मात्रा में रहे, तब इसमें १०० भाग खाण्ड वा शक्कर मिलाकर, चाशनी बना लें। चाशनी के बन जाने पर इसमें पेठे के चूर्ण को मिला दें तथा अग्नि से नीचे उतार कर—मधुयष्टी, पिप्पली, सोंठ, दोनों जीरे, २-२ भाग, धनिया, त्रिजात (दालचीनी, एलायची और तेजपात) और काली मरिच प्रत्येक आध-आध भाग लें। इन सब का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण, चाशनी में डालकर, कलछी से ठीक प्रकार से चला कर मिला दें। इसे चीनी मिट्टी वा लकडी के स्निग्ध पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ तोला, प्रातः सायं दिन में दो बार दें और ऊपर से बकरी वा गौ का दुग्ध पिलावें।

गुण—वासा कूष्माण्डावलेह के सेवन से उरःक्षय जन्य रुधिर का वमन, कास, श्वास आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं और शारीरिक धातुओं की पुष्टि होती है।

८—वासारिष्ट

अडूसा १०० भाग को यवकुट बनाकर, ५१२ भाग जल में डाल कर मन्दाग्नि पर क्वाथ बनावें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर, अग्नि से उतार कर, हाथ से मर्दन करके, छान लें। इस जल को घृत लेपित मृत्पात्र में भरकर, १०० भाग गुड़, धातकी पुष्प (धाय के फूल) ८ भाग, चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर), त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली और काली मरिच), और शीतल चीनी प्रत्येक २–२ भाग लेकर इनका वस्त्रछन चूर्ण बना, उक्त पात्र में डालकर अरिष्ट विधि से सिद्ध कर लें।

मात्रा—भोजनोपरान्त १-२ तोले तक सेवन करावें।

गुण—वासारिष्ट के सेवन से मुख से रुधिर गिरना, कास, श्वास आदि रोग शान्त होते हैं।

वासा को मधु, द्राक्षा, बला आदि औषधियों के साथ मिलाकर, विविध प्रकार के पानक (शर्बत) बनाये जाते हैं। इनको भी २ से ४ तोले तक, सेवन करावें। इनके प्रयोग से रक्त वमन रुक जाता है।

९—तमालपत्रादि चूर्ण

तमालपत्र (तेजपात) १ तोला, दालचीनी दो तोले, बड़ी एला ३ तोले, तगर

४ तोले, श्वेत चन्दन ५ तोले, अनन्त मूल ६ तोले, मधुयष्टी ८ तोले, कमलगट्टा ६ तोले, आमला १० तोले, अडूसा (वासा) की छाल ११ तोले, सोंठ ७ तोले, और मिश्री ६६ तोले लें। सब को वस्त्रछन चूर्ण बना कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे तक, प्रातः मध्याह्न, सायं समय दिन में ३ बार, बकरी वा गौ के दुग्ध के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से राजयक्ष्मा में होने वाला, रुधिर-वमन तथा रक्त-पित्त, नासा द्वारा रक्त गिरना, आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्रयोग अनेक बार का अनुभूत है।

ज्वर नाशक उपाय—यदि यक्ष्मा के रोगी का तापमान अधिक हो; तो इन उपायों को करके ज्वर का शमन करना चाहिये—रोगी को शीतल जल में बैठकर स्नान करना चाहिए। इस प्रकार से दिन मे २-३ बार शीतल जल में बैठकर स्नान करने पर ज्वर की उष्णता तथा हाथ पैरों का दाह शान्त होता है। इस क्रिया को करते हुए रोगी के लिए पूर्ण विश्राम करना भी अनिवार्य होता है। शीतल जल में वस्त्र को भिगोकर, आतुर के उदर के ऊपर रखने से भी ज्वर में अच्छा लाभ होता है।

सितोपलादि चूर्ण में गुडूची सत्त्व तथा "वसन्त कुसुमाकर रस" अथवा "प्रवाल पञ्चामृत" को मिलाकर, प्रातः सायं दिन में दो बार सेवन करावें। इससे यक्ष्मी का ज्वर हट जाता है।

अरुचि तथा अजीर्ण की चिकित्सा

उरः क्षय के रोगी की जठराग्नि मन्द हो जाती है। उसे खाने की इच्छा नहीं होती। किसी भी उत्तम खाद्य पदार्थ को ग्रहण करने की रुचि समाप्त हो जाती है। मन्दाग्नि हो जाने से खाया हुआ आहार पच नहीं पाता। ऐसी अवस्था होने पर उसके लिए आगे कहे जाने वाले योग हितकर होते हैं—

(१) लवङ्गादिचूर्ण

लौंग, शुद्ध कर्पूर, इलायची, नागकेशर, दालचीनी, जायफल, खस, शुण्ठी, काला जीरा, काला अगर, वंशलोचन, जटामांसी, नीलकमल, पिप्पली, श्वेत चन्दन, तगर, नेत्रबाला, कंकोल (शीतल चीनी) इन समस्त द्रव्यों को समान भाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना, सम्पूर्ण चूर्ण से आधी मात्रा में शक्कर मिलाकर, सुरक्षित रख लें। यह "लवङ्गादिचूर्ण" कहा जाता है। शा० सं०॥

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो बार गो-दुग्ध अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण रुचिकर, व्रणरोपक, तृप्तिवर्धक, कास, यक्ष्मा, अतिसार, प्रमेह आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से मन्दाग्नि नष्ट होकर क्षुधा की वृद्धि होती है।

(२) लवणभास्कर चूर्ण

समुद्र नमक ८ तोले, सोंचर नमक ५ तोले, विड्नमक, सेंधा नमक, धनियां, पिप्पली, पीपलामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीस पत्र, अमलवेंत—प्रत्येक २-२ तोले, काली मरिच, श्वेत जीरा, शुण्ठी १-१ तोला, अनारदाना ४ तोले, इलायची और दालचीनी ६-६ माशे लें। इनका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—३-३ माशे भोजनोत्तर दोनों समय जल के साथ सेवन करें। शा०सं०।

गुण—यह चूर्ण दीपन, पाचन करता है। क्षय, अर्श, संग्रहणी, कुष्ठ, मलावरोध, भगन्दर, शोथ, श्वास, कास आदि अनेक रोगों में अत्युपयोगी है।

(३) दाडिमाष्टक चूर्ण

अनार के दाने तथा शर्करा ३२-३२ तोले, पिप्पली, पीपलामूल, अजवाइन, काली मरिच, धनियाँ, श्वेत जीरा, शुण्ठी—प्रत्येक ४-४ तोले, वंशलोचन १ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ६-६ माशे लेकर वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रखलें। इस चूर्ण को "बृहद्दाडिमाष्टक चूर्ण" कहते हैं। शा० सं०

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे प्रातः सायं दिन में दो बार जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण अतिसार, यक्ष्मा, गुल्म, ग्रहणी, मन्दाग्नि तथा कास रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से जठराग्नि की वृद्धि होकर क्षुधा की दीप्ति होती है। भोजन की रुचि बढ़ती है और खाया हुआ भोजन उचित समय पर पच जाता है।

अतिसार का प्रतीकार—यक्ष्मा के रोगी को अतिसार होने से शीघ्र-शीघ्र पतली टट्टियाँ आती हैं। इससे आहार का पाचन नहीं होता। अतिसार के कारण रोगी के शरीर में अत्यधिक निर्बलता आ जाने से उठने, बैठने तथा चलने की शक्ति नहीं रहती। नवीन अतिसार की अवस्था में उसे निम्नलिखित प्रयोगों का सेवन कराना हितकर है—"स्वर्णपर्पटी" तथा "सुवर्णभूपति रस" इनमें से किसी एक योग को दिन में एक या दो बार सेवन करावें। रोगी के लिए मट्ठा, मूंग की दाल की खिचड़ी, चावल आदि हितकर आहार दें। मक्खन, मछली का तैल आदि भोजन न दें।

पार्श्वशूलहर प्रयोग—उरः क्षय व्याधि में रोगी को पार्श्वशूल नष्ट करने के लिए १. लशुनकल्क को वैसलीन में मिलाकर लगावें—शूल प्रदेश पर लेप करें। २. कूठ और पिप्पली के चूर्ण को खिलाकर, ऊपर से दशमूल का क्वाथ पिलावें।

कासशामक उपाय—यक्ष्मा रोगी को कास अधिक होता है। रात्रि तथा दिन में पुनः पुनः कास का वेग उठता है। रोगी खांसते-खांसते दुःखी हो जाता है। कास में कभी-कभी केवल कफ अथवा कभी रक्त मिश्रित श्लेष्मा निकलता है और कभी शुष्क खांसी ही अधिक होती है। ऐसी अवस्था में निम्न प्रयोग लाभप्रद होते हैं—

(१) एलादिगुटिका

छोटी इलायची के बीज, तेजपत्र, दालचीनी—प्रत्येक ६-६ माशे, छोटी पिप्पली २ तोले, मिश्री, मधुयष्टी (मुलहठी), पिण्ड खजूर, काला द्राक्षा (मुनक्का)—प्रत्येक ४-४ तोले लें। प्रथम मुनक्का और पिण्ड खजूर के बीजों को निकाल दें और इनको सूक्ष्म पीस लें। इसके उपरान्त शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर, मर्दन करें और सबको मधु के साथ सम्मिश्रण करके, चणक प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी को मुख में रखकर चूसें। दिन भर में ८-१० गोलियां चूसें।

गुण—इस वटी के चूसने से–यक्ष्मा की खांसी, शुष्क कास, रक्तवमन, तृषा, मूर्च्छा आदि रोगों में लाभ होता है। शुष्क कास में इसके प्रयोग से कफ पिघलकर बाहर निकल जाता है। यह वटी पित्त और कफ का शमन करती है।

(२) सितोपलादि

चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने पर भी कास में अच्छा लाभ होता है।

(३) शिलाजतु प्रयोग

शुद्ध शिलाजीत १० तोले को मर्दन करके, त्रिफला क्वाथ, गुडूची रस, दशमूल के क्वाथ और जीवनीय गण के क्वाथ के साथ पृथक्-पृथक् एक-एक दिन घोट कर, छाया में शुष्क कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२-२ रत्ती, प्रातः सायं दिन में दो बार, दूध के साथ दें।

गुण—शिलाजीत क्षय-व्याधि के लिए उत्तम रसायन है। यह कास, कफ, श्वास, अर्श, पाण्डु आदि में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से कास का वेग शान्त होता है।

(४) मल्लप्रयोग

इस व्याधि में संमल (मल्ल) का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूप से किया जाता है, रोगी को भोजनोपरान्त आधी से १ रत्ती तक "तालसिन्दर" मधु के साथ दें। यह कफघ्न रस है।

(५) कासघ्नीवटी

निरुत्थ बंगभस्म १ भाग, छोटी पिप्पली २ भाग, बड़ी हरड़ की छाल ३ भाग, बहेड़े की छाल ४ भाग, अडूसा के पत्र ५ भाग, भारङ्गी ६ भाग, लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, एकत्र सम्मिश्रण करें और बंगभस्म मिलाकर, बबूल की छाल के अष्टमांश शेष क्वाथ के साथ २ दिन तक मर्दन करें। बबूल के क्वाथ को नित्य नवीन बनाकर ही उपयोग में लावें। इस क्वथित जल को थोड़ा-थोड़ा चूर्ण में डालता जाय और स्थिरता से मर्दन करता जाय। दो दिन तक निरन्तर घोटने के उपरान्त इसे छाया में शुष्क करके, मधु के साथ २४ घण्टे घोटें

और छोटे बेर के समान वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में रख, डाट लगाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी को मुख में रखकर, दिन में ३-४ वटी तक चूसें।

गुण—यह वटी सभी प्रकार के कास में लाभप्रद है। श्वासयुक्त शुष्क कास (सूखी खांसी), आर्द्र कास तथा क्षयजन्य खांसी में अत्युपयोगी है। भयङ्कर से भयङ्कर खांसी को नष्ट करने के लिए श्रीरामबाण के समान अव्यर्थ है। अनेक बार की अनुभव की हुई औषधि है।

(६) शृङ्गादिगुटिका

मृग के सींग की भस्म डेढ़ भाग, शुद्ध सुहागा, यवक्षार, अर्क (मदार) की जड़ की छाल, एक-एक भाग, काली मरिच, छोटी पिप्पली, कुलञ्जन—प्रत्येक डेढ़-डेढ़ भाग, नासपाल, सैंधव लवण—२-२ भाग, बहेड़े की छाल, श्वेत खदिरसार (कत्था), मधुयष्टी सत्त्व—प्रत्येक २॥-२॥ भाग लें। प्रथम चूर्ण बनाने योग्य द्रव्यों का वस्त्र छन चूर्ण बनाकर, समस्त द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, अर्करस, ताम्बूल पत्रों के रस, एवं बबूल की छाल के क्वाथ में पृथक्-पृथक् एक-एक दिन मर्दन करके, चणक के तुल्य वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें। अच्छे प्रकार से सूखने पर इन गोलियों को शीशी में रख लें।

मात्रा—१-१ वटी को मुख में रख कर चूसें। इस प्रकार से दिन-रात में १० से १२ गोली तक सेवन करें

गुण—यह वटी सभी प्रकार के कास में हितकर है। इसके सेवन से-स्वरभेद (कण्ठ बैठना), सप्तपद-दाह, वागिन्द्रियदाह, उरस्तोय (प्लूरिसी) आदि अनेक रोगो का शमन होता हैं। यह अनुभूत प्रयोग है।

(७) वासावलेह

अडूसा १ सेर, कटेली १ पाव, मुलहेठी १ छटाँक, उन्नाव १०० दाने, लिसोड़ा १०० दाने, लें। इन समस्त द्रव्यों को यवकुट चूर्ण बनाकर. दश सेर जल में डाल, मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। इसके पश्चात् इसे हाथ से मर्दन करके, छान लें। तत्पश्चात् इस छाने हुए क्वाथ को कलई युक्त कड़ाही में डालकर, चूल्हे पर चढ़ा, मिश्री १॥ सेर डालकर चाशनी बना लें। चाशनी सिद्ध होने पर इसमें—नाशपाल २ तोले, तालीसपत्र, काकड़ासिंगी, मधुयष्टी, कतीरे का गोंद, प्रत्येक ३-३ तोले, गिलोय का सत्त्व, बबूल का गोंद, छोटी इलायची के दाने, छोटी पिप्पली, वंशलोचन, अपामार्ग का क्षार—प्रत्येक २-२ तोले; दालचीनी, प्रवाल भस्म १-१ तोला; इनका वस्त्रछन्न किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर. अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर इसमें मधु ३ छटाँक मिला दें और घृत लिप्त पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ तोले तक, दूध के साथ दिन में दो बार दें।

गुण—यह वासावलेह क्षयजन्य कास के लिए अपूर्व औषधि है। पुरानी से पुरानी खांसी के लिए अत्युपयोगी है। इसके सेवन से सभी प्रकार के कास और श्वास में लाभ होता है। अनुभूत है।

स्वरभेद नाशक उपाय

यक्ष्मा-रोग में उपसर्ग रूप से स्वरभेद (कण्ठ-विकार) हो जाता है। रोगी की वाणी स्पष्ट नहीं होती। बोलना कष्ट कर होता है। ऐसी अवस्था में लोबान-आसव, यूकेलिप्टस का तैल, दालचीनी का तैल, तारपीन का तैल—इनमें से किसी एक वा दो द्रव्यों को उबलते हुए जल में डालकर, उसकी वाष्प (भाप) को सूंघने से कण्ठ-विकृति नष्ट हो जाती है। स्वरभेद के रोगी को कुछ समय तक बोलना बन्द करके, औषधि का सेवन करना चाहिए।

गलग्रन्थियों की वृद्धि की चिकित्सा

१. काञ्चनार गुग्गुलु—कचनार की छाल ४० तोले, हरड़, बहेड़ा, आमला—प्रत्येक ८-८ तोले, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली—प्रत्येक ४-४ तोले, वरुणा की छाल २ तोले, इलायची, दालचीनी और तेजपत्र—प्रत्येक १-१ तोला लें। समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् सब चूर्ण के समान भाग शुद्ध गुग्गुलु में चूर्ण मिलाकर, कूटें। अच्छी प्रकार से कुटाई होने पर, ३-३ रत्ती प्रमाण की वटी बना लें। गोली बनाते समय हाथ में घृत अथवा एरण्ड तैल को लगाकर वटी बनावें। गोलियों को छाया में सुखाकर, बन्दपात्र में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, कचनार की छाल और त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करें।

गुण—इस काञ्चनार गुग्गुलु को सेवन करने से गलग्रन्थि (रसौली) तथा गलगण्ड में अच्छा लाभ होता है। इसको कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करना अच्छा होगा। शीघ्रता से लाभ नहीं होगा।

२. **"वसन्तमालती"** आदि स्वर्णघटित योगों के सेवन से भी गलग्रन्थियों में लाभ हो जाता है।

३. अलसी, सरसों, मूली के बीज—इनको समभाग में लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त इस चूर्ण को सिरके के साथ सूक्ष्म पीस लें और ग्रन्थियों के ऊपर लेप लगावें। उक्त रोग में यह लाभप्रद है।

४. कड़वी तोरई का स्वरस, सैंधव नमक, वायविडङ्ग, चित्रकमूल की छाल, हींग, वच, यवक्षार, इनके कल्क (लुगदी) में सिद्ध किया हुआ तिल का तैल नस्य के लिए दिया जाता है। यह भी लाभप्रद है।

गलशोथघ्नी दुग्धवटी

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ विष, लवङ्ग, शुद्ध अफीम—प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे, लौहभस्म १ माशा, अभ्रक भस्म ७ माशे लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। पश्चात् इस चूर्ण में भस्में मिलाकर, मर्दन करें। इसके उपरान्त गोदुग्ध में दो दिन तक दृढ़ता से मर्दन करके, छाया में शुष्क करें। पश्चात् एक दिन

धत्तूरे के पत्रों के रस में मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो बार, गोदुग्ध के साथ दें।

पथ्यापथ्य—केवल दूध अथवा दूध भात का सेवन करें। पिपासा (तृषा) लगने पर—गोदुग्ध को एक या दो उबाल दे करके, शीतल करें और इस दूध को स्वच्छ शीशियों में भरकर, बर्फ में रख दें। इस दूध को जल तथा मीठा बिना मिलाये पिलायें। जब-जब रोगी को तृषा लगे—जल पीने की इच्छा हो, तब-तब इसी शीशी के दूध को पीने के लिए दें। जल न पिलावें।

इससे यदि तृषा शान्त न हो; तो नारियल का जल पिलायें। मध्य-मध्य में—अनार का रस, द्राक्षा (मुनक्का), अंगूर, सेव, सन्तरा, इनको दे सकते हैं; किन्तु जल न दें। अधिक भूख लगने पर और रोग का बल न्यून होने पर—२-२ वा ४-४ छुवारे दूध में पका कर, सेवन करावें। इन छुवारों को रोगी के बल, पाचनशक्ति, अवस्था आदि को विचार कर, अधिक वा न्यून मात्रा में दे सकते हैं।

जल, लवण, मीठा आदि अन्य खाद्य वा पेय पदार्थ सर्वथा निषिद्ध हैं।

गुण—उक्त विधि से पथ्यपूर्वक इस गोली को सेवन करने से—गले में किसी भी प्रकार का शोथ क्यों न हो, उसमें शूल होता हो, अथवा बिना शूल ही शोथ (सूजन) हो, तो ऐसे क्षय व्याधि जन्य गलग्रन्थियों में—अपूर्व लाभ होता है। यह वटी यक्ष्मा के अनेक रोगियों पर अनुभूत की हुई है। इसका सेवन कराने पर ईश्वरानुग्रह से हमें पूर्ण सफलता उपलब्ध हुई है।

इसके अतिरिक्त, यह नाभि के अधोभाग में शोथ का होना, क्षुधितावस्था में श्वास लेने में कष्ट होना, पेट बड़ा हो जाना, कुछ विश्राम करने पर हाथ तथा पैरों की अङ्गुलियों में झन-झनाहट का होना, धातु की दुर्बलता, शीतलता वा उष्णता के कारण हाथ एवं पैरों में शोथ हो जाना, त्वचा की रूक्षता का होना, जठराग्नि मन्द होनी, शीघ्रपतन आदि अनेक व्याधियों में अत्युपयोगी औषधि है। इन समस्त रोगों में इसके सेवन से अद्‌भुत लाभ होता है।

रात्रि-स्वेद का प्रतिकार—यक्ष्मा के रोगी को रात्रि में अथवा निशा के अन्तिम प्रहर में जो स्वेद (पसीना) आता है, उसे रात्रि-स्वेद कहते हैं। रात्रि-स्वेद होने पर रोगी को दिन में एक बार "लाक्षादि तैल" अथवा "चन्दनादि तैल" का शरीर में मर्दन करना चाहिए। रोगी रात्रि को ऐसे खुले वायुमण्डल में शयन करे जहाँ की वायु शुद्ध तथा स्वास्थ्यप्रद हो। उसे खाने के लिए "खर्पर" अथवा "यशद" घटित कोई योग दें।

यक्ष्मा-रोग में बल्य औषधियों के कुछ योग

१. अश्वगन्ध, छोटी पिप्पली, इनको समभाग में लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें।

सम्पूर्ण चूर्ण के समान भाग मिश्री का सूक्ष्म चूर्ण लेकर, दोनों को एकत्र मिलाकर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, दूध के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण शारीरिक निर्बलता को नष्ट करके, बल-वीर्य की वृद्धि करता है।

(२) कुण्ठादि चूर्ण

कूठ, अश्वगन्ध, बला, कर्कटशृङ्गी, अर्जुन की छाल, गिलोय, हरीतकी, इन सात द्रव्यों को समभाग लें और वस्त्रछन चूर्ण बना कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२ माशा, प्रातः सायं दिन में दो बार दें। **अनुपान**—जल के साथ।

गुण—यह चूर्ण शरीर के बल की वृद्धि करता है।

(३) अतिबलादि चूर्ण

अतिबला, बला, शतावरी, त्रिफला, त्रिकटु—इन पाँच द्रव्यों को समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। समस्त चूर्ण से आधा भाग लौह भस्म मिलाकर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-२ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दो बार दूध के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण रस, रक्त, मांस आदि शारीरिक सप्त धातुओं की पुष्टि करता है। अल्प समय तक निरन्तर सेवन करने से रोगी के शरीर में बल, उत्साह तथा कान्ति की प्राप्ति होती है।

(४) मधुकादि चूर्ण

मधुक (मुलहठी), द्राक्षा (मुनक्का), पिण्ड खजूर, वंश-लोचन, आमला, चन्दन, मुस्ता, तगर, शीतल चीनी, जायफल, चतुर्जात (दालचीनी, बड़ी इलाइची, तेजपत्र, नागकेशर), पिप्पली, सारिवां, धनिया, नेत्रवाला—इन समस्त द्रव्यों की समान-समान मात्रा लें। मुनक्का और खजूर के बीजों को हटाकर इनके शेष भाग को सूक्ष्म पीस लें। इसके पश्चात् अवशिष्ट सम्पूर्ण औषधियों को वस्त्रछन करके सूक्ष्म चूर्ण बना लें और सभी को एकत्र सम्मिश्रण कर लें। पश्चात् सम्पूर्ण चूर्ण के तुल्य भाग मिश्री का सूक्ष्म चूर्ण लेकर, एकत्रित कर, ढक्कन वाले किसी शीशे आदि के पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, दूध के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से हृदय, मस्तिष्क आदि उत्तम अङ्गों में बल की उपलब्धि होती है। शरीर की दुर्बलता के कारण जो क्षय-रोगी को उठने, बैठने, चलने आदि क्रियाओं में कष्ट होता है; वह इस चूर्ण के सेवन से नष्ट हो जाता है।

शरीर की निर्बलता को शान्त करने के लिए और बल वीर्य की वृद्धि के लिए यह योग अत्युत्तम है।

५. गुडूच्यादि चूर्ण—गुडूची (गिलोय) का सत्त्व, श्वेत मुशली, उशीर, नेत्रवाला, आमला, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, कूठ, कर्पूर, दोनों चन्दन, अश्वगन्ध, शतावरी, गोखरु, जायफल, शीतल चीनी, अभ्रक भस्म, बंगभस्म, लोहभस्म इन समस्त द्रव्यों को समभाग में लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर, इसमें सभी भस्में मिलाकर, मर्दन करें। उत्तम प्रकार से घोट कर, इस चूर्ण के समान भाग खाण्ड लेकर, इसमें मिला दें और ढक्कनयुक्त पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, मधु में मिलाकर अथवा दूध के साथ सेवन करें।

गुण—इस "गुडूच्यादि चूर्ण" को सेवन करने से यक्ष्मा-रोग से उत्पन्न हुई शरीर की निर्बलता दूर हो जाती है। किसी भी रोग की समाप्ति होने पर आने वाली शारीरिक निर्बलता को नष्ट करने के लिए यह चूर्ण अत्युपयोगी औषधि है। इसके सेवन से रक्ताणुओं की वृद्धि होती है और शरीर में बल, वीर्य, कान्ति तथा ओज का निर्माण उचित रूप में होने लगता है। धातुओं की क्षीणता को नष्ट करके शारीरिक शक्ति उत्पन्न करने के लिए अत्युत्तम रसायन है। यह योग स्वस्थ स्त्री पुरुषों के द्वारा सेवन किया जाने पर उनके स्वास्थ्य को स्थिर बनाये रखेगा और शारीरिक तथा मानसिक शक्ति की वृद्धि करेगा। निर्बल व्यक्तियों द्वारा यदि यह खाया जायगा; तो उनमें उत्तम बल की प्राप्ति अवश्य होगी।

६. अश्वगन्धादि क्वाथ—अश्वगन्धा, शतावरी, गिलोय, बला, बांसा, कूठ, और अतीस–इन सात द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर, यवकुट चूर्ण बनाकर रखिये। इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में लेकर, एक पाव जल में डालकर, मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से उतार, हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें और मधु मिलाकर, सुखोष्ण, रोगी को पीने के लिए दें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दो बार दें।

गुण—यह क्वाथ (काढा) निर्बलतानाशक और बलकारक है।

७. च्यवनप्राश—यह औषधि यक्ष्मा आदि अनेक रोगों में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से निर्बलता नष्ट होकर, बलवीर्य की प्राप्ति होती है।

८. द्राक्षासव—यक्ष्मा-रोग में "द्राक्षासव" का सेवन हितकर होता है। द्राक्षासव—क्षयज कास, निर्बलता आदि को नष्ट करता है।

राजयक्ष्महरी वटी

अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का पञ्चाङ्ग (प्रत्येक अङ्ग सममात्रा में लें) एक सेर छह छटांक लेकर, इसे मोटा-मोटा कूट कर, सोलह सेर जल में, कड़ाही में,

मन्दाग्नि पर पकावें। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाय, तब अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर, हाथ से मर्दन करके, छान लें। इसके उपरान्त इस छने हुये जल को कलईयुक्त कड़ाही में डालकर, चूल्हे पर चढ़ा दें और मन्दाग्नि जलाते हुए पकावें। इस क्वथित जल में अभ्रक भस्म १ तोला, सम्मिश्रण कर पकावें। इसे कलछी आदि से चलाते हुये अग्नि दें। तीव्र अग्नि न जलायें। मन्द-मन्द अग्नि देकर चलाते हुए इसको कड़ा बना लें। जब यह गोली बनने योग्य हो जाय; तो अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। पश्चात् २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करें। अच्छे प्रकार से सूखने पर इन वटियों को शीशी में डालकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी, प्रातः सायं, दिन में दो बार सेवन करें।

अनुपान—गृञ्जनामृत के साथ।

गृञ्जनामृत

सद्योगृहीत (ताजा) गाजरों का स्वरस आधा सेर, सद्यः प्राप्त बकरी का दूध आधा सेर, इन दोनों को एकत्र मिलाकर, मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाजर का रस जल जाय और केवल दुग्ध शेष रह जाय; तब इसे अग्नि से उतार कर, इसमें मिश्री मिलाकर, अल्पोष्ण पिलावें। प्रथम उपर्युक्त वटी को खाकर, इस "गृञ्जनामृत" को पीवें, एवं रात्रि को उष्ण जल के साथ त्रिफला चूर्ण सेवन करें।

गुण—उक्त "राजयक्ष्महरी वटी" को गृञ्जनामृत के साथ सेवन करने से क्षय-व्याधि में अच्छा लाभ होता है। यदि किसी कारण से अन्य औषधि की व्यवस्था न हो सके; तो केवल इस वटी के सेवन से ही राजयक्ष्मा रोग की जड़ हिल जाती है। यह योग अल्पश्रम साध्य होने पर भी अत्युत्कृष्ट औषधि है। निर्धन रोगी भी इसे सेवन कर, लाभान्वित हो सकता है। यह अनुभूत प्रयोग है।

अथ-अतिसार-प्रवाहिका-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम्॥६॥

अतिशयेन सारयति रेचयति मलमिति, "अतिसार:" अर्थात् जिस रोग में अधिक मात्रा में मल निकलता है, उसे "अतिसार व्याधि" कहते हैं। यह उदर का रोग है। इसमें गुदमार्ग से बार-बार अधिक मात्रा में पतला मल निकलता है। "दस्त आना", पेट चलना, आदि अनेक नामों से पुकारा जाने वाला रोग "अतिसार" है।

अतिसार रोग के कारण

अधिक मात्रा में घी, खोवा, बादाम, उड़द, राजमाष, मांस आदि गरिष्ठ भोजन करने से, चना, मकई, कुटू, श्यामाक (सवां) आदि शुष्क भोजन अधिक समय तक खाने से; स्वभाव-विरुद्ध, संयोग-विरुद्ध खाने-पीने से, बिना पचे ही खाने से, अपक्व आहार से, अधिक मात्रा में खाने-पीने से, अधिक उपवास करने से, किसी विष को खाने से, मलिन जल को पीने से, अधिक मात्रा में जल का सेवन करने से, जल में अधिक समय तक क्रीडा करने से, अथवा अधिक तैरने से, मल, मूत्र, अपानवायु के आये हुए वेगों को रोकने से और कृमियों आदि से अतिसार व्याधि होती है। शोक, भय, चिन्ता, आदि मनोविकारों से भी अतिसार रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

अतिसार रोग के लक्षण

उपर्युक्त कारणों से—रस, जल, रुधिर, स्वेद, मूत्र आदि द्रव धातुएँ प्रकुपित हो जाती हैं। इनके प्रकुपित होने से जठराग्नि (पाचकाग्नि) मन्द हो जाती है। पाचकाग्नि के मन्द हो जाने से खाया हुआ भोजन पच नहीं पाता और अपान वायु उस अपक्व मल को गुदा के मार्ग से बाहर निकाल देती है। ऐसी अवस्था में रोगी के हृदय, नाभि, उदर तथा गुदा में तीव्र पीड़ा होने लगती है। चित्त में अप्रसन्नता हो जाती है। मल तथा मूत्र का विसर्जन उचित समय पर नहीं होता। अपान वायु का अवरोध हो जाता है, खाया-पीया आहार नहीं पचता, पेट फूल जाता है, थोड़े-थोड़े समय में शौच के लिए जाना पड़ता है, इत्यादि लक्षणों से "अतिसार" रोग जाना जाता है।

अतिसार के भेद

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज तथा शोकज—ये ६ प्रकार के अतिसार होते हैं।

प्रवाहिका रोग का लक्षण

अतिसार का ही एक भेद प्रवाहिका रोग है। इसे—प्रवाहिका, अन्तर्ग्रन्थि, निश्चारका, मरोड़, पेचिस, डिसेण्ट्री—आदि अनेक नामों से बोला जाता है। उक्त अयुक्त आहार-विहार के कारण से शरीर में जब, वात, पित्त आदि दोष कुपित हो जाते हैं; तो उस समय कुपित वायु के द्वारा कोष्ठ में सञ्चित हुआ कफ, गुदा मार्ग से बाहर निकलने लगता है। इस कफ के साथ कुछ मल भी होता है और कभी-कभी कुछ रक्त भी कफ के साथ आने लगता है। सामान्य दृष्टि से अतिसार और प्रवाहिका में इतना भेद अवश्य रहता है कि—अतिसार में पतला पानी सा मल निकलता है और रोगी को उतना अधिक कष्ट नहीं होता है—जितना कि पेचिस में होता है; परन्तु प्रवाहिका में निस्सरण होने वाला मल पतला नहीं होता। इसमें कफ मिश्रित मल निस्सरण होता है और अतिसार में आने वाले मल के समान द्रव रूप में नहीं होता, प्रत्युत उससे कुछ कड़ा पुरीष (विष्ठा) निकलता है। इसके साथ ही पेचिस (प्रवाहिका) में रोगी को अधिक मरोड़ (कांखना) के साथ दस्त होता है।

अतिसार रोग में पथ्यापथ्य—पथ्य के सेवन और कुपथ्य के वर्जन से सभी प्रकार के रोगों की शीघ्र निवृत्ति होती है। अतिसार रोग में भी इससे रोगी स्वस्थ हो जाता है। अन्यथा कुपथ्य होने से अतिसार रोग संग्रहणी में परिवर्तित हो जाता है।

पथ्य—उबाल कर शीतल किया हुआ जल, मट्ठा, दही, पुराने साठी चावल, मूंग की दाल का रस, अरहर की दाल का रस, खिचड़ी, घी, दूध, लाजामण्ड, केला, जामुन, अनार, बेल, अदरक, शुण्ठी, जीरा, धनिया, आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। मानसिक शान्ति, उचित निद्रा, ब्रह्मचर्य, ईश्वर-भक्ति आदि से रोग की शीघ्र निवृत्ति होती है।

अपथ्य—अतिसार रोग में—स्नान, नदी में तैरना वा घुसना, तैल मर्दन करना, अधिक परिश्रम करना, अधिक जल पीना, मैथुन, रात्रि जागरण करना, धूम्र पान आदि व्यसन, मल, मूत्र, अपान वायु के आगत वेग को रोकना, गेहूँ, उड़द, पेठा, आमला, लशुन, मुनक्का, पालक, बथुआ, नमक, लालमरिच, क्रोध, शोक, भय, नास्तिकता, ईर्ष्या आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

अतिसार की चिकित्सा में अवधारणीय विचार

अतिसार की चिकित्सा करने के लिए वैद्य को यह जानना आवश्यक है कि रोगी को आमातिसार है अथवा पक्वातिसार ? आमातिसार और पक्वातिसार का निश्चय होने के उपरान्त यह ध्यान रखना होगा कि–आमातिसार के रोगी को शीघ्र ही संग्राहक—मल निरोधक औषधि नहीं देनी चाहिये। क्योंकि एक साथ ही यदि कच्चे मल के आगत वेग को औषधि बल से रोक दिया जायगा, तो वह अस्वाभाविक

होने से लाभ के स्थान पर हानिप्रद ही होगा। उससे रोगी के शरीर में—दण्डक, अलसक, अफारा, संग्रहणी, शोथ, गोला, उदर रोग आदि अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु यदि आमातिसार के रोगी ऐसे बालक अथवा वृद्ध व्यक्ति हों, जिनका शरीर अत्यन्त निर्बल हो चुका है, अथवा जिनके शरीर से अतिसार के द्वारा पर्याप्त मल निकल गया है; तो उनके लिए संग्राहक औषधि अवश्य देनी चाहिये और पक्वातिसार में पथ्य पूर्वक सर्वत्र औषधि दी जाती है।

अतिसार नाशक प्रयोग

अब यहाँ पर अतिसार और प्रवाहिका (पेचिस) के लिए उपयोगी प्रयोग लिखे जाते हैं। इनको विचार पूर्वक प्रयोग करने से अतिसार में अच्छा लाभ होता है।

(१) अमृतादि चूर्ण

अमृता (गिलोय), विधारा के बीज, इन्द्र जौ, बेल की गिरी, अतीस, भृङ्गराज (भांगरा), शुण्ठी और भांग के पत्र—इन समस्त द्रव्यों को समभाग लेकर पृथक्-पृथक् वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, एकत्र मिला लें। इस समस्त चूर्ण के समान भाग में कुड़े की छाल का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण लेकर, दोनों को एकत्र मिलाकर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा तथा अनुपान—१॥ से ३ माशे तक, दिन में ३–४ बार, मधु के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण अतिसार रोग में लाभप्रद है। इसके सेवन से वातातिसार, पित्तातिसार, कफातिसार आदि समस्त अतिसारों में लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह शोथ, पाण्डु, कामला आदि रोगों में भी हितकर है। अनुभूत है।

(२) पञ्चपत्री रस

आमले के पत्र, ब्रह्मदारु-पत्र, जामुन के पत्र, आम के पत्र और दाडिम (अनार) के पत्र—इन पाँच प्रकार के पत्रों को तुल्य भाग लेकर, जल से स्वच्छ कर लें और इनका रस निकाल कर प्रयोग करें। इस रस को आधा से १ तोला तक, मधु ६ माशे तथा गौ का दूध आधी छटांक, तीनों को मिश्रण करके पिलावें। प्रातः सायं दिन में २ बार दें।

गुण—इस रस के प्रयोग से रक्तातिसार में लाभ होता है। पित्त प्रकोपक आहार-विहार के सेवन से जब रोगी के मल में मिला हुआ रक्त आता है अथवा केवल रुधिर आने लगता है; तो उस अवस्था में यह रस लाभप्रद है।

(३) बदरी प्रयोग

रविवार अथवा बुधवार के दिन बेरी के वृक्ष की जड़ लाकर, जल से स्वच्छ करके, शिला पर जल के साथ सूक्ष्म पीस कर, कल्क (लुगदी) बना लें। इस कल्क को

१ तोला की मात्रा में गो दुग्ध के साथ पीने से रक्तातिसार में अत्युत्तम लाभ होता है। इसकी केवल २ मात्राएँ सेवन करने से रक्त-अतिसार निर्मूल हो जाता है।

(४) बिल्वादि प्रयोग

बेल की मज्जा (गूदा) १ तोला, जायफल ३ माशे, शुद्ध अफीम २ रत्ती और नाशपाल १ तोला लें। सबको सूक्ष्म पीसकर, एकत्र मिला लें। इसकी तीन मात्रा बनावें। इसे प्रातः, मध्याह्न तथा सायं समय दिन में तीन वार सेवन करें।

अनुपान—दही अथवा जल के साथ खावें।

गुण—यह प्रयोग नवीन तथा पुराने दोनों प्रकार के रक्तातिसार में लाभकर है।

(५) चन्दन चूर्ण

श्वेत चन्दन और मिश्री दोनों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, ६ माशे मधु में मिलाकर चाटें। इस चूर्ण के सेवन से रक्तातिसार (खून के दस्त) में अच्छा लाभ होता है।

(६) दुग्धिका योग

छोटी दूधी (दूधिया) १ तोला लेकर, जल से स्वच्छ धोलें और इसमें ५ दाने काली मिर्च मिलाकर, सूक्ष्म पीस लें। इस पिसी हुई औषधि को जल में मिलाकर रोगी को पिला दें। इस प्रयोग से पुराना तथा नवीन—दोनों प्रकार का रक्तातिसार नष्ट होता है।

(७) मोचरसादि योग

मोचरस २ माशे, गुलकन्द २ तोले—लेकर, मोचरस का सूक्ष्म चूर्ण बना, गुलकन्द में मिलाकर, रोगी को खिला दें और ऊपर से उष्ण-अल्पोष्ण जल पिलावें। यह एक मात्रा है। यह प्रयोग रक्तातिसार और प्रवाहिका (पेचिस) में हितकर है।

(८) दाडिमादि चूर्ण

दाडिम (अनार) के बीज, बड़ी हरड़ का छिलका, सोंफ, और मिश्री—इन चार द्रव्यों को समान भाग लें। इनका पृथक्-पृथक् वस्त्रछन चूर्ण बनावें। उसके उपरान्त हरीतकी और सोंफ के चूर्ण को एकत्र मिलाकर, गो घृत में, मन्दाग्नि पर भून लें। जब यह लाल वर्ण का हो जाय, तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शेष चूर्ण को इसमें सम्मिश्रण करके, शीशी में भरकर, डाट लगाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४-४ माशे प्रातः सायं दिन में दो बार, मट्ठा के साथ खाने के लिये दें।

गुण—यह चूर्ण समस्त प्रकार के अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका (पेचिस) और संग्रहणी रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। खाने में रुचिकर होने से इसे बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी प्रसन्नता से खा लेते हैं।

(९) जीरकादि चूर्ण

श्वेत जीरा, काला जीरा, सोंफ, धनिया और मस्तगी—इन पाँच द्रव्यों को ६-६ माशे लें। इनको तवे पर डालकर, मन्द-मन्द अग्नि जला कर, इस प्रकार से भूनिये कि—जिससे यह आधा भुन जाय और आधा कच्चा रहे। इसके उपरान्त वस्त्रछन चूर्ण बना लें और सम्पूर्ण चूर्ण से द्विगुणित मिश्री का चूर्ण मिलाकर, शीशी में भर, डाट लगाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे, प्रातः सायं दिन में दो बार शीतल जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण प्रवाहिका (पेचिस) को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। कभी-कभी प्रवाहिका रोग में शीघ्रता से सफलता नहीं प्राप्त होती। अनेक प्रयास करने पर भी रोग शान्त नहीं हो पाता। ऐसी दशा में जीरकादि चूर्ण के सेवन से अच्छा लाभ होता है। "शतसोऽनुभूतः"। चिकित्सक महानुभाव इसकी भी एक बार परीक्षा करें।

(१०) पथ्यादि चूर्ण

बड़ी हरड़ की छाल, वचा, अतीस, सञ्चर लवण, घी में भुनी हुई हींग, इन्द्र यव—इन समस्त द्रव्यों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शीशी में रख लें।

मात्रा—३ से ६ माशे तक प्रातः सायं समय दिन में दो बार मट्ठा या जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण आमातिसार, गुदशूल सहित रक्तातिसार तथा प्रवाहिका (पेचिस) में लाभप्रद है। परीक्षित है।

(११) वत्सकादिक्वाथ

कुड़े की छाल वा इन्द्रयव, अतीस, नागर मोथा, सुगन्धवाला, लोध, लाल चन्दन, धाय के पुष्प, अनार के बीज और पाठा—इन सबको समान मात्रा में लें। चूर्ण करने योग्य औषधियों का यवकुट चूर्ण बना लें। इसे १ से २ तोले की मात्रा में लेकर २० तोले जल में मन्दाग्नि पर पकाकर, क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश ५ तोले जल के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करें और अल्पोष्ण

रहते हुए इसमें मधु मिला कर, रोगी को पिला दें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से प्रातः सायं, दिन में दो समय नित्य नवीन क्वाथ निर्माण कर के रोगी को पिलावें।

गुण—पित्त प्रकोपक आहार विहार से उत्पन्न होने वाले रक्तातिसार में जब रोगी को अतिकष्ट के साथ रुधिर के दस्त होते हैं; तो उस समय उसके हृदय, नाभि तथा गुदा में छुरी से काटने के तुल्य वेदना होती है। ऐसी अवस्था में इस क्वाथ के सेवन से अच्छा लाभ होता है। अतिसारों के पुराने होने पर भी गुदा द्वारा रुधिर निकलता है; इसमें भी यह क्वाथ लाभप्रद है। यह क्वाथ समस्त प्रकार के अतिसारों में उत्तम हितकारक है। अनुभूत है।

(१२) अतिसारेभसिंह रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और शुद्ध अहिफेन (अफीम)—इन तीनों को समभाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर, उसमें अहिफेन सम्मिश्रण करें। इसके पश्चात् भांग के पत्रों के रस, और धतूरे के पत्रों के रस में पृथक्-पृथक् ३–३ दिन मर्दन करके सरसों के तुल्य वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, डाट लगाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय मट्ठा वा जल के साथ दें।

गुण—यह रस सभी प्रकार के अतिसारों में लाभप्रद है। अतिसार रूपी हाथी को सिंह के समान पराजित करने वाला है। शतसोऽनुभूतः।

(१३) गङ्गाधर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, कुड़े की छाल, अतीस, लोध, बेल की गिरी और धात्री पुष्प (धाय के फूल)—इन आठ द्रव्यों को समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक को एकत्र मिलाकर, मर्दन कर, कज्जली बना लें। इसके उपरान्त शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण तथा भस्म कज्जली में मिलाकर, दृढ़ता से घोटिये। तत्पश्चात् कुड़े की छाल के क्वाथ, और अफीम के जल में १–१ दिन मर्दन करें और २–२ रत्ती की वटी बना कर, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय, मट्ठा, कुड़े की छाल के क्वाथ वा दोषों के अनुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करें।

गुण—यह "गङ्गाधर रस" अतिसार में अत्युपयोगी महौषधि है। अनुपान भेद से सभी प्रकार के अतिसारों में हितकर है। हमने इस रस को अनेक बार, अनेक अतिसार के रोगियों पर परीक्षण करके अनुभव किया है। इस रस में अतिसारों को निरोध करने की पूर्ण शक्ति विद्यमान है।

(१४) मधुकादि कल्क

मधुक (मुलहठी), कायफल, अनार की छाल—इनको सम भाग लें। वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, ६ से ९ माशे तक की मात्रा में इस चूर्ण को लेकर, शिला पर रख कर, जल के साथ पीस लें और इसका कल्क (लुगदी) बना लें। इसे रोगी को खिला कर, ऊपर से तण्डुलोदक अल्प मात्रा में दें। इसे प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करावें।

गुण—यह कल्क वातज और पित्तज दोनों प्रकार के अतिसार में लाभप्रद है।

(१५) वचादि कल्क

वचा, इन्द्र जौ, नागरमोथा, देवदारु, अतीस—इनको समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, रख लें। इस चूर्ण को जल के साथ सूक्ष्म पीस कर, कल्क बनाकर, मट्ठा के साथ सेवन करें। यह कल्क (लुगदी) प्रातः सायं, दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—यह वातज, पित्तज तथा वातपित्त प्रधान सन्निपातज अतिसार में उपयोगी है।

(१६) नाभि प्रलेप

आम की गुठली की गिरी, जायफल, बेल की गिरी—इनको सूक्ष्म पीस लें और अफीम के रस में मर्दन कर, लेप बना लें। इस लेप को रोगी की नाभि के ऊपर लगाने से अतिसार में लाभ होता है।

(१७) अतिसारघ्न बिल्वपानक

अपक्व कोमल बिल्व फलों को सुखाकर, उसका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। यह चूर्ण एक पाव लें और इसे दस सेर जल में मन्दाग्नि पर पकावें। जब एक सेर जल शेष रह जाय, तो इसे छान लें और इसमें आधा सेर मिश्री मिला कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ तोला। **अनुपान**—२ तोले जल में डालकर, पीवें। इसे दिन मे २–३ बार सेवन करें।

गुण—यह पानक (शर्बत) अतिसार में अत्युपयोगी है। सभी प्रकार के अतिसारों में लाभप्रद है। यह प्रयोग व्यर्थ नहीं होगा। अतिसार के लिए अव्यर्थ योग है। अनुभूत है।

(१८) जातिफलादि वटी

जायफल का चूर्ण, पिण्ड खजूर और शुद्ध अफीम—इन तीनों को समान मात्रा में लेकर, सूक्ष्म पीस लें। पश्चात् पान के पत्रों के स्वरस में एक दिन मर्दन करके, ३–३ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी, प्रातः सायं, मठ्ठा के साथ दें। यह वटी प्रबल-अतिसार के लिए हितकर है। जब रोग की भयंकर अवस्था में अतिसार को तुरन्त रोकना इष्ट हो; उस समय इस प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। अनुभूत है।

अतिसार में जल देने की व्यवस्था—यह ध्यान रखना आवश्यक है कि—अतिसार रोग में अधिक जल पीना अहितकर होता है। अतिसार के रोगी को जल पीने में अत्यधिक संयम रखना अनिवार्य है। यदि इसका उल्लंघन होगा; तो रोग नष्ट नहीं होगा। जिन औषधियों में जल का अनुपान कहा गया है; उनमें केवल उतना जल अनुपान में लिया जाता है; जिससे औषध योग कण्ठ के नीचे चला जाय। अनुपान में अधिक जल नहीं पीना चाहिए।

अतिसार रोग से निर्मुक्त हुए रोगी के लक्षण—जिस व्यक्ति की अपान वायु (अधोवायु), समुचित रूप से निकल जाय, मूत्र करते समय मल न निकले—दस्त न हो, जठराग्नि दीप्त हो, उदर कोमल हो, शरीर और मन में उत्साह तथा स्फूर्ति होने लगे; तो उस व्यक्ति को अतिसार रोग से मुक्त हुआ समझना चाहिये।

अथ ग्रहणी रोग चिकित्सा प्रकरणम् ॥ ७ ॥

कारण—जठराग्नि मन्द होने पर भी जो व्यक्ति कुपथ्य का सेवन करते हैं— संयम पूर्वक आहार विहार नहीं करते उन व्यक्तियों में ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है। जो कारण अतिसार रोग के कहे गये हैं; प्रायः ग्रहणी व्याधि भी उन्हीं हेतुओं से उत्पन्न होती है। अतिसार के निवृत्त हो जाने पर रोगी की पाचकाग्नि कुछ मन्द हो जाती है; ऐसी अवस्था में रोगी को हितकर भोजन, और युक्त विहार का सेवन करना अभीष्ट होता है। परन्तु जो व्यक्ति अपनी जठराग्नि की शक्ति के अनुसार उचित मात्रा में आहार न करके, अधिक मात्रा में खाते पीते हैं अथवा अपनी प्रकृति के विरुद्ध पदार्थों का सेवन करने लगते हैं; वे व्यक्ति अतिसार की समाप्ति होने के पश्चात् ग्रहणी रोग-ग्रस्त होते हैं। यह व्याधि अतिसार के रहते हुए वा अतिसार के निवृत्त होने पर अथवा बिना अतिसार रोग के उत्पन्न हुए, कभी भी हो सकती है। परन्तु प्रकृत व्याधि जब भी होगी; तब अहितकर आहार विहार जनित पाचकाग्नि की विकृति होने पर ही होगी। जठराग्नि की विकृति हुए बिना ग्रहणी रोग होने की सम्भावना नहीं होती। ग्रहणी को देवनागरिक भाषा में संग्रहणी कहते हैं। इसे पुराना अतिसार भी कह सकते हैं।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्त्तिता ॥ (सु० उ० तं० ४०)

"ग्रहणी" यह एक आन्त्र की संज्ञा है। यह आन्त्र "पित्त धरा कला" नाम से प्रसिद्ध है। मांस धरा, रक्त धरा, आदि सात कलाएँ शरीर में होती हैं। उन सात कलाओं में पित्त धरा नामक छटी कला को ही "ग्रहणी" कहते हैं। शरीर में यह कला बृहदन्त्र और आमाशय के मध्य में स्थित है। अपक्व-अन्न का पाचन करने के लिए ग्रहण (धारण) करने के कारण इसे "ग्रहणी" कहते हैं—"अन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता"। यह ग्रहणी नामक आन्त्र दो कार्य करती है। प्रथम कार्य है—अपक्व अन्न को पाचनार्थ ग्रहण करना, द्वितीय कार्य है—गृहीत अन्न को पचाना और अन्न के पक्व भाग को विसर्जन करना। जब तक ग्रहणी नामक यह आन्त्र स्वस्थ अवस्था में रहती है; तब तक अपने उक्त दोनों कार्यों को निरन्तर समुचित रूप से करती रहती है। परन्तु अहितकर आहार विहार के सेवन करने से जब वात, आदि दोष प्रकुपित होकर, इस आन्त्र को विकृत कर देते हैं; तो दूषित होने के कारण यह अपने कार्य को उचित रूप में नहीं कर पाती। उस अवस्था में भी अन्न का ग्रहण तो यह करती रहती है; किन्तु गृहीत अन्न का पाचन नहीं कर पाती। इस कारण से यह अपक्वान्न को ही

गुद-मार्ग से बाहर निकालने लगती है। अन्न का उचित पाचन न होकर, अपक्वावस्था में कच्चा ही गुदा के द्वारा निस्सरण होना ही संग्रहणी रोग है।

संग्रहणी रोग के लक्षण—जब वात, पित्त तथा कफ—ये तीनों दोष पृथक्-पृथक् अथवा मिलकर दूषित हो जाते हैं; तो ये ग्रहणी को विकार-ग्रस्त कर देते हैं। ग्रहणी के दूषित होने पर कच्चा वा पक्व अन्न गुद-मार्ग से अधिक निकलने लगता है। रोगी ऐंठन के साथ मल त्यागता है। मल में अत्यधिक दुर्गन्ध होती है। पुरीष कभी पतला और कभी कड़ा (गाढा), कभी पूययुक्त तथा कभी रुधिरयुक्त निकलता है। वायु का गोला हो जाता है। उदर फूल जाता है। तृषा लगती है। आलस्य, बलक्षय, अग्निमान्द्य आदि होता है। इन लक्षणों से ग्रहणी रोग जाना जाता है।

संग्रहणी रोग के भेद—वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज—ये चार भेद होते हैं।

संग्रहणी रोग में पथ्याऽपथ्य

पथ्य—उचित मात्रा में उपवास, पुराने साठी चावल, मूंग की दाल की खिचड़ी, गाय का मट्ठा, बकरी का दूध, तिलों का तैल, मधु, अनार, केले का फल, बेल गिरी, सिंघाड़े, जीरा, कुड़े की छाल, धनिया और ब्रह्मचर्य, धार्मिक ग्रन्थों का श्रवण तथा अध्ययन, ईश्वर भक्ति, जप, अग्निहोत्र, मनोनिग्रह आदि हितकर आहार विहार का सेवन करना विधेय है।

अपथ्य—रात्रि को जागना, अधिक जल पीना, स्नान करना, मैथुन, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आगत वेगों को रोकना, धूम्रपान करना, अधिक परिश्रम करना, विरुद्ध आहार, गेहूँ, उड़द, राजमाष, मटर, आम, लशुन, गुड़, मुनक्का, खटाई, हलुवा, पूड़ी, मावा, मिठाइयाँ, मानसिक चञ्चलता, क्रोध, अशान्ति, शोक, अधैर्य आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

संग्रहणी नाशक योग

यहाँ पर संग्रहणी के लिए उपयोगी योग लिखे जाते हैं—

(१) यवानिकादि वटिका

यवानिका (अजवाइन), श्वेत जीरा, काली मरिच, लघु पिप्पली और शुण्ठी-इन पांच द्रव्यों को समान भाग लें और समस्त औषधियों के तुल्य भार में कुड़े की छाल लेकर—सम्पूर्ण द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, कुड़े की छाल के क्वाथ में मर्दन करके ४-४ रत्ती प्रमाण की वटीबना, छाया में शुष्क करके, शीशी में सुरक्षित रखलें।

मात्रा तथा अनुपान—१-२ गोली, प्रातः सायं दिन में दो बार, मट्ठा या मधु के साथ सेवन करें।

गुण—यह वटी सभी प्रकार की संग्रहणी और अतिसार में लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त उष्ण जल के अनुपान से सेवन करने पर कटिग्रह, सन्धिवात (गठिया), आदि रोगों में भी लाभप्रद है। अनुभूत है।

(२) दुग्ध गुटिका

शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्ध अफीम १२-१२ भाग, लौह भस्म ५ भाग और अभ्रक भस्म ६० भाग लें। प्रथम समस्त भस्मों को मिलाकर, मर्दन करें। इसके पश्चात् वत्सनाभ का सूक्ष्म चूर्ण तथा अफीम को मिलाकर, घोटें। इसके उपरान्त बकरी के दूध में एक दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में शुष्ककर, शीशी में डालकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो वार, दूध के साथ दें।

गुण—इस वटी के सेवन करने से शोथ युक्त संग्रहणी, अतिसार, विषम ज्वर और मन्दाग्नि में अच्छा लाभ होता है। जिस संग्रहणी के रोगी को शोथयुक्त ज्वर रहता हो और मट्ठा अनुकूल न पड़ता हो, उसके लिए यह वटी विशेष हितकर है। इस वटी के उपयोग करते समय केवल बकरी का दूध सेवन किया जाता है। लवण और जल सर्वथा त्यागना होता है। इस प्रकार पथ्य का सेवन करते हुए इसे खाने से असाध्य सशोथ संग्रहणी निर्मूल हो जाती है। अनुभूत है।

(३) सर्जक्षारादि चूर्ण

सर्जक्षार (सज्जीखार), यवक्षार, छोटी पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, काली मरिच, पाँचों नमक (सेंधा, साम्भर, सामुद्र, संचर और काला नमक), अजवाइन, घी में भुनी हुई हींग—इन सब द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त अम्लवेत के रस, बिजौरा नींबू के रस तथा झाड़बेरों के रस में पृथक्-पृथक् ३-३ घण्टे मर्दन करके १-१ माशा प्रमाण की वटी बना लें अथवा चूर्ण रूप में ही रहने दें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दो वार, मट्ठा वा उष्ण जल के साथ दें।

गुण—यह चूर्ण कफज, वातज और वात-कफ भूयिष्ठ सन्निपातज संग्रहणी में और अर्श रोग में अत्युत्कृष्ट औषधि है। उक्त रोगों में इसके सेवन से अवश्यमेव लाभ होता है। इसके उपयोग से जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भुक्त आहार का उचित पाचन होता है। यह सुपरीक्षित प्रयोग है।

(४) शिवादिचूर्ण

बड़ी हरड़ की छाल, छोटी पिप्पली, सोंठ और चित्रक (चीता), इन चार द्रव्यो को समान मात्रा में लें और सब को वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें। **मात्रा**—३ से ६ माशे तक। **अनुपान**—मट्ठा के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण कफज संग्रहणी में अत्युपयोगी है। सुपरीक्षित है।

(५) रसाञ्जनादि चूर्ण

रसाञ्जन (रसोत), अतीस, इन्द्र जौ, कुड़े की छाल, शुण्ठी, और धाय के पुष्प—इन समस्त द्रव्यों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान–३ से ६ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, मधु और चावलों के धोवन जल से सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण पैत्तिक संग्रहणी, अर्श, रक्तपित्त और रक्तातिसार में लाभप्रद है।

(६) तिक्तादि क्वाथ

तिक्ता (कुटकी), रसोत, शुण्ठी, धाय के पुष्प, बड़ी हरड की छाल, इन्द्र जौ, नागर मोथा, कुटज (कुड़ा की त्वचा) भांगरा–इन नव द्रव्यों को समान भाग लेकर यवकुट (मोटा-मोटा) चूर्ण बनाकर, रख लें। इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में लेकर एक पाव जल में, मिट्टी के पात्र में डालकर, चूल्हे पर चढ़ाकर, मन्दाग्नि जलाकर, क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर, हाथ से मदन कर, छान लें। अल्पोष्ण रहते हुए ही रोगी को पिला दें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से प्रातः सायं दिन में दो समय, नित्य नवीन क्वाथ बनाकर रोगी को पिलावें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से अतिवृद्ध, सशूल, पैत्तिक संग्रहणी नष्ट हो जाती है। कड़वी, खट्टी, क्षार (सोडा), नमकीन आदि खाद्य वस्तुओं के अधिक सेवन से पित्त कुपित हो जाता है। उससे जठराग्नि मन्द हो जाती है और पैत्तिक संग्रहणी रोग उत्पन्न होता है। पैत्तिक संग्रहणी होने पर—रोगी का शरीर पीला हो जाता है और अपक्व, नीले, पीले, पतले, दुर्गन्धयुक्त दस्त आते हैं। खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं। हृदय और कण्ठ में दाह होता है। अरुचि और तृषा होने लगती है—ये लक्षण देखे जाते हैं। ऐसी अवस्था में तिक्तादिक्वाथ के सेवन से उत्तम लाभ होता है। सुपरीक्षित है।

(७) कनकसुन्दर रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभविष, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, शुद्ध धत्तूरे के बीज, काली मरिच और भंग–इन समस्त द्रव्यों को समान भाग लेकर, सब का वस्त्रछन किया हुआ, सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त भृङ्गराज (भांगरा) के रस में ६ घण्टे तक मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, डाट लगा, सुरक्षित रख लें। **मात्रा**—चौथाई से एक वटी तक, (रोगी की अवस्था, बल आदि को विचार कर ही मात्रा देनी चाहिए) मट्ठा अथवा दोषानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—इस रस के सेवन से संग्रहणी, अतिसार, सन्निपात, ज्वर, कफ ज्वर वात ज्वर आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं। यह रस जठराग्नि को दीप्त करता एवं भुक्ताहार को समुचित रूप से पचाता है। इससे मन्दाग्नि का नाश और क्षुधा की वृद्धि होती है। अनेक बार का सुपरीक्षित प्रयोग है।

अथ-अर्शो-रोग चिकित्सा प्रकरणम् ॥८॥

अर्श, गुदागत अर्श, दुर्नाम, ये अर्श के संस्कृत नाम है। भाषा में इस रोग को "बवासीर" भी कहते हैं। "अरिवत् प्राणान् शृणाति-हिनस्ति इति अर्शः" अर्थात् शत्रु के समान जीवनीय शक्ति को नष्ट करने वाले रोग को अर्श (बवासीर) कहते हैं। अर्श को दुश्चिकित्स्य रोगों में माना जाता है। यह रोग कष्ट साध्य है। चिकित्सा की दृष्टि से—वात रोग, अश्मरी रोग, कुष्ठ रोग, प्रमेह रोग, उदर रोग, भगन्दर रोग, ग्रहणी रोग और अर्श रोग, ये आठ व्याधियाँ दुःख साध्य होने से महारोग माने जाते हैं। यथा—निम्नाङ्कित श्लोक में ये अष्ट महारोग गिनाये गये हैं—

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदर भगन्दराः।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः॥

अर्श रोग के कारण— अजीर्ण में खाने से, अल्प भोजन करने से, मलावरोध रहने से, अधिक मदिरा पीने से, आसन में स्थित होकर अधिक समय तक कार्य करने से, उत्कट आसन वा विषम आसन में अधिक समय तक बैठने से, अश्व, ऊंट आदि पर बैठकर सवारी करने से, अधिक साइकिल चलाने से, अधिक मैथुन करने से, सर्वदा बार-बार शीतल जल को स्पर्श करने से, मल मूत्र, अपान वायु के आये हुए वेगों को रोकने अथवा बलात् निकालने आदि के कारण वात, पित्त और कफ दूषित हो जाते हैं और इनके दूषित होने पर, गुदा की वलियों पर आघात होकर अर्श व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

अर्श व्याधि के लक्षण—बवासीर में मलावरोध का होना, भुक्त आहार का समुचित रूप से पाचन न होना, शरीर में निर्बलता का होना, उदर में गुड़गुड़ाहट, डकारें आदि अधिक आना, पैरों में पीड़ा, मल का अल्प मात्रा में आना, गुदमार्ग से रुधिर का स्राव होना, अर्शाङ्कुर उत्पन्न होना, गुदा में शूल होना आदि लक्षण देखे जाते हैं।

अर्श के भेद—दुर्नाम (बवासीर) के शुष्कार्श और आर्द्रार्श–ये दो भेद हैं।

शुष्कार्श—जिस अर्श में वातकफ की प्रधानता होती है; उसे शुष्क अर्श कहते हैं। इसमें उत्पन्न होने वाले अर्श के अङ्कुर—शुष्क, क्षीण, तीक्ष्ण अग्रवाले (नुकीले), टेढ़े और विषम रूप से फैले हुए रहते हैं। एवम् उन अङ्कुरों में तीव्र शूल होता है। इसको वादी की बवासीर कहते हैं। २—आर्द्रअर्श—जिस अर्श में रक्त वा पित्त अथवा रक्तपित्त की प्रधानता होती है वह "आर्द्र अर्श" कहा जाता है। इसमें रुधिर का स्राव होता है। आर्द्र अर्श के अङ्कुरों का वर्ण लाल, पीला, नीला, काला होता है। उन अङ्कुरों से आम दुर्गन्ध वाला, पतला, पीला तथा रक्तवर्ण का जल निकलता है और मलिन रुधिर का स्राव होता रहता है। उन में दाह, कण्डू (खुजली) तथा शूल होता और वे पक भी जाते हैं।

अर्शरोग में पथ्याऽपथ्य

पथ्य—बवासीर रोग में मलावरोध अधिक होता है। उसके लिए मध्य-मध्य में मृदु विरेचन देकर उदरशोधन करते रहना अभीष्ट है। परन्तु तीक्ष्ण विरेचन नहीं देना चाहिए। यदि उदर की शुद्धि बनी रहे; तो अर्श व्याधि की वृद्धि नहीं होती। खाने के लिए पुराने लाल चावल, साठी चावल, मूंग की दाल, बथुवा, परवल, करेला, तोरई, मूली का शाक, जौ, गेहूँ, मक्खन, मिश्री, द्राक्षा (मुनक्का), किशमिश, पक्व बेल का फल, छोटी इलायची, आमला, लशुन, सौंठ, हरड़, सैंधव लवण, गोमूत्र, मट्ठा, आदि का प्रयोग करना अच्छा है।

शुद्ध वायु में भ्रमण करना, यौगिक आसनों को विधिपूर्वक थोड़ा-थोड़ा करना, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना, सत्संग करना, आस्तिक भावों में मन को प्रवृत्त रखना, मानसिक शान्ति के लिए प्रयत्नशील होना, आदि से रोग निवृत्ति में विशेष सहायता मिलती है।

अपथ्य—एक ही आसन से अधिक समय तक बैठना, ऊंट, घोड़ा, साइकिल की सवारी करना, मल, मूत्र, अपान वायु के वेगों को रोकना, शौच (दस्त) के समय अधिक बल लगाकर मल को निकालने का प्रयास करना, शारीरिक उचित श्रम न करना, काम, क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या आदि मनोविकारों से आशन्त होना, उरद, राजमाष, खीर, पूडी आदि मलावरोध (कब्ज) कारक पदार्थों का सेवन करने आदि से अर्श के रोगी को दूर रहना उत्तम है।

अहितकर आहार विहार का त्याग किये बिना अच्छी से अच्छी औषधि के सेवन से भी अर्श रोग के नष्ट होने की सम्भावना नहीं है। अनेक अर्श के रोगी शल्य कर्म (आपरेशन) से अर्श के अङ्कुरों का छेदन कराने पर कुछ दिन स्वस्थ रहते हैं, परन्तु आहार विहार का संयम न होने के कारण, पुनः पूर्ववत् रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। इसके विपरीत युक्त आहार विहार के परिपालन से कष्ट साध्य रोगी भी स्वस्थ होते देखे जाते हैं। अतएव बुद्धिमान् रोगी को हितकर आहार विहार के सेवन में सावधान रहना विधेय है।

अर्श व्याधि की चिकित्सा

(१) अर्शोघ्नी वटी—नीम के फलों की गिरी, कलमी शोरा, रसोत, एलुवा और छोटी हरड़, ये पांच द्रव्य समान मात्रा में लें और इनका वस्त्रछन चूर्ण बनावें। इसके उपरान्त इस चूर्ण में मूली का स्वरस डालते हुए एक दिन तक सुदृढ़ मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा मूली का रस चूर्ण में डालकर स्थिरता से घोटें। एक दिन की घुटाई पूर्ण होने के पश्चात १-१ माशा की वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—एक से दो वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो समय—मट्ठा अथवा जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह वटी शुष्क अर्श (वादी बवासीर) और आर्द्र अर्श (खूनी बवासीर)

इन दोनों प्रकार के अर्शों के लिए लाभप्रद है। शुष्क अर्श में इसको एक मास तक निरन्तर खाने से रोग की निवृत्ति अवश्य हो जाती है। रक्तार्श में अल्प समय तक इसे सेवन करने पर ही रोगी को लाभ की अनुभूति होगी। अनुभूत है।

पथ्य—हितकर आहार विहार का सेवन करना अभीष्ट है और अम्ल, रक्त मरिच, गुड आदि अहितकर आहार को त्यागना वाञ्छनीय है।

(२) सादरादि गुटिका—सादर (नवसादर), स्वर्णगेरू, स्वर्णक्षीरी की जड़, काली मरिच, इन चार द्रव्यों को समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बनावें। इसके उपरान्त स्वर्णदुग्धा मूल के स्वरस में ही २ दिन घोटकर, १-१ माशा प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करें। गुटिकाओं के सूखने पर, उनको शीशी में भर, डाट लगाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान— १ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह गुटिका सभी अर्शों में हितप्रद है। इसे ३ से ७ दिन तक सेवन करने से अर्श व्याधि में अच्छा लाभ हो जाता है। यह संन्यासि प्रदत्त पं. वंशीधर जी से प्राप्त हुआ योग है। हमारे द्वारा परीक्षित है।

(३) निम्बफलादि वटिका—नीम के फलों (निमौली) की गिरी, शुद्ध रसौत, और अपक्व कोमल बबूल की फलियाँ—इन तीनों को समभाग लेकर खरल में पीस लें। इसके उपरान्त कुकर छिन्नी के रस में ६ घण्टे मर्दन कर, एक-एक माशा प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ वटी, केवल प्रातः समय, जल के साथ सेवन करने पर अर्श व्याधि में लाभ होता है। इसके सेवन से अर्श जनित दाह, ऐंठन, रक्तस्राव, आदि उपद्रव शान्त होते हैं। आवश्यकता होने पर इस वटी को जल के साथ घिसकर अर्श के अङ्कुरों पर लेप करना भी हितावह होता है। अनुभूत है।

(४) रसाञ्जनादि वटी—शुद्ध पर्वतीय रसाञ्जन (रसौत), विषशमनी बूंटी के पत्र, छोटी हरीतकी, अर्कस्तल बूंटी, और श्वेत जीरा,—इन को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, गुलाब के अर्क में ८ घण्टे तक मर्दन कर, चणक प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ वटी तक, सद्यो-जल के साथ प्रातः सायं दिन में २ समय सेवन करें।

गुण—यह वटी अर्श रोग में अच्छा कार्य करती है। रक्त अर्श में रुधिर का अधिक स्राव होने से जिन रोगियों का शरीर रूक्ष तथा पीले वर्ण का हो गया हो, चलने, बैठने, उठने से नेत्रों के सामने अन्धकार आ जाता हो, शारीरिक निर्बलता अधिक हो गई हो, तो उनके लिए यह वटी अत्युपयोगी है। पथ्य पूर्वक सेवन करने से अर्श में अच्छा लाभ होता है।

(५) निम्बुक प्रयोग—एक कागजी निम्बु का स्वरस निकाल कर, सूक्ष्म वस्त्र से छान लें। इसके पश्चात् इस छने हुए निम्बु के रस को एक छटांक दूध में

मिला कर, तुरन्त अर्श के रोगी को पिला दें। इस प्रकार से दिन में ३ बार पिलावें। प्रत्येक बार एक कागजी निम्बु का स्वरस तथा एक छटांक दूध को तत्काल सम्मिश्रण करके तुरन्त पिलाना चाहिये।

गुण—इस प्रयोग के करने से आर्द्र अर्श (खूनी बवासीर) में उत्तम लाभ होता है। अर्श के अंकुरों से निकलता हुआ रुधिर तुरन्त शान्त हो जाता है।

(६) मूषककर्णी प्रयोग–मूषककर्णी (मूसाकन्नी) बूंटी २ रत्ती और दो छटांक गौ की दही लें और इन दोनों को मिला कर, रोगी को खिला दें। यह केवल प्रातः समय सेवनीय है। इस प्रयोग से अर्श के रोग में अच्छा लाभ होता है। मरिच, मसालों का प्रयोग सर्वथा वर्जनीय है। अनुभूत है।

(७) गुडादि प्रयोग–पुराना गुड़ १ तोला, बड़ी हरीतकी के छिलके का वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण ४ से ६ माशे तक लेकर, इन दोनों को मिलाकर खावें और ऊपर से जल पान करें। यह प्रयोग अर्श में हितकर है।

(८) अर्शोघ्न प्रलेप—तुत्थ भस्म १ तोला, कत्था, रसोत, कलमी शोरा, मुरदासंग, शंख भस्म, कौड़ी भस्म, टिकिया वाला मुस्क कर्पूर—प्रत्येक द्रव्य ढाई-ढाई तोले, नवसादर एक तोला, लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्र छन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त चूर्ण में भस्मों को मिला लीजिये। पीछे दस तोले गाय के मक्खन को, १०१ बार जल से धो लीजिये और इस धुले हुए मक्खन को एक वस्त्र की पोटली में बाँधकर, किसी वृक्ष की शाखा पर एक रात्रि तक लटका दें। तत्पश्चात् इस पोटली के मक्खन को उक्त चूर्ण में मिलाकर, १२ घण्टे तक मर्दन करके, शीशी में सुरक्षित रख लें।

इस प्रलेप को अर्श के अंकुरों (मस्सों) पर लगाइये। यदि बवासीर गुदा की आभ्यान्तरिक वलियों में हो; तो एक स्निग्ध लकड़ी पर रुई लपेट कर, उसके ऊपर, इस प्रलेप (मलहम) को लगाकर, गुदा के अन्दर लगाइये।

गुण—इस अर्शोघ्न प्रलेप को लगाने से और निम्नांकित "शिवादि वटिका" को खाने से प्राचीन से प्राचीन अर्श व्याधि नष्ट हो जाती है।

(९) शिवादि वटिका—काली हरीतकी, काबुली हरीतकी, रसौत, कलमी शोरा, काली मिरच, त्वचा सहित निम्बू का फल तथा श्वेत जीरा—प्रत्येक ढाई-ढाई तोले लें और समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये और ग्वार पाठे का २॥ तोले रस मिलाकर, झाड़ी बेर के प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें। **मात्रा और अनुपान**—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय, जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस "शिवादिवटी" को खाने से और उक्त "अर्शोघ्न प्रलेप" को लगाने से २० वर्ष से ५० वर्ष तक पुराना अर्श रोग भी नष्ट हो जाता है। इस वटी को खाना और उक्त लेप को लगाना दोनों को एक साथ ही आरम्भ करना इष्ट है।

(१०) अम्लिका प्रयोग—इमली के फल लेकर उसके बीज और सूत्र को हटा,शेष सार भाग को लेकर, शिला पर जल के साथ सूक्ष्म पीस लीजिये । जब यह लेप लगाने योग्य सूक्ष्म पिस जाय, तो इसे कोमल रुई के एक मोटे खण्ड पर लगा कर, इसके ऊपर फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण अल्प मात्रा में प्रक्षिप्त कर दें—बिखेर दें । इसके उपरान्त इसे अर्श के अंकुरों पर रखकर ऊपर से बांध दें । २४ घण्टे के उपरान्त द्वितीय बार बांधिये । इस प्रकार से ७-८ दिन तक निरन्तर बांधते रहें ।

गुण—इस प्रयोग से अर्श के अंकुर (बवासीर के मस्से) बिना शल्य कर्म के ही नष्ट हो जाते हैं । यह शस्त्रहीन आयुर्वेदीय शल्य चिकित्सा है । अनुभूत है ।

(११) अर्शोहर प्रयोग—तुत्थ १॥ तोला, अलसी ६ तोले,—इन दोनों को सूक्ष्म पीस, वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये । इसके उपरान्त १०१ बार जल में धोये हुए गोघृत को एक फूल के कटोरे में डाल कर, उसमें उक्त चूर्ण को मिला दीजिये और अग्रभाग में ताम्बा लगा हुआ है जिसके, ऐसे डण्डे से एक प्रहर तक निरन्तर घोटिये और घुटाई होने पर, शीशी में सुरक्षित रखिये । इस प्रलेप को अर्श पर लगा दीजिये और बिसेन्दु के पत्रों को जल में उबालकर, इसकी गुदा पर वाष्प दें । कुछ दिन तक निरन्तर इन दोनों प्रयोगों को करिये ।

गुण—इस प्रलेप को अर्श पर लगाने से और बिसेन्दु के पत्रों की वाष्प (भपारा) देने से अर्श रोग समूल नष्ट हो जाता है । प्रथम दिन से ही रोगी को लाभ होने लगता है । अनुभूत प्रयोग है ।

(१२) यवानिकादि प्रयोग—अजवाइन और खनिज पार्वती रज—प्रत्येक १०-१० तोले लेकर, सूक्ष्म पीस लीजिये । मिट्टी का एक पात्र कसोरा आदि लें और उसमें बेरी की लकड़ी के प्रज्वलित कोयलों को रखकर, उसके ऊपर उक्त चूर्ण १ तोला के लगभग डाल दें । इसके उपरांत निर्वात स्थान में, चादर ओढ़कर, रोगी इस प्रकार से बैठ जाय, जिससे उक्त औषधि का पात्र गुदा के नीचे रखने पर उसका निकलता हुआ धूम्र अर्श के अंकुरों पर पूर्णतया लगता रहे । यह औषधि का पात्र गुदा से न तो अधिक दूर हो और न ही अधिक निकट होना चाहिये । प्रत्युत उसे इतनी दूरी पर रखना अभीष्ट है; जहाँ से औषधि का निकलता हुआ धूम्र अर्श के अंकुरों पर पूर्ण रूप से पड़े । इस प्रकार से बैठने के उपरान्त रोगी "अश्वनी मुद्रा" करे । अर्थात् अश्व (घोड़ा) मल को त्यागते समय जिस प्रकार से गुदा का संकोचन और प्रसारण करता है, उसी प्रकार से की जाने वाली क्रिया को "अश्वनी मुद्रा" कहते हैं । यह क्रिया प्रतिदिन एक समय करनी चाहिये और कुछ दिन तक निरन्तर करनी योग्य है ।

गुण—इस प्रकार से धूम्र का प्रयोग करने से अर्श के अंकुर (बवासीर के मस्से) नष्ट हो जाते हैं । यह प्रयोग साधारण अर्श के अंकुरों को ५ दिन में और कष्टसाध्य को १० दिन में पिघला कर गिरा देता है । इसका प्रभाव गुदा के अन्दर भी होता है तथा बाहर भी । यह अर्श रोग के लिये उत्तम प्रयोग है । परीक्षित है ।

अथ-अग्निमान्द्य-अजीर्ण-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥९॥

बुद्धिमान् मनुष्य के लिए यह जानना सरल है कि—मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की सुरक्षा करने के लिए केवल उत्तम आहार का सेवन करना ही पर्याप्त नहीं है; प्रत्युत उसके लिये जठराग्नि का सन्धुक्षण भी अत्यावश्यक है। क्योंकि पाचाकाग्नि मंद होने पर जो उत्तम से उत्तम खाद्य, पेय, चोष्य, तथा लेह्य—ये चतुर्विध आहार द्रव्य सेवन किये जाते हैं; उनका उचित परिपाक न होने के कारण वे शरीर की पुष्टि नहीं कर पाते। अतएव स्वस्थ रहने के इच्छुक प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपन पाचकाग्नि की रक्षा करने के लिये प्रयत्नशील होना इष्ट है। हमारे शरीर में जब तक जठराग्नि प्रदीप्त रहती है; तब तक खाया हुआ भोजन, उचित समय पर पची जाता है और उससे—भुक्त आहार का क्रमशः, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा वीर्य और ओज—इन शारीरिक धातुओं का निर्माण यथोचित होता रहता है। फलतः शरीर में बल, वीर्य, कान्ति, तेज, बुद्धि, स्मृति, धृति, कर्त्तव्य निष्ठा आदि प्रशस्त भावों की उपलब्धि होती है और जीवन शान्तिमय तथा सुखमय व्यतीत होता है। परन्तु जब मन्दाग्नि या अग्निमान्द्य हो जाता है, तो अल्प मात्रा में सेवन किया हुआ आहार द्रव्य भी उचित समय पर नहीं पचता। क्षुधा नष्ट हो जाती है। समय पर मल, मूत्र और अपान वायु का विसर्जन नहीं होता। २-२ दिन तक शौच (दस्त) नहीं होता और मल के विसर्जन करते समय अधिक बल लगाना पड़ता है। शरीर में आलस्य, उदर में गुड़गुड़ाहट, खट्टी डकारें आना, सिर, नाभि, बस्ति आदि स्थानों में पीडा का होना, शारीरिक निर्बलता की वृद्धि, उदासी, अनुत्साह, चिड़चिड़ा स्वभाव बन जाना, क्रोध की मात्रा बढ़नी आदि लक्षण देखे जाते हैं।

मन्दाग्नि और अजीर्ण रोग के कारण

अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण रोग के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें चार हेतु मुख्य हैं—(१) **मनोविकार**, (२) **अयुक्त आहार**, (३) **शारीरिक श्रम का अभाव और** (४) **शुक्र का अधिक क्षय**—ये चार कारण मन्दाग्नि तथा अजीर्ण को उत्पन्न करते हैं। इनको कुछ स्पष्ट करके लिखा जाता है।

(१) मनोविकार

कोई भी प्रज्ञावान् पुरुष वा बुद्धिमती नारी विचार करके यह जान सकते हैं कि—हमारे शरीर में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा पांच कर्मेन्द्रियों एवं रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं में मन अधिक सूक्ष्म, तीव्रगामी और बलिष्ठ है। मन की प्रसन्नता के साथ खाया हुआ आहार ही, समुचित रूप से

पचता और उससे शरीर पोषक रस, रक्त आदि धातुओं का यथावत् निर्माण होता है। आर्ष साहित्य में यत्र तत्र सर्वत्र इस प्रकार के बहुमूल्य आचरणीय अनेक उपदेश मिलते हैं; जो केवल भोजन करते समय मानसिक प्रसन्नता बनाये रखने का महत्त्व प्रकट करते हैं। शोक, चिन्ता, काम, क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि मानसिक विकारों के रहते हुए जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ आहार सेवन किया जाता है, वह पाचकाग्नि के द्वारा पूर्णरूपेण नहीं पचता। मनोविकारों के रहते हुए जो कुछ भी आहार सेवन किया जाता है, वह भोक्ता के शरीर की पुष्टि नहीं करता है प्रत्युत उससे शरीर में एक प्रकार का विषाक्त द्रव्य उत्पन्न होने लगता है, जो अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण की उत्पत्ति करता है एवं शारीरिक अनेक रोगों का भी कारण बनता है। लोक में अनेक ऐसे अजीर्ण तथा मन्दाग्नि के रोगी देखे जाते हैं, जिनके रोग का कारण केवल शोक, चिन्ता, क्रोध आदि मानसिक दोष होता है। क्योंकि मनस्तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। अतएव इसके विकारों का सूक्ष्म प्रभाव सम्पूर्ण स्थूल शरीर में अतिद्रुतगामी होता है। इस प्रकार से शोक, चिन्ता, ईर्ष्या आदि चित्तविकृति से मन्दाग्नि, अजीर्ण, विबन्ध आदि रोग हो जाते हैं।

(२) अयुक्त-आहार

अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण रोग का द्वितीय कारण है—अहित आहार का सेवन करना। मात्रा से अधिक खाना, पीना, बिना क्षुधा के खाना, पूर्व भोजन के बिना पाक हुए ही खाना, अधिक जल पीना, सड़ी, गली, मलिन, बासी, अधिक मसालेयुक्त चटपटे खाद्य-पेय द्रव्यों का सेवन करना, आहार द्रव्यों में अखाद्य वस्तुओं का मिश्रण होना अर्थात् विशुद्ध खाद्य पेय पदार्थों के अभाव में अभक्ष्य मिले हुए पदार्थों का सेवन करना आदि अयुक्त आहार से पाचकाग्नि विकृत हो जाती है। इससे मन्दाग्नि एवम् अजीर्ण उत्पन्न होते हैं।

(३) शारीरिक-श्रम का अभाव

जो स्त्री पुरुष शरीर से किसी भी प्रकार का उचित श्रम नहीं करते, उनकी जठराग्नि विकृत हो जाती है। वे मन्दाग्नि तथा अजीर्ण व्याधि से अवश्य ग्रस्त होते हैं। स्थूल शरीर को स्वस्थ रखने के लिए गौ सेवा, रोगी सेवा, कृषि कार्य, भ्रमण, यौगिक आसन, सूर्य नमस्कार, आदि हितकर क्रियाओं में से यथारुचि कुछ करना आवश्यक है। अकर्मण्य जीवन व्यतीत करने से शारीरिक रोग, मनोविकार, पाप वृत्ति आदि का आक्रमण होता है तथा दोनों लोकों में कल्याण नहीं होता। सक्रिय जीवन व्यतीत करने से इस लोक और परलोक में सुख शान्ति मिलती है। जो बुद्धिजीवी व्यक्ति मानसिक कार्य तो अधिक करते हैं, परन्तु स्थूल शरीर से कुछ नहीं करते, उनका शरीर अस्वस्थ हो जाता है। पाचकाग्नि मन्द हो जाती है। खाया हुआ आहार पच नहीं पाता। भूख समाप्त हो जाती है। समय पर मल विसर्जन नहीं होता। अपानवायु रुक जाती है। मलावरोध (कब्ज) रहने लगता है। शिर, उदर में

पीड़ा, उदासी, आलस्य आदि लक्षण देखे जाते हैं। यह अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण रोग का तृतीय हेतु है।

(४) शुक्र का अधिक क्षय

इस रोग का चतुर्थ कारण है वीर्य का अधिक नाश। स्त्री तथा पुरुषों के द्वारा जो आहार द्रव्य सेवन किया जाता है; वह उदर के यन्त्रों से—यथाक्रम रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य वा शुक्र—इन सात धातुओं में परिणत हो जाता है। इन सात धातुओं में अन्तिम धातु शुक्र वा वीर्य है। शरीर में जब तक यह धातु समुचित रूप से विद्यमान रहती है, तब तक प्रायः कोई आधि व्याधि आक्रमण नहीं करती। पाचकाग्नि तीव्र रहती है तथा शरीर के सभी अवयव यथोचित रूप में सक्रिय बने रहते हैं। परन्तु जब असंयत जीवन प्रारम्भ हो जाता है तो वीर्य का अधिक क्षय होकर, जठराग्नि में विकार अवश्य हो जाता है। जो बालक वा बालिकायें अपने अध्ययन काल में ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण रोग से पीड़ित नहीं होते। किन्तु कालान्तर में गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त जब वे वीर्य की सुरक्षा के महत्व को विस्मृत करके अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने लग जाते हैं, तो उनसे वीर्य का अधिक मात्रा में क्षय होकर मन्दाग्नि वा अजीर्ण रोग का आक्रमण होता है। जबकि—संयत जीवन यापन करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुष प्रकृत व्याधि से पीडित नहीं होते। वीर्य का अधिक ह्रास हो जाने से प्रतिलोम क्रम से सभी रस आदि धातुओं पर घातक प्रभाव होता है।

प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष वा मेधावती नारी का यह आवश्यकीय कर्त्तव्य है कि—वे अपनी पाचकाग्नि की रक्षा करने में प्रयत्नशील हों। क्योंकि जठराग्नि के नष्ट होने से शरीर नहीं रहता और "पाचकाग्नि" सुरक्षित रहने से रहता है। अतएव युक्त आहार विहार से जठराग्नि की रक्षा करनी वाञ्छनीय है।

चिकित्सा

मन्दाग्नि और अजीर्ण रोग का प्रतीकार करने के लिए यह आवश्यकीय है कि—जिस कारण से यह व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसका वर्जन प्रथम करना चाहिए। इसके साथ ही औषधि योगों का सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। जो व्यक्ति रोग के उत्पादक कारणों को दूर किये बिना औषध-प्रयोग करते हैं वे पूर्ण सफलता को प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु कारण की निवृत्ति के साथ ही जो चूर्ण, वटी आदि को सेवन करेंगे, उनको शीघ्रता से लाभ होगा।

यहाँ पर हितकर प्रयोग लिखे जा रहे हैं। इनको सेवन करने से मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोग-निवृत्ति में अच्छा सहयोग मिलता है—

(१) पिप्पल्यादि चूर्ण

लघु पिप्पली, काली मिर्च, श्वेत जीरा, काला जीरा, प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले, अनारदाना २० तोले, सैंधव लवण और मिश्री १०-१० तोले, अकरकरा और शुण्ठी

२-२ तोले, निम्बू का सत्त्व २।। तोले, घी में भुनी हुई विशुद्ध हींग ३ माशे लेकर सब का वस्त्र छन चूर्ण बनाकर, शीशी में भर, डाट लगा कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ माशे तक, जल के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण को सेवन करने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदर की पीड़ा, अरुचि आदि में अच्छा लाभ होता है। यह चूर्ण रुचिकर होने से बालक, वृद्ध, युवा सभी के द्वारा सेवन किया जाता है। उदर रोग में उत्तम हितकर और स्वादिष्ट प्रयोग है।

(२) शुण्ठ्यादि चूर्ण

शुण्ठी ५ तोले, छोटी पिप्पली ४ तोले, अजमोद ३ तोले, अजवाइन २ तोले, काला लवण १ तोला और बड़ी हरड़ का छिलका १५ तोले—इन समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे तक, उष्ण जल के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदर का शूल, गुड़गुड़ाहट, वायुगोला—इन रोगों में अत्युपयोगी है। उदर की पीड़ा में केवल एक मात्रा से लाभ हो जाता है। अनुभूत है।

(३) सैंधवादि चूर्ण

सैंधव लवण १५ तोले, घी में भुना हुआ श्वेत जीरा और श्वेत मरिच--२।।-२।। तोले,घृत में भुनी हुई हीरा हींग एवं पिपरमेण्ट ३–३ माशे, इन पांच द्रव्यों को वस्त्रछन चूर्ण बना कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, उष्ण जल के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण मन्दाग्नि और अरुचि में अत्युपयोगी है।

(४) अजीर्ण गजकेशरी चूर्ण

शंख भस्म, शुक्ति (सीप) भस्म, शुद्ध आमलासार गन्धक, लोहमण्डूर भस्म, टंकण (सुहागा) भस्म, नवसादर, साम्भर नमक, सोंठ, छोटी पिप्पली, चित्रक की छाल, सोंचर लवण, अजवाइन, बड़ी हरड़ का छिलका—इन तेरह द्रव्यों को ४-४ तोले और घी में भुनी हुई हींग १ तोला लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्र-छन चूर्ण बनाकर, उसमें भस्मों को सम्मिश्रण कर दें। इसके उपरान्त एक शीशे के पात्र में जम्बीरी निम्बू का रस १ सेर डाल कर, उस में चर्ण को मिला दें। इसे ढक्कन से

बन्द करके, एक सप्ताह तक इसी प्रकार से रहने दें। सात दिन के उपरान्त इसका प्रयोग प्रारम्भ कर दें।

मात्रा— ३ से ४ माशे तक, भोजन के उपरान्त सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदर शूल में अत्युत्कृष्ट औषधि है। बेल, गुड़, लाल मरिच आदि अहितकर आहार का परित्याग करके, मात्रा में सुपाच्य भोजन करते हुए जो रोगी इस चूर्ण का सेवन करेगा, वह अजीर्ण और मन्दाग्नि को नष्ट करके स्वस्थ हो जायेगा। परीक्षित है।

(५) वचा चूर्ण

वचा का चूर्ण २ रत्ती और मधु ३ माशे—इन दोनों को सम्मिश्रण करके चाटें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करने से मन्दाग्नि का नाश और क्षुधा की वृद्धि होती है।

(६) वचादि चूर्ण

वचा, घी में भुनी हुई हींग, गज पिप्पली, काली मरिच, सोंठ, बड़ी हरड़ का छिलका, काला लवण और अतीस—इन समस्त द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, जल के साथ सेवन करें।

गुण—अपान वायु के अवरोध होने से जब उदर फूल जाता है, तो उसमें गुड़गुड़ाहट तथा शूल होने लगता है, ऐसी अवस्था में यह चूर्ण अत्युपयोगी है।

(७) हिंग्वादि वर्त्तिका

हीरा हींग ६ माशे और सैंधव लवण ६ माशे लें। इन दोनों को सूक्ष्म पीस लें। इसके उपरान्त अल्प मधु के साथ मिला कर, इसे मन्दाग्नि पर, अल्प समय तक पकावें। जब यह मिल जाये और कुछ कड़ा हो जाये, तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। पश्चात् कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रमाण में मोटी तथा एक ओर से कलम के सदृश नुकीली बत्ती बना लें। अग्निमान्द्य होने पर जब अपान वायु रुकने से मशक के समान उदर फूल जाता है; विबन्ध हो जाता है, तो ऐसी अवस्था में इस वर्त्तिका को रोगी की गुदा में प्रविष्ट करने से तुरन्त लाभ हो जाता है। इस प्रयोग से बन्धा नष्ट होकर, शौच क्रिया हो जाती है। इस प्रयोग से विबन्ध के अनेक रोगियों को लाभ हुआ है। यह अनुभूत प्रयोग है। श्री शान्तानन्द जी से प्राप्त।

(८) अर्कादि वटिका

अर्क (मदार) का मुखबन्द पुष्प, काली मरिच और काला लवण—प्रत्येक ४-४ तोले, घृत में भुनी हुई हींग और इमली का सत्व—१-१ तोला लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सब को एकत्र सम्मिश्रण कर, ६ घण्टे तक जल

के साथ मर्दन करके झाड़ी के बेर के समान गुटिका बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय दें।

अनुपान तथा उपयोग—इस वटी को मन्दाग्नि तथा अरुचि में शीतल जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। अफारे में उष्ण जल से खिलावें। उदर के शूल में अजवाइन के क्वाथ के साथ सेवन करावें। विबन्ध (कब्ज) में सोंफ के उष्ण क्वाथ से देने पर रोग में अवश्य लाभ होता है। यह वटी उदर सम्बन्धी सम्पूर्ण व्याधियों में लाभप्रद है। इसके सेवन से मन्दाग्नि और अजीर्ण का नाश होता है और क्षुधा प्रदीप्त होती है। शतसोऽनुभूतः॥

(९) श्री रामबाण रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, लवङ्ग—प्रत्येक १-१ तोला, काली मरिच २ तोले और जायफल ६ माशे लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावें। इसके उपरान्त शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में मिलाकर, मर्दन करें। पश्चात् इमली के पक्व फलों के रस, बिजौरा निम्बू, सन्तरा, अनार, अर्क पुष्प, और अदरक—इनके रस अथवा क्वाथ जो उपलब्ध हो सके, उसमें पृथक्-पृथक् १-१ दिन मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, डाट लगा कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—एक से दो वटी तक, मट्ठा अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय दें। अग्निमान्द्य, अजीर्ण, शूल आदि उदर के रोगों में—शुण्ठी, सैंधव लवण तथा हरीतकी के चूर्ण के साथ दें। कफ का शमन करने के लिए आर्द्रक के रस के साथ देने से लाभ होता है। वात प्रशमनार्थ निर्गुण्डी के रस, पित्त के नाश के लिए धनिये के रस, श्वास में त्रिकटु क्वाथ, शोथ में पुनर्नवा के क्वाथ, विषम वात वेदना और सम्पूर्ण वायु के विकारों में एरण्ड तैल के साथ देने से लाभ होता है।

गुण—श्री रामबाण रस उत्तम दीपन, पाचन और ग्राही है। इसके सेवन से अग्निमान्द्य (मन्दाग्नि), अजीर्ण, श्वास, कास, श्लेष्मा, संग्रहणी, में उत्तम लाभ होता है। यह रस कौष्ठ्य धातुओं का शोधन करता और दूषित मलों को मूत्र तथा प्रस्वेद से बाहर निकालता है। परीक्षित है।

(१०) आदित्यरस रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, कालीमरिच, शुण्ठी, छोटी पिप्पली, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमला, जायफल, लवङ्ग, पञ्चलवण (सैंधव, साम्भर, खारी, सञ्चर और काला ये पांच लवण हैं)—इन समस्त द्रव्यों को समान भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लें। इसके उपरान्त

शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ, सूक्ष्म चर्ण कज्जली में सम्मिश्रण करके, मर्दन करें। इसे कागज़ी निम्बू के रस की सात भावनाएं दे करके, २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना छाया में सुखावें। उत्तम प्रकार से शुष्क होने के पश्चात् इन वटियों को शीशी में भर, सुरक्षित रख लें। इस को "आदित्य रस" कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय, निम्बू के रस अथवा दोषों के अनुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करें।

गुण—आदित्य रस मन्दाग्नि, अजीर्ण, विसूचिका, दुष्टप्रतिश्याय (जुखाम), ऐंठन, शूल आदि रोगों में लाभप्रद है। अनुपान भेद से अनेक व्याधियों को नष्ट करता है।

(११) पुनर्नवादि क्वाथ

पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, परवल के पत्र, बड़ी हरड़ का छिलका, नीम की छाल, नागर मोथा, सोंठ, गिलोय—इन समस्त द्रव्यों को सम भाग लेकर, यवकुट चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को एक से दो तोले तक की मात्रा में लेकर सोलह गुणा जल में मन्दाग्नि जलाते हुए, मिट्टी के पात्र में, चतुर्थांश शेष क्वाथ सिद्ध करें। पश्चात् इसे हाथ से मर्दन कर, वस्त्र से छान लें। इस क्वथित जल में २ तोले गो मूत्र और २ माशे शुद्ध गुग्गुलु मिला कर, रोगी को पिला दें।

गुण—इस पुनर्नवादि क्वाथ के सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, शूल, विबन्ध, अफारा आदि उदर सम्बन्धी रोग तथा कास, श्वास, पाण्डु—इन व्याधियों में अच्छा लाभ होता है। अनेक बार का परीक्षित योग है।

(१२) कोष्ठ बद्धार्यवलेह

पोस्त लाल हरड़, पोस्त काली हरड़, पोस्त काबुली हरड़, बनफसा के पुष्प, वंश लोचन और सकमूनिमा—इन छह द्रव्यों को—४-४ तोले, निशोथ, धनिया ८-८ तोले, बहेड़े की त्वचा, आमले का छिलका, निलोफर, गुलाब के पुष्प—प्रत्येक २-२ तोला, श्वेत सन्दल, कतीरे का गोंद १-१ तोला, उन्नाव तथा लिसोड़े १००-१०० दाने, वनफसा ४ तोले, शीरा हरड़, विशुद्ध मधु और बादाम रोगन प्रत्येक तीन-तीन पाव लें।

निर्माण विधि—प्रथम सकमूनिमा को १। तोले घी में भून लें। जब सकमूनिमा अग्नि से पिघलने लगे तब पोस्त लाल हरड़ से लेकर कतीरे के गोंद पर्यन्त लिखित तेरह वस्तुओं का वस्त्रछन चूर्ण उसमें मिला कर, हाथ से मर्दन करें और छान लें। इसके उपरान्त इसमें बादाम का तेल मिला दें। तत्पश्चात् उन्नाव, लिसोड़े तथा वनफसा—इनको यवकुट चूर्ण बनाकर आधा सेर जल में मन्दाग्नि पर पकावें। आधा जल शेष रहने पर इसे अग्नि से नीचे उतार लें और हाथ से मर्दन करके छान लें। इसके उपरान्त इस क्वाथ में शीरा हरड़ को मिलाकर मन्द मन्द अग्नि पर पकावें।

जब यह कुछ कड़ा हो जाए तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर इस में मधु मिला दें। पश्चात् इसमें बादाम के तेल मिश्रित पूर्वोक्त चूर्ण को डाल कर चलावें। अच्छी प्रकार से मिलने के उपरान्त कस्तूरी ४ माशे, स्वर्ण के वर्क तथा रजत के वर्क १०-१० नग—इन तीनों को सम्यक् प्रकार से मिलावें और इसे घृतलिप्त मिट्टी के पात्र में भर कर मुख मुद्रा करके अन्न की राशि में एक मास तक रहने दें। इसके पश्चात् अन्न से बाहर निकाल लें और प्रयुक्त करें।

मात्रा और अनुपान—५ से ६ माशे तक १ पाव दूध के साथ सेवन करें। इसे केवल रात्रि को शयन काल में एक समय सेवन करावें।

गुण—यह "कोष्ठबद्धार्यवलेह" मलावरोध में अत्युत्कृष्ट योग है। इसको उचित मात्रा में सेवन करने से सुखसाध्य, कष्टसाध्य और याप्य—सभी प्रकार की कोष्ठबद्धता (कब्ज) नष्ट होती है। कुछ काल तक निरन्तर सेवन कराने से २० वर्ष के पुराने मलावरोध (कब्ज) रोग-पीड़ित व्यक्तियों में भी यह अवलेह अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है। हृदय के रोगों में भी उत्तम लाभप्रद है। इसे बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी सेवन कर सकते हैं। वात, पित्त तथा कफ सभी प्रकार की प्रकृति वाले व्यक्तियों के लिए कल्याण प्रद है। यह खाने में रूचिकर है। यह अवलेह २ वर्ष तक निरन्तर अपना पूर्ण प्रभाव करेगा। २ वर्ष के उपरान्त गुणहीन होने लगता है। परीक्षित है।

(१३) त्रिफलादि चूर्ण

बड़ी हरड़ की छाल, बहेड़े की त्वचा, आमले का छिलका, सोंफ, शुण्ठी, काला नमक, श्वेत जीरा, अजवाइन—प्रत्येक ३-३ तोले; सनाय तथा छोटी हरड़ ६-६ तोले और सैंधव लवण २ तोले—इनका वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण बनाकर शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें। मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे तक रात्रि में शयन करते समय उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से मलावरोध (कब्ज) नहीं रहता। सायं काल उष्ण जल के साथ इसे खाने से प्रातः समय मल विसर्जन क्रिया उचित प्रकार से हो जाती है। मन्दाग्नि और अजीर्ण आदि उदर सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं और खाये हुए आहार से रस, रक्त आदि सप्त धातुवें यथोचित बनती हैं।

(१४) उदरशूलहर चूर्ण—

पिप्पलीमूल ५ तोले और मिश्री २॥ तोले लें। इन दोनों का सूक्ष्म चूर्ण बना कर सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ माशा जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से उदरशूल में अच्छा लाभ होता है। यह चूर्ण वातज तथा कफज उदरशूल में तुरन्त लाभप्रद है। शतसोऽनुभूतः।

(१५) शूलघ्नी वटी

शुद्ध कुचला ६४ भाग, कञ्जर की गिरी, घी में भुनी हुई हींग, शुद्ध सुहागा और अजवाइन—प्रत्येक १६-१६ भाग, छोटी पिप्पली १२ भाग, पिप्पलीमूल, चव्य, बेल गिरी, काली मरिच, शुण्ठी, हरड़, सर्जक्षार, यवक्षार, सैंधव लवण, काला नमक, साम्भर लवण, खारा नमक और शुद्ध आमला सार गन्धक, प्रत्येक ८-८ भाग लें। इनका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, अदरक के रस में एक दिन मर्दन करके, चणक प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस वटी को सेवन करने से सभी प्रकार के शूल में लाभ होता है। यह उदर के शूल को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। इस वटी के सेवन करते समय दालें खाना निषिद्ध है। सुपाच्य भोजन करते हुए योग को सेवन करने से शूल रोग में आशातीत सफलता मिलती है।

(१६) वचा चूर्ण

वचा का चूर्ण ४ रत्ती खाकर ऊपर से एक छटाँक मट्ठा पीने से कृमिज उदर शूल में लाभ होता है। यह प्रयोग ३-४ दिन तक निरन्तर सेवन करने से कृमि-जनित उदर शूल में शान्ति हो जाती है।

अथ-विरेचक-प्रयोग-प्रकरणम् १०॥

उदर रोगों में विरेचक औषध-प्रयोग

आयुर्वेदविद् महर्षियों ने शरीर की आन्तरिक शुद्धि करने के लिए—वमन, विरेचन, निरूह, अनुवासन और नस्य—इन पंचकर्मों का विधान किया है। आयुर्वेदीय पञ्चकर्म एक प्रकार का कायाकल्प ही है। इसको उचित रूप में करने से शारीरिक और मानसिक दोषों का अपनयन होता और दीर्घायु, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। विरेचन भी इन पञ्च कर्मों का एक अङ्ग है; अतएव आवश्यकता के, अनुसार बुद्धि पूर्वक विरेचक औषध प्रयोग करने से उदर की शुद्धि होकर विबन्ध मन्दाग्नि, आलस्य, आदि अनेक रोग शान्त होते हैं।

विरेचक औषध प्रयोग में आवश्यकीय ज्ञातव्य बातें

ऊपर वमन आदि पञ्चकर्म को शरीर की शुद्धि का साधन कहा गया है। परन्तु विधि पूर्वक किये गये वमन आदि पञ्चकर्म ही काय शोधन के हेतु होते हैं। यदि विधि की उपेक्षा करके इनका आचरण किया जाता है; तो लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। विधि पूर्वक विरेचन करने के लिए प्रथम रोगी को स्नेह पान कराया जाना है। इसके उपरान्त पथ्यविधि कराकर स्वेदन कर्म होता है। तत्पश्चात् वमन क्रिया करायी जाती है और वमन के उपरान्त पूर्ववत् पुनः स्नेहन तथा स्वेदन कराने के पश्चात् विरेचन-औषधि प्रयुक्त होती है। इस प्रकार से विरेचन देने से शरीर में किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। यदि उचित रूप में विरेचन होता है, तो स्रोतों की शुद्धि, मानसिक प्रसन्नता, शरीर में स्फूर्ति तथा उत्साह, पाचकाग्नि की दीप्ति, अपानवायु, मल, मूत्र आदि की स्वाभाविक प्रवृत्ति का होना—ये लक्षण होते हैं।

समय के अभाव आदि के कारण से यदि स्नेहन आदि को कराये बिना विरेचक औषध प्रयोग देने की आवश्यकता होती है, तो रोगी के बल अवस्था, रोग आदि को विचार कर, मृदु विरेचन का उपयोग करना इष्ट है। अनेक व्यक्ति बार-बार विरेचन लेते हैं। बिना विरेचक प्रयोग के सेवन किये उनका मल विसर्जन नहीं होता। अतएव अनेक बार विरेचन (जुलाब) से शौच (दस्त) करना उचित समझते हैं। किन्तु इस प्रकार अतियोग हो जाने के कारण लाभ के स्थान पर अहित होता है। इस प्रकार से अत्यधिक विरेचन लेने से पित्त तथा कफ का क्षय होकर, वायु प्रकुपित हो जाती है। वायु के क्रुद्ध होने से बल का क्षय, निद्रानाश, कम्प, अङ्गों में शून्यता, आलस्य, उन्माद, हिक्का, नेत्रों के सामने अन्धेरा हो जाना, मल मूत्र, अपानवायु का समुचित रूप में प्रवृत्त न होना आदि अनेक लक्षण होते देखे जाते हैं। अतएव अत्यधिक विरेचक-औषध सेवन करना हितकर नहीं होता। आवश्यकतानुसार यदा कदा

मृदु विरेचक-औषधि सेवन करके एक दो विरेचन होने अनुचित नहीं है। किन्तु तीव्र विरेचन से अत्यधिक मलरेचन करना अथवा नित्यप्रति विरेचन लेना अवश्य अनिष्ट-कर होगा।

नीचे कुछ विरेचक औषध प्रयोग लिखे जाते हैं। विचार पूर्वक उचित मात्रा में प्रयोग करने से ये लाभप्रद होते हैं। यथावसर यथाविधि इनका प्रयोग करना चाहिए—

(१) इच्छारेचन वटी

शुण्ठी, पिप्पली, काली मरिच, बड़ी हरड़, आमला, बहेड़ा, छोटी हरड़, चित्रक, अजमोद, अमलतास, वायविडंग और शुद्ध तुत्थ प्रत्येक १-१ भाग, शुद्ध जयपाल २ भाग लें। सबका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, नीम के रस में ६ घण्टे मर्दनकर, चणक (चना) प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्ककर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—साधारण विरेचन के लिए चौथाई से आधी गोली तथा अधिक रचनार्थ १ वटी, शीतल जल के साथ दें।

गुण—यह वटी इच्छा के अनुसार रेचन करती है। इसमें जितना अधिक जल पिया जायेगा, उतने ही अधिक रेचन (दस्त) होते हैं। विरेचन के लिए यह विचित्र योग है।

(२) त्रिरेचन तैल

दन्ती बीज १० तोले, नारियल की गिरी ५ तोले, एरण्ड की गिरी ५ तोले ल। इन तीनों औषधियों को यवकुट चूर्ण बनाकर वस्त्र पोटली में बान्धकर, स्वेदन यन्त्र में आधे घण्टे तक पकावें। पकाते समय यन्त्र को ऊपर से ढक दें। आधा घण्टे के उपरान्त पोटली को यन्त्र से निकाल लें और इसे किसी चपटी वस्तु से दबाकर तैल निकाल लें। जब इसमें से तैल निकलना बन्द हो जाये, तो पुनः यन्त्र में स्वेदन करके तैल निकाल लें। इस प्रकार से ३ बार में सम्पूर्ण तैल निकाल कर, इसे शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ बिन्दु तैल को मिश्री—चूर्ण एक तोले में डालकर, खावें। जितनी बिन्दु मिश्री चूर्ण में डालकर, सेवन की जायेगी, उतने ही वार रेचन होते हैं।

गुण—यह तैल मलावरोध (कब्ज) को शान्त करता है। कठिन से कठिन विबन्ध को नष्ट करने के लिए अव्यर्थ है। परीक्षित प्रयोग है। विरेचन को रोकने के लिए चावल और मट्ठा दें। इसमें मूंग की दाल की खिचड़ी, शीतल जल पथ्य हैं।

(३) ऐलेयादि गुटिका

ऐलेय (एलुवा) ४ तोले, उसारारेवेन २ तोले, घी में भुनी हुई हींग और अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा ६-६ माशे लें। समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें इसके उपरान्त अमलतास की फली के गूदे को जल में मन्दाग्नि पर पकाकर चतुर्थांश क्वाथ बना लें। हाथ से मर्दन करके छान लें।

इस क्वाथ के साथ एक दिन मर्दन करके ,१-१ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, सेलखड़ी के चूर्ण में डालते जायें। सूख जाने पर शीशो मेंसुरक्षित रख लें। र० सि०प्र०।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, जल के साथ, रात्रि को शयनकाल में सेवन करें।

गुण—यह वटी रेचनार्थ प्रयुक्त होती है। विवन्ध होने पर इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। यह आन्त्रों में किसी प्रकार की हानि नहीं करती और अपान वायु का अनुलोमन करती है। हमने इस वटी को अनेक वर्षों तक, बालक, युवा, वृद्ध और कोमल स्वभाव वाली स्त्रियों को सेवन कराकर अनुभव किया है। यह निभय प्रयोग है। आवश्यकता के अनुसार सभी व्यक्तियों के लिये लाभप्रद है

(४) शिवादि वटी

जंगी हरीतकी ५तोले, शुद्ध जयपाल १ तोला, लेकर दोनों का वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र मिला, थूहर के दूध में २४ घण्टे की भावना देकर, दृढ़ मर्दन कर, १-१ रक्तिका प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में सुखाकर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ वटी, शयनकाल में दूध अथवा जल के साथ सेवन करने पर प्रातः समय सम्यक प्रकार से मलरेचन होकर, उदर की शुद्धि हो जाती है। अनुभूत है।

(५) मधुर-विरेचन प्रयोग

सनाय एक सेर, सोंफ आध सेर, मधुयष्टी एक पाव, शुद्ध आमलासार गन्धक एक छटांक और देशीय खाण्ड दो सेर लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर, खाण्ड़ के साथ सब को मिलाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे तक, उष्ण दुग्ध अथवा गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से उत्तम विरेचन हो जाता है। यह उदर की शुद्धि करता है। इस चूर्ण के खाने से उदरगत मल निकलकर, चित्त की प्रसन्नता, शरीर में स्फूर्ति तथा उत्साह आदि गुणों की प्राप्ति होती है। शतसोऽनुभूतः

(६) रेचन चूर्ण

जलापा हरड़ आध पाव को लेकर, उसका वस्त्रछन चूर्ण बनालें। इसके उपरान्त चूर्ण के समभाग खाण्ड मिलाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान— ६ माशे से एक तोला तक, सौंफ के जल के साथ सेवन करें।

गुण— इस चूर्ण से सरलता पूर्वक बिना किसी कष्ट के रेचन हो जाता है। १ तोला की मात्रा में सेवन करने पर ५-६ विरेचन(दस्त) हो जाते हैं। परन्तु यह जलापा हरड़ नवीन लेनी चाहिए। पुरानी होने पर पूर्ण लाभप्रद नहीं होगी। शतसोऽनुभूतः ॥

(७) इन्द्रयवादि वटिका

इन्द्र जौ, भुना हुआ सुहागा, कुसुम के बीजा इन तीनों द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर, वस्त्रछन चूर्न बना लें। इसके उपरान्त त्रिफला के क्वाथ में एक दिन मर्दन करके १-१ माशा प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान— २ से ४ वटी तक, कुसुम के जल के साथ।

गुण—आन्तों की निर्बलता आदि के कारण जिन मलावरोध के रोगियों को सदा विबन्ध रहता हो, उनके लिये इन्द्रयवादि वटी अत्युपयोगी है। इसके सेवन से अधोवायु का अवरोध नहीं होता और सुखपूर्वक पूर्ण सन्तोष के साथ मल का विसर्जन हो जाता है। यह वटी उदर के रोगों को नष्ट करने के लिए अत्युत्तम है। जिन स्त्रियों को ऋतु धर्म अनियमित रूप से होता है अथवा कष्ट पूर्वक मासिक धर्म होता है,उनके लिए यह वटी लाभप्रद है। आमवात जैसे भयंकर रोग में भी यह योग लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यह योग अल्पश्रम साध्य होने पर भी उत्कृष्ट गुणप्रद सिद्ध हुआ है। यह विद्याधर विरेचन योग है। शतसोऽनुभूतः ॥

(८) वचादि प्रयोग

वचा तथा सौंफ-इन दोनों को समभाग लेकर, वस्त्र छन चूर्ण बना कर, सुरक्षित रख लें। **मात्रा तथा अनुपान**–१ से २ माशे तक, घृत तथा शक्कर के साथ मिलाकर सेवन करावें। **गुण**–इस प्रयोग के सेवन से, अग्निमान्द्य जनित उदर का फूलना, गुड़-गुड़ाहट, आदि विकार नष्ट होते हैं। इससे वमन न होकर विरेचन होता है।

(९) ईषद् गोल प्रयोग

ईसबगोल २ से ८ माशे तक दूध अथवा जल के साथ सेवन करने से मलावरोध, अतिसार, रक्तातिसार आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं। अनुभूत है। इससे सुख-पूर्वक उदर शोधन होता है।

मन्दाग्नि और अजीर्ण रोग में पथ्यापथ्य

पथ्य—शुद्ध वायु मण्डल में निवास, पवित्र मनोभाव, ईश्वर भक्ति, नाम जप, गायत्री पुरश्चरण, हवन, स्वाध्याय, सत्संग, ब्रह्मचर्य, धैर्य, शान्ति आदि श्रेष्ठ भावों को आचरण में लाना, यौगिक आसन, सूर्य नमस्कार, भ्रमण आदि में से किसी एक वा दो व्यायाम को यथा रुचि करना, प्रातः सायं समय स्वच्छ वायु में दीर्घ श्वास प्रश्वास, प्राणायाम का अभ्यास करना अच्छा है। आहार द्रव्यों में—मूंग की दाल, लाल चावल, मूली, बथुआ, पालक, मट्ठा, लौकी, परवल, केला, अनारदाना, सन्तरा, नींबू आमला, हरड़, काली मरिच,शुण्ठी, अदरक, सैंधव लवण आदि पदार्थ हितकर हैं।

अपथ्य—अशुद्ध वायु मण्डल में निवास, मलिन मनोभाव, नास्तिकता, कुग्रन्थों को पढ़ना, रात्रि जागरण, अधीरता, अकर्मण्य जीवन, क्रोध, शोक, चिन्ता, ईर्ष्या, अधिक भोजन करना, गरिष्ठ, बासी, मलिन, अधिक मसाले, मांस, मछली आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं। मन्दाग्नि रोग में अधिक जल पीना उत्तम नहीं होता। भोजन करके तुरन्त पानी पीना नेष्ट है। भोजन के एक घण्टा के पश्चात् जल पीना प्रशस्त है। ●

अथ-विसूचिका-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥११॥

सूचीभिरिव गात्राणितुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः ।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते हि विसूचिका ॥ सुश्रुत संहिता उ०त०अ० ५६/४॥

विसूचिका का निर्वचन

जिस रोग में अजीर्ण होने के कारण वायु प्रकुपित होकर व्यक्तियों के शरीर के अङ्गों में सूई चुभने के तुल्य वेदना उत्पन्न कर देती है उसको प्राचीन वैद्य "विसूचिका" रोग कहते हैं। हैजा नाम से यह प्रसिद्ध है। अंग्रेजी में इस व्याधि का नाम कॉलरा है। यह संक्रामक भयंकर रोग है।

विसूचिका रोग के कारण

अधिक मात्रा में खाना, पूर्व भोजन के पचे बिना ही खाना, बासी, मलिन, दुर्गन्धियुक्त खाद्य द्रव्यों का सेवन करना, अपवित्र जल सेवन करना, अत्यधिक परिश्रम करना अथवा अकर्मण्य जीवन व्यतीत करना, रात्रि में अधिक जागना, अत्यधिक मादक द्रव्यों का सेवन करना, मलिन स्थान में निवास, अत्यधिक गर्मी होना, वायु का रुक जाना, विसूचीग्रस्त व्यक्तियों को देखकर भयभीत होना, अधिक उपवास करना, शरीर में स्वेद रहते हुए तुरन्त शीतल जल पीना अथवा शीतल जल से स्नान करना आदि अनेक कारणों से विसूचिका रोग की उत्पत्ति होती है।

विसूचिका रोग के भेद

हैजे को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। १–प्रथम अवस्था, २–द्वितीय अवस्था और ३–तृतीय अवस्था—ये तीन श्रेणी होती हैं। लक्षणों के अनुसार इन तीन अवस्थाओं को संक्षेप से नीचे लिखा जाता है—

१—प्रथम अवस्था

विसूचिका रोग के प्रारम्भ में रोगी का चित्त भयभीत होने लगता है। अतिसार में बार-बार अधिक मल निकलता है। प्रारम्भ में साधारण मल आता है किन्तु पीछे चावलों के मण्ड के सदृश पतला मल आता है। वमन होती है, मुख से खाया-पिया आहार सब निकल जाता है। कुछ समयोपरान्त वमन में पानी के समान बार-बार द्रव पदार्थ आता है। अतिसार तथा वमन एक ही साथ होते रहते हैं।

२—द्वितीय अवस्था

इस अवस्था में अतिसार और वमन—ये दोनों प्रबल हो जाते हैं। शरीरगत जलीयांश के अधिक निकल जाने के कारण देह में पानी का अभाव हो जाता है। इससे रक्त सचालन क्रिया समुचित प्रकार से नहीं हो पाती। रोगी के वक्षःस्थल

तथा कण्ठ में प्रदाह होता है। उसके उदर में सूई चुभने के समान तीव्र वेदना होती है। पेट के सम्पूर्ण नाड़ी मण्डल में ऐंठन, खिचाव तथा पीडा होने से आतुर की व्यथा असह्य होती जाती है। इससे उसका चित्त चञ्चल और अशान्त होकर धैर्यहीन बन जाता है। रोगी अपने हाथों तथा पैरों को इधर-उधर पटकता है और असम्बन्ध भाषण करता है। यह अवस्था अत्यधिक कष्टप्रद है। अनेक व्यक्ति इसी दशा में दिवङ्गत हो जाते हैं। विसूचिका की द्वितीय अवस्था में रोगी को मूत्र-बन्ध होता है, नाड़ी की गति मन्द पड़ जाती है—इत्यादि लक्षण देखे जाते हैं।

३—तृतीय अवस्था

विसूचिका व्याधि की तीसरी दशा में रोग प्रबल रूप में हो जाता है। इस समय रोगी के शरीर का तापमान अल्प हो जाता है। उसकी बाह्य चेतना लुप्तप्राय: हो जाती है। बाह्य शरीर का बोध उसे नहीं होता। उस समय अपने पराये का ज्ञान नहीं रहता। अतिसार तथा वमन बन्द हो जाते हैं अथवा अतिन्यून होते हैं। रोगी का मूत्र सर्वथा अवरुद्ध हो जाता है। उसकी आँखें अन्दर गड्ढों में चली जाती हैं। नाड़ी की गति प्रक्षीण हो जाती है। पिपासा (प्यास) अधिक लगती है। जल पीने के लिए रोगी तड़फता है। कण्ठ बैठ जाता है। शब्दों को उच्चारण करने की शक्ति नहीं रहती। शरीर में जलीयांश का सर्वथा अभाव हो जाने से रक्त की अल्पता हो जाती है। रुधिर में विकार आ जाता है। इससे रोगी के नख तथा ओष्ठ काले वा नीले पड़ जाते हैं। शरीर में वायु अत्यधिक बढ़ जाने से शिर घूमता है। कानों में अनेक प्रकार के शब्दों का श्रवण होता है और रोगी स्वप्न के समान अनेक प्रकार के इष्ट अनिष्ट दृश्य देखता है। शरीर के अङ्ग शीतल पड़ जाते हैं। शरीर में कम्पन, हृदय प्रदेश में तीव्र वेदना आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—

(१) अर्ककर्पूर

रेक्टिफाइड स्प्रिट २४ तोले, कर्पूर ५ तोले तथा पिपरमेण्ट का तैल २ तोले लें। सर्वप्रथम कर्पूर के छोटे-छोटे खण्ड कर लीजिये। इसके उपरान्त—इन तीनों को बड़ी शीशी में डालकर, डाट लगा कर, शीशी को हिलाइये। सम्यक् प्रकार से सम्मिश्रण होने पर इसे प्रयुक्त करिये। यह विशुद्ध तथा अत्युपयोगी "अर्ककर्पूर" है। इसे ५ से १० बिन्दु तक बतासे में डालकर रोगी को खिला दें। प्रत्येक घण्टे वा दो-दो घण्टे के अन्तर से इस प्रकार अर्ककर्पूर को सेवन कराने से विसूचिका रोग में अत्यधिक लाभ होता है। यह रोग की प्रथम अवस्था के लिए हितकर है। इसके सेवन से अतिसार और वमन की वृद्धि नहीं होती। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि—अर्ककर्पूर को सेवन करने के उपरान्त न्यून से न्यून आध घण्टे तक जलपान नहीं करना चाहिए। औषधि लेने के आध घण्टे के पश्चात् थोड़ा-थोड़ा जल सेवन किया जा सकता है। चि० च०।

(२) पलाण्डु रस प्रयोग

पलाण्ड (प्याज) का स्वरस २ तोले निकाल कर, रोगी को पिला दीजिए। इस प्रकार से आध-आध घण्टे के अन्तर से पलाण्डु (प्याज) का सद्यः प्राप्त (ताजा) रस पिलाते रहिये। यह रोग की प्रारम्भिक अवस्था में लाभप्रद है।

(३) पलाण्ड्वादि सार (अर्क)

पलाण्डु एक सेर, सौंफ चार सेर, हरा पुदिन एक सेर, आलु बुखारा आध सेर, लवङ्ग, छोटी इलायची और देशीय कर्पूर—एक-एक छटांक, श्वेत चन्दन का चूर्ण, तवाशीर—प्रत्येक २-२ छटांक, गुलाब के पुष्प आध सेर, बड़ी इलायची एक पाव, दाडिम बीज (अनारदाना) एक छटांक, दालचीनी २ तोले लें। इन तेरह औषधियों को यवकुट करके, १८ सेर जल में २४ घण्टे तक भिगोये रखिये। इसके उपरान्त नाडिका यन्त्र (भवका) के द्वारा अर्क निकाल कर शीशी में भर लीजिए।

मात्रा—२ से ४ तोले तक—रोगी की अवस्था, बल आदि को विचार कर दें।

गुण—इस प्रयोग से विसूचिका में अत्युत्तम लाभ होता है। इसके सेवन से अतिसार, वमन, मूत्रविबन्ध, कण्ठ आदि स्थानों का प्रदाह आदि उपद्रव शान्त होते हैं। प्रकृत व्याधि को नष्ट करने के लिए यह प्रयोग श्रीराम बाण के समान अव्यर्थ है। इसे सभी अवस्थाओं में प्रयोग करना चाहिए। अनुभूत प्रयोग है। वैद्यवृन्द परीक्षा करें।

(४) विसूचिकाहरी वटिका

लाल मरिचों के छिलकों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण २ तोले, घी में भुनी हुई हीरा हींग २॥ तोले, भीमसेनी कर्पूर २ माशे, शुद्ध अफीम १ माशा, चन्द्रोदय ३ माशे (अभावे—रससिन्दूर वा शुद्ध हिंगुल लें)—इन समस्त द्रव्यों को लेकर खरल में एकत्र डाल कर ३ घण्टे तक दृढ़ता से मर्दन करें। इसके उपरान्त इसमें थोड़ा-थोड़ा पलाण्डु (प्याज) का रस डालते जाइये और घुटाई करते रहिये। इस प्रकार से पलाण्डु के रस को डालते हुए ४८ घण्टे तक स्थिरता से मर्दन करें। पश्चात् इसकी मूंग प्रमाण की वटिका बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, पाँच-पाँच मिनट के अन्तर से लवङ्ग के क्वाथ से दीजिए। लवङ्ग चूर्ण १ तोला को एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें। यह लवङ्ग क्वाथ है। इसके साथ इस वटी को दें।

गुण—इस वटी के सेवन से विसूचिका व्याधि में अच्छी सफलता मिलती है। केवल ४-५ वटियों को खाने के उपरान्त अतिसार, वमन, उद्वेष्टन (ऐंठन), तृषा, व्याकुलता आदि उपद्रवों में शान्ति होने लगती है। हमें इस वटी के उपयोग से ९०% प्रतिशत विसूची-पीड़ित रोगियों की चिकित्सा में सफलता मिली है। अनुभव सिद्ध है।

(५) मुस्तादि वटी

नागर मोथा, देशीय कर्पूर, छोटी पिप्पली–प्रत्येक एक-एक तोला, घृत में भुनी हुई हींग ½ तोला लें। इन का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। इसके उपरान्त जल के साथ चूर्ण को घोट कर, चणक प्रमाण की वटिका बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लीजिये

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी, आध-आध घण्टे के अन्तर से लवण जल के साथ सेवन करावें।

लवण जल निर्माण विधि— १ सेर जल को अग्नि पर गर्म करिये। जब यह जल उबलने लगे तो इसमें १। तोला सैंधव लवण डालकर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लीजिए और एक मिट्टी के पात्र में डाल कर, रखिये। यह "लवण जल" कहलाता है। उक्त मुस्तादि गुटिका के साथ अनुपान में इस लवण जल को दीजिये। इसे २॥ तोले की मात्रा में पिलाइए। जब रोगी को पिपासा लगे तब इसी जल को दें। इसे रोग शान्त होने के पीछे भी १–२ दिन तक पिलाना चाहिए। यह जल तृषा को शान्त करता है और विसूचिका रोग के लिये अत्युपयोगी है। "मुस्तादि वटी" के सेवन से विसूचिका रोग में अच्छा लाभ होता है। यह प्रयोग परीक्षित है। यह "मुस्तादि वटी" भावप्रकाश प्रोक्त है।

(६) शैवालादि गुटिका

शैवाल (सेवार-काई), जायफल, पिपरमेण्ट और श्वेतचन्दन–इन चार द्रव्यों को समान भाग लेकर, सूक्ष्म पीस लीजिये और जल के साथ घोट कर, चणक (चना) के समान गोली बना, छाया में सुखा कर, शीशी में सुरक्षित रखिये। **मात्रा**–१ से २ वटी तक प्रातः सायं लवङ्ग के क्वाथ के साथ सेवन करें।

गुण—यह वटी विसूचिका (हैजा) रोग के लिये उत्तम है। महामारी के रूप में जब कभी विसूचिका रोग का आक्रमण होता है, तो उस समय ग्राम के ग्राम नष्ट हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में यह वटी अत्युपयोगी सिद्ध हुई है। यह प्रयोग श्री रामकृष्ण जी वर्मा से प्राप्त हुआ है और हमारे द्वारा परीक्षित है।

लाक्षणिक-चिकित्सा

अतिसार नाशक उपाय—विसूचिका रोग में जो अतिसार होता है उसे अफीम घटित योगों के द्वारा वा अन्य पुरीष संग्राही तीव्र प्रयोगों से बन्द करना अच्छा नहीं। यदि स्वाभाविक आते हुए मल को तीव्र औषधि देकर अवरुद्ध कर दिया जायगा; तो रोगी को वमन (कै) अधिक होते हैं, उदर फूल जाता है। अथवा अल्प समय तक बन्द रहने के उपरान्त और भी अधिक मात्रा में अतिसार (दस्त) आते हैं। अतएव अतिसार को रोकने के लिये प्रारम्भ में तीव्र प्रयोग न दीजिये। ऐसी अवस्था में दीपन-पाचन औषध-योग अल्प मात्रा में प्रयुक्त किये जाने उचित होते हैं। नीचे अतिसार के लिये उपयोगी उपाय लिखे जा रहे हैं।

(७) पुदिन पानक

पुदिने का स्वरस आधा सेर को अग्नि पर उष्ण कर लें। जब यह रस अग्नि से फट जाय तो इसे नीचे उतार कर, वस्त्र से छान लीजिये। इसके उपरान्त इस छने हुए जल में एक सेर खाण्ड डाल कर आग पर चाशनी सिद्ध कर लें। चाशनी बन जाने पर इसे अग्नि से नीचे उतार कर — इसमें शुण्ठी, काली मरिच, पिप्पली, प्रत्येक १-१ तोला, सोंफ, शुद्ध सुहागा, पत्रज, छोटी एलायची, और सैंधवलवण–

प्रत्येक ६-६ माशे —इन समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर, शीशी में सुरक्षित रखिये। **मात्रा**–६ माशे से १ तोला तक, दिन में ३ व ४ बार तक प्रयोग करें।

गुण—इस पुदिन पानक के सेवन से विसूचिका में होने वाला अतिसार तथा वमन नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त संग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, मलावरोध के लिये भी यह हितकर है।

(८) अर्कादि वटी

अर्क (मदार) की जड की छाल और काली मरिच–दो-दो तोले लेकर सूक्ष्म पीस लीजिये और अदरक के रस में ३ घण्टे तक मर्दन करके २-२ रत्ती प्रमाण की गुटिका बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, दिन में ३-४ बार, पलाण्डु (प्याज) के रस में दें।

गुण—यह गुटिका विसूचिका व्याधि के लिये अच्छी है। इससे अतिसार तथा वमन में शान्ति होती है। इस प्रयोग के सेवन से अनेक बार मरणासन्न रोगी भी स्वस्थ हो जाते हैं। अनुभूत है।

(९) अजादुग्धादि प्रलेप

अजा (बकरी) का दूध और करेले के पत्तों का रस—प्रत्येक ६-६ माशे लेकर दोनों को एकत्र मिला कर, रोगी की नाभि पर लेप लगाने से सभी प्रकार के अतिसार में लाभ होता है।

वमन की चिकित्सा

विसूचिका (हैजा) रोग में अतिसार के साथ ही वमन भी होता है। वमन को शान्त करने के लिए कतिपय प्रयोग लिखे जाते हैं–

(१) करेले के पत्रों का रस६ माशे से १ तोला तक और काली मरिच ७ दाने का चूर्ण–इन दोनों को एकत्र मिलाकर, रोगी को पिलाने से वमन (कय) बन्द होती है।

(२) ताम्रादि वटिका—ताम्रभस्म २ तोले, बंगभस्म १ तोला —दोनों को एकत्र मिलाकर, मधुयष्टी (मुलहठी) के क्वाथ की सात भावना देकर, एक-एक रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ वटी तक, **अनुपान**–मुस्तादि क्वाथ के साथ दें।

(३) मुस्तादि क्वाथ—नागर मोथा, उसवा, छोटी इलायची तथा नाग केशर—इनको समान भाग और समस्त द्रव्यों के तुल्यभाग धानों की खील लेकर एकत्र मिलालें। इसे यवकुट चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को १ तोले की मात्रा में लेकर १ पाव जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर, मर्दन करें और छान लें। इसके उपरान्त इसमें मिश्री और मधु मिला कर (ताम्रादि गुटिका खिलाकर) ऊपर से इस क्वाथ को दो बार में २॥-२॥ तोला पिलाइये।

गुण—ताम्रादि वटी को इस क्वाथ के साथ सेवन करने से उग्र वमन, तृषा तथा वात की अधिकता में शान्ति होती है।

(४) **छर्दिहरावलेह**—नारियल की जटा १ तोला, छोटी एलायची, बड़ी एलायची, बहेड़े की गिरी–प्रत्येक १२-१२ नग, मयूर पुच्छ का चन्दोवा (नेत्राकार, विविधवर्ण, चमकीला भाग जो मोर की पूँछ में रहता है उसे ग्रहण करें) १२ नग, इन पांच द्रव्यों को लें। प्रथम नारियल की जटा और मयूर पुच्छ की भस्म बना लें इसके उपरान्त बड़ी एलायची को भून लीजिए। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्र छन चूर्ण बनाकर, इसमें भस्म मिलाकर, मर्दन करें। ३ घण्टे तक दृढता से घोटने के पश्चात् इसमें इतनी मात्रा में मधु मिला लीजिये; जिससे यह अवलेह (चटनी) बन जाय। मधु के साथ औषधि को मिलाकर, घोट लीजिये और शीशे के पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लीजिये।

मात्रा– १ से ३ माशे तक, १५-१५ मिनट के अन्तर से रोगी को चटाइये।

गुण—यह अवलेह सभी प्रकार के वमन को नष्ट करता है। अनेक बार वमन-ग्रस्त रोगी को छर्दिनाशक विविध प्रयोग करने पर सफलता नहीं होती। बहुत प्रकार से चिकित्सा करके भी रोग नष्ट नहीं होता है, ऐसी अवस्था में इस अवलेह को सेवन करने से अवश्य लाभ होना है। यह प्रयोग सैंकड़ों बार का अनुभूत है। किसी भी कारण से होने वाले वमन (उलटी-कय) को शान्त करने के लिये यह "छर्दिहरावलेह" उत्तम है।

तृषा का प्रतीकार—क्योंकि विसूचिका रोग में शरीर का जलीयांश अतिसार तथा वमन के द्वारा बाहर निकल जाता है; अतएव शरीर में जल का अभाव होता है। शरीर में जल की न्यूनता के होने से रोगी की तृषा अत्यधिक बढ़ती जाती है। रोगी जल के लिये विशेष आग्रह करता है। ऐसे समय पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि विसूचिका (हैजा) के रोगी को शीतल पानी कदापि नहीं देना चाहिये। उसके लिये लवङ्गादि उत्तम औषधि से सिद्ध किया गया पानी स्वल्प मात्रा में देना इष्ट है। एक साथ ही बहुत जल न पिलाया जाय। तोलों की मात्रा में थोड़ा-थोड़ा पानी पिलाना विधेय है। यहाँ पर पिपासा को शान्त करने के लिये कुछ उपाय लिखे जाते हैं।

१–लवङ्ग का चूर्ण १ तोला लेकर आधा सेर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लीजिये और इस छने हुए जल को मिट्टी के पात्र में डाल कर, ढक कर रखिये। इस क्वथित जल को थोड़ा-थोड़ा रोगी को पीने के लिए दीजिये। यह जल पिपासा को शान्त करता है। इस जल के सेवन से वमन में भी लाभ होता है।

२—जायफल, नागरमोथा, अर्कमूल की छाल, अपामार्ग की जड़—इनमें से किसी एक औषधि को १६ अथवा ३२ गुणा जल में मन्दाग्नि पर पकाकर चतुर्थांश

शेष को छान कर अल्प-अल्प पिलाने से तृषा का शमन होता है।

३–अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की छाल को जलाकर निर्धूम कोयले बना लीजिये। इसके उपरान्त एक मिट्टी के पात्र में जल डालकर, इसी जल में उन प्रज्वलित निर्धूम कोयलों को डाल दीजिये। अल्प समय के पश्चात् इसे दूसरे मिट्टी के पात्र में छान कर, ढक कर, रखिये। आवश्यकता के अनुसार इस जल को अल्प-अल्प करके रोगी को पीने के लिये दीजिए। इस जल के सेवन से पिपासा (प्यास) में अच्छा लाभ होता है। यह जल वमन तथा सभी प्रकार की तृषा को शान्त करता है। **वक्तव्य**-यदि पुराने पीपल की छाल उपलब्ध हो सके, तो अत्युत्तम है। यह छाल शुष्क लेनी चाहिये; आर्द्र नहीं।

४—अर्ककर्पूर, वा आरोग्य धारा की ४ बिन्दु गुलाब के जल में देने पर तृषा शान्त होती है।

५—नीम के डण्ठल ५ नग, काली मरिच के २ दाने–इन दोनों को एकत्र मिला कर, एक माशा जल के साथ सूक्ष्म पीस लीजिये। अच्छी प्रकार से घुटाई होने पर जब यह गोली बनाने के योग्य हो जाय; तो बेर के समान गुटिका बनाकर, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, १५-१५ मिनट के अन्तर से, गुलाब जल २ तोले के साथ सेवन करावें।

गुण—यह निम्बवटी पिपासा (प्यास) को शान्त करती है। इसके सेवन से तृषा अवश्य शान्त हो जाती है। अनुभूत है।

(६) निम्बुक प्रयोग

निम्बू का रस १ तोला, पुरानी इमली ६ माशे लें। बीज और सूत से रहित इमली को सूक्ष्म पीस लें और निम्बू के रस को डाल कर, घुटाई करें। उत्तम प्रकार से मर्दन होने पर रोगी को पिला दीजिये। इस प्रयोग से तृषा नष्ट हो जाती है।

(७) जातिफलादि क्वाथ

जातिफल (जायफल), लवङ्ग और नागर मोथा–इन तीनों को समभाग लेकर, यवकुट चूर्ण बना कर, रखिये। इसमें से १ तोला चूर्ण को १ पाव जल में मन्दाग्नि पर क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर, इसे २ बार में पिलाइये।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से प्रथमावस्था की तृषा में लाभ होता है।

(८) पलाण्डु प्रयोग

एक नग पलाण्डु (प्याज), काली मरिच ६ दाने–इन दोनों औषधियों को कुण्डी में डालकर स्थिरता से घुटाई करिये। इसकी जितनी अधिक घुटाई होगी; औषधि उतनी ही अधिक उपयोगी बनेगी (मर्दन गुण वर्धनम्)। सम्यक् प्रकार से घुटाई होने के उपरान्त इसे बिना छाने ही रोगी को पिला दें। यह एक मात्रा है।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से विसूचिका की द्वितीय अवस्था में उत्पन्न हुई

तृषा, व्याकुलता, आदि उपद्रव तुरन्त शान्त होते हैं। यह औषधि जैसे ही उदर में जायगी इसका तुरन्त प्रभाव होगा।

मूत्रावरोध की चिकित्सा

विसूचिका रोग का प्रबलतम उपद्रव है—"मूत्र का अवरोध"। शरीर में जलाभाव होने से मूत्राघात उत्पन्न हो जाता है। अन्य उपद्रवों के सदृश ही इस उपद्रव का प्रतीकार होना आवश्यक है। अतएव मूत्रावरोध को नष्ट करने के लिये वैद्य-वृन्दारक प्रयत्नशील रहें। प्रकृत उपसर्ग में कतिपय हितकर प्रयोग लिखे जाते हैं।

(अ)—कठूमर के पत्रों का रस १ तोला और कलमी शोरा एक माशा—इन दोनों को एकत्र मिलाकर पिलावें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से दिन में २-३ बार सेवन करावें।

(आ) गोखरू, ककड़ी के बीज, और जवासा—इन तीनों को समान भाग लेकर, यवकुट चूर्ण बनावें। पश्चात् इस चूर्ण में से १ तोला चूर्ण लेकर एक पाव जल में मन्दाग्नि पर चतुर्थांश शेष क्वाथ सिद्ध कर, छान लें और इसमें १॥ माशा कलमी शोरा मिला कर, रोगी को दो बार में पिला दें। इस प्रकार से दिन में ३-४ बार सेवन कराने से मूत्राघात नष्ट होता है।

(इ) कोमल अपक्व लौकी का पकाया हुआ जल २॥-२॥ तोले दिन में ३-४ बार दें। इससे मूत्र होने लगता है।

(ई) यवक्षार १ रत्ती और मधु ६ माशे—इन दोनों को श्रृतशीत जल में मिलाकर रोगी को पिला दीजिये। यह मूत्राघात में हितकर है।

(उ) केवल यवक्षार को श्रृतशीत जल में मिला कर, पिलाने से भी मूत्रबंध नष्ट होता है। **वक्तव्य**—अग्नि पर पका करके शीतल किये हुए जल को "श्रृतशीत जल" कहते हैं।

उद्वेष्टन का प्रतीकार—विसूचिका रोग में हाथ, पैर, उदर आदि अङ्गों की मास-पेशियों में जो ऐंठन जन्यवेदना होती है, उसे "उद्वेष्टन" कहते हैं। यह पीड़ा उपद्रव रूप में होती है। इसमें नीचे लिखे उपाय उपयोगी हैं—(१) तारपीन के तैल में अफीम मिला कर, अल्पोष्ण करके इसे वेदना के स्थान पर मर्दन करें। (२) सरसों का तैल और तारपीन का तैल—दोनों को समभाग लें। इसमें जायफल और ताम्बा घिसें। घिसने पर जब जायफल तथा ताम्बे का कुछ अंश तैल में समाविष्ट हो जाय, तब इसे उष्ण करके पीड़ा-स्थल पर मर्दन करें। यदि समय पर तारपीन के तैल का अभाव हो तो केवल सरसों के तैल में उक्त दोनों द्रव्यों को घिस कर, उष्ण करके इसे वेदना स्थल पर मर्दन करना भी ऐंठन में उपयोगी है।

शीताङ्ग अवस्था के लिए उपयोगी प्रयोग

अवधूलन—कायफल, भुनी हुई सोंठ, कुलथी, कौड़ी भस्म, सीप भस्म और उपलों की भस्म—इन ६ द्रव्यों को समान भाग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण

बनाकर, सबको एकत्र मिला लीजिये। इसे अल्पोष्ण करके शरीर के अङ्गों पर मर्दन करिये। शरीर में जब कभी शीतलता अधिक आ जाती है। स्वाभाविक शरीर का तापमान समाप्त होकर देह के अङ्ग शीतल पड़ जाते हैं; जैसा कि—विसूचिका रोग में होता है। ऐसी अवस्था चाहे किसी भी रोग में क्यों न हो; उस समय इस अवधूलन के प्रयोग से तुरन्त लाभ होता है। इसके अतिरिक्त जब रोगी के हाथ, पैर आदि अङ्गों में प्रस्वेद अधिक निकलता हो, तो इसे मलने से तथा उन अङ्गों पर इसे बिखेरने से स्वेद आना रुक जाता है। इस प्रकार से—शीताङ्ग होने पर और शरीर से प्रस्वेद अधिक निकलने पर—इन दोनों अवस्थाओं में यह प्रयोग अत्युपयोगी है।

अचेतना निवारण करने के लिए उपाय—विसूचिका व्याधि में जब रोगी का बाह्य ज्ञान नष्ट हो जाता है; तो उसे अपने पराये का कुछ भी बोध नहीं रहता। ऐसी अवस्था में—सिरका तथा शीतल जल–इन दोनों को मिला कर, इसमें वस्त्र की दो पट्टियाँ भिगो दें। इस भीगी हुई पट्टी को रोगी के सिर पर रखिये। शुष्क होने पर प्रथम पट्टी को हटा दें और दूसरी को रख दें। इस प्रकार से पट्टियों को परिवर्तित करते हुए रोगी के शिर को कुछ समय तक आर्द्र रखिये। इस प्रयोग से अचेतना का निवारण होकर चैतन्य लाभ होता है।

विसूचिका की चरम-अवस्था नाशक प्रयोग

(१) नरसारादि गुटिका

अग्नि पर फुलाया हुआ नरसार (नवसादर), शुद्ध गेरू और काली मरिच—इन तीनों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये और मद्यसार (ब्राण्डी सुरा) में आठ घण्टे स्थिरता से मर्दन करें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने के उपरान्त जब यह वटी बनाने योग्य हो जाय; तो चणक प्रमाण की गोली बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लीजिये। **मात्रा और अनुपान**—१ से २ वटी तक, उबाल करके शीतल किये हुए जल के साथ दिन में २-३ बार दें।

गुण—इस वटी को प्रकृत रोग की प्रबल अवस्था में देना हितकर है। विसूचिका रोग की तृतीय अवस्था में जब जीवन-आशा समाप्त हो चुकी हो, तो इस वटी का प्रयोग करना चाहिये। साधारण अवस्था में इसका प्रयोग न करिये। इसके सेवन से हैजे का उग्र वेग शान्त होता है। शीताङ्ग आदि लक्षण समाप्त होते हैं। इससे कुछ समय उपरान्त रोगी को ज्वर आ जाता है। ज्वर के उत्पन्न होने से हैजे का विष क्षीण होता है। तदुपरान्त आतुर के ज्वर की चिकित्सा करनी अभीष्ट है।

(२) ताम्रेश्वरादिवटी

उत्तम ताम्रेश्वर ४ माशे, बीजपुर की जटा १ माशा, शुण्ठी २ माशे, काली मरिच ३ माशे, पिप्पली ४ माशे, हरिद्रा १ माशा, गजपिप्पली २ माशा, करंज के

बीज ३ माशे, जायफल ४ माशे, जावित्री ५ माशे, घी में भुनी हुई हींग ६ माशे, लशुन ८ माशे—इन १२ द्रव्यों को लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, समस्त औषधियों को एकत्र मिला दें और मर्दन करें। इनके उपरान्त अदरक के रस में १२ घण्टे दृढ़ता से घोटें। उत्तम घुटाई होने के उपरान्त जब यह वटी बनाने योग्य हो जाय; तो २-२ रत्ती प्रमाण की गुटिका बना कर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी दिन में २-३ बार, अजवाइन और पुदिन के रस वा क्वाथ के साथ दें।

गुण—यह वटी विसूचिका व्याधि में अत्युत्कृष्ट औषधि है। हैजे की भयङ्कर अवस्था में इसके प्रयोग से तुरन्त लाभ होता है। औषधि सेवन के एक घंटे के पश्चात् इसका प्रभाव होने लगता है। विसूचिका रोग को नष्ट करने के लिये सिद्ध महौषधि है।

विसूचिका व्याधि से निर्मुक्त रोगी के लक्षण—प्रभु की अनुकम्पा से तथा शुभकर्मों के उदय होने से जो रोगी विसूचिका रोग से निर्मुक्त होते हैं उनमें प्रारम्भिक ये लक्षण पाये जाते हैं—"रोगी के मल का वर्ण पीला हो जाता है। क्षुधा प्रदीप्त होती जाती है और रोगी को ज्वर आने लगता है।" इन लक्षणों के प्रकट होने पर यह जाना जाता है कि—अब रोगी स्वस्थ हो जायगा। ऐसी अवस्था में विचार पूर्वक पथ्य का सेवन और अपथ्य का परित्याग करना चाहिए। यदि कुपथ्य का सेवन किया जायगा, तो पुनः रोग की आवृत्ति होगी।

विसूचिका व्याधि में पथ्यापथ्य

रोगी को भूमि पर न सुलाया जाय। ओढने के लिए उसके वस्त्र उष्ण हो। शीत मे रक्षा करें। उसे किसी भी प्रकार का श्रम करना उचित नहीं है। रोगी के मल, मूत्र, वमन करने की व्यवस्था उसी स्थान पर करनी योग्य है। मल, मूत्र और वमन का फिनाइल आदि के साथ मिला कर, दूर स्थान पर डालना इष्ट है। रोगी के समीप अधिक व्यक्तियों का आना-जाना अनुचित है। परिचारक के लिए यह आवश्यक है कि—वह रोगी के मल आदि को दूर डालने के उपरान्त विशुद्ध भस्म, कारबोलिक साबुन आदि के द्वारा अपने हाथों को स्वच्छ करे। विना स्वच्छ किये हुए हाथों से—अपने मुख, नासा और खाद्य द्रव्यों वा पेय पदार्थों को कदापि स्पर्श न करे। रोगी के श्वास-प्रश्वास से कुछ दूर रहे। हैजे की अवस्था में परिचारक आदि सभी व्यक्तियों के लिए उबाले हुए जल को पीना हितकर है। शीतल पानी सेवन करना अनिष्टकर है। रोगी के निवास कक्ष में—कर्पूर, लोबान, गुग्गुलु, कर्पूरयुक्त निम्बपत्र आदि सुगन्धि युक्त और कृमिनाशक द्रव्यों को जलाने से रोग-निवारण मे अच्छा सहयोग प्राप्त होता है। यदि नित्य हवन किया जाय, तो सर्वोत्तम है। क्योंकि विसूचिका संक्रामक व्याधि है, अतएव इसमें अन्य व्यक्तियों को भी सर्वदा सावधान रहना विधेय है।

जब तक रोग की पूर्ण निवृत्ति न हो जाय, तब तक रोगी को कोई खाद्य वस्तु नहीं देनी चाहिए। उस समय उसे पुदिने का रस, प्याज का रस, उबाल कर शीतल किया हुआ जल, लवङ्ग क्वाथ आदि सेवन कराना अच्छा है। इनको भी यथासम्भव न्यून मात्रा में देना इष्ट है। विसूचिका में जल को अधिक मात्रा में सेवन करना अहितकर होता है।

रोग-मुक्त हुए रोगी को जब क्षुधा की अनुभूति पूर्णरूपेण होने लगे; तो बुद्धि पूर्वक रोगी के आहार की योजना करें। क्योंकि रोगी की जठराग्नि मन्द होने पर पथ्य तथा मात्रा की उचित योजना के अभाव में दिया गया आहार पुनः रोग को उत्पन्न कर सकता है; अतएव आहार द्रव्यों की योजना बुद्धि पूर्वक ही करनी योग्य है। ऐसी अवस्था में रोगी को सर्वप्रथम चावलों की काञ्जी दें। पश्चात् पतला माण्ड, अरारोट, मूंग की दाल का पतला पानी, आदि सेवन करायें। आवश्यकता होने पर पथ्य के साथ "द्राक्षासव" अथवा मद्यसार (ब्राण्डी सुरा) दे सकते हैं। इनके पचने की सामर्थ्य होने पर खिचड़ी, चावल, दलिया आदि आहार सेवन करावें।

अपथ्य—घृत, घृतादि में तले हुए पदार्थ, खोवा, पर्युषित खाद्य पदार्थ, अधिक मात्रा में खाना, स्नान, मैथुन, अग्नि वा सूर्य की गर्मी का सेवन करना, व्यायाम, शोक, चिन्ता, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि अहितकर आहार विहार का परित्याग करना वाञ्छनीय है।

जो व्यक्ति अपनी बुद्धि को अहितकर आहार विहार से दूर रखते हुए युक्ति-युक्त आहार विहार करते हैं वे विसूचिका रोग से पीड़ित नहीं होते। विवेक बुद्धि के अभाव में ही हैजा आदि व्याधि का प्रसंग होता है। बुद्धि की पवित्रता होने पर रोगोत्पादक कारण के अभाव में व्याधि होने की सम्भावना ही नहीं होगी। इसके लिए बुद्धि की निर्मलता बनाये रखने का प्रयास करना मुख्यतम कर्त्तव्य है।

अथ पाण्डु-कामला-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम्॥१२॥

"पाण्डु" इस शब्द का अर्थ—श्वेत समन्वित पीतवर्ण अथवा पीताभ श्वेतवर्ण होता है। क्योंकि इस व्याधि के होने पर रोगी की त्वचा, नेत्र, मल, मूत्र आदि पाण्डुवर्ण के हो जाते हैं, अतएव इस व्याधि की संज्ञा पाण्डु हो गई है। पाण्डु शब्द उपलक्षण होने से पीत, हरित आदि वर्णों का भी बोधक होता है। इससे पाण्डु रोग में उत्पन्न होने वाले पीत, हरित आदि सभी लक्षणों का ग्रहण इसी शब्द से कर लिया जाता है। इसे "पीलिया" रोग भी कहते हैं।

पाण्डु रोग का निदान—जो व्यक्ति खटाई, लवण, लाल मरिच, राई, क्षार आदि पित्त प्रकोपक पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं, जो अधिक मद्य पीते हैं, जो व्यायाम, मैथुन और सूर्य तथा अग्नि की उष्णता का अत्यधिक सेवन करते हैं, जो मिट्टी का सेवन करते हैं; उन व्यक्तियों को पाण्डु रोग हो जाता है। जिन अहित आहार विहारों से व्यक्तियों के शरीर में पित्त प्रकुपित हो जाता है; वे अयुक्त आहार-विहार ही "पाण्डु रोग" के हेतु होते हैं।

पाण्डु रोग के लक्षण—अयुक्त आहार-विहार से पित्त, वात और कफ-ये तीनों दोष विकृत होकर, रक्त, त्वचा आदि को दूषित कर देते हैं। पित्त के दूषित होने से खाया हुआ आहार उचित प्रकार से नहीं पचता। आहार का यथोचित पाचन न होने के कारण भुक्त द्रव्य से रस, रक्त, मांस आदि का निर्माण भी नहीं होता। इससे शरीर में रक्त की अल्पता हो जाती है। मन्दाग्नि होती और क्षुधा का अभाव होता है। शरीर में रूक्षता आती है। प्रस्वेद का अवरोध हो जाता है। बिना श्रम किये ही शरीर में परिश्रान्ति (थकावट) रहती है। रोगी को अकारण ही क्रोध उत्पन्न होता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लगता है। रोगी बार-बार थूकता है। उसके शरीर की त्वचा, नेत्र, नख, मल तथा मूत्र-इनका वर्ण पीला वा हरा हो जाता है। ज्वर आने लगता है—इत्यादि लक्षण पाण्डु (पीलिया) रोग में देखे जाते हैं।

कामला रोग के कारण और लक्षण—कामला रोग पाण्डु के पश्चात् भी होता है और स्वतन्त्र रूप से भी होता है। पाण्डु रोग के उत्पन्न होने पर भी जो रोगी पित्त प्रकोपक आहार द्रव्यों को अत्यधिक मात्रा में सेवन करता है, उसका प्रकुपित हुआ पित्त रुधिर, मांस आदि को दूषित करके कामला व्याधि को उत्पन्न कर देता है। बिना पाण्डु रोग के उत्पन्न हुए भी स्वतन्त्र रूप से कामला रोग उत्पन्न होता है। स्वतन्त्र रूप से होने वाले कामला रोग के कारण में कोई अन्तर नहीं आता। किसी भी रूप में जब कभी यह रोग होगा; तो पित्त प्रकोपक आहार-विहार के सेवन से ही होगा। पाण्डु और कामला—इन दोनों रोगों के लक्षणों में अत्यधिक सादृश्य है।

पाण्डु रोग से कामला रोग के लक्षणों में कुछ ही अन्तर है। कामला रोगी के नेत्र, त्वचा, नख, मल, मूत्र—ये अधिक पीले हो जाते हैं और रक्ताल्पता भी विशेष हो जाती है। रोगी का वर्ण वर्षा कालीन मेंढक के समान पीला हो जाता है—इत्यादि लक्षण पाण्डु रोग की अपेक्षाकृत कामला में अधिक होते हैं।

चिकित्सा

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रकाः समाः।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं क्षौद्रसर्पिषा॥
भक्षयेत् पाण्डु हृद्रोग कुष्ठार्शः कामलापहम्।
नवायसमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण भाषितम्॥

च० सं० चि० १६/७०–७१

(१) नवायसलौह

शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली, बड़ी हरड़ का छिलका, आमला, बहेड़ा, नागर मोथा, वायविडङ्ग और चित्रक मूल की छाल—इन ९ द्रव्यों को १-१ भाग और कान्त लौह भस्म ९ भाग लें। प्रथम समस्त काण्ठौषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। इसके उपरान्त चूर्ण में लौह भस्म सम्मिश्रण करके, मर्दन करें। पश्चात् गोमूत्र में २८ घन्टे तक मर्दन करके २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना कर, छाया में शुष्क करके, शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये। इसे "नवायसलौह" कहते हैं। इसका द्वितीय नाम "नवायस चूर्ण" भी है।

मात्रा और अनुपान—१ से ४ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, ३ माशे मधु और ६ माशे घृत के साथ दें।

गुण—नवायस लौह के सेवन से पाण्डु, कामला, यकृत, प्लीहा, हृदय सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, अर्श—इन सब रोगों में अच्छा लाभ होता है। यह वात रक्त में "गुडूच्यादि लौह" के समान और प्रमेह में "विडङ्गादि लौह" के तुल्य लाभप्रद है। अनुपान भेद से अम्ल पित्त रोग को भी शान्त करता है। इस नवायस लौह को महर्षि कृष्णात्रेय जी ने कहा था। यह अनुभूत प्रयोग है।

(२) हंसमण्डूर रसायन

मण्डूर भस्म १३ तोले, हरड़, बहेड़ा, आमला, शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पीपल, नागर मोथा, चव्य, विडङ्ग, दारुहरिद्रा, चित्रक की छाल, देवदारु, और पिप्पली मूल—इन १३ द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण १-१ तोला लें। मण्डूर भस्म को समस्त काष्ठौषधियों के चूर्ण में सम्मिश्रण करके त्रिफला के क्वाथ में एक दिन दृढ़ता से मर्दन करें। इसके उपरान्त सम्पूर्ण औषधि की तोल से चतुर्गुण गोमूत्र में इसे डाल करके, चूल्हे पर चढ़ा कर, मन्दाग्नि पर पकावें। पकाते हुए इसे चलाते रहिये। आग को तीव्र न जलायें। मन्द-मन्द अग्नि पर पकाने से औषधि के गुण सम्पूर्ण रूप में विद्यमान रहते हैं। तीव्राग्नि देने पर औषधि गुणहीन सिद्ध होगी।

जब यह पूर्ण रूप से शुष्क हो जाय; तो इसे अग्नि से उतार कर, सुरक्षित रख लीजिए।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशे तक प्रातः सायं दिन में दो समय, मट्ठा के साथ सेवन करावें।

गुण—इस हंस मण्डूर रसायन के सेवन से पाण्डु, कामला, यकृत्, प्लीहा में अच्छा लाभ होता है। इससे मन्दाग्नि का क्षय और रक्त की वृद्धि होती है।

(३) अभ्रकादि रसायन

अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म और तुत्थ भस्म—प्रत्येक १-१ तोला, हल्दी का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण ४ तोले लेकर, सब द्रव्यों को एकत्र मिला कर, एक लोहे की कड़ाही में इस औषधि को डाल दें और उसमें गोमूत्र दस छटांक डाल कर, मन्दाग्नि पर पकाइये। जब पकने पर गोमूत्र शुष्क हो जाय; तो इसमें पूर्वोक्त हंस मण्डूर रसायन ८ तोले मिलाकर, अग्नि से नीचे उतार लें और ४-४ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करके, शीशी में सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, दिन में २-३ बार, गौ के मट्ठा के साथ दें।

गुण—यह रसायन पाण्डु, कामला, यकृत, प्लीहा—इन सभी रोगों में अत्युत्कृष्ट औषधि है। पाण्डु और कामला में इसके प्रयोग से निश्चित लाभ होता है।

(४) अर्कवटी

मदार (अर्क) के पत्र २५ नग लेकर, इनको स्वच्छ जल से धो लीजिये। इसके तुल्य भाग मिश्री लेकर, इन दोनों औषधियों को खरल में एकत्र डालकर, तीन दिन तक मर्दन करके, चणक प्रमाण की गुटिका बना कर, छाया में सुखा, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, दिन में ३ बार, मट्ठा के साथ सेवन करावें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से पाण्डु और कामला रोग शान्त हो जाता है। इसके सेवन से प्रथम दिन से ही रोगी को लाभ अनुभव होने लगता है। कुछ दिन तक इस वटी को निरन्तर सेवन करने से कष्ट साध्य पाण्डु रोग भी शान्त हो जाता है। इस व्याधि को नष्ट करने के लिए यह प्रयोग अमोघ है—अव्यर्थ है। यह एक अनुभवी महात्माजी से प्राप्त हुआ है और परीक्षित है।

(५) मधूकादि प्रयोग

मधूक (महुवा) के पुष्प, पुराना गुड़, गेहूँ और १०० वर्ष पुराने लोहे का जंग—इन चार द्रव्यों को सम भाग लें। इसके उपरान्त समस्त द्रव्यों को मिलाने पर जितना भार हो उससे अष्टगुणित जल में इन औषधियों को भिगो दीजिये। आठ दिन तक इनको भीगने दीजिये। इसके पश्चात् नवम दिन इनको हाथ से मर्दन करके,

वस्त्र से छान कर, इस छने हुए जल को सुरक्षित रख लीजिये। यही जल प्रयोग में लीजिये।

मात्रा—२-२ तोले प्रातः सायं दिन में दो बार रोगी को पिलाइये।

गुण—इस प्रयोग से पाण्डु और हलीमक रोग नष्ट हो जाते हैं। अनुभूत प्रयोग है।

(६) कटुका चूर्ण

कटुका (कुटकी) १० तोले और खाण्ड १० तोले लें। कुटकी का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर खाण्ड में चूर्ण को सम्मिश्रण करके, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला तक प्रातः सायं दिन में दो बार, जल के साथ खावें।

गुण—यह चूर्ण पाण्डु और कामला में अत्युपयोगी औषधि है। यह अल्प-परिश्रम साध्य होने पर भी प्रकृत व्याधि में अद्भुत लाभप्रद है।

(७) त्रिफला चूर्ण

बड़ी हरड़ का छिलका १० तोले, छोटी हरड़ १० तोले, आमला और बहेड़ा–१२-१२ तोले लेकर समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, वायु का प्रवेश न हो सके, ऐसे पात्र में इसे रख लीजिये।

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो बार, मट्ठा अथवा जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि आदि रोगों को नष्ट करता है। सुख साध्य होने से इस औषधि को निर्धन व्यक्ति भी बनाकर लाभान्वित हो सकते हैं। कुछ दिन तक निरन्तर इसका प्रयोग करने से पाण्डु रोग का अवश्य नाश हो जाता है।

(८) नस्य प्रयोग

वन्दाल (देवदाली) को लाकर, जल से स्वच्छ करलें और चतुर्गुणित जल में २४ घण्टे तक भिगोकर रखिये। इसके पश्चात् इसे हाथ से मर्दन करके, छान लें और मन्दाग्नि पर इसका सत्त्व बना लें। अग्नि पर पककर, जब यह गाढ़ा बन जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल करें और शीशी में सुरक्षित रख लें। इस सत्त्व को २ से ४ बिन्दु तक रोगी की नासिका में डालिए।

गुण—इस नस्य के प्रयोग से कामला रोग नष्ट हो जाता है। इसे तीन दिन तक नित्य प्रति नासिका में डालने से रोग में लाभ होता है।

वक्तव्य—इस नस्य का प्रथम दिन प्रयोग करने पर रोगी को ऐसा अनुभव होता है कि—मानो उसके ऊपर किसी भयङ्कर व्याधि का आक्रमण हो गया है। उस समय एक साथ शीत का प्रभाव विशेष होगा और नासिका से जल का स्राव

होगा। ऐसी अवस्था में रोगी अधीर न हो जाय; धैर्य को धारण करें। उक्त उपद्रव स्वयमेव शान्त हो जाते हैं।

पाण्डु और कामल रोग में पथ्यापथ्य

पुराने शालि चावल, गेहूँ-जौ की रोटी, चना और गेहूँ की रोटी, मूंग, अरहर और मसूर की दाल, पालक, बथुआ, लौकी, परवल, मूली आदि का शाक, अङ्गूर, अनार, सेव, निम्बू, गौ का मट्ठा, दही और मक्खन, उबाल करके शीतल किया हुआ जल, सैंधव लवण—आदि आहार द्रव्यों का सेवन करना उत्तम है। ब्रह्मचर्य, प्रातः सायं कुछ भ्रमण करना, चित्त की प्रसन्नता, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना वा सुनना, आस्तिकता आदि हितकर विहार करने से रोग निवारण शीघ्र होता है।

अधिक आहार करना, शीतल जल अधिक पीना, मांस, मछली, अधिक मसाले, लाल मरिच, पर्युषित (बासी) भोजन, शोक, चिन्ता, मैथुन, अकर्मण्य जीवन, क्रोध आदि से रोग की वृद्धि होती है।

अथ रक्तपित्त-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१३॥

रक्तपित्त रोग के कारण—अधिक व्यायाम करने से, शरीर द्वारा बहुत परिश्रम करने से, अधिक मार्ग चलने से, शोक, चिन्ता, मैथुन, क्रोध–इनको अत्यधिक करने से, सूर्य की गर्मी में अधिक रहने से, अग्नि का बहुत सेवन करने से, गर्म आहार खाने से, लाल मरिच, राई, सरसों, नमक, खटाई, क्षार, खली, आदि पित्त प्रकोपक आहार-पदार्थों को अत्यधिक सेवन करने से, अतिमात्रा में उष्णता होने आदि कारणों से पित्त दूषित हो जाता है। वह दूषित हुआ पित्त रक्त को भी विकृत कर देता है। पित्त तथा रुधिर के विकार-ग्रस्त होने पर मलिन रक्त शरीर से बाहर निकलने लगता है। कभी यह मुख, नासिका आदि शरीर के ऊर्ध्व छिद्रों से निकलता है और कभी गुदेन्द्रिय तथा मूत्रेन्द्रिय–इन दोनों मार्गों से निकलता है। जिस रोग में मुख, नासिका मूत्रेन्द्रिय तथा गुदेन्द्रिय आदि से शरीर का दुष्ट रक्त निकलता है; उसे "रक्तपित्त रोग" कहते हैं।

रक्तपित्त की ऊर्ध्वगति और अधोगति—यह दो प्रकार की गति होती है। मुख, नासा आदि शरीर के ऊपर वाले छिद्रों से निकलने वाले को ऊर्ध्वगति और शरीर के नीचे के दोनों मार्गों से निस्सरण होने वाला अधोगति रक्तपित्त कहा जाता है। रक्तपित्त महारोगों में परिगणित है। उचित चिकित्सा न होने से अथवा उपेक्षा कर देने से यह शरीर को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

चिकित्सा

रक्तपित्त की चिकित्सा करने के लिये सर्वप्रथम रोगी का आहार-विहार ऐसा युक्तियुक्त होना आवश्यक है; जो पित्त और रक्त को दूषित न करे। बुद्धिमान् व्यक्ति को उपर्युक्त रोग के कारणों का परित्याग करना चाहिये। इसके साथ ही निम्नाङ्कित योगों को सेवन करना लाभप्रद है।

जिस रक्तपित के रोगी को मुख वा नासिका से बहने वाला ऊर्ध्वगामी रक्तपित हो उसको विरेचन दे करके रोग को शान्त करें और अधोगामी रक्तपित्त में वामक औषधि देकर रोगी को वमन करावें। इस प्रकार से सामान्य रक्तपित्त रोग शान्त हो जाता है।

रक्तपित्तनाशक प्रयोग

(१) चन्दनादि चूर्ण

लालचन्दन, जटामांसी, लोध, खसमूल, कमलकेशर, नागकेशर, बेल की गिरी, नागर मोथा, मिश्री अथवा खाण्ड, हाऊबेर, अरलु, कुटज (कुड़ा), कमल के बीज, सोंठ, अतीस, धाय के पुष्प, रसोत, आम की गुठली की गिरी, जामुन के बीज की गिरी, मोचरस, नीलकमल, मंजीठ, छोटी एलायची, अनार की छाल –इन चौबीस द्रव्यों को समान भाग लें। प्रथम इन को सम्यक् प्रकार से देखकर

मिट्टी, कंकड़ आदि से शून्य करके, धूप में शुष्क करे। पश्चात् वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रायः सायं दिन में दो समय, मधु के साथ खिला कर, ऊपर से तण्डुलोदक दें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से ऊर्ध्वगामी (नकसीर, मुख से रक्त निकलना, आदि) रक्तपित्त, तथा अधोगामी रक्तपित्त (मूत्र तथा मल—इन दोनों मार्गों से निकलने वाला रुधिर) बन्द हो जाता है। समस्त प्रकार के रक्तपित्त को नष्ट करने के लिये यह चन्दनादि चूर्ण अत्युपयोगी महौषधि है।

इसके अतिरिक्त इसके सेवन से रक्तार्श, रक्त-अतिसार, रक्त प्रदर, शरीर के सर्वाङ्गों में दाह, पिपासा की अधिकता, वमन, मासिक धर्म का अवरोध, पित्तज ज्वर आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण गिरते हुए गर्भ को भी रोक देता है। पित्तज दोषों और रुधिर के विकारों को नष्ट करने के लिये अत्युत्कृष्ट प्रयोग है। परीक्षित है।

(२) शुक्तिकादि चूर्ण

शुद्ध शुक्तिका (सीप), धनियां, शुद्ध मूंगा, मुलहठी, सोनागेरू, और मिश्री इन ६ द्रव्यों को समान भाग लेकर, वस्त्र छन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दो समय अडूसा के रस के साथ दें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से नासिका, मुख, योनि, लिङ्ग, गुदा—इन मार्गों से निकलने वाला रक्तपित्त—रुधिर स्राव शान्त हो जाता है। स्त्रियों के रक्त प्रदर में भी उपयोगी है। रक्तपित्त में इसका आशु प्रभाव होता है। परीक्षित है।

(३) रालादि चूर्ण

श्वेत राल, मिश्री और मोचरस—प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध अफीम १ रत्ती लेकर सबका वस्त्र छन चूर्ण बनाकर, समस्त चूर्ण की तीन मात्रा बना लीजिये। इसे दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न और सायं समय, शीतल जल से सेवन करें। इस प्रयोग से ऊर्ध्वगामी और अधोगामी—दोनों प्रकार का रक्तपित्त तुरन्त बन्द हो जाता है।

(४) द्राक्षादिपानक

द्राक्षा (मुनक्का) ११ दाने, माक्षिक मधु ३ माशे,—इन दोनों औषधियों के तुल्य भाग मिश्री लें। मुनक्कों के बीज निकाल कर, स्वच्छ जल से धोकर, शिला पर पीस लें और मिश्री को भी सूक्ष्म पीस लीजिए। इसके पश्चात् आध पाव दूध और आध पाव जल—इन दोनों को मिला कर, इसमें पूर्वोक्त द्राक्षादि तीनों द्रव्यों को मिला, पानक (शर्बत) बना लीजिए और रोगी को पिला दीजिए। यह एक मात्रा है। इस प्रकार से दिन में २-३ बार नवीन शर्बत बनाकर सेवन कराइए।

गुण— इस पानक (शर्बत) को पीने से नकसीर, मुख, गुदा और मूत्रेन्द्रिय-- इनके द्वारा निकलने वाला रुधिर (रक्तपित्त) शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। रक्तपित्त रोग को नष्ट करने के लिए उत्तम प्रयोग है। शतसोऽनुभूतः।

(५) एलादि कषाय

छोटी इलायची के बीज, श्वेत चन्दन घिसा हुआ, गेंदे की पत्तियाँ, अडूसा के पत्र, मुलहठी, द्राक्षा, अनार के पुष्प (कली)—प्रत्येक ३-३ माशे, मधु १ तोला, धान की खील २ तोले, मिश्री ३ तोले लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का यवकुट चूर्ण बना लीजिए। इसके पश्चात् एक मिट्टी के पात्र में सायं काल एक पाव जल में सम्पूर्ण औषधियों को भिगो दीजिए। प्रातः समय औषधियों को जल से निकालकर, शिला पर सूक्ष्म पीस कर, कल्क (लुगदी) बना लें और उसी जल में मिलाकर, छान लें। इस छने हुए कषाय की चार मात्राएँ बनाकर, दिन में ४ बार सेवन करावें।

गुण—इस कषाय के सेवन से सभी प्रकार का रक्तपित्त रोग शान्त हो जाता है। नकसीर आदि ऊर्ध्वगामी और मूत्र-मल द्वार से निकलने वाला अधोगामी रुधिर स्राव (रक्तपित्त) तुरन्त नष्ट हो जाता है। सुपरीक्षित प्रयोग है।

(६) मुण्डी प्रयोग

गोरखमुण्डी का सूक्ष्म चूर्ण ६ से ६ माशे तक, काली मरिच ११ दाने मिला कर, जल के साथ सूक्ष्म घोटिये। जब ये दोनों औषधियाँ उत्तम प्रकार से सूक्ष्म घुट जांय, तो इसको डेढ छटांक जल में छान कर, रोगी को पिला दीजिये। इस प्रकार ७ से ११ दिन तक प्रतिदिन इसे पीने से नासिका से निकलने वाला रुधिर (नकसीर) नष्ट हो जाता है। अनुभूत प्रयोग है।

(७) कर्पूरादि प्रलेप

नकसीर रोग में—कर्पूर, बेर के पत्र, मुलतानी मिट्टी—इन तीनों को समभाग लेकर जल के साथ सूक्ष्म पीस कर, नकसीर के रोगी के मस्तिष्क-ललाट पर लेप लगाने से नासिका के द्वारा निकलने वाला रुधिर रुक जाता है।

नकसीर नाशक विचित्र उपाय

नासिका के छिद्रों से रुधिर-स्राव को नकसीर कहते हैं। प्रायः ग्रीष्म काल में यह अनेक व्यक्तियों को हो जाता है। यद्यपि यह कोई प्राणघातक व्याधि नहीं है; तथापि जब कभी किसी रोगी की नासिका से प्रबल वेग के साथ रक्त गिरना आरम्भ होता है तो अनेक उपाय करने पर भी सफलता नहीं मिलती है। रोगी तथा उसके सम्बन्धीजन अधीर हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर चिकित्सक को निम्नाङ्कित उपाय करने से पूर्ण सफलता उपलब्ध होती है—

(८) सर्वप्रथम रोगी के दोनों भुजदण्डों को दो वस्त्रों से पृथक्-पृथक् अच्छे प्रकार से कसकर-खींचकर बान्ध दें। इस प्रकार से दोनों भुजदण्डों के बन्ध जाने पर नासा द्वारा रुधिर का निकलना तुरन्त अवरुद्ध होगा। इसके उपरान्त निम्नाङ्कित क्वाथ को सेवन करावें।

(६) हरीतक्यादि क्वाथ

बड़ी हरड़ की छाल ४ माशे, द्राक्षा (मुनक्का) ७ दाने, अडूसा ४ माशे, अमलतास की वपा (गूदा) १ तोला लें। इन सब को मोटा-मोटा कूटकर, एक पाव जल में, मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकाइये। तृतीयांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने के उपरान्त हाथ से मर्दन करके, छान लीजिये और रोगी को पिला दीजिये। इसे ५–६ दिन तक प्रतिदिन सेवन कराने से रोगी को विरेचन होते हैं। विरेचन (दस्त) में आने वाला मल काला होता है। इस प्रकार से दोनों उपायों के करने से नकसीर रोग समूल नष्ट हो जाता है।

रक्तपित्त रोग में पथ्यापथ्य

शीतल जल, गोदुग्ध, बकरी का दूध, गाय का मक्खन तथा घृत, पुराना चावल, साठी का चावल, सावां, जौ, मूंग, अरहर, मोठ की दाल, परवल, लौकी, तोरई आदि शाक, अनार, आमला, द्राक्षा, मिश्री, मधु, ईख आदि पदार्थों का सेवन करना हितकर है। स्वाध्याय, सत्संग, ईश्वर भक्ति, गुरु भक्ति, धर्माचरण, मन की शान्ति, दान ब्रह्मचर्य आदि हितकर विहार से रोग निवारण में उत्तम सहयोग मिलता है।

व्यायाम, अधिक भ्रमण करना, रात्रि जागरण, अग्नि के समीप बैठना, धूप में चलना वा बैठना, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, चाय, काफी, मद्य, लालमरिच, लवण, अधिक मसाले, शोक, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, निन्दा, आदि अहित आहार-विहार से रोग की वृद्धि होती है।

अथ कास-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१४॥

कास रोग के कारण—अति शीघ्रता से भोजन करते हुये, अधिक हंसते हुए वा बातें करते हुए अथवा चञ्चलता के साथ खाने पीने से, आहार द्रव्य श्वास नली में चले जाने से, रूक्ष, तीक्ष्ण, स्निग्ध पदार्थों को अधिक समय तक सेवन करने से, अशुद्ध, मलिन, बासी, दुर्गन्धियुक्त खाद्य पेय आदि आहार को बहुत काल तक सेवन करने से, धुआँ, धूलि, आदि के श्वास नली में प्रविष्ट होने से, अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम, भार उठाना, दौड़ना आदि शारीरिक परिश्रम करने से, वीर्य के क्षय से, मल, मूत्र, अपानवायु, छींक आदि के आगत वेगों को बल पूर्वक रोकने से, अनुचित प्रकार से प्राणायाम करने आदि कारणों से कण्ठ-प्रदेश में निवास करने वाली उदान वायु प्रकुपित हो जाती है। उदानवायु के क्रुद्ध होने पर स्वर यन्त्र में उत्पन्न हुआ रोग—"कास" कहा जाता है। इसका प्रसिद्ध नाम खांसी है।

कास के भेद—१-वातज, २-पित्तज, ३—कफज, ४—क्षतज और, ५—क्षयज—ये पांच भेद कास के होते हैं। इनमें वायु वर्धक आहार विहार से वातिक कास होता है। वातज खांसी के होने पर—हृदय, पसलियों, उदर, सिर आदि प्रदेश में शूल का होना, शारीरिक बल, ओज आदि का क्षय, सूखी खांसी होना, कफ का न निकलना आदि लक्षण होते हैं। पित्त के प्रकुपित होने से जो कास उत्पन्न होता है, उसमें हृदय का दाह, तृषा, खांसी में पित्त मिश्रित पीला तथा कड़वा कफ निकलना, आदि लक्षण पाये जाते हैं। कफ की अधिकता अथवा कफ के प्रकुपित होने से जो कास होता है; उसे कफज वा श्लैष्मिक खाँसी कहते हैं। मुख में कफ की अधिकता, कण्ठ-नली का कफ से भरा रहना, शरीर में गुरुता का होना, क्षुधा का अभाव, खांसते समय कफ का अधिक मात्रा में निकलना, आदि लक्षण होते हैं।

जो व्यक्ति अपनी शक्ति से अधिक भार उठाना, व्यायाम करना आदि साहसिक कार्य करते हैं, जो मैथुन कर्म में असंयमित रहते हैं, जो अत्यधिक उच्च स्वर से पढ़ते-बोलते हैं अथवा इसी प्रकार के अन्य अहितकर कर्म करते हैं; उनके फुफ्फुसों में क्षत (घाव) हो जाता है। उससे खांसी उत्पन्न हो जाती है। यह प्रारम्भ में बिना कफ के सूखी होती है। इसके उपरान्त रक्त-मिश्रित कफ निकलने लगता है। वक्षः स्थल में पीड़ा, पार्श्व वेदना, श्वास, ज्वर आदि अनेक लक्षण क्षतज कास के होते हैं।

इसी प्रकार अयुक्त आहार विहार के सेवन से तथा मनोविकारों से तीनों दोषों के दुष्ट होने पर क्षयज कास की उत्पत्ति हो जाती है। इसमें मन्दाग्नि होने से खाये हुए आहार का उचित पाचन नहीं होता और रस, रक्त, माँस आदि सप्त धातुओं का क्षय होने लगता है। शरीर में निर्बलता होती जाती है। रोगी के कफ में रुधिर तथा पूय (पीप) निकलता है। यह अति दारुण कास है।

कास रोग की उपेक्षा करने से हानि---बुद्धिमान् पुरुष के लिये यह आवश्यक है कि—वह खांसी उत्पन्न होने पर उसकी योग्य चिकित्सा करावे। यदि इस रोग की उपेक्षा कर दी जाती है तो साध्य रोग भी असाध्य अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ ध्यान रखने योग्य एक बात है कि—साधारण से साधारण खांसी भी उपेक्षा करने से कालान्तर में "यक्ष्मा" (टी०बी०) बन जाता है।

कास रोग की चिकित्सा

(१) कुचलादि वटिका—शुद्ध कुचला चूर्ण ५ तोले, छोटी पिप्पली और काली मरिच—इन दोनों का वस्त्रछन चूर्ण—५-५ तोले लेकर, एकत्र मिलाकर, घृतकुमारी के रस में ३ दिन तक स्थिरता से मर्दन करके, चणक के तुल्य गुटिका बनाकर, छाया में शुष्क करें। अच्छे प्रकार सूखने पर गोलियों को शीशी में भरकर, डाट लगा दें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली गोघृत ५ तोले के साथ खिला दीजिये।

गुण—जिस शुष्क कास में कफ का स्राव नहीं होता, रोगी को खांसते-खांसते पार्श्वशूल होता है; ऐसे वात प्रधान कास में यह वटी अत्युपयोगी है। साध्य खांसी में ३ दिन और कष्ट साध्य में ७ दिन तक इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त पार्श्व वेदना (पसलियों की पीड़ा) में भी इस वटी के सेवन से शीघ्र सफलता मिलती है। परीक्षित प्रयोग है। **वक्तव्य**—कुचले को तीन दिन गोमूत्र में भिगोकर, उसका छिलका हटाकर, चूर्ण बना, गोघृत में भूनकर उपयोग में लें।

(२) मधुकादि वटी—मधुक (मुलहठी) १ तोला, बबूल का गोंद, कतीरे का गोंद, बहेड़े की त्वचा और मधुयष्टी-सत्त्व—प्रत्येक ६-६ माशे, काकड़ासिंगी ३ माशे, अग्नि पर भुने हुए छोटी इलायची के बीज १ तोला—इन सात द्रव्यों को लें और समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, बबूल की छाल के क्वाथ में मर्दन करके चणक प्रमाण की गुटिका बनाकर, छाया में सुखा करके, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये। इस वटी को मुख में रख करके, धीरे-धीरे चूसिये। इस प्रकार १-१ वटी, दिन में ४-६ बार चूस सकते हैं।

गुण—इस वटी के सेवन से शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार के कास में अच्छा लाभ होता है। खांसी के लिए हितकर अनुभूत प्रयोग है।

(३) पारदादि गुटिका—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अर्क दुग्ध की भावना देकर सिद्ध की गई शंख भस्म ६ माशे, उत्तम यवक्षार ३ तोले, सोंचर लवण ४ तोले, काली मरिच ५ तोले लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लें। पश्चात् चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, भस्म सहित चूर्ण को कज्जली में मिला दें और तीन घण्टे तक, मर्दन करें। इसके उपरान्त

स्नुही (सेहुण्ड) के दूध में एक दिन तक दृढ़ता से घोटें। सम्यक् प्रकार घुटाई होने पर ३-३ रत्ती प्रमाण में गुटिका बना, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, ३-३ माशे शक्कर के साथ खाकर, ऊपर से सद्योजल पीवें। प्रातः सायं दिन में दो बार सेवन करें।

गुण—इस प्रयोग से कास और श्वास में अच्छा लाभ होता है। अनुपान भेद से इसे सभी प्रकार के कास में दें। सामान्य खांसी को नष्ट करने के लिए ४-६ दिन तक सेवन करना पर्याप्त है। जीर्ण कास के रोगियों को निरन्तर कुछ दिन तक सेवन करना अभीष्ट है। इस वटी का सेवन आरम्भ होते ही रोगी को लाभ प्रतीत होता है। शतसोऽनुभूतः॥

(४) कासहरी वटिका—लवङ्ग २ तोले, छोटी पिप्पली ३ तोले, बड़ी हरड़ की छाल ४ तोले, बहेड़े की छाल ५ तोले, अडूसा के पत्र ६ तोले, भारङ्गी ४ तोले, और खदिरसार (कत्था) १० तोले लें। सबका वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र मिला लीजिए। इसके उपरान्त बबूल की त्वचा के क्वाथ में ६ घण्टे स्थिरता के साथ मर्दन करिये। उत्तम प्रकार घुटाई होने पर जब यह गोली बनाने के योग्य हो जाय; तो चणक प्रमाण की वटिका बना करके, छाया में शुष्क करके, शीशी में सुरक्षित रखिये। १-१ वटी को मुख में रखकर धीरे-धीरे चूसिये। इसे आवश्यकता के अनुसार दिन में ३-४ बार सेवन करिये।

गुण—यह वटी कास को नष्ट करने के लिए अत्युत्कृष्ट महौषधि है। सभी प्रकार की खांसी में बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री पुरुषों के लिए निर्भय और हितकर प्रयोग है। स्वानुभविक है।

(५) अर्कपुष्पादि वटी—अर्क (मदार) पुष्प के लवङ्ग, काली मरिच और लवङ्ग—इन तीन द्रव्यों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। इसके पश्चात् गोली बनाने योग्य इसमें मधु मिला लें और १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रखिये। १-१ वटी को मुख मे रखकर, धीरे-धीरे चूसिये।

गुण—इस वटी को चूसने से शुष्क और आर्द्र—दोनों प्रकार के कास (खांसी) में लाभ होता है। कास के रोग में २-३ दिन तक इस गोली को चूसने पर आशातीत लाभ अनुभव होता है।

(६) कर्पूरादि गुटिका—शुद्ध कर्पूर १ तोला, लवङ्ग, काली मरिच, छोटी पिप्पली, बहेड़े की त्वचा, एवं कुलञ्जन,—प्रत्येक २-२ तोले, अनार की छाल ४ तोले, खदिरसार (कत्था) ८ तोले लें। समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, जल के साथ घोटिये और उत्तम घुटाई होने पर चणक प्रमाण में गोलियाँ बनाकर, छाया में शुष्क कर लीजिये। सम्यक् प्रकार सूखने पर शीशी में भर, डाट लगाकर, सुरक्षित रखिये। एक-एक गोली को मुख में रखकर, शनैः शनैः चूसिये। इसे दिन और रात्रि में १०-१२ बार चूस सकते हैं।

गुण—इस गुटिका को चूसने से वात, पित्त, कफ—इन तीनों दोषों से उत्पन्न होने वाली खांसी, क्षतज और क्षयज—सभी प्रकार के कास में शीघ्र प्रभाव होता है। यह प्रयोग बहुत बार का अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

(७) कासघ्नी वटिका—कूठ, छोटी पिप्पली, लघु एला के बीज, पुष्कर मूल, टंकण क्षार (सुहागा), अपामार्ग क्षार, कटेली, मधुयष्टी-घनसत्त्व, बहेड़े की छाल—प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध धत्तूरे के बीज ६ माशे और शुद्ध अफीम ३ माशे लें। सुहागे को अग्नि पर फुला लीजिये। इसके उपरान्त सम्पूर्ण द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, आध सेर अडूसे के रस में चूर्ण को डालकर, मन्दाग्नि पर पकाइये। अग्नि पर पक कर जब यह वटी बनाने के योग्य कड़ा हो जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार करके, चणक के समान गोलियाँ बनाकर, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार सूखने पर गोलियों को शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये। १-१ वटी को मुख में रख कर, धीरे-धीरे चूसें। आठ प्रहर में १०-१२ गोली सेवन कर सकते हैं।

गुण—शुष्क कास में जब रोगी के वक्षःस्थल में कफ जम जाता है; तो उसे खांसी का वेग बार-बार उठता है; खांसते-खांसते रोगी की पसलियों, शिर तथा वक्षःस्थल में वेदना होती है। अधिक खांसने पर भी वक्षःस्थल पर जमा हुआ कफ नहीं निकलने पाता। ऐसे समय पर इस गोली के सेवन से कफ पिघलकर बाहर निकल जाता है और उसी समय रोगी का कष्ट अल्प हो जाता है। आर्द्र कास में इस प्रयोग से कफ पिघल कर तुरन्त बाहर निकल जाता है। यह प्रयोग कास तथा श्वास में अत्युपयोगी औषधि है।

(८) कुक्कुर कासहरी गुटिका—लौंग, काली मरिच और बहेड़े की त्वचा—प्रत्येक १-१ तोला, खदिरसार ३ तोले—इनका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, बबूल की छाल के क्वाथ में चूर्ण को घोटकर, चने के सदृश्य गोली बनाकर, छाया में शुष्क करके, शीशी में सुरक्षित रख लीजिये। १-१ वटी को मुख में रखकर शनैः शनैः चूसिये।

गुण—यह गोली कुक्कुर कास—काली खांसी के लिए अत्युपयोगी है। अन्य प्रकार की खांसी में भी इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

(९) पञ्चकासहरी वटिका—लवङ्ग, जायफल, छोटी पिप्पली—प्रत्येक १-१ तोला, काली मरिच २ तोले, सोंठ ४ तोले, मिश्री १० तोले—लेकर, समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, जल के साथ मर्दन करके चणक प्रमाण की गोलियाँ बनाकर, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रखिये। १-१ गोली को मुख में रखकर चूसिये।

गुण—यह वटी वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज—इन पांच प्रकार की खांसी को नष्ट करने के लिए अत्युत्कृष्ट महौषधि है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष इन सभी के लिए उत्तम लाभप्रद तथा निर्भय प्रयोग है। सुपरीक्षित है।

(१०) बिभीतक भस्म—बिभीतक (बहेड़ा) को सुखा कर, अग्नि में जला कर, भस्म बना बना लीजिये। इसे छानकर, शीशी में सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती, ३ माशे मधु में मिलाकर, प्रातः सायं चाटिये।

गुण- इस प्रयोग से वृद्धावस्था जनित कास में अच्छा लाभ होता है। वक्षःस्थल पर जमा हुआ कफ, इसके सेवन से पिघल कर, बाहर निकल जाता है। केवल वहेड़े की छाल को मुख में रखकर चूसने से खांसी रोग का शमन हो जाता है।

(११) हरिद्रा प्रयोग—एक हल्दी के खण्ड को लेकर भूभल में रख दें। जब इसमें से भुन जाने की सुगन्ध आने लगे; तो इसे अग्नि से निकाल लें और शीतल होने पर मुख में रखकर, चूसिये।

गुण—इस प्रयोग से शुष्क कास में अच्छा लाभ होता है। आठ प्रहर में इसे ४-५ बार मुख में रख कर चूसें। यह शुष्क खांसी में लाभप्रद है।

(१२) श्लेष्मज (कफज) कास का प्रतीकार—कफ वर्धक-आहार-विहार-जनित कास में सर्वप्रथम रोगी को वमन कराना उत्तम है। वमन कराने के लिए आध सेर से एक सेर तक जल को उष्ण करके उसमें ½ तोला नमक डाल दें और अल्पोष्ण रहते हुए ही रोगी को पिला दें। २०-२५ मिनट के उपरान्त उसे बाहर निकाल दें। यदि सहज भाव में उदर का जल न निकले; तो मुख में अंगुलि डालने से वमन हो जाता है। इस प्रकार से वमन होने पर मुख द्वारा कफ बाहर निकल जाता है। कफ के निकलने से श्लेष्मज कास में तुरन्त लाभ हो जाता है। परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि—यह क्रिया बलवान् रोगी को ही करानी इष्ट है। निर्बल रोगी को वमन न कराया जाय। जिस दिन रोगी को वमन कराया जाय, उस दिन उसे मूंग की दाल की खिचड़ी पथ्य में दें।

(१३) विरेचन प्रयोग—एक मिट्टी के पात्र को अग्नि में रखकर, उष्ण करें। जब वह तप्त होकर रक्त वर्ण हो जाय; तो अग्नि से बाहर निकाल कर, उसे थाली में रखकर, उसमें आधपाव गोमूत्र तथा ६ माशे फिटकरी का चूर्ण डाल दें। इससे उसमें अनेक उबाल आते हैं। शीतल होने पर इसे रोगी को पिला दें।

गुण—इस प्रयोग से कफ पिघल कर, गुदा के द्वारा बाहर निकल जाता है। कफ के निकल जाने पर श्लेष्मज खांसी में तुरन्त लाभ होता है।

(१४) कफघ्नी वटिका—पुष्प आने से पूर्व सत्यानाशी (कटेली) को उखाड़ लें और जल से स्वच्छ करके उसे छाया में शुष्क कर लें। यह शुष्क कटेली और बड़ी पिप्पली—प्रत्येक दो-दो तोले लेकर दोनों का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। इसके उपरान्त इसे लशुन के रस में ३ घण्टे तक मर्दन कर, चणक प्रमाण की गोलियां बनाकर, छाया में शुष्क करके, सुरक्षित रखिये। इस वटी को मुख में रखकर चूसने से कफ पतला होकर शीघ्र ही बाहर निकल जाता है और खांसी तुरन्त शान्त हो जाती है। यह कास में उपयोगी औषधि है। परीक्षित है।

(१५) तुलस्यादि क्वाथ

तुलसी के शुष्क पत्र ३ माशे, दाल चीनी २ माशे, शुण्ठी १॥ माशे, केशर १ माशा, जावित्री २ माशे और लवङ्ग १॥ माशे—इन ६ द्रव्यों को लेकर, यवकुट चूर्ण बना लीजिये। तदुपरान्त इस चूर्ण को एक स्वच्छ श्वेत वस्त्र की पोटली में बान्धकर, एक मिट्टी के पात्र में आध सेर जल के साथ पोटली को डाल दें और मन्दाग्नि पर पकावें। जब आधा जल शेष रह जाय; तो अग्नि से नीचे उतार लें। अल्पोष्ण को छानकर, इसमें दूध तथा शर्करा सम्मिश्रण कर दें और रोगी को पिला दीजिये। इसको प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—इस तुलस्यादि क्वाथ के सेवन से वातज, कफज, क्षतज और क्षयज कास का शमन हो जाता है। कफ की वृद्धि, शारीरिक पीड़ा, शीत की अधिकता, प्रतिश्याय (जुखाम)—इन सभी उपद्रवों को नष्ट करने के लिये अत्युपयोगी औषधि है। यह शीत काल में अमृतवत् हितकर है। इसके पीने से शरीर में तुरन्त स्फूर्ति, उत्साह और चित्त में प्रसन्नता आ जाती है। चाय पीने के उपरान्त भी शरीर में कुछ समय स्फूर्ति सी प्रतीत होती है; किन्तु चाय—अल्पमादकता, वीर्यवाहक नाडीमण्डल में उत्तेजना, ज्ञान वाहक सूक्ष्म तन्तुओं में चंचलता और मन में विक्षोभ—इन विकारों को उत्पन्न करने के कारण शारीरिक स्वास्थ्य में प्रतिबन्धक है। इस क्वाथ के सेवन से उपर्युक्त दोषों की प्राप्ति नहीं होती। स्वानुभविक है।

(१६) कासहरावलेह

काली मरिच, आमला, बड़ी हरड़ की त्वचा—प्रत्येक ५-५ तोले, खुरासानी अजवाइन २॥ तोले, विशुद्ध केशर १। तोला, कस्तूरी ६ माशे, बालछड़, अकरकरा, पारफिउन—प्रत्येक ३-३ माशे लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सब को एकत्र मिला लें। अन्त में कस्तूरी को चूर्ण में मिलाकर, मर्दन करें। तत्पश्चात् सम्पूर्ण चूर्ण के भार से द्विगुणित मधु मिला करके खरल में घोटिये। उत्तम प्रकार घुटाई होने पर जब यह अवलेह (चटनी) बन जाय; तो इसे चौड़े मुख के शीशे के पात्र में भर कर, ढक्कन से बन्द करके, यव की राशि में रख दीजिये। तीन मास तक इसी प्रकार इसे अन्दर रखने के उपरान्त यव राशि से निकाल कर उपयोग में लीजिये।

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती से २ माशे तक, अर्क गावजवां, दूध वा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें। यह औषधि पाँच वर्ष तक विकृत नहीं होती। इसके पश्चात् पूर्ण उपयोगी नहीं रहती।

गुण—यह अवलेह कास, प्रतिश्याय (जुखाम), दुष्ट प्रतिश्याय (नजला), पक्षाघात, स्मृतिशक्ति का नाश, शिरोभ्रम, निद्रा की अधिकता, निद्रा का क्षय, कानों में शब्द का होना, दन्तमूल-निर्बलता, मुख की दुर्गन्ध, मुख से लार गिरना, अधिक थूकना, रक्तातिसार आमाशय और यकृत् की वेदना—इत्यादि रोगों में अत्युत्कृष्ट महौषधि है। यह अनुभूत प्रयोग है। इसका निर्माण करके लाभ उठाइये।

(१७) कासान्तकावलेह

छोटी कटेली के पञ्चाङ्ग का रस, अडूसा के पञ्चाङ्ग का रस—प्रत्येक दो-दो सेर, देशीय खांड तथा मधु १–१ सेर, छोटी पिप्पली, शुण्ठी, काली मरिच, काकड़ासिंगी, वायविडंग, कचूर, दाडिमत्वक् (अनार की छाल), बड़ी हरड़ का छिलका, आमला, बहेड़ा, पुष्कर मूल, मधुयष्टी (मुलहठी) का सत्त्व, लवङ्ग, भारङ्गी, यवक्षार, काला लवण, बबूल का गोंद, मस्तगी, उत्तम लोह भस्म, सावर शृंग भस्म, सैंधव लवण, उत्तम शतपुटी अभ्रक-भस्म,—प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, समस्त भस्में और चूर्ण को एकत्र मिश्रण करके ३ घण्टे तक मर्दन करके रखिये। इसके उपरान्त कटेली और अडूसा के उक्त दोनों रसों को कलई युक्त कड़ाही में डाल कर, चूल्हे पर चढ़ाकर, मन्दाग्नि पर पकावें। जब चतुर्थांश रस शेष रह जाय; तो उस में खाण्ड मिलाकर, चाशनी सिद्ध करें। चाशनी के सिद्ध होने पर, कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार कर, उसमें उक्त भस्म सहित चूर्ण को डालकर, कलछी से अच्छे प्रकार चला करके मिलावें। शीतल होने पर उसमें मधु को मिला दें। उत्तम प्रकार मिलने पर इसे घृतलिप्त पात्र में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, १ तोला कनकासव के साथ सेवन करें।

गुण—यह अवलेह सभी प्रकार के कास और श्वास रोग में अत्युत्तम लाभप्रद औषधि है। इसके सेवन से हृदय, मस्तिष्क, वस्ति आदि उत्तमाङ्गों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है और मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि अनेक व्याधियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं। पांचों प्रकार की खांसी और सभी प्रकार के श्वास रोग को नष्ट करने के लिये श्री रामबाण के सदृश अव्यर्थ है।

(१८) वासावलेह

वासा (अडूसा) का रस ६४ तोले, मिश्री १२८ तोले लेकर, इन दोनों को एकत्र कड़ाही में डाल मन्द अग्नि पर चाशनी सिद्ध करें। चाशनी बन जाने पर इसमें —बहेड़े की त्वचा और हल्दी का वस्त्र छन चूर्ण ४–४ तोले डाल कर, कलछी से चला कर, मिला दें और अग्नि से नीचे उतार करके, शीतल होने पर घृत भावित मिट्टी वा शीशे के पात्र में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—½ से १ तोला तक, गोदुग्ध वा बकरी के दूध के साथ प्रातः, मध्याह्न और सायं दिन में तीन समय खावें।

गुण—यह अवलेह पित्तज कास, उरःक्षत, श्वास, रक्तपित्त, यक्ष्मा, तृषा आदि रोगों को नष्ट करता है। इसके प्रयोग से पैत्तिक खांसी में अच्छा लाभ होता है।

(१९) सितोपलादि चूर्ण

इस चूर्ण के सेवन से सभी प्रकार के कास में अच्छा लाभ होता है। यह

ज्वर, श्वास आदि अनेक व्याधियों को नष्ट करता है। इसकी निर्माण विधि "फुफ्फुस-सन्निपात रोग" प्रकरण में लिखी जा चुकी है।

(२०) कासारि चूर्ण

वंशलोचन तथा पिप्पली चूर्ण-प्रत्येक २-२ रत्ती, गन्धक भस्म, सुहागा भस्म और अर्क पुष्प का चूर्ण—प्रत्येक एक-एक रत्ती—इन पांच द्रव्यों को एकत्र मिलाकर मर्दन करें और मधु के साथ मिला करके एक बार में चटा दीजिये। यह एक मात्रा है। आवश्यकता के अनुसार इसे दिन में २-३ बार सेवन करावें।

गुण—खांसी के रोग में जब कण्ठ नली में कफ सञ्चित हो जाता है तो रोगी के कण्ठ में घर-घर शब्द होने लगता है। श्वास प्रश्वास क्रिया में अवरोध उत्पन्न होने से आतुर को विशेष कष्ट होता है। ऐसी दशा में इस चूर्ण को सेवन कराने से तुरन्त लाभ हो जाता है। यह चूर्ण श्वास नली में जमे हुए कफ को तरल करके तुरन्त बाहर निकाल देता है; फलतः रोगी के कष्ट में आशु लाभ हो जाता है। सभी प्रकार की खांसी में उपयोगी है।

(२१) आटरूषादि चूर्ण

आटरूष (अडूसा-वासा) के पत्र पांच सेर (पत्रों के मध्य में जो बड़ी नसें हैं; उनको हटा करके लें) लेकर के एक लोहे की बड़ी कड़ाही में बीस सेर जल भर करके, उसी में पत्रों को डाल दें और मन्दाग्नि पर पकावें। इसमें काला नमक और सैंधव लवण ४०-४० तोले, जवाखार और सज्जीखार—२०--२० तोले, पकाते समय डाल दें। पत्रों के पकने तथा सम्पूर्ण जल के शुष्क होने पर अग्नि से नीचे उतार लें और इन पत्रों को छाया में शुष्क कर लें। उत्तम प्रकार सूखने के उपरान्त इनका वस्त्रछन चूर्ण बना करके, सुरक्षित रख लीजिये।

मात्रा और अनुपान—२--३ रत्ती, दिन में ३—४ बार, मधु, ताम्बूल दल, अथवा जल के साथ सेवन करावें।

गुण—यह चूर्ण खांसी को नष्ट करने के लिये अत्युपयोगी है। इसके सेवन से—नवीन, पुरातन, शुष्क और आर्द्र—इन समस्त प्रकार के कासों का शमन हो जाता है। अल्प परिश्रम और न्यूनतम व्यय साध्य होने पर भी अत्युपयोगी औषधि है। धर्मनिष्ठ सज्जन इस योग को यदि धर्मार्थ वितरण करें तो निर्धन जनताजनार्दन को सुख की उपलब्धि हो और दाताओं को पुण्य प्राप्त हो।

(२२) शिवादि चूर्ण

बड़ी हरड़ की छाल, शुण्ठी और भारंगी—इन तीन द्रव्यों को समान भाग ले करके वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—६ से ८ माशे तक, मधु वा जल अथवा दोषों के अनुसार उचित अनुपान के साथ दें। इसे दिन में २—३ बार सेवन करावें।

गुण—इसके सेवन से खांसी में अच्छा लाभ होता है! अनुपान भेद से शुष्क

और आर्द्र (गीली) दोनों प्रकार की खांसी में लाभप्रद है। खांसी के अनेक कष्ट साध्य रोगियों पर अनुभूत प्रयोग है।

कास रोग में पथ्यापथ्य

मानसिक शान्ति, चित्त की प्रसन्नता, ईश्वर भक्ति, धर्मग्रन्थों का अध्ययन, दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या के अनुरूप आचरण करना और वीर्य की रक्षा-इन से रोग की निवृत्ति में सहयोग होता है। कास में शीतल जल का सेवन इष्ट नहीं होता। उबाल करके शीतल किया हुआ पानी पीना उत्तम है। आहार के लिये पुराने लाल चावल, साठी चावल, गेहूँ तथा जौ की रोटी, मूंग और अरहर की दाल, मूली, परवल, लौकी, नेनुआ, बथुआ, पालक आदि शाक, नीम्बू, अदरक, काली मरिच, सोंठ, पीपल, सैंधव लवण, जीरा, एला, गाय और बकरी का दूध देना लाभप्रद है।

मानसिक अशान्ति, शोक, चिन्ता, मैथुन, मलावरोध, अधिक परिश्रम, अधिक उपवास, शीतल जल, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का आदि धूम्रपान, अत्यधिक उच्च स्वर में बोलना, गरिष्ठ भोजन खाना, रात्रि में जागरण करना आदि से रोग की वृद्धि होती है।

अथ प्रतिश्याय-स्वरभेद-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ।।१५।।

पर्याय—प्रतिश्याय, प्रसेक, जुकाम, नजला—ये शब्द समानार्थक हैं ।

कारण—शीत वायु लगने से, वर्षा काल में जल में अधिक भीगने से, ऋतु परिवर्तन होने से. ओस (तुषार) में सोने से, मलावरोध होने से, रात्रि में जागने से, अधिक रोने से, मैथुन, चिन्ता, शोक—इनको अधिक करने से, प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होता है । जुकाम होने पर नासिका और मुख से जल तथा कफ का स्राव होने लगता है । छींक आती है और सिर में गुरुता तथा वेदना होती है । सम्पूर्ण शरीराङ्गों में जकडाहट होती है । रोगी का गला वैठ जाता है और भोजन में अरुचि हो जाती है । ये लक्षण प्रतिश्याय रोग में पाये जाते हैं ।

प्रतिश्याय रोग की उपेक्षा करने से हानि—जो व्यक्ति जुकाम उत्पन्न होने पर कुपथ्य का सेवन करते हैं और जो योग्य चिकित्सा कराने में प्रमाद करते हैं; उनको आधे शिर का शूल, नेत्रों की ज्योति का क्षय, श्रवण शक्ति का नाश और फुफ्फुस सन्निपात आदि विविध रोग होने का भय रहता है । प्रतिश्याय व्याधि प्रारम्भ में सुख साध्य रहने पर पथ्य पूर्वक औषधि सेवन से शीघ्र ही शान्त हो जाती है । किन्तु रोग प्रतीकार के लिए प्रयास न करने से भयंकर रूप धारण करके यह व्यक्ति के स्वाभाविक सुख तथा शान्ति में प्रतिबन्धक हो जाती है । अतएव बुद्धिमान् पुरुष प्रतिश्याय के होने पर तुरन्त चिकित्सा करावे ।

प्रतिश्याय रोग नाशक औषध-प्रयोग

(१) नरसारादि भस्म

शुद्ध नरसार (नवसादर) २ तोले, फिटकरी भस्म और अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, प्रत्येक १-१ तोला लेकर तीनों को एकत्र मर्दन करके, शीशी में सुरक्षित रखिये ।

मात्रा और अनुपान—४-४ रत्ती, दिन में २-३ बार, दूध अथवा उष्ण जल के साथ सेवन करें ।

गुण—यह प्रयोग, प्रतिश्याय (जुकाम), कास, श्वास, शिरः पीड़ा—में अत्युपयोगी है । कभी-कभी नजला रोग शीघ्रता से नष्ट नहीं होता । कुछ दिन तक निरन्तर अवस्थित रहता है । इस प्रयोग को कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से अवरुद्ध प्रतिश्याय शान्त हो जाता है । अनुभूत है ।

(२) बब्बूलादि पानक

बबूल की छाल का चूर्ण, पुराना गुड़—प्रत्येक आध-आध सेर, बड़ी हरड़ की छाल का चूर्ण, बहेड़े की त्वचा का चूर्ण और आमले का चूर्ण प्रत्येक आध-आध पाव लें ।

गुड़ को छोडकर शेष समस्त चूर्णों को चार सेर जल में भिगो दीजिये। आठ प्रहर तक भीगने के पश्चात् इसे अग्नि पर चढ़ाकर पकावें। मन्द-मन्द अग्नि पर चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार करके इसे छान लें और छने हुए जल में उक्त गुड को डाल करके, पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द अग्नि पर पकाइये। जब यह पानक (शर्बत) की चाशनी बन जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला पानक (शर्बत) प्रातः सायं दिन में दो समय, सद्यो जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस पानक के सेवन से प्रतिश्याय (जुकाम) समूल नष्ट हो जाता है। नजले को नष्ट करने के लिए यह अत्युत्कृष्ट औषधि है। एक दिन के सेवन करने से ही रोगी को लाभ अनुभव होने लगता है। परीक्षित है।

(३) सुगन्धित चाय

जावित्री पुष्प, काली मरिच, शुण्ठी, मजीठ, और बड़ी एलायची के बीज, प्रत्येक १-१ तोला; दालचीनी, देशीय शुष्क ताम्बूल पत्र और अडूसा के शुष्क पत्र, प्रत्येक २॥-२॥ तोले और तुलसी के सूखे हुए पत्र ५ तोले लें। इन नव औषधियों को यवकुट चूर्ण बनाकर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और सेवन विधि—एक पाव जल को अग्नि पर गर्म करिये। जब यह जल उबलने लगे; तो इसमें उक्त चूर्ण ६ माशे डाल करके पात्र को ढक्कन से ढक दें और ५ मिनट तक इसी प्रकार अग्नि के ऊपर रहने दें। इसके पश्चात् अग्नि से नीचे उतार लें। पीने योग्य गर्म रहते हुए इसे छान कर, मीठा मिला करके सेवन करें। आवश्यकता के अनुसार इसे प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—यह आयुर्वेदिक सुगन्धित चाय है। इसके सेवन से प्रतिश्याय (नजला), कास, शीत आदि रोगों का विनाश हो जाता है। कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने पर जुकाम समूल नष्ट हो जाता है। परीक्षित है।

(४) अपीनसहर प्रयोग

अम्लपर्णी (चांगेरी) वनस्पति के रस को नासिका में डालकर सूंघने से अपीनस रोग नष्ट हो जाता है। इसे प्रतिदिन तीन दिवस तक सूंघने पर कष्टसाध्य अपीनस अवश्य शान्त होता है। अनुभूत है।

वक्तव्य—जिस रोग में नासिका द्वारा दुर्गन्ध वा सुगन्ध का बोध नहीं होता, नासा छिद्र रुक जाते हैं अथवा उनसे दुर्गन्धियुक्त मलिन जल का स्राव होता है; उस रोग को "अपीनस" अथवा "पीनस" कहते हैं। यह प्रतिश्याय के होने पर भी हो जाता है।

स्वरभेद रोग (गला बैठना)

पर्याय—स्वर भंग, स्वरामय, स्वरक्षय, वैस्वर्य—ये स्वर भेद (गला बैठना) के पर्यायवाचक शब्द हैं।

जिस रोग में स्वर यन्त्र के दूषित हो जाने के कारण रोगी शब्दों का यथोचित उच्चारण नहीं कर पाता उसे स्वर भेद वा स्वर भंग रोग कहते हैं। भाषा में यह गला बैठना इस नाम से प्रसिद्ध है। स्वाभाविक और कारण जन्य ये दो अवस्था स्वर भेद रोग में पायी जाती हैं। जो रोगी जन्म से ही स्वर भंग पीड़ित होते हैं, उनकी यह अवस्था सहज वा स्वाभाविक है। इसमें चिकित्सा निष्फल रहती है। यदि कोई व्यक्ति जन्म काल से ही स्वर भेद का रोगी होगा, तो उस रोग की कोई औषधि नहीं है। परन्तु उच्च स्वर में भाषण करने से, अधिक बोलने से, प्रतिश्याय (जुकाम) होने से, स्वर यन्त्र में बाह्य आघात (चोट) होने से, विषम क्षण आदि कारणों से जो स्वर भंग रोग उत्पन्न हो जाता है, यह कारण जन्य अवस्था है और इसकी चिकित्सा भी की जाती है।

स्वर भेद नाशक उपाय

(१) ज्योतिष्मत्यादि चूर्ण—ज्योतिष्मती (मालकंगुनी), खुरासानी अजवाइन, कुलिञ्जन और छोटी पिप्पली—इनको सम भाग ले करके, वस्त्र छन चूर्ण बना, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे तक, मधु ६ माशे के साथ मिलाकर चाटें। ऊपर से उष्ण जल अल्प मात्रा में पीवें।

गुण—यह चूर्ण स्वर भंग रोग में उपयोगी है। इसे आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार सेवन करें। स्वरयन्त्र की विकृति को नष्ट करके यह चूर्ण कण्ठ को स्वच्छ करता है।

(२) किन्नरकण्ठ वटी—अडूसा के पत्र, ब्राह्मी के पत्र, कुलिञ्जन, अकरकरा, मीठा कूठ, छोटी पिप्पली, मुलहठी, छोटी इलायची के बीज, दूधिया वच, शुण्ठी, बड़ी हरड़ और काली मरिच—इन १२ औषधियों को समान भाग ले करके, वस्त्र छन चूर्ण बना, मधु मिला करके, १-१ माशा प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये। १-१ वटी को मुख में रख करके धीरे-धीरे चूसें। इसे दिन में ३-४ बार सेवन करें।

गुण—यह वटी स्वर भंग रोग में विशेष लाभप्रद है। इसे सभी प्रकार के स्वर भेद में सेवन करना अच्छा है। यह स्वर यन्त्र के विकार का शीघ्र शमन करती है और कण्ठध्वनि को निर्मल बना देती है। गायकों और उपदेशकों के लिए अत्युपयोगी है।

(३) कपित्थादि प्रलेप—कपित्थ (कैथ) के पत्र ४ तोले और हल्दी ६ माशे,

इन दोनों को जल के साथ सूक्ष्म पीस करके लेप लगाने योग्य बना लें। उत्तम प्रकार पीसने पर इसे अल्पोषण करके कण्ठ पर लेप लगाकर, ऊपर से पट्टी बान्ध दें।

गुण—इस लेप को लगाने से स्वर भंग रोग में अच्छा लाभ होता है। इस लेप के साथ ही कोई खाने का योग भी सेवन करने से रोग सत्वर नष्ट होता है। किन्नर कण्ठवटी को सेवन करते हुए इस प्रलेप को लगाने से अतिशीघ्र लाभ होगा।

(४) आर्द्रक प्रयोग—१ तोला अदरक को स्वच्छ जल से धो लीजिये। इस में एक छिद्र करें और इस छिद्र में घी में भुनी हुई हींग १ रत्ती, भर करके, उसे बन्द कर दें और भूवल की अग्नि में रख दें। कुछ समय के उपरान्त इसे अग्नि से निकाल कर, अल्पोषण रहते हुए खा लीजिये। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करने से—स्वर भेद रोग में अच्छा लाभ होता है।

(५) तैल गण्डूष प्रयोग-मुख में तिल अथवा सरसों का शुद्ध तैल ढाई तोले से ५ तोले तक भर लें और उसे कण्ठ के नीचे न जाने दें। १० मिनट से आध घण्टे तक इसी प्रकार से इसे मुख के अन्दर रहने दें। इसके उपरान्त इसे बाहर निकाल दें। इस प्रयोग को करने के उपरान्त शीतल जल का कुल्ला न करें। एक घण्टे के पश्चात् उष्ण जल से कुल्ला करना अच्छा है। तैल गण्डूष करने से कण्ठगत दोष नष्ट होकर उत्तम स्वर बन जाता है और दन्तमूल बलवान् होते हैं। दान्तों की निर्बलता, आदि दन्त व्याधि में उत्तम लाभ होता है।

प्रतिश्याय रोग और स्वरभंग रोग में अपथ्य और पथ्य

शीतल जल पीना, वक्षःस्थल तथा शिर को अनावरण रखना, अधिक बोलना, उच्च स्वर से बोलना, क्रोध, चिन्ता, मैथुन, रात्रि जागरण, पर्युषित, दूषित, गरिष्ठ आहार खाना, मलावरोध होना, अधिक पानी पीना, तथा खट्टे पदार्थ खाना—इनसे रोग की वृद्धि होती है।

विश्राम करना, अल्प बोलना और धीरे से बोलना, ब्रह्मचर्य, उष्ण जल पीना, दूध, दलिया, गेहूँ की रोटी, मूंग तथा अरहर की दाल, काली मरिच, सोंठ पीपल, सैंधव लवण आदि हितकर पदार्थों के सेवन से रोग शीघ्र नष्ट होता है।

अथ हिक्का-श्वास-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१६॥

हिक्का (हिचकी) और श्वास रोग के कारण—अधिक व्यायाम करने से अत्यधिक मैथुन से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक दुर्बलता से, मर्म स्थान में आघात लगने से, अत्यधिक रूक्ष अन्न खाने से, विषम भोजन से, अधिक मात्रा में खाने से, शीतल जल अधिक पीने से, ठंडे पदार्थों को अधिक खाने से, शीतल स्थान में अधिक निवास करने से, शोक, चिन्ता, क्रोध, चञ्चलता आदि कारणों से हिचकी, श्वास और काम रोगों की उत्पत्ति होती है। हिक्का, श्वास और कास इन तीनों रोगों के कारण समान हैं।

हिचकी के लक्षण—उपर्युक्त कारणों से प्राण तथा उदान वायु प्रकुपित हो जाती है। प्राण तथा उदान वायु के क्रुद्ध होने पर प्राण की ऊर्ध्व गति होने लगती है; तो रोगी के कण्ठ में हिक्-हिक् ऐसा शब्द होता है। इससे इस रोग को हिक्का कहते हैं। हिचकी रोग होने से पूर्व कण्ठ तथा छाती में गुरुता (भारीपन), उदर में गुड़गुड़ाहट का होना आदि लक्षण देखे जाते हैं। हिचकी रोग में प्राण तथा उदान वायु का प्रकोप होता है; परन्तु श्वास रोग में केवल प्राण वायु दुष्ट होती है।

श्वास रोग—उपर्युक्त अयुक्त आहार-विहार से वायु प्राण-वाही स्रोतों में प्रकुपित होकर वक्षःस्थल में स्थित कफ की सहायता से प्राणवाही स्रोतों को अवरुद्ध करके श्वास रोग को उत्पन्न करती है। प्राणवायु का मुख्य स्थान हृदय है। शरीर में जब तक प्राणवायु अपने स्थान में अवस्थित रहती हुई आहार को आमाशय में ले जाना, थूकना, श्वास यन्त्र को स्वच्छ रखना आदि स्वाश्रित कर्म को करती रहती है; तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। हम अपने जीवन को सुखी, शान्तमय और नीरोग बनाने में तभी सफल हो सकते हैं जब हमारे शरीर में प्राण आदि सभी वायु नैसर्गिक अवस्था में अपने-अपने स्थान में अवस्थित रहते हुए स्व-स्व कर्म को यथोचित करती रहें और शरीर में उनका निर्बाध रूप से गमन आगमन होता रहे। यदि शरीर की वायु प्राकृत-अवस्था में न रहे वा अपने निवास स्थल तथा कर्म को परित्याग दे अथवा देहगत वायु के आवागमन में बाधा उपस्थित हो जाय; तो श्वास, हिचकी, कास, आदि व्याधियाँ तथा अशान्ति, चञ्चलता, अधैर्य, क्षोभ, भ्रम आदि आधियाँ अवश्य आक्रमण करती हैं।

श्वास रोग में प्राण वायु नैसर्गिक अवस्था में नहीं रहती और स्वाश्रित कर्मों को भी यथोचित-रूपेण सम्पन्न नहीं करती। परिणामतः कफ भी दुष्ट हो जाता है और फुफ्फुस नामक यन्त्र में तथा प्राणवाहक स्रोतों में कफ का सञ्चय हो जाता है। इससे प्राण वायु के गमनागमन में अवरोध उत्पन्न होता है। श्वास व्याधि में मौलिक रूप से दो बातें अवश्य पायी जाती हैं। उनमें प्रथम बात है प्राण वायु की विकृति। प्राण वायु के नैसर्गिक अवस्था में रहते हुए श्वास (दमा) रोग उत्पन्न होने की

सम्भावना नहीं होती। दूसरी बात है—फुफ्फुस यन्त्र तथा प्राणवाहक स्रोतों में श्लेष्मा का सचय होना। इन दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि प्राणवाहक स्रोतों में कफ का संचय न हो; तो श्वास रोग नहीं होता और यदि प्राण वायु स्वाभाविक–अविकृत–अवस्था में रहे; तो भी प्राणवाहक स्रोतों में कफ संचय नहीं हो सकता।

श्वास रोग के भिन्न-भिन्न रोगियों में पृथक्-पृथक् लक्षण पाये जाते हैं। श्वास का रुक-रुक कर आना, श्वास का बन्द होना, नेत्रों की ऊर्ध्व गति का होना, मूर्छित होना, चेतना का लुप्त होना, मल मूत्र का अवरोध, निर्बलता, शरीर के अङ्गों में तनाव, हृदय में पीड़ा, कनपटियों में वेदना आदि लक्षण होते हैं।

हिक्का नाशक प्रयोग

(१) पिप्पल्यादि प्रयोग—छोटी पिप्पली का वस्त्रछन चूर्ण १ तोला, मयूर पंख के चन्दों की भस्म ४ माशे—इन दोनों को मिलाकर, सुरक्षित शीशी में रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से १।। माशे तक, मधु ६ माशे के साथ मिलाकर, प्रातः सायं दिन में दो समय खावें। इस प्रयोग से सभी प्रकार की हिचकी नष्ट होती है।

(२) गोघृत प्रयोग—गोघृत ५ से १० तोले और सैंधव लवण ८ रत्ती–इन दोनों को एकत्र मिला कर, उष्ण करें और अल्पोष्ण रहते हुए ही रोगी को पिला दें। इसके आध घण्टे के पश्चात् आधा पाव जल उष्ण करके पिला दें। इस प्रयोग से हिक्का रोग में तुरन्त लाभ होता है। परन्तु घी पिलाने के पश्चात्–शीतल जल नहीं पीना चाहिए और रोगी को पुराने लाल चावल तथा मूंग की खिचड़ी पथ्य में दें। शीतल जल से स्नान और शीत वायु से रोगी को दूर रहना आवश्यक है।

(३) बड़ी हरड़ के छिलकों का चूर्ण ६ माशे से एक तोला तक, उष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन करने से हिचकी नष्ट हो जाती है।

(४) नस्य—सैंधव नमक दो रत्ती को ८ बिन्दु जल में घोल कर एकाकार कर लें और इसे रोगी की नासिका के दोनों छिद्रों में ३-३ बिन्दु डाल दें। इससे सभी प्रकार की हिचकी के रोग में लाभ होता है। अनुभूत प्रयोग है।

(५) प्राणायाम प्रयोग—प्रथम नासिका के रन्ध्रों से उदर तथा वक्षःस्थल की वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाल दीजिये। उसके उपरान्त नासा-छिद्रों से बाहर की वायु को अन्दर भर कर, कुछ समय तक उसे भीतर ही रोके रखिये। प्राण को अपनी शक्ति से अधिक समय तक नहीं रोकना चाहिए और वक्षः स्थल, ग्रीवा और सिर– इन तीनों अङ्गों को समावस्था में—बिना झुके हुए रखना इष्ट है। बाहर की वायु को अन्दर भर करके जो रोका जाता है, उसे "आभ्यन्तर कुम्भक" कहते हैं। हिचकी रोग को नष्ट करने के लिये इसी "आभ्यन्तर कुम्भक" का प्रयोग करना अच्छा

है। कुछ दिन तक निरन्तर इसको करने से हिचकी रोग जल कर भस्म हो जाता है। इसे युक्ति पूर्वक करने से रोग में तत्काल लाभ होता है।

(६) यदि रोगी की मनोवृत्ति को किसी विशेष विषय में लगा दिया जाय– उसके मनोभाव को परिवर्तित कर दिया जाय अथवा उसकी किसी पूर्व व्यतीत हुई घटना की स्मृति को जागृत कर दिया जाय; तो तुरन्त हिक्का रोग शान्त हो जाता है।

श्वास रोग की चिकित्सा

(१) अमर सुन्दरी वटी (विजय भैरव रस)—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध मीठा विष, रेणुका बीज, सोंठ, काली मरिच, छोटी पिप्पली, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमले का छिलका, चित्रक, तेजपात, छोटी इलायची के बीज, नागकेशर, वायविडङ्ग, अकरकरा, नागरमोथा,—इन २० औषधियों को–१-१ तोला और पुराना गुड़ ४० तोले लें।

प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके उसमें भस्में सम्मिश्रण कर मर्दन करें। अच्छे प्रकार घुटने पर गुड़ को छोड़ कर शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर एक दिन घोटें। पीछे गुड़ की चाशनी बना, चाशनी में औषधि मिला कर घोटें। घुटने पर जब यह वटी बनाने योग्य हो जाय; तो चणक (चना) प्रमाण की गोली बना कर, स्वच्छ शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, दिन में २-३ बार जल के साथ दें। कफ-प्रधान रोगों में अदरक के रस के साथ, सन्निपात में तुलसी के रस अथवा अदरक के रस के साथ दें।

गुण तथा उपयोग–कफयुक्त कास, श्वास, परिणाम शूल, प्लीहा तथा यकृत् की वृद्धि, पाण्डु, विषम (मलेरिया) ज्वर, नवीन अजीर्ण ज्वर, जीर्ण ज्वर, प्रसूता ज्वर, सूतिका के वात और कफ प्रकोप जनित—दान्तों का भिचना, श्वास, कास, अतिसार, ज्वर, अरुचि, सन्निपात, प्रलाप आदि उपद्रव, कफ प्रधान सन्निपात, कफज गुल्म, वातगुल्म, कफपित्त गुल्म, यकृद्विकारयुक्त संग्रहणी, क्षय, हाथ तथा पैरों की नाड़ियों में खिचाव, चक्कर आना, वात वृद्धि, वायुविकार, अर्श, अपस्मार, आदि रोगों को शीघ्र नष्ट करता है।

यह "अमर सुन्दरी वटी" उक्त रोगों में बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुषों को निर्भयता पूर्वक दी जाती है। अतिसार में विशेष लाभप्रद है। यह अव्यर्थ प्रयोग है। अजमेर जनपद में इसका प्रयोग अधिक होता है।

हमारे अनुभव के अनुसार—१—"अमर सुन्दरी वटी" और २—"चतुर्मुख रस" (चौमुखी रस)—ये दो रस जिस वैद्य के समीप बने हुए उपस्थित रहेंगे; वह इनसे प्रायः बहुत रोगों पर विजय प्राप्त करेगा और सिद्धहस्त कहलायेगा। पित्त

जनित रोगों में उसे "सूतशेखर" आदि पितघ्न रसों का आश्रय ग्रहण करना होगा। अन्यत्र सर्वत्र वह चिकित्सक विजयी होगा।

वक्तव्य—"चतुर्मुख रस" "उरःक्षय" रोग-प्रकरण में लिखा गया है।

श्वास रोग नाशक प्रयोग

(२) श्वास दमन—शुद्ध आमलासार गन्धक ४ तोले, शुद्ध कुचला चूर्ण २ तोले, लेकर, पत्थर के खरल में एकत्र मिला कर, ३ घण्टे मर्दन करके, शीशी में रख लीजिये।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—श्वास का वेग होने पर जब शरीर के स्नायुमण्डल में ऐंठन हो, वायु की प्रधानता हो, रोगी को कफ के सञ्चय के कारण श्वास-प्रश्वास क्रिया में कष्ट हो रहा हो और रोग का वेग क्षणमात्र के लिए भी शान्त न रहने देता हो; ऐसी अवस्था में "श्वास दमन" के सेवन से तुरन्त लाभ होता है।

(३) मकरध्वजादि चर्ण—मकरध्वज रस १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष १/२ तोला, शंख भस्म ४ तोले और काली मरिच ८ तोले लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण करके, समस्त औषधियों को एकत्र मिलाकर, ३ घण्टे मर्दन करें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२-२ रत्ती, उष्ण जल के साथ सेवन करें। आवश्यकता के अनुसार चौबीस घण्टे में इसे ३-४ बार दें।

गुण—यह चूर्ण श्वास रोग में अत्युपयोगी है। श्वास रुक-रुक कर आता हो, श्वास नली और कण्ठ में कफ का अवरोध हो, रोगी दौड़ते हुए मनुष्य के समान शीघ्र-शीघ्र श्वास-प्रश्वास क्रिया को करता हो, आतुर के चित्त में—व्याकुलता, चञ्चलता तथा भय की वृद्धि हो रही हो; तो ऐसी दशा में इस योग के सेवन से उत्तम लाभ हो जाता है।

(४) अपामार्ग लौह—रविवार के दिन उत्तम पुष्ट अपामार्ग के वृक्ष को पञ्चाङ्ग सहित उखाड़ कर, जल से स्वच्छ कर लें और इसे छाया में शुष्क करें। जब यह अपामार्ग का वृक्ष पूर्णतया सूख जाय, तो इसे कड़ाही में अथवा स्वच्छ भूमि पर, निर्वात स्थानों में अग्नि में जला कर भस्म सिद्ध करें। इसके उपरान्त इस भस्म को चालनी से छान लें और अर्क (मदार) के दूध में ३ घण्टे मर्दन करके, इसकी टिकिया बना, सुखा लें। इन टिकियाओं को शराव सम्पुट में रख कर, वस्त्र मिट्टी करें और उसे सुखाकर, पाँच उपलों में रख कर, अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर, भस्म को ग्रहण कर लें। यह भस्म २ तोले, काली मरिच का वस्त्रछन चूर्ण और लौह भस्म—प्रत्येक २-२ तोले लें। इन तीनों औषधियों को लोहे के खरल में डालकर १ घण्टा मर्दन करके, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती से २ माशे तक, गोघृत के साथ, प्रातः साय दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—इसके सेवन से श्वास और कास रोग नष्ट हो जाते हैं। सभी प्रकार के श्वास रोग में हितकर है। इसे प्रातः सायं दिन में दो समय, निरन्तर एक मास तक सेवन करने से श्वास व्याधि में अद्भुत लाभ होता है।

(५) स्फटिकादि प्रयोग—शुद्ध लाल फिटकरी १० तोले, शुद्ध तुत्थ १० तोले लें। दोनों का सूक्ष्म चूर्ण बना करके, एकत्र मिला लीजिये। इसके पश्चात् देवदाली-सत्त्व ५ तोले को जल में घोलकर, इस जल की सात भावना दें और प्रत्येक भावना में २ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना देने के उपरान्त उत्तम प्रकार घोटें और छाया में शुष्क करके, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती, द्राक्षा में रख कर खावें और ऊपर से उष्ण जल पीवें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से श्वास तथा कास में उत्तम लाभ होता है। वक्षः-स्थल पर कफ के सञ्चित हो जाने से जब रोगी को श्वास का वेग उपस्थित होता है तो श्वास-प्रश्वास की गति तीव्र हो जाती है। रोगी को श्वास लेने में कष्ट होता है। ऐसी दशा में इस प्रयोग के सेवन से कफ पिघल कर निकल जाता है; फलतः रोग में शान्ति हो जाती है। कास तथा श्वास में कफ के अवरोध को नष्ट करने के लिए यह प्रयोग अत्युत्तम है। अनुभूत है।

(६) यवानिकादि भस्म—देशीय यवानिका (अजवाइन) १५ तोले, सैंधव लवण, साम्भर नमक, संचर नमक और काला नमक— प्रत्येक ३-३ तोले (इन पञ्च लवणों को १५ तोले लें), इन्द्रायण का फल ५ नग, वज्रीकाष्ठ ३॥ हाथ प्रमाण, मारुवृन्ताक (बैंगन) २ नग, कण्ट कारी (कटेली) के फल २० नग और घृतकुमारी का रस २० तोले लें। चूर्ण करने योग्य औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर, शेष समस्त द्रव्यों को चूर्ण में मिला करके एक दिन दृढ़ता पूर्वक घोटें। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर, इसका गोला बना लें और उसे धूप में शुष्क करें, उत्तम प्रकार सूखने के पश्चात् इस गोले को एक मिट्टी के पात्र में रख कर, ऊपर से मिट्टी का ढक्कन लगा करके, वस्त्र मिट्टी से सन्धिबन्द करें और धूप में शुष्क करके, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर, औषधि को निकाल लें। इसको छान करके शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४-४ माशे, मधु ६ माशे के साथ मिलाकर चाटें और ऊपर से उष्ण जल पीवें। आवश्यकता के अनुसार इसे दिन में २-३ बार प्रयुक्त करें।

गुण—इस भस्म के सेवन से श्वास, कास, यक्ष्मा, गुल्म, उदर के रोग, शूल,

अजीर्ण, शोथ--इन सभी व्याधियों का नाश होता है। श्वास, कास आदि अनेक रोगों को नष्ट करने के लिए अत्युत्तम महौषधि है। इस भस्म को ३२ दिन तक निरन्तर सेवन करने से कष्टसाध्य श्वास, तथा पूर्वोक्त रोगों में निश्चित लाभ होता है। इसे धैर्य पूर्वक कुछ काल निरन्तर सेवन करना अभीष्ट है। यह वृन्दप्रणीत प्रयोग है और हमारे द्वारा परीक्षित है।

(७) अपामार्ग भस्म—अपामार्ग (चिरचिटा) के बीजों को छिलका सहित सूक्ष्म पीस लें और अर्क के दूध में ६ घण्टे मर्दन करके, इसका एक गोला बना लें और इस गोले को धूप में शुष्क करके, शराव सम्पुट में बन्द करके, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर, भस्म को ग्रहण करें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती तक, पान में रखकर, सेवन करें।

गुण—इस भस्म को सेवन करने से श्वास और कास में तुरन्त लाभ होता है। श्वास नली और वक्षःस्थल में संचित हुए कफ को द्रवीभूत करने के लिए अत्युपयोगी औषधि है।

(८) मल्ल भस्म—शुद्ध श्वेत मल्ल (श्वेत सखिया) १ तोला लें। इसे सूक्ष्म करके, अर्क के दूध में घोटें। एक दिन पूर्ण घोटने के उपरान्त, छोटी-छोटी टिकिया बना लें, और इनको छाया में शुष्क कर लें। सूखने के पश्चात् इन टिकियाओं को एक बड़े शंख की नाभि में भर दें। उड़द के आटे से शंख के मुख को बन्द करके ऊपर से वस्त्र मिट्टी करें और धूप में सुखा करके, गजपुट की अग्नि में जला दें। स्वाङ्गशीत होने पर, शंख सहित मल्ल को सूक्ष्म पीस कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती, ६ माशे मधु और १ तोले गोघृत के साथ मिला करके चटें।

उपयोग—यह भस्म श्वास रोग को अवश्य नष्ट करती है। एक सप्ताह तक इसका प्रयोग करने पर श्वास व्याधि में लाभ होता है। यह भस्म लाभप्रद तो अवश्य है, किन्तु उष्ण है। इस भस्म के सेवन काल में रोगी को अपथ्य से दूर रह कर, पथ्य का सेवन करना नितान्त आवश्यक है। इसमें घृत, दूध का विशेष सेवन होना चाहिए। तैल, खटाई, लाल मरिच, लवण आदि अहित आहार त्याज्य हैं।

(९) अपामार्गादि प्रयोग—रोगी सूर्योदय से पूर्व स्नान करके, भीगे हुए वस्त्र मे स्वयमेव अपामार्ग १ तोला और जवासामूल २ तोले लेकर जल से स्वच्छ करे और शिला पर रख कर, इसमें ११ दाने काली मरिच मिला कर, सूक्ष्म पीस लें और उष्ण जल में छान करके पी जावें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से कष्ट साध्य पुराना श्वास रोग भी शान्त हो जाता है। इस प्रयोग को २१ दिन तक सेवन करने से श्वास-रोग में अच्छा लाभ होता है।

(१०) मधुयष्टिकादि क्वाथ—मधुयष्टिका (मुलहठी), वनपसा के पुष्प, गाजवान् और लिसोड़े के पत्र-प्रत्येक ६-६ माशे लेकर, यवकुट कर, एक पाव जल

में मन्दाग्नि पर पकावें। चौथाई जल के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके, छान लें और एक तोला खाण्ड मिला कर, अल्पोष्ण पीवें। आवश्यकता के अनुसार प्रातः सायं दिन में दो समय नवीन क्वाथ सिद्ध करके सेवन करें। इस प्रयोग के सेवन से श्वास रोग में अच्छा लाभ होता है। यह प्रयोग मैंसी ग्राम के एक सज्जन से प्राप्त हुआ था। सैकड़ों बार का अनुभूत है।

(११) श्वासान्तकारिष्ट—बबूल की छाल, अपामार्ग पंचाङ्ग, काले धतूरे का पंचाङ्ग, द्राक्षा, दशमूल और कटेली पंचाङ्ग—प्रत्येक आध-आध सेर लेकर इनका यवकुट चूर्ण बना लें। एक मन आठ सेर जल में उक्त चूर्ण को डाल करके, मन्दाग्नि पर क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर छान लें। इस छने हुए जल को चिकने मिट्टी के पात्र में भर दें और इसमें—काकड़ासिंगी, नागर-मोथा, सोंठ, बड़ी हरड़, दालचीनी,—प्रत्येक एक-एक छटांक, धाय के पुष्प आध सेर—इन सबका यवकुट चूर्ण बना करके डाल दें और देशीय शक्कर ६ सेर सम्मिश्रण करके, उत्तम प्रकार चलाकर, मुख मुद्रा करके, एक स्थान पर गाढ़ दें। एक मास पर्यन्त इसी प्रकार से रहने दें। इसके उपरान्त इसे निकाल कर, छान करके, शीशियों में भर करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१। से २॥ तोला तक भोजन के पश्चात् दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह अरिष्ट श्वास, कास, क्षय, मन्दाग्नि रोगों पर अनुभूत है। इन समस्त रोगों में अत्युपयोगी औषधि है।

(१२) समीरपन्नग रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुमल्ल (संखिया), और शुद्ध हरिताल समान भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके, इसमें शेष दोनों द्रव्यों को मिला कर, मर्दन करें। पश्चात् तुलसी-पत्र के रस में २ दिन मर्दन करके, इसका गोला बना, सुखा कर, शराव सम्पुट करके, ४ वस्त्र मिट्टी करें और धूप में सुखा लें। इसके उपरान्त इस सम्पुट को बालुका यन्त्र में रखकर, ४ प्रहर की तीव्र अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर उसके अन्दर से रस को ग्रहण कर लें।

अथवा—सात कपड़ मिट्टी की हुई काचकूपी में पूर्वोक्त औषधि को भर करके ६ से ८ प्रहर तक—मन्द-मध्यम और तीव्र अग्नि दे करके सिद्ध कर लें। यह तलस्थ रस है। देखने में यह काले वर्ण का तेजस्वी होता है। जल के साथ घिसने पर यह पीतवर्ण हो जाता है। जिस समीरपन्नग रस में कालान्तर में काले नमक के तुल्य दुर्गन्ध आने लगे और उसके ऊपर श्वेत काई सी उत्पन्न हो गई हो; उस रस का प्रयोग करना अनिष्ट है। मन्द-अग्नि देने से यह दोष उत्पन्न हो जाता है। उक्त प्रकार के "समीरपन्नग रस" को पुनः अग्नि देकर सिद्ध करना अच्छा है।

वक्तव्य—कोई मनः शिला को भी इस रस में ग्रहण करते हैं। किन्तु मनः शिला के लेने पर इस रस में अधिक उग्रता आ जाती है।

मात्रा और अनुपान—आध रत्ती से एक रत्ती तक, मधु, पान के रस, अदरक के रस—इनमें से किसी एक के साथ दें। श्वास तथा कास में शुद्ध टंकण १ रत्ती मिला करके–दोनों को खरल में घोट कर दें और ऊपर से–मुलहठी, बहेडे की छाल और अडूसा के पत्र–इन तीनों को समान भाग लेकर २० गुणा जल में क्वाथ बनावें। अष्टमांस शेष को छान कर, मिश्री मिला करके, पिला दें। आवश्यकता के अनुसार इस क्वाथ को अनेक बार सेवन करावें।

गुण—समीरपन्नग रस के सेवन से श्वास रोग में अच्छा लाभ होता है। यह कफ को द्रवीभूत करके बाहर निकाल देता है। यह रस उष्ण तथा उत्तेजक है। इसका प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों तथा रक्त पर होता है और दोषों में वात एवं कफ पर इसका विशेष प्रभाव देखने में आता है। अतएव किसी भी विकार में यदि वातिक प्रकोप हो अथवा कफ का सञ्चय होवे, तो वहाँ "समीरपन्नग रस" का उपयोग करना उत्तम है।

जीर्ण श्वास रोग में "समीरपन्नग रस" के सेवन से अल्पकाल में ही कफ का स्राव हो जाता है। इसमें एक चावल से चार चावल तक, इस रस को एक रत्ती शुद्ध सुहागे के चूर्ण में मिला कर, सेवन करावें और ऊपर से—मुलहठी, बहेड़े की छाल और बासा पत्र—इन तीनों को समान भाग लेकर मन्दाग्नि पर अष्टमांश क्वाथ बना करके, उसमें मिश्री मिला कर, अल्पोष्ण रहते हुए पिलावें। इस प्रकार जीर्ण श्वास रोग में अच्छा लाभ होता है। अनुभूत है।

(१३) मुक्तादि प्रयोग—मुक्ता भस्म आठ माशे, शुद्ध मल्ल (संखिया) २ माशे और बबूल की छाल का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण ५ तोले ४ माशे लें। प्रथम बबूलत्वक् चूर्ण को खरल में मर्दन करें। पश्चात् शेष द्रव्यों को चूर्ण में मिला करके, १०२ घण्टे तक मर्दन करें और शीशी में डालकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती से १ माशा तक, मधु के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय दें। भोजन के उपरान्त श्वास तक्रारिष्ट दें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से श्वास के वेग में तुरन्त लाभ होता है। श्वास के वेग में इसके उपयोग से शान्ति हो जाती है। परीक्षित।

(१४) शिलादि वटी—शुद्ध मनःशिला, वंशलोचन और छोटी पिप्पली—इनका सूक्ष्म चूर्ण पृथक्-पृथक् २-२ तोले लें। तीनों औषधियों को एकत्र मिलाकर, अदरक के रस में ७२ घण्टे स्थिरता से मर्दन करें। जब घोटते-घोटते औषधि मक्खन के समान हो जाय; तो २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, मधु के साथ खा कर, ऊपर से उष्ण जल पीवें। प्रातः सायं दिन में दो समय दें।

गुण—यह वटी श्वास और कास में अत्युत्कृष्ट औषधि है। इसके सेवन से श्वास तथा कास रोग में अवश्य लाभ होता है।

(१५) धत्तूर-धूम्रपान—डण्ठल सहित धत्तूरे के पत्तों को छाया में शुष्क करके, चूर्ण बना करके, रख लें। इस चूर्ण को ४ रत्ती से २ माशे तक चिलम में रख कर, पीवें। इसके धुआँ को नासिका से न निकालें। मुख से ही निकालना इष्ट है। इसका धीरे-धीरे अभ्यास करें। जिन व्यक्तियों को यह अनुकूल होता है; उनको ही पिलाना अभीष्ट है। यदि किसी श्वास के रोगी को यह अनुकूल न हो; तो उसे नहीं पीना चाहिये।

गुण—इस प्रयोग से श्वास रोग में तुरन्त लाभ होता है।

हिक्का (हिचकी) और श्वास रोग में पथ्यापथ्य

मानसिक शान्ति, धैर्य, ईश्वर-भक्ति, माता, पिता, गुरु, अतिथि—इनमें आदर बुद्धि रखना, धर्म में प्रीति, आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, ब्रह्मचर्य, शुद्ध विचार, चित्त की प्रसन्नता, वाणी का संयम, शारीरिक उचित श्रम करना, शुद्ध वायुमण्डल में भ्रमण, उष्ण जल, पुराने साठी चावल, लाल चावल, गेहूँ, जौ, मूंग की दाल, बथुआ, मूली, लौकी, तोरई, परवल आदि का शाक, सोंठ, कालो मरिच, पिप्पली, हरड़, वहेड़ा, सेंधा नमक, बकरी तथा गौ का दूध और घी, मात्रा में भोजन करना आदि हितकर होने से पथ्य हैं। इनसे रोग की शीघ्र निवृत्ति होती है।

मानसिक अशान्ति, चंचलता, अधर्माचरण, मैथुन, रात्रि जागरण, चिन्ता, शोक, कुग्रन्थों का अध्ययन करना, सिनेमा देखना, बीड़ी, हुक्का आदि धूम्रपान; अधिक भोजन करना, गरिष्ठ, पर्युषित (बासी), मांस, चना, मटर, शीतल जल पीना, शीतल पानी से स्नान करना आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

अथ मूर्च्छा-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१७॥

पर्याय—मूर्च्छा, भ्रम, संज्ञानाश, संज्ञा दौर्बल्य, संज्ञोपघात, कश्मल, बेहोशी—ये शब्द मूर्च्छा के पर्याय हैं। जिस रोग में रोगी की बाह्य चेतना लुप्त होकर ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, स्थूल शरीर आदि का बोध नहीं रहता और सुख, दुःख, शीत, उष्ण प्रभृति द्वन्द्वों की प्रतीति नहीं होती उसे मूर्च्छा रोग कहते हैं।

मूर्च्छा रोग के कारण

चित्त में सत्त्वगुण की न्यूनता और तमोगुण की वृद्धि होने से, शारीरिक बल का क्षय हो जाने से, मल, मूत्र, अपान वायु, आदि वेगों को रोकने से, वीर्य के अधिक नाश, से, आहार, व्यवहार, विचार आदि में अपवित्रता आने से, अत्यधिक क्रोध करने से अन्तरात्मा के प्रतिकूल आचरण आदि से मूर्च्छा रोग उत्पन्न होता है।

मूर्च्छा रोग के लक्षण

उपर्युक्त कारणों से जब शरीर में वात आदि दोष विकृत होकर शारीरिक ज्ञान वाहक केन्दों को दूषित कर देते हैं, तो मनुष्य की बाह्य चेतना लुप्त हो जाती है। हृदय में पीड़ा, जम्भाई अधिक आना, मन में क्लेश की वृद्धि आदि लक्षण होते हैं।

मूर्च्छा व्याधि की चिकित्सा

मूर्च्छित रोगी की चिकित्सा में यह ध्यान देना आवश्यक है कि प्रारम्भ में ही रोगी को विशेष तीव्र औषधि देनी अनुचित है। रोग के आरम्भ में सामान्य उपचार होना विधेय है। यदि साधारण उपाय करने से मूर्च्छित रोगी स्वस्थ-अवस्था में न आवे; तो क्रमशः तीव्र—तीव्रतर और तीव्रतम उपायों का आश्रय ग्रहण करना अभीष्ट है।

१—मूर्च्छित रोगी के मुख तथा नेत्रों पर शीतल जल के छींटे तीव्रता से दें। १०–१५ मिनट तक निरन्तर शीतल जल के छींटे देने से मूर्च्छा शान्त हो जाती है।

२—वचा का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण ४ रत्ती कागज की नली में रख करके उसे रोगी की नासिका के दोनों छिद्रों में अन्दर (वायु द्वारा) डालने से मूर्च्छा नष्ट होती है। इससे रोगी को छींक आ करके, मोह नष्ट हो जाता है।

३—काली मरिच, शुण्ठी और छोटी पिप्पली—इन तीनों औषधियों को समान भाग ले करके, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को चार रत्ती की मात्रा में लें और कागज की नली में भरकर, रोगी की नासा के रन्ध्रों में (मुख की वायु द्वारा) प्रविष्ट करने से मूर्च्छा उतर जाती है।

४—नवसादर का वस्त्रछन चूर्ण एक तोला और बिना बुझा हुआ पत्थर का उत्तम चूना एक तोला—इन दोनों को एक शीशी में भर दें और काक लगा करके शीशी को कुछ समय तक बन्द रखने के उपरान्त काक को खोल करके रोगी को इस औषधि को सुंघावें। कुछ समय तक सुंघाने के उपरान्त पुनः डाट बन्द करके रख दें और अल्प काल के पश्चात् पुनः सुंघावें। इससे मूर्च्छित हुआ रोगी चेतना प्राप्त करता है। यह अत्युत्तम आशु-फलप्रद प्रयोग है।

५—यदि नस्य प्रयोग से लाभ न हो, तो वमन कराना चाहिये। मैनफल, शुद्ध तुत्थ, काही तलआदि वामक द्रव्यों में से किसी एक को देने से वमन हो जाता है। इससे मूर्च्छा नष्ट हो जाती है।

६—कभी-कभी मलावरोध से भी मूर्च्छा होती है। जब अत्यधिक विबन्ध हो जाता है; तो रोगी संज्ञोपघात हो जाता है। मलावरोध से उत्पन्न हुई मूर्च्छा को नष्ट करने के लिये वस्ति क्रिया करने से लाभ होता है। एनिमा द्वारा उदर में जल चढ़ाने से, उदर की शुद्धि हो जाती है। फलत रोग का वेग नष्ट होता है।

७—छोटी पिप्पली का वस्त्रछन चूर्ण १ माशा, मधु ६ माशे और अदरक का रस ३ माशे लेकर, तीनों को सम्मिश्रण करके, इसे रोगी के मुख में डाल दें। इसके उपरान्त रोगी की नासिका के दोनों छिद्रों को बन्द कर दें। इससे शीघ्र ही मूर्च्छा दूर हो जाती है।

८—गो दुग्ध एक पाव, जल १ पाव, नागोरी अश्वगन्ध और शतावरी—प्रत्येक का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण ६-६ माशे—इन चारों को एकत्र सम्मिश्रण करके, मन्दाग्नि पर पकावें। दूध मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल करके, मिश्री मिला, रोगी को पिला दें। इस प्रयोग को एक मास तक निरन्तर सेवन करने से मूर्च्छा रोग समूल शान्त होता है।

९—दाडिम (अनार) के बीज, किशमिश, धान की खील, कमल पुष्प, नीलोफर—इन पांच द्रव्यों को समान भाग लें और मोटा-मोटा कूट करके, दधि (दहि) के जल में ३ घण्टे पर्यन्त भिगो दें। इसके पश्चात् हाथ से मर्दन करके, छान लें और इसमें मिश्री मिलाकर, रोगी को पिला दें। इसे दिन में ४-५ बार सेवन करावें।

गुण—इस प्रयोग से पित्तज मूर्च्छा नष्ट हो जाती है। पितज मूर्च्छा होने पर—रोगी आकाश को लाल, हरा, पीला देखता है। तृषा अधिक होती है। शरीर में दाह का होना, प्रस्वेद का आना, मल पतला होना, शरीर का वर्ण पीला हो जाना—आदि लक्षण होते हैं। इन लक्षणों वाले रोगी के लिये यह प्रयोग अत्युत्तम है।

१०—सैंधव लवण, काली मरिच और मैनसिल—इन तीनों को समान भाग लें और सूक्ष्म पीस करके चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को मधु में घोटकर, कज्जल बना, रोगी के नेत्रों में इसका अञ्जन (कज्जल) लगावें। इस अञ्जन से मूर्च्छा तुरन्त नष्ट होगी।

११—रस सिन्दूर और छोटी पिप्पली का वस्त्रछन चूर्ण—इन दोनों को समान भाग लें और एक दिन दृढ़ता के साथ घोट करके, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक मधु में मिलाकर चटावें। इस प्रयोग को एक मास तक खाने से मोह (वेहोशी) समूल नष्ट होता है।

१२—उत्तम ताम्र भस्म, नागकेशर और खस—तीनों द्रव्यों को एक दिन खरल करके, शीशी में सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—३-३ रत्ती, मधु में मिला कर चटावें और ऊपर से शीतल जल अथवा दुग्ध पीने के लिए दें। इस प्रयोग के सेवन से मूर्च्छा शान्त होती है।

१३—मधुयष्टी (मुलहठी) का सूक्ष्म चूर्ण एक पाव और जल चार सेर—इन दोनों को मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। छने हुए जल को अग्नि पर रख दें और इसमें एक सेर गो घृत डालकर, मन्दाग्नि पर पकावें। घृतमात्र के शेष रहने पर, इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल करके शीशे के पात्र में भर कर सुरक्षित रखिये।

मात्रा—६ माशे से एक तोला तक, प्रातः सायं दो समय दें।

गुण—यह घृत मूर्च्छा रोग को नष्ट करने के लिये सर्वोत्तम महौषधि है। इसके सेवन से सभी प्रकार की मूर्च्छा (वेहोशी) में लाभ होता है।

१४—रससिन्दूर, स्वर्ण माक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, शिलाजीत, फौलाद भस्म, समान भाग लें। इन सबको एकत्र मर्दन करें, पीछे शतावरी के रस में ४ दिन तक घोट करके—२-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करें और शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, मधु के साथ मिलाकर, प्रातः सायं दिन में दो समय खावें।

गुण—यह वटी अत्युत्कृष्ट रसायन है। इसके सेवन से मूर्च्छा, धातु रोग, प्रदर, शारीरिक निर्बलता, हृदय तथा मस्तिष्क की दुर्बलता आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं। यह श्रेष्ठ औषधियों में मान्य है। कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से मूर्च्छा आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

१५—मद्यज मूर्च्छा में पुनः मद्य पीने से अथवा विश्राम करने से लाभ होता है।

१६—भ्रम रोग में रोगी के शरीर के अङ्गों में पुराना गो घृत मर्दन करने से सफलता मिलती है। पुराने गोघृत के मर्दन करने से भ्रम रोग में अच्छा लाभ होता है।

१७—संन्यास—यह व्याधि मूर्च्छा की ही अवस्था विशेष होती है। सभी प्रकार की मूर्च्छा दोषों का वेग शान्त होने पर स्वयमेव नष्ट हो जाती है। किन्तु संन्यास बिना औषधि के दूर नहीं होता है। इस रोग में—तीव्र नस्य, तीक्ष्ण अञ्जन और शरीर में सुई को चुभोना आदि लाभप्रद होता है।

शल्य चिकित्सार्थ रोगी को मूर्च्छित करने का उपाय—

खुरासनी अजवाइन, पुत्र जाति की जड़, धतूरा, अफीम—इन चार औषधियों को समभाग लेकर यवकुट चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को १॥ तोला लेकर, हुक्के का जल १२ तोले में डालकर, मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब सम्पूर्ण जल सूख जाय, तो इसे छाया में शुष्क करें। सूखने पर इसे द्वितीय वार १२ तोले हुक्के के जल में पूर्ववत् मन्दाग्नि पर पकावें और समस्त पानी के शुष्क होने पर छाया में सुखा लें। इस प्रकार १२-१२ तोले हुक्के के जल में ५ वार पका करके, अन्त में सुखाकर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से १॥ माशा तक, बालकों को ४ रत्ती तक, जल के साथ खिला दें (पुत्रजाति की जड़—(=बेखलुफा))

उपयोग—शल्य चिकित्सा करने के लिए यदि रोगी को मूर्च्छित करना हो, तो इस प्रयोग का सेवन करावें। यह प्रयोग रोगी को मूर्च्छित कर देता है। इस प्रयोग से किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है। इस प्रयोग से मूर्च्छित किये हुये रोगी को संज्ञावान--चेतनावान् बनाने के लिए आतुर की नासिका में कुछ सिरके की बिन्दु डाल दें। इससे रोगी की मूर्च्छा नष्ट हो जाएगी। अनेक बार का अनुभूत प्रयोग है।

मूर्च्छा रोग में पथ्यापथ्य—शीतल जल का पीना, शीतल जल से स्नान, गो दुग्ध, घी, पुराना चावल, मूंग की दाल, मिश्री, नारियल, अनार, अङ्गूर, आदि हितकर हैं।

गरिष्ठ, पर्युषित, तीक्ष्ण, रूक्ष, अम्ल, लवण आदि आहार, मैथुन, परिश्रम, सूर्य की गर्मी, क्रोध, चिन्ता रात्रि जागरण, अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करना आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

अथोन्माद-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१८॥

पर्याय—उन्माद, चित्त विभ्रम, मनोविभ्रम—ये पागलपन के समानार्थक शब्द हैं।

"उन्माद"

यह मानसिक रोग है। इस रोग में—मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—इन चारों अन्तःकरणों में विकृति हो जाती है। सत्त्व गुण की न्यूनता होने पर ही मनोव्याधि उत्पन्न होती है। मन में जब रजोगुण की विशेष वृद्धि हो जाती है और सत्व गुण तथा तमोगुण अभिभूत हो जाते हैं—तो व्यक्ति के मन में अत्यधिक चञ्चलता, काम, क्रोध तथा लोभ की अधिकता होती है। रजोगुण की वृद्धि होने पर उचित अनुचित, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, धर्म, अधर्म का यथोचित बोध नहीं होता। अतएव राजस व्यक्ति के द्वारा होने वाले मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक सभी प्रकार के कर्म विवेक प्रकाश में नहीं हो पाते। अशान्ति, चंचलता और दुःख इन तीनों की मित्रता होने के कारण राजस व्यक्ति पर इनका एक साथ आक्रमण होता है। इससे राजसिक व्यक्ति अपने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन करणो के नियन्त्रित करने में असमर्थ होता है और स्वयमेव अशान्त, विक्षिप्त तथा दुःखी रहता है। प्रायः इस प्रकार के रजोगुणी व्यक्ति ही उन्माद के रोगी होते हैं।

तमोगुण की प्रबलता और सत्त्वगुण तथा रजोगुण की न्यूनता होने पर प्रमाद, आलस्य, मोह, अज्ञान आदि की बहुलता हो जाती है और अन्तः करण में अपवित्रता होने के कारण प्रज्ञापराध से अनेक आधि व्याधि उत्पन्न होती हैं। तामस व्यक्ति के अन्तः करण में अज्ञानरूप अन्धकार होने के कारण उसे उचित, अनुचित, धर्म, अधर्म आदि का बोध नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति विशेष धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानता है। उसे अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि कर्णगोचर नहीं होती। शरीर, मन और वाणी—इन से होने वाले त्रिविध कर्म अपवित्र, अन्यायपूर्ण और रोग प्रवर्त्तक होते हैं। ऐसी अवस्था में उन्माद-अपस्मार आदि अनेक विकार हो जाते हैं।

काम की अधिकता होने से अथवा अर्थ की अनुचित आकाङ्क्षा होने से बुद्धि प्रकाश मलिन होता है। इससे, धर्मानुष्ठान तथा कर्त्तव्य-पालन में संशय होता और आहार विहार में अशुद्धि आ करके चित्तविभ्रम रोग उत्पन्न हो जाता है।

संसार में उन्माद रोग को उत्पन्न करने वाले जो कारण हैं उन सभी में सत्त्वगुण की न्यूनता अनुस्यूत रहती है। सत्वगुण की अधिकता में कोई आधि व्याधि पीड़ित नहीं कर सकती और सत्त्व के अभिभूत होने पर मनोविकार तथा शारीरिक रोगों की उत्पत्ति अवश्यमेव होगी। जो व्यक्ति सत्त्वगुण का मूल्याङ्कन नहीं करते, वे रजोगुण तथा तमोगुण से परास्त होते एवं पद-पद पर विपत्तियों का अनुभव करते हैं। आधुनिक सभ्य समाज में जो उन्माद रोग की वृद्धि हो रही है; उसमें काम तथा अर्थ की आसक्ति प्रबल कारण देखे जा सकते हैं। यहाँ भी रजोगुण की वृद्धि से सत्त्वगुण अभिभूत पाया जाता है।

उमाद रोग के लक्षण—सत्त्वगुण की अल्पता होने पर जब मन, बुद्धि आदि अन्तः करण में रजोगुण वा तमोगुण अधिक प्रबल हो जाता है, तो उस अवस्था में बुद्धि का संकल्प, विकल्प, आहार, विहार आदि चेष्टाओं पर नियन्त्रण न होने से अन्तरात्मा के प्रतिकूल व्यवहार होने लगता है। मन, वाणी तथा शरीर—इनकी क्रियाएँ एकता के साथ नहीं होतीं। जो मन में विचार किया जाता है; वह वाणी तथा शरीर से होने वाली क्रियाओं में पूरा नहीं उतरता और वाणी से जो बोला जाता है अथवा शरीर से किया जाने वाला कर्म मानसिक विचारों के सर्वथा प्रतिकूल होता है। ऐसी अवस्था में मन की चञ्चलता, बुद्धि में भ्रम, इन्द्रियों में विक्षिप्तता, धैर्य का नाश, विना प्रसङ्ग के भाषण–आदि लक्षण होते हैं।

उन्माद रोग की चिकित्सा—उन्माद रोग की चिकित्सा में केवल औषधि—प्रयोगों से तव तक पूर्ण सफलता नहीं होती; जब तक कि—उन्माद रोग के उत्पादक घटक शान्त न हो जायें। रोग के मूल कारणों का निराकरण अत्यावश्यकीय है। उसके साथ-साथ रोगानुसार औषध–प्रयोग करने से शीघ्रता से रोग की निवृत्ति होती है। यहाँ पर उन्माद व्याधि के लिये हितकर प्रयोग लिखे जाते हैं—

(१) उन्मादघ्न योग

इसखल की पत्तियाँ २॥ नग, श्वेत वरुआ (सर्पगन्धा) की जड़ २॥ माशा (अभावे-जलनीम), मुण्डी के पुष्प २॥ नग, गोरखमुण्डी का पुष्प १ नग, कटुवचा ५ रत्ती, श्वेत घुंघुची (गुञ्जा) २॥ बीज, काली मरिच २॥ दाना, ब्राह्मीपत्र २॥ नग, राडी का रज अथवा यशद भस्म १ रत्ती लें। रोगी तथा परिचारक प्रथम स्नान करें। इसके पश्चात् जल से शुद्ध किए हुए शिला पर उक्त समस्त औषधियों को सूक्ष्म पीस लें। पीसने पर जब यह भांग के तुल्य घुट जाय; तो आध पाव जल में छान लें और मिट्टी के पात्र में डाल कर, रोगी को पिला दें। यह बलिष्ठ रोगी की एक मात्रा है। रोगी के वल, अवस्था, जठराग्नि आदि को विचार करके मात्रा निश्चित करनी योग्य है। यदि यह अधिक मात्रा में दी जाती है; तो रोगी को अधिक निद्रा आने लगती है। अल्प मात्रा से निद्रा नहीं आती है। उचित मात्रा के सेवन से उचित नींद आने लगती है।

वक्तव्य—इसखल औषधि को बड़ का वीरो कहते हैं। इसका फल सरपुतिया वा तोरई के आकार का होता है। यह सर्पदंश में प्रयुक्त होता है।

गुण—यह प्रयोग वातज, पित्तज आदि सभी प्रकार के उन्माद रोग में लाभप्रद है। उन्मत्त रोगी को निद्रा नहीं आती है। इस प्रयोग से निद्रा आकर रोगी स्वस्थ होने लगता है। इसकी तीन मात्रा देने पर लाभ प्रकट होने लगता है। १५ दिन तक निरन्तर प्रयोग करने पर सफलता होगी। यह अपस्मार व्याधि में भी लाभप्रद है। अनुभूत है।

(२) सुधाकर-शीतल प्रयोग

लौकी की गिरी, खरबूजे की गिरी, प्रत्येक तीन-तीन छटाँक, तरबूजे की गिरी, पेठे की गिरी, खीरे की गिरी, ककड़ी की गिरी और दक्षिणी मरिच-प्रत्येक दो-दो छटाँक, लाल इलायची के दाने–डेढ छटाँक, कासनी के बीज एक छटाँक, सोंफ और बादाम की गिरी १–१ पाव, मिश्री ढाई सेर, उत्तम श्रेणी का केवड़े का अर्क एक पाव लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। पश्चात् समस्त गिरियों को सूक्ष्म पीस करके चूर्ण में मिला दें। इसके उपरान्त मिश्री की चाशनी बना करके, उसमें चूर्ण को मिला करके, मन्दाग्नि पर पकावें। जब यह पाक कुछ कड़ा हो जाय; तो इसमें केवड़े के अर्क को डाल करके, उत्तम प्रकार मिला दें और अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर उत्तम पात्र में भर करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और सेवन विधि :—१ तोला पाक को, एक पाव जल में डाल करके चमसी (चम्मच) से हिलाकर, अच्छे प्रकार मिला लें। आवश्यकता होने पर इसमें हिम (बर्फ भी मिला दें। यह जल में मिलने पर दूध के वर्ण के तुल्य हो जाता है। इसे मिट्टी के पात्र में भर करके, रोगी को पिला दीजिए।

गुण—यह प्रयोग उन्माद, अपस्मार, इन रोगों को तुरन्त नष्ट करता है। शरीर की उष्णता, दाह, स्मृति शक्ति का क्षय, अरुचि, अजीर्ण, शरीर में होने वाले फोड़े, फुंसी, रक्त दोष, मूत्रकृच्छता, स्वेद का आना, गर्भवती स्त्री का वमन तथा पिपासा इन समस्त रोगों में अत्युपयोगी परीक्षित औषधि है। उष्ण काल में यह अमृत के समान हितकर है। इसका निर्माण करके लाभ उठाइये।

(३) सुधाकर-रसायन

छोटी पिप्पली १ तोला, शुण्ठी, मरिच, तेजपत्र, शुष्क पुदिन—प्रत्येक १।।—१।। तोला, जीरा ३ तोले, लाल इलायची के बीज एक छटाँक, दाल चीनी १ तोला, छिला हुआ कूष्माण्ड (पेठा) ढाई सेर, गो-घृत सवा सेर, मिश्री ढाई सेर, पिपर मेण्ट ४ तोले लें। रजतवर्क भी प्रयुक्त कर सकते हैं। प्रथम चूर्ण करने योग्य औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। पश्चात् पेठे को यन्त्र से (कद्दूकस में) सूक्ष्म करें और इसे एक कड़ाही में ढाई सेर जल के साथ डाल करके मन्दाग्नि पर पकाइये। पेठे के

पकने पर कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार लें और स्वाङ्गशीत होने पर इस पके हुए कूष्माण्ड को किसी वस्त्र के ऊपर रख करके, पोटली बना, इसके जलीयांश को निचोड़ दें। इसके निकले हुए जल को एक पात्र में रख लें। इसके उपरान्त पेठे को कड़ाही में डाल करके, मन्दाग्नि पर पकाइये। इसे चम्मच आदि के द्वारा चलाते रहिये। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि—पेठा अग्नि से जल न जाय। जब इसका जलीयांश सर्वथा शुष्क हो जाय; तो इसमें घृत डाल दें और चलाते हुए मन्द-मन्द अग्नि पर पकाइये। पकने पर जब यह रक्तवर्ण (बादामी रंग) का हो जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार करके किसी स्वच्छ पात्र में रख दें। इसके पश्चात् पूर्वोक्त पेठे के जल को कड़ाही में डाल करके उसमें मिश्री छोड़ दें और चाशनी सिद्ध करें। चाशनी बन जाने पर इसमें भुने हुए पेठे और उपर्युक्त समस्त औषधियों के सूक्ष्म चूण को सम्मिश्रण करके, अत्यन्त मन्द-मन्द अग्नि पर चलाते हुए पकाइये। जब यह कड़ा हो जाय, तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर इसमें चाँदी के वर्क लगा करके, खण्डशः काट लें। इसे पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से ३ तोले तक, दूध वा जल के साथ दें।

गुण—यह रसायन उन्माद, धातु विकार वीर्य दोष, प्रदर सम्बन्धी रोग, अरोचक, अजीर्ण, रुधिर विकार, हाथ पैर की जलन, मूत्रकृच्छता, गर्भवती स्त्री की तृषा और वमन तथा उष्णता सम्बन्धी उपद्रवों को नष्ट करता है। इस प्रयोग की यह विशेषता है कि—इसको खाने के पश्चात् गर्म जल यदि पिया जाय, तो शीतल प्रतीत होगा।

(४) सारस्वत चूर्ण

मीठा कूठ, सैंधव लवण, श्वेत जीरा, कृष्ण जीरा, छोटी पिप्पली, काली मिर्च, शुण्ठी, अश्वगन्ध, पाठा, अजमोद और शंखपुष्पी— इन ११ औषधियों को २-२ तोले और समस्त द्रव्यों के समान भाग में वचा ले करके, सबका वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् इस चूर्ण को ब्राह्मी रस की ३ भावनाएँ दें। प्रत्येक भावना में ६ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना के पूर्ण होने पर स्थिरता से मर्दन करके, छाया में शुष्क करें और शीशी में भर करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ माशे तक, ६ माशे मधु, १ तोला घी के साथ मिला करके प्रातः सायं दिन में २ बार सेवन करें। यो० चि० म०।

गुण—यह चूर्ण उन्माद, अपस्मार, मस्तिष्क की निर्बलता, स्मरण शक्ति का क्षय—इन रोगों में अत्युपयोगी है। सामान्य रोग में १० से २० दिन तक और विशेष अवस्था में २ से ३ मास तक इसे सेवन करने से आशानीत लाभ होता है। मन्द बुद्धि विद्यार्थी और नष्ट स्मृति व्यक्तियों के लिए अत्युत्कृष्ट रसायन है। ईश्वर भक्ति, ब्रह्मचर्य, गुरुभक्ति एवं धर्मनिष्ठा के साथ यदि कुछ दिन निरन्तर सारस्वत चूर्ण का सेवन करें; तो अल्प बुद्धि छात्र भी मेधावी बन जाय।

(५) निद्रोदय रस

शुद्ध अफीम, रस सिन्दूर, और वंशलोचन—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे, आमले का वस्त्रछन चूर्ण १ तोला ले करके खरल में एकत्र डाल कर मर्दन करें। इसके उपरान्त भांग के रस की ३ भावना दें और प्रत्येक भावना में ३ घण्टे घोटें। तृतीय भावना दे करके, दृढ़ मर्दन करें और २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, दूध वा जल के साथ दें।

गुण—यह रस उन्माद-रोगी के लिए उपयोगी है। उन्मत्त व्यक्ति को निद्रा नहीं आती और निद्रा के अभाव में रोग की वृद्धि होती है। यदि उन्मत्त रोगी गाढ़ निद्रा को प्राप्त कर ले, तो चित्तविभ्रम रोग नष्ट हो जाय। इस रस के सेवन से रोगी गाढ़ निद्रा में चला जाता है और स्वस्थ होने लगता है। तीव्र वेदना में किसी भी रोगी को जब निद्रा न आवे तो उसके लिए और नष्ट-निद्र व्यक्तियों के लिए इस रस का सेवन कराना उत्तम लाभप्रद होता है।

६—काकजंघा की जड़ को कच्चे सूत में बांध कर रोगी के शिर में बान्धने से निद्रा अवश्य आ जाती है।

७—जायफल को घृत में घिस कर रोगी के पलकों पर लेप लगाने से नींद आ जाती है। ये दोनों प्रयोग सैकड़ों रोगियों पर अनुभूत हैं। स्वा० र०।

पथ्यापथ्य—दूध, घी, दधि, चावल, गेहूँ की रोटी, मूंग, अरहर की दाल, शक्कर, मुनक्का, बादाम, सेव, अङ्गूर, अनार आदि उत्तम फल, बथुआ, लौकी, परवल, तोरई का शाक, ये हितकर हैं।

अनावश्यक चिन्ता, नास्तिकता, चञ्चलता, मैथुन, अधिक जनसंसर्ग, अत्यधिक परिश्रम, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरिष्ठ, मलिन, पर्युषित आहार, मद्य, मांस, सभी प्रकार के धूम्रपान, अधिक भाषण—ये सभी अहितकर हैं।

अथापस्मार-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥१९॥

"अपगता स्मृतिर्यस्मिन् रोगे सोऽपस्मारः" जिस रोग में स्मरणशक्ति विलुप्त हो जाती है उसे "अपस्मार रोग" कहते हैं। लोक में इस व्याधि को "मृगी" कहते हैं। "मृगी" उन्माद के तुल्य एक मानसिक व्याधि है। उन्माद और अपस्मार इन दोनों में कुछ साम्य होते हुए भी पार्थक्य रहता है। उन्माद रजोगुण प्रधान मानसिक व्याधि है, इसमें बुद्धि तथा मन दोनों चञ्चल रहते हैं, पूर्वापर का ज्ञान नहीं होता और रोग स्थायी होता है। किन्तु अपस्मार तमोगुण विशिष्ट मानस विकार है; इसमें बुद्धि और मन अन्धकार रूप तमोगुण से आच्छादित हो जाने के कारण स्मृति, ज्ञान और विचार लुप्त प्रायः हो जाते हैं एवं समय-समय पर रोग का वेग आता रहता है।

अपस्मार रोग के कारण—जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा के प्रतिकूल आचरण करते हैं, जो रज-तम से अपवित्र अन्तःकरण वाले हैं, जो बुद्धि, मन और इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, जो शास्त्र तथा धर्म-मर्यादा की अवज्ञा करके उन्मार्गगामी होते हैं, और जो मलिन, अखाद्य आहार का सेवन करते हैं, एवं जो विषयों का अत्यधिक चिन्तन करते हैं, वे व्यक्ति अपस्मार (मृगी) के रोगी होते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता में स्मृतिशक्ति के नाश का वैज्ञानिक क्रम कहा गया है। वह प्रत्येक बुद्धिमान् के लिए मनन करने योग्य है।

ध्यायते विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ गीता २/६२-६३ ॥

इन्द्रियों के विषयों का अधिक चिन्तन करता हुआ पुरुष वैषयिक पदार्थों को आसक्तिपूर्वक संग्रह करता है और संगृहीत विषयों का स्वतन्त्रता से उपभोग करता है। इससे घृताहुति देने से प्रदीप्त हुई अग्नि, ज्वाला के समान तृष्णा रूपी अग्नि प्रचण्ड हो उठती है। काम की प्रबलता क्रोध को उत्पन्न करती है। क्रोध से उचित, अनुचित, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य आदि के विचार करने की शक्ति लुप्त हो जाती है। इससे स्मृतिशक्ति प्रक्षीण होती है और स्मरणशक्ति नष्ट होने पर विवेक बुद्धि विलुप्त हो जाती है। विवेक बुद्धि विनष्ट होने से इस लोक तथा परलोक में सुख और शान्ति की उपलब्धि नहीं होती। सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

अपस्मार रोग के लक्षण—स्मृतिशक्ति का नष्ट होना, नेत्रों के सामने अन्धकार का आना, शरीर में कम्पन होना, मुख से फेन निकलना, भूमि पर गिर

जाना, हाथ पैरों को इधर-उधर पटकना, भोजन में अरुचि, मन्दाग्नि, चित्त में ग्लानि आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—अपस्मार (मृगी) रोग की चिकित्सा में केवल औषध-प्रयोग से पूर्ण सफलता नहीं होती। बुद्धि तथा मन में सात्त्विकता की वृद्धि और तमोगुण का क्षय होने पर मृगी रोग समूल नष्ट होता है। ईश्वर, भक्ति, सत्संग, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, सात्त्विक आहार आदि के द्वारा बुद्धि तथा मन को सत्वगुण विशिष्ट बनाने का प्रयास अवश्य अनुष्ठेय है। इसके साथ ही निम्न प्रयोगों के सेवन से शीघ्र लाभ होता है—

(१) कल्याण चूर्ण

छोटी पिप्पली, बड़ी पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक मूल, शुण्ठी काली मरिच, वायविडङ्ग, बड़ी हरड़ की छाल, आमला, बहेड़े का छिलका, जीरा, धनियां, करंज के बीज, सैंधव लवण, काला नमक और अजमोद—इन १७ औषधियों को समान भाग ले करके, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक प्रातः सायं दिन में दो बार, सुखोष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण अपस्मार (मृगी), उन्माद, कम्प वात, मन्दाग्नि आदि रोगों में लाभप्रद है। अपस्मार तथा उन्माद रोग में कुछ मास पर्यन्त निरन्तर इस चूर्ण का सेवन करना इष्ट है। सुपरीक्षित है।

(२) ब्राह्मी घृत

ब्राह्मी को समूल उखाड़ करके जल से स्वच्छ करें और उसका रस निकालें। ब्राह्मी रस ४ सेर, वचा, कूठ और शंखपुष्पी—प्रत्येक ७-७ तोले और पुराना गोघृत एक सेर लें। वचा, कूठ और शंखपुष्पी—इनको सूक्ष्मपीस करके, जल के साथ कल्क बना लीजिए। इसके पश्चात् कलई युक्त पात्र में समस्त औषधियों को एकत्र डाल करके, मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार करके, छान लें और पात्र में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला तक, प्रातः सायं सेवन करें; ऊपर से दुग्ध पीवें।

गुण—यह घृत अपस्मार और उन्माद को नष्ट करने के लिए उत्कृष्ट महौषधि है। इसे कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से अपस्मार रोग में आश्चर्य जनक लाभ होता है सुपरीक्षित है।

(३) मर्दनप्रयोग

सरसों का सूक्ष्म पिसा हुआ चूर्ण गोमूत्र में मिला लें। इसे अपस्मार रोगी के

सम्पूर्ण शरीर पर मर्दन करें। दिन में एक बार मर्दन करें। यह प्रयोग अपस्मार रोग में अत्युपयोगी है।

हमने कल्याण चूर्ण तथा ब्राह्मी घृत को सेवन कराकर और गोमूत्र के साथ पिसी हुई सरसों का शरीर के अङ्गों पर मर्दन कराके मृगी के अनेक रोगियों को स्वस्थ किया है। परीक्षित है।

(४) ब्राह्मी प्रयोग

ब्राह्मी पत्र स्वरस १ तोला और मधु १ तोला—इन दोनो को मिलाकर खाने से अपस्मार और उन्माद में लाभ होना है। इस प्रयोग को ४० से ६० दिन तक निरन्तर सेवन करना आवश्यक है। थोड़े दिन के सेवन से पूर्ण लाभ नहीं होगा। अनुभूत है।

(५) वचा-प्रयोग

वचा का चूर्ण २ से ४ रत्ती और मधु ६ माशे—दोनों को मिला करके खावें। इसे २ मास तक, नियमित सेवन करावें और औषधि सेवन काल में रोगी को दूध और चावल पथ्य में दें। यह प्रयोग कष्ट साध्य मृगी रोग को भी नष्ट करता है। परीक्षित है। पुराने रोग में भी लाभकर है।

(६) तिलादि कल्क

काले तिल ३ तोले, लशुन १ तोला—दोनों को एकत्र सूक्ष्म पीस करके कल्क बना लें। इसे रोगी को प्रातः के समय खिलाकर; ऊपर से अल्पोष्ण जल पिला दें। यह प्रयोग केवल प्रातः काल एक बार सेवनीय है। इसे न्यूनाति न्यून २१ दिन पर्यन्त खाने से अपस्मार व्याधि शान्त होती है। परीक्षित है।

(७) नस्य प्रयोग

वचा को काट करके छोटे-छोटे खण्ड बना लें और इनको घी में भिगो दें। सात दिन पर्यन्त इसी प्रकार भीगने के उपरान्त पाताल यन्त्र से इसका तैल निकालें। इस तैल को शीशी में सुरक्षित रख लें। अपस्मार रोगी को इसका नस्य देने से तुरन्त चेतना आ जाती है। रोग का वेग आने पर जब अपस्मार का रोगी धराशायी हो जाय तो इस नस्य के प्रयोग से वेग शान्त होकर, रोगी स्वस्थ चित्त हो जाता है।

(८) वचा चूर्ण को वस्त्र पोटली में बांध करके, इसे रोगी को बार-बार सुंघाने से मृगी रोग का आक्षेप (वेग) शान्त होना है। इस रोग में "अकरकरा" का सूक्ष्म चूर्ण कागज की नली में रखकर, रोगी की नासिका के छिद्रों में फूंकने से यदि छींक आ जाय; तो उत्तम लाभ होता है।

अपस्मार रोग में पथ्यापथ्य

मृगी के रोगी को जिन उपायों से शान्ति और चित्त की प्रसन्नता प्राप्त हो सके; उन उपायों को करना अभीष्ट हैं। क्योंकि अपस्मार (मृगी) मानसिक रोग है।

इसमें बुद्धि तथा मन—ये दोनों अन्तःकरण तमोगुण विशिष्ट हो जाते हैं और सत्वगुण निर्बल हो जाता है। अतएव बुद्धि एवं मन को सात्त्विक बनाना स्थायी तथा उत्तम उपाय है। इसके लिये प्रभुभक्ति, अध्यात्मज्ञान, चित्त की एकाग्रता, धैर्य, दान, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, श्रद्धा, धर्माचरण ये विशिष्ट उपाय हैं। साधारण भ्रमण, शुद्ध, वायुमण्डल में निवास, अनुभवी सज्जन पुरुषों का अनुगमन, पुराना चावल, मूंग तथा अरहर की दाल, गेहूँ, पुराना घी, गो दुग्ध, बथुआ, लौकी, परवल आदि शाक, ब्राह्मी, वचा, हरड़, आमला, सहिजन, द्राक्षा, पुराने घृत का मर्दन करना आदि हितकर हैं।

मानसिक चञ्चलता, अधीरता, नास्तिकता, देव, गौ ब्राह्मण, साधु, शास्त्रीय वाक्य--इनका अपमान, मैथुन, रात्रि जागरण, अधिक परिश्रम, सभी प्रकार के धूम्रपान, चाय, सिनेमा, मद्य, मांस, गरिष्ठ, मलिन, पर्युषित, आहार ये अहितकर हैं।

अथ वात-व्याधि-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२०॥

शरीर को स्वस्थ रखने और दीर्घायु होने के लिए वायु की अनुकूलता अत्यावश्यक है। जिस व्यक्ति के देह में वायु प्राकृतावस्था में रहती है और अपने स्थान में अवस्थित होते हुए निर्बाध रूप से गमनागमन करती है वही व्यक्ति स्वस्थ तथा चिरायु होता है, अन्य नहीं। शरीर को धारण करने वाली समस्त धातुओं में अनिल बलिष्ठ तथा सूक्ष्मतम है। कफ तथा पित्त—इन दोनों की शक्ति को एकत्रित करने पर भी वायु गरीयान् हैं। वायु से उत्पन्न होने वाले रोग ८० अस्सी हैं; पित्तज तथा कफज रोगों की संख्या यथासंख्य ४० एवं २० है। पित्त एवं कफ इन दोषों से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण रोगों की संख्या ६० है, और केवल पवन जन्य व्याधियाँ अस्सी हैं। इस गणना के द्वारा वायु की महत्ता का अनुमान लगाना सुगम है।

वायु के प्रकुपित होने पर जहाँ शारीरिक रोगों का आक्रमण होता है, वहाँ मनोविकार भी तुरन्त उत्पन्न होते हैं और पवन के नैसर्गिक रहते हुए शरीर एवं मन का स्वास्थ्य अनुकूल रहता है। बुद्धिमान् पुरुष के लिए यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह स्वस्थ रहने तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये अपने शरीर की वायु को प्रकुपित न होने दे। जिन कारणों से वायु प्रकुपित होकर आधियों तथा व्याधियों को उत्पन्न करती है; उन कारणों को समाप्त करना प्रत्येक सुखार्थी व्यक्ति के लिये अभीष्ट है। यदि मनुष्य विवेक ज्ञान के साथ आयुर्वेदीय पद्धति के अनुसार अपने आचार, विचार, आहार, ऋतुचर्या आदि को बना ले, तो शरीर की वायु, कुपित नहीं होती; फलतः शरीर तथा मन का स्वास्थ्य समीचीन रहता है। जो स्वस्थ रहने की इच्छा रखते हैं, जो दीर्घजीवी होने की आकाङ्क्षा वाले हों और जो इस लोक तथा परलोक को सुखप्रद बनाने के इच्छुक हों; उनको वात प्रकोपक आहार विहार से दूर रहना इष्ट है।

वात व्याधि के कारण—क्योंकि वायु की गति से मन की गति तीव्रतर है, अतएव मनोविकारों से शरीर में तुरन्त वात प्रकोप होता है। अधिक वैषयिक चिन्तन से, क्रोध की अधिकता से, स्वभाव में चिड़चिड़ापन होने से, शोक, चिन्ता, ईर्ष्या, चञ्चलता, अधैर्य, नास्तिकता, भय, अधर्म, असन्तोष आदि सभी मानस विकारों के द्वारा वायु क्रुद्ध होती है। इनसे शरीर में अनिल विकृति जनित वातिक रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक परिश्रम करने से, अधिक चलने से, शारीरिक श्रम को सर्वथा न

करने से, अतिमात्रा में कूदने से, अधिक तैरने से, सुख पूर्वक शयन न करने से, रात्रि को जागरण करने से, दिन में सोने से, सभी कार्यों में शीघ्रता करने से, अत्यधिक मैथुन से, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आगत वेगों को बलपूर्वक रोकने से, अधिक उपवास करने से, अल्प भोजन से, रूक्ष, शीतल, तीक्ष्ण, कटु आदि आहार सेवन करने से, मर्म स्थान में आघात होने आदि अनेक कारणों से शरीर में बलवान् वायु प्रकुपित हो जाती है। पवन के क्रुद्ध होने से वायु के रोग होते हैं।

कुपित वायु के लक्षण—अङ्ग-उपाङ्गों में संकोच का होना, अस्थियों तथा पर्वों (गांठों) में वेदना, प्रलाप, हाथ, पैर तथा पीठ का जकड़ जाना, लंगड़ापन, पंगुता, कुबड़ापन, अङ्ग सूखना, निद्रा-क्षय, गर्भ का गिरना, शुक्र का नाश, आर्त्तव नष्ट होना, शरीर में कम्पन का होना, शरीर में शून्यता का आ जाना, शिर, नाक, नेत्र, जत्रु, ग्रीवा आदि अङ्गों में वक्रता का (टेढ़ापन) होना, मोह होना, परिश्रम के बिना भी शरीर में थकावट का होना—इत्यादि लक्षण प्रकुपित वायु से उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—

जिन कारणों से वायु कुपित होकर के वात व्याधि उत्पन्न हुई हो; सर्व प्रथम उन कारणों को दूर करना इष्टहै। इसके साथ ही योग्य चिकित्सक की चिकित्सा करानी उत्तम है। वातव्याधि को नष्ट करने के लिये कतिपय उपयोगी प्रयोग लिखे जाते हैं। यथोक्त विधि के अनुसार इनको सेवन करने से वायु रोग नष्ट होते हैं।

(१) वातघ्नी गुटिका

शुद्ध श्वेत संखिया, वंशलोचन और छोटी इलायची के बीज—प्रत्येक ५-५ तोले लें। इनका वस्त्रछन चूर्ण बना करके एकत्र सम्मिश्रण करें। इस चूर्ण में ताम्बूल (पान) का पत्र डाल करके घुटाई करें। एक पान पत्र के घुटने पर जब वह चूर्ण में उत्तम प्रकार से मिल जाय; तो दूसरा पत्र डाल करके मर्दन करें। इस प्रकार एक-एक ताम्बूल दल को मिलाते हुए पचास पान के पत्रों को चूर्ण में घोट दें। इसके उपरान्त दो सौ पान के पत्रों के रस में २४ घण्टे तक स्थिरता के साथ मर्दन करें। पश्चात् चणक प्रमाण की गोली बना करके, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार सूखने पर इन वटियों को शीशी में सुरक्षित रख लीजिए।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, मक्खन, मलाई, द्राक्षा—इनमें से किसी एक के साथ खा करके ऊपर से ईषदुष्ण दूध पिलावें। आवश्यकता के अनुसार दिन में २ बार दें।

गुण—यह वटी वातव्याधि में अत्युपयोगी है। इसके सेवन करने से सन्धि वात, अर्दित (लकवा), पक्षाघात (अर्धाङ्ग), अपबाहुक आदि वायु जनित रोग नष्ट होते हैं।

यह योग कास तथा श्वास को भी नष्ट करता है। बलवर्धक तथा क्लीवता

नाशक है। यह उष्ण औषधि है। अतः इसके सेवन काल में दूध घी की विशेष मात्रा सेवन करें। यह प्रयोग गुजरात प्रान्त के वैद्य सम्मेलन में पढ़ा गया था और हमारे द्वारा अनुभूत है। वात व्याधियों में अमृत के तुल्य लाभप्रद है।

(२) शुण्ठी वटी

काले धत्तूरे के फल एक सेर, सोंठ तथा अजवाइन आध-आध सेर—इन तीनों औषधियों को बिना चूर्ण किये ही लें। मिट्टी की एक नवीन हण्डी में नीचे आधा धत्तूरे का फल रख करके उसके ऊपर सोंठ रख दें और शुण्ठी के ऊपर अजवाइन एवम् अजवाइन के ऊपर शेष धत्तूरे के फल को रख करके, हण्डी को जल से पूर्ण भर दें। हण्डी का मुख बन्द कर, चूल्हे पर चढ़ा दें और २ प्रहर की मन्दाग्नि दें। ६ घण्टे तक मन्द-मन्द अग्नि देने के उपरान्त इसे अग्नि से नीचे उतार लें और स्वाङ्गशीत होने पर हण्डी से केवल शुण्ठी को ग्रहण करके शेष औषधि को त्याग दें। इस सोंठ को छाया में सुखा करके, वस्त्रछन चर्ण बना लें और सहिजन के रस में ३ घण्टे मर्दन करके, चने के समान गोली बना, छाया में शुष्क करें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह प्रयोग ८० प्रकार के वात रोगों में अत्युपयोगी है। रस के समान ही चमत्कारक है। इसके सेवन से वात व्याधियों में उत्तम लाभ होता है। अनुभूत है।

(३) सिद्ध वटिका

गन्धकामृत, ताम्रभस्म, शुद्ध वत्सनाभ विष, हरिताल भस्म, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पिप्पली, लवङ्ग, जायफल, जावित्री, पिप्पली मूल, अकरकरा, तीनों अजवाइन, शुद्ध कुचला, शुद्ध भिलावा, शुद्ध धत्तूरे के बीज, श्वेत जीरा, काला जीरा—प्रत्येक द्रव्य—१-१ तोला और कस्तूरी १ माशा लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें और कस्तूरी को छोड़ करके, शेष औषधियों को एकत्र मिला करके मर्दन करें। इसके उपरान्त अदरक के रस में १२ घण्टे तक दृढ़ता से घोटें। उत्तम घुटाई होने पर अन्त में कस्तूरी को मिला कर, कुछ मर्दन करें और २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क करके, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, (बल, वय, रोग आदि को विचार करके) अदरक के रस वा शुण्ठी के क्वाथ के साथ दें। आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार दें।

गुण—यह वटी अर्दित, पक्षाघात आदि समस्त वातव्याधियों, कफ विकार तथा सन्निपात ज्वर—इन सम्पूर्ण रोगों को शान्त करती है। वायु विकारों को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। शतसोऽनुभूतः।

(४) बङ्गादि वटी

बङ्ग भस्म, यशद भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभ विष—प्रत्येक १-१ तोला, मरिच १॥ तोला लें। प्रथम पारद और भस्में एकत्र मिला करके १८ घण्टे मर्दन करें। इसके पश्चात् वत्सनाभ विष तथा काली मरिच का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला करके ६ प्रहर पर्यन्त स्थिरता से घोटें। तदुपरान्त ताम्बूल पत्र के रस में एक दिन मर्दन करके चौथाई-चौथाई रत्ती की गोली बना, छाया में शुष्क करें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दो समय, पान-पत्र में रख करके खावें।

गुण—यह वटी अर्दित (लकवा) और पक्षाघात (अधरंग) रोग में अत्युपयोगी है। परीक्षित है।

(५) वातारि गुटिका

शुद्ध पारद, शुद्ध जमाल गोटा, अशुद्ध आमला सार गन्धक, अशुद्ध सखिया, गोदंती हरिताल, अशुद्ध बर्की हरिताल, अशुद्ध हिंगुल, अशुद्ध रसकर्पूर, अशुद्ध सिंगिया विष, छोटी इलायची के बीज, वंशलोचन और पुराना वायविडङ्ग-प्रत्येक १-१ तोला लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना करके समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला करके घोटें। इसके उपरान्त जल एक सेर और भृंगराज का रस आध सेर—इन दोनों को कड़ाही में एकत्र मिला करके, मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब यह पकने पर कुछ गाढा हो जाय; तो इसमें चूर्ण को मिलाकर, अग्नि से नीचे उतार लें। तदुपरान्त इसे लोहे की खरल में डालकर, तीन दिन तक स्थिरता से मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान— १ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, जल के साथ सेवन करावें। औषधि सेवन करके एक घण्टा उपरान्त २ तोले गोघृत पान करें।

गुण—इस रस के सेवन से अर्दित (लकवा), पक्षाघात (अर्धाङ्ग), गृध्रसी, अपबाहुक आदि वात व्याधियाँ नष्ट होती हैं। तीन वर्ष तक पुराना पक्षाघात भी अवश्य नष्ट हो जाता है। इस रस के सेवन काल में दूध, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करना अनिवार्य है। अनुभूत है।

(६) हिंगुल योग

मालकांगनी, तिल, भिलावे, घृत और मधु—प्रत्येक द्रव्य एक-एक पाव लेकर, इनका कल्क बना लें। एक लोहे की कड़ाही में कल्क (लुगदी) रख, उस कल्क के मध्य में अशुद्ध हिंगुल १० तोले की एक डली रख दें। इसके पश्चात् चूल्हे पर कड़ाही को रखकर, मन्द-मन्द अग्नि जलाइये। कुछ समयोपरान्त कल्क में अग्नि लग जायगी।

जब कल्क में अग्नि लग जाय, तो चूल्हे में अग्नि जलाना बन्द कर दें। कल्क के जल जाने के पश्चात् जब कड़ाही शीतल हो जाय, तो हिंगुल को निकाल लें और एक दिन मर्दन करके, शीशी में सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य—यह क्रिया विशाल वायुमण्डल में करनी योग्य है। इसके धुवाँ से नेत्र, मुख आदि शरीर के अङ्गों की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। यह धूम्र—नेत्र आदि में विकृति उत्पन्न करता है।

मात्रा और अनुपान—आध से एक रत्ती तक, मक्खन, मलाई, द्राक्षा आदि में से किसी एक के साथ सेवन करें।

गुण—यह प्रयोग वातव्याधियों में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से अर्दित (लकवा), अर्धाङ्ग वायु, सन्धिवात, प्रसूता-रोग एवं नपुंसकता आदि रोगों में उत्तम लाभ होता है। अनुभूत है।

(७) एकाङ्गवीर रस

चन्द्रोदय, (अभावे रस सिन्दूर), शुद्ध गन्धक, कान्त लोह भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, बंग भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, सोंठ, काली मरिच, छोटी पिप्पली—इन सब द्रव्यों को समान भाग लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्र छन चूर्ण बना, समस्त भस्मों को चूर्ण में मिलाकर, ६ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त त्रिफला, त्रिकुटा, निर्गुण्डी, चित्रक, भृङ्गराज, सहिजन, कुचला, अकरकरा, अदरक—इनके क्वाथ वा रस (समय पर जो उपलब्ध हो सके) की पृथक्-पृथक्, तीन-तीन भावना दें और प्रत्येक भावना में ६ घण्टे तक मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, "रास्नादि क्वाथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें। आवश्यकता के अनुसार २४ घण्टे में २–३ बार दें।

गुण—एकाङ्ग वीर रस अर्दित, पक्षाघात, धनुर्वात, गृध्रसी (अकुलनस), सन्धि-वात आदि वायु के रोगों को नष्ट करता है। पक्षाघात रोग की अव्यर्थ महौषधि है। अनुभूत है।

(८) पक्षाघातघ्न प्रयोग

रूमी हिंगुल और रस कर्पूर—प्रत्येक ६-६ माशे, गोघृत १७॥ तोले लें। हिंगुल और रस कर्पूर इन दोनों को सूक्ष्म पीस करके, घृत में सम्मिश्रण करके, मर्दन करें और शीशे के पात्र में रख लें। इसके उपरान्त स्वच्छ धुनी हुई रूई की कनिष्ठिका (सब से छोटी) अङ्गुली प्रमाण में मोटी एक वत्ती बना करके, एक दीपक के अन्दर उक्त हिंगुल आदि औषधि युक्त घृत २॥ तोले डालकर, उस वत्ती के साथ जला दें। तत्पश्चात् उत्कट (उकड़ू) आसन से रोगी को बैठा दें और उसके ग्रीवा के ऊपर का भाग छोड़ करके, शेष शरीर को एक वस्त्र द्वारा ढक दें। तदुपरान्त उस जलते

हुये दीपक को रोगी अपने ओढ़े हुए वस्त्र के अन्दर इस प्रकार रखे कि जिससे कपड़ा दीपक की अग्नि से न जले और दीपक की उष्णता सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव करे। इससे स्वेद आता है। शरीर में आये हुए प्रस्वेद को किसी वस्त्र से पोछना अनुचित है। उसे स्वतः ही सूखने दें। जब दीपक का औषधियुक्त घृत पूर्ण जल जाय और रोगी के शरीर में आया हुआ प्रस्वेद स्वयं देह में ही विलीन हो जाय, तो वस्त्र को पृथक् कर दें। इस क्रिया को रात्रि में शयन करने से पूर्व ९–१० बजे करना इष्ट होता है। इसे निर्वात स्थान में करें और क्रिया करने के उपरान्त वायु के वेग से शरीर की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना अभीष्ट है। इस प्रयोग के करने के उपरान्त रोगी शयन करे। यह प्रयोग इसी प्रकार ७ दिन तक प्रतिदिन किया जाता है। इसमें प्रतिदिन २॥ तोले उक्त औषध मिश्रित घी का दीपक जला कर, शरीर में प्रस्वेद लिया जाता है। घी में औषधि को उत्तम प्रकार मिलाने पर ही प्रयोग करना उचित होता है। पात्र में नीचे जो औषधि सञ्चित हो जाती है; उसे चला करके, मिला लें और मिलने पर दीपक में डालें।

औषधि सेवन काल में पथ्य-सात दिन तक किये जाने वाले उक्त प्रयोग में रोगी को सघृत अरहर की दाल तथा गेहूँ की पतली रोटी के अतिरिक्त और कुछ आहार न दें। जल उबाल करके उसे शीतल होने पर पीने के लिए दें। इस पथ्य को सात दिन तक इसी प्रकार चलावें। आठवें दिन रोगी को यथेष्ट आहार दें। गुड़, तेल, मिर्च आदि जो कुछ रोगी खाना चाहें, उसी आहार को दें। इस कुपथ्य को तीन दिन तक चलावें। चतुर्थ दिन "मदन बूंटी" की पत्तियाँ २॥ तोले लें और जल से स्वच्छ धोकर, शिला पर सूक्ष्म पीस कर, कल्क बना लें। इसे एक छटांक जल में छान कर अल्पोष्ण कर, प्रातः समय रोगी को पिला दें। इस विधि से इस औषधि को सात दिन तक निरन्तर पिलाते रहिये। इस औषधि सेवन काल में रोगी को पूर्ववत् सघृत अरहर की दाल और गेहूँ की रोटी पथ्य में दें।

गुण—इस प्रयोग से पक्षाघात (अर्धाङ्गवायु) रोग शान्त हो जाता है। इसमें सम्पूर्ण १७ दिन व्यतीत होते हैं और इसी काल में अधरङ्ग रोग समूल नष्ट हो जाता है। कदाचित् मदन बूंटी पान करते समय रोग का वेग वृद्धि करता हुआ सा प्रतीत होने लगे, तो ऐसी अवस्था में अधीर नहीं होना चाहिये; पुनः स्वेदन क्रिया पूर्ववत् करके, मदन बूंटी को सात दिन सेवन करना चाहिये। इससे अवश्य लाभ होगा। संन्यासी प्रदत्त प्रयोग।

(९) अर्धाङ्ग वायु में विचित्र प्रयोग

देशीय राई का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण एक सेर और सोंठ का वस्त्र-छन चूर्ण ५ तोले—इन दोनों को एकत्र मिला करके, सुरक्षित रख लें। जिस अङ्ग में अधरंग वा अर्दित (लकवा) रोग उत्पन्न हुआ हो; निर्वात स्थान में रोगी को रख, उसी

अङ्ग में इस चूर्ण को मर्दन करें। बलवान् व्यक्ति के द्वारा मर्दन करावें और इसे तब तक मलना चाहिये, जब तक रोगी के शरीर से प्रस्वेद न निकलने लगे। पूर्ण एकाग्रता के साथ मलने पर पसीना आने लगता है। इस प्रकार इसे प्रातः मध्याह्न तथा सायं समय दिन में ३ बार मलना चाहिये और नियमित रूप से १५–२० दिन तक मर्दन करना इष्ट है। इस मर्दन क्रिया के साथ ही साथ "मकरध्वज रस" अथवा "रस सिन्दूर" १ से २ रत्ती तक, अदरक के रस के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करावें।

गुण—इस प्रकार चूर्ण को मलने से एवं मकरध्वज, वा रस सिन्दूर के खाने से अर्दित और पक्षाघात (अर्धाङ्गवायु) रोग समूल नष्ट होता है। इसका परिणाम आश्चर्यजनक होता है। रोता हुआ आतुर हंसने लगता है। इस उपचार के द्वारा हमने अर्धाङ्ग तथा अर्दित के निराश हुए अनेक रोगियों को स्वस्थ किया है। अनेक बार का सुपरीक्षित प्रयोग है।

(१०) समीरपन्नग रस

पक्षाघात और गृध्रसी आदि वात व्याधियों को नष्ट करने के लिये "समीर-पन्नग रस" अत्युत्कृष्ट औषधि है। इसे आधा से १ रत्ती की मात्रा में मधु तथा अदरक के रस के साथ देना उत्तम है। यह रस "श्वास प्रकरण" में लिखा जा चुका है।

(११) गृध्रसीहर प्रयोग

आकाश बेल एक सेर को जल से स्वच्छ धो लें और उसके छोटे-छोटे खण्ड करके सूक्ष्म पीस कर, कल्क (लुगदी) बना लें। इस कल्क को एक सेर घी में डालकर, मन्दाग्नि पर पकावें। रक्तवर्ण (बादामी) होने पर इसमें एक सेर शक्कर मिला दें। उत्तम प्रकार मिलने पर इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर शीशे के पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—ढाई से ५ तोले तक, प्रातः सायं सेवन करें। इस प्रयोग के सेवन से गृध्रसी वात विकार अवश्य नष्ट हो जाता है। परीक्षित है। गृध्रसी (अकुलनस) रोग को शान्त करने के लिये उत्तम योग है।

(१२) उदर वायुहर प्रयोग

घृत कुमारी का गूदा एक पाव और सैंधव लवण एक छटांक—इन दोनों औषधियों को एकत्र मिला करके, एक शीशी में भर दें और इस शीशी को धूप में रख दें। जब इस शीशी में रखी हुई औषधि द्रव रूप में पानी के समान हो जाय; तो इसमें—निम्बू का रस एक पाव, काला नमक एक तोला तथा घी में भुनी हुई हींग तीन माशे—इन द्रव्यों को सम्मिश्रण करके इसे अश्वमल (घोड़े की लीद) में २१ दिन तक रख दें। २१ दिन के पश्चात् घोड़े की लीद से शीशी को निकाल करके उपयोग में लें।

मात्रा—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से उदरगत वायु का गोला तुरन्त नष्ट हो जाता है। अधोवायु के अवरुद्ध होने पर जो अपानवायु ऊपर को चलने लगती है, वह गोले के समान प्रतीत होती है। इसमें उदर में शूल होता एवं खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं। यह प्रयोग उक्त सभी दोषों को शान्त करता है। परीक्षित है।

(१३) एलवालुकादि वटिका

एलवालुक (एलवा), शुद्ध सुहागा, काली मरिच, घी में भुनी हुई हींग, और काला लवण—इन पांच द्रव्यों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त घृत कुमारी के रस में एक दिन मर्दन करके, चणक प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क करें और उत्तम प्रकार शुष्क होने पर शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, उष्ण जल के साथ, दिन में ३–४ बार दें।

गुण—इस वटी के सेवन से उदर की वायु का गोला नष्ट होता है। यह औषधि वातानुलोमन, दीपन तथा पाचन करती है। अनुभूत है।

(१४) ऊर्ध्ववातहर प्रयोग

एक तोला पूर्ण (पुष्प-सहित) लवङ्ग को पके हुये एक सेव के फल में १० दिन तक रख दें। उसके उपरान्त सेव के फल से लवङ्ग निकाल कर रख लें। तदुपरान्त—गेहूँ का मोटा आटा और घी—१-१ पाव ले करके, दोनों को एकत्र कड़ाही में डाल कर, मन्द अग्नि पर पकावें जब आटा भुन कर रक्तवर्ण हो जाय, तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें। तत्पश्चात् शुण्ठी का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण एक पाव तथा खाण्ड एक पाव—इन दोनों द्रव्यों को कड़ाही में डाल करके उत्तम प्रकार मिला लें। ध्यान रखिये कि इसमें जल मिलाना उचित नहीं होता। इसे शीशे आदि के पात्र में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—प्रथम उक्त तीन लवङ्ग चबा करके खालें। इसके पश्चात् आटे आदि के दूसरे प्रयोग में से ३ तोले औषधि सेवन करें और ऊपर से गौ का दुग्ध पीवें। केवल प्रातः समय।

गुण—इस प्रयोग को एक साथ करने से उदर में बनने वाली गैस (उर्ध्ववात) नष्ट होती है। यह प्रयोग दिन में एक वार प्रातः समय ही सेवन किया जाता है। गैस को नष्ट करने के लिये अत्युपयोगी औषधि है। अनुभूत है।

(१५) चक्रमर्दादि प्रयोग

(सन्धिवातहर)—चक्रमर्द (पमार) के बीज और गेहूँ प्रत्येक २०-२० तोले ले करके दोनों को एकत्र कर कड़ाही में भून लें। इसके पश्चात् चक्की में इन दोनों औषधियों को पीस कर, आटा बना लें और इसे ४० तोले घी में मन्दाग्नि पर भूनें।

लाल वर्ण का होने पर इसे अग्नि से नीचे उतार कर, इसमें ४० तोले खांड और २० तोले पञ्च मेवा मिलाकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान— १ से २ तोले तक, प्रातः और सायं दिन में दो समय, दूध के साथ खावें।

गुण—इस प्रयोग से सन्धिवात, प्रसूतवात, कटिशूल आदि वायु के रोग नष्ट हो जाते हैं। वात रोग से जो गुदा के अन्दर कर्त्री (कैंची) से काटने के समान पीड़ा होती है; उसमें इस प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। यह शरीर को नीरोग तथा बलवान् बनाता है। अनुभूत है।

(१६) कम्पवातारि रस

ताम्र भस्म २ तोले, रससिन्दूर (अभावे—शुद्ध रूमी हिंगुल) २ तोले–दोनों को एकत्र मर्दन करें। इसके पश्चात् कुटकी के रस की २१ भावना दें। प्रत्येक भावना में ३ घण्टे मर्दन करके, १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना करके, छाया में शुष्क कर, शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, अदरक के रस के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें। यह रस कम्पवात और सर्वाङ्गवात को नष्ट करता है। अनुभूत है।

(१७) त्रिगुणाख्य रस

शुद्ध पारद २ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग लें। दोनों की कज्जली बना लें। इस कज्जली को एक लोहे के पात्र में डाल कर, अल्प घी के साथ मन्दाग्नि पर पकावें। जब कज्जली पिघल जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर इसे खरल में डाल करके, मर्दन करें। इसके उपरान्त कज्जली का जितना भार हो; उतना ही बड़ी हरड़ का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में सम्मिश्रण कर, स्थिरता से मर्दन करें। उत्तम प्रकार घुटाई होने पर, इसे शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३ रत्ती, मधु के साथ खायें। प्रथम दिन ३ रत्ती सेवन करें, इसके आगे प्रतिदिन एक-एक रत्ती की मात्रा वृद्धि करें। प्रतिदिन १-१ रत्ती वृद्धि करते हुए २१ दिन पर्यन्त खावें। इसके उपरान्त बाइसवें दिन से १-१ रत्ती औषध न्यून करते हुए और २१ दिन तक सेवन करें। वृद्धि और ह्रास क्रम के अनुसार इस रस को ४२ दिन सेवन किया जाता है।

गुण—त्रिगुणाख्य रस कम्पवात की प्रसिद्ध औषधि है। साधारण कम्पवायु रोग केवल क्रमशः वृद्धि करते हुये २१ दिन में नष्ट हो जाता है। रोग के नष्ट होने पर औषध-सेवन बन्द कर दिया जाता है। कष्टसाध्य कम्पवात रोग में उक्त विधि के अनुसार ४२ दिन तक इस रस का उपयोग करने से सफलता मिलती है। अनुभूत है। कम्पवात रोग को नष्ट करने के लिए उत्कृष्ट औषधि है। रसें० चि०

पथ्य—स्वास्थ्य लाभ होने तक रोगी को निर्वात स्थान में रखते हुये, घृत, दूध, मिश्री के साथ पुराने चावलों का भात, आहार में दें और पीने तथा स्नान करने के लिये उष्ण जल की व्यवस्था करनी आवश्यक है।

(१८) पार्श्वशूलघ्न प्रलेप

शुण्ठी, कुचला, बारहसींगा—(इन तीनों को घिसे हुए लें) प्रत्येक द्रव्य ४-४ माशे, अफीम ४ रत्ती, तिलों का तैल और धत्तूरे के पत्रों का रस ४-४ तोले लें। समस्त द्रव्यों को कडाही में एकत्र डाल कर, मन्दाग्नि पर पकावें। रस के जल जाने पर इसमें ६ माशे मोम और १ माशा कर्पूर मिला कर, इसे अग्नि से नीचे उतार लें और शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें। पसलियों के शूल में अल्पोष्ण करके इसको शूल स्थान पर लेप लगाने से तुरन्त लाभ होता है। यह प्रलेप असह्य पार्श्ववेदना को शान्त करता है। फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) रोग में इसे पसलियों तथा वक्षःस्थल पर लगाने से पार्श्ववेदना नष्ट होती है। पार्श्ववेदना को नष्ट करने के लिए उत्कृष्ट प्रयोग है।

(१९) सिन्दूर प्रलेप

अल्प सिन्दूर लेकर उसे मधु में मिला लें और एक स्वच्छ वस्त्र पर लगा कर, वेदना के स्थान पर चिपका दीजिये। इसके उपरान्त कण्डों की प्रज्वलित अग्नि से इसे सेंक दें। सेंकते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तीव्र सेंक देना इष्ट नहीं है। सामान्य रूप से ही सेंकिये। इस प्रयोग से पार्श्ववेदना में अच्छा लाभ होता है। यह स्वास्थ्य रक्षा का प्रयोग है और हमारे द्वारा परीक्षित है।

(२०) भृङ्गराज भस्म

इसको उष्ण जल के साथ सेवन करने से पार्श्ववेदना में अत्युत्तम लाभ होता है।

(२१) आर्द्रक पाक

छिला हुआ अदरक एक सेर, घी आध सेर, दूध चार सेर, शक्कर दो सेर, काली मरिच, छोटी पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्रक, नागकेशर, नागरमोथा, तेजपात, कल्मी तज—प्रत्येक का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम अदरक को सूक्ष्म पीस कर, पिष्टी बना लें। इसके उपरान्त दूध को अग्नि पर चढा कर पकावें। मन्द-मन्द अग्नि जला कर, दूध को चलाते हुए पाक करें। जब दूध कुछ गाढा बन जाय; तो इसमें अदरक की पिष्टी डाल कर, इसका खोवा बना लें। इसके पश्चात् इसमें घी को मिला कर, मन्द अग्नि दें। भुन जाने पर इसको अग्नि से नीचे उतार लें। इसके उपरान्त शक्कर की चाशनी सिद्ध करें। चाशनी के सिद्ध होने पर इसमें खोवा तथा समस्त चूर्ण को मिला दें और एक-एक छटांक प्रमाण के मोदक बना करके, पात्र में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ मोदक—प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें। अवस्था, बल आदि को विचार कर मात्रा दें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से कटिशूल, पैरों की पीड़ा, कास, श्वास, शीतपित्त, वातरक्त, गुल्म आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और क्षुधावर्धक है। वर्षाकाल में वातपीड़ित व्यक्तियों के लिए अत्युत्तम औषध है।

(२२) शून्य वायुनाशक तैल

शुद्ध सरसों का तैल, करेला और छिला हुआ लशुन—प्रत्येक द्रव्य १-१ सेर लें। करेले तथा लशुन को पीस कर, इनका कल्क (लुगदी) बना कर, एक लोहे की कड़ाही में तैल तथा कल्क को एकत्र डाल करके, मन्द अग्नि पर पकावें। यह कल्क जब पक करके लाल वर्ण का हो जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें। इसके पश्चात् इसमें काली मरिच, सोंठ, पिप्पली, राई, इलायची, नमक, अजवाइन—इनका वस्त्रछन चूर्ण मिला दें। और पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—½ से एक तोला तक, उष्ण जल के साथ सेवन करें।

उपयोग—इसे खाने और मर्दन करने में प्रयुक्त करें। शून्यवात रोग में इसको खाने के साथ-साथ मर्दन करने से उत्तम लाभ होता है। वायु के प्रकुपित होने पर जब शरीर के अङ्गों में शून्यता (निष्क्रियता) आ जाती है; तो इस प्रयोग को खाने और मलने पर रोग निवारण होता है। परीक्षित है।

(२३) वात व्याधिहर तैल

गन्धक, हरिताल, मैनसिल, शतावर, पिप्पली, पिप्पलीमूल, कूठ, मुरदा-संग, पलाश पापड़ा, कायफल, शृङ्गिक विष, तेलिया विष, दूधिया विष, शुण्डिया विष, कुचला, इन्द्रयव, लाजवन्ती, कलौंजी, माजूफल, मैनफल, काला जीरा, नवसादर, तुत्थ, हरिद्रा, बावची, निर्गुण्डी, ब्रह्मदण्डी, गोरखमुण्डी, निर्गन्ध बावरी, पीली सरसों, तुमड़ी, चिरायता, नीम की गिरी, ब्राह्मी, कचूर, भिलावे, अजवाइन, अजमोद, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, मालकांगनी, सालममिश्री, काली मरिच, आमला, गिलोय, मुलहठी, स्वर्णमाक्षी, वन्दाल-फल, निशोथ, बकायन की गिरी, धत्तूरे के बीज, भिकुम्भ के बीज, कौंच बीज, सोंठ, कुसुम बीज, गूलर की छाल, थूहर की छाल, आम की छाल, बबूल की छाल, अर्क-त्वचा, गोदन्ती(सिहोरा) के पुष्प, गाजर के बीज, कमरख की छाल, सहिजन की छाल, आमला सार गन्धक, तेजोबल, गोखरू, एरण्ड की गिरी, करंज, नागकेशर, चाकसू के बीज, करीर के बीज, जई, धमाशे की जड़, रूद्रवन्ती, सहदेवी और दशमूल—इन समस्त द्रव्यों को सम भाग लें और यवकुट चूर्ण बना करके, सोलह गुणे जल में २४ घण्टे भिगो दें। एक अहोरात्र पर्यन्त भीगने के उपरान्त इसे मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार

करके, शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके, छान लें। इसके उपरान्त क्वथित जल के भार मे चतुर्थांश तिलों का तैल, तथा तैल के चतुर्थांश उक्त समस्त द्रव्यों का कल्क (लुगदी) ले करके—तीनों को एकत्र मिला, मन्दाग्नि पर पकावें। तैल मात्र के शेष रहने पर इसे अग्नि से नीचे उतार करके, छान कर, शीशी में भर लें और सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य—इस तैल को पकाते समय इसके धुआँ से नेत्रों की रक्षा करनी चाहिए। यह धूम्र नेत्रों के लिए अनिष्टकर है।

उपयोग—इस तैल को बाह्य प्रयोग में लिया जाता है। अर्दित, पक्षाघात (अधरंग), सन्धिवात, पार्श्वशूल, आदि सम्पूर्ण वात व्याधियों में इसको मर्दन करके, सेंकना चाहिये। जिस अंग में वायु का विकार हो, उसी अंग में इस तैल को मलना चाहिये और रुई आदि से उस स्थान को सेंकना भी लाभप्रद है। किसी भी वात व्याधि में इसे मर्दन करने पर लाभ अवश्य होगा। वायुजनित कोई रोग ऐसा नहीं है; जहाँ पर यह तैल लाभप्रद नहीं हो। वात विकारों में जितना उपयोगी मैंने इस तैल को अनुभव किया है; नारायण, विषगर्भा, प्रसारणी, महामाष आदि तैलों से उतना लाभ होते हुये नहीं देखा गया। यह तैल अनेक बार का सुपरीक्षित है।

(२४) रास्नादि क्वाथ

रास्ना, पुनर्नवा, शुण्ठी, गुडूची और एरण्ड की जड़—इनको सम भाग लेकर, यवकुट चूर्ण बना कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ तोले तक इस चूर्ण को लेकर, एक पाव जल में, मिट्टी के पात्र में, मन्दाग्नि पर पकावें। पात्र को बिना ढके हुये पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर, हाथ से मर्दन कर, छान लें और रोगी को पिला दें। यह क्वाथ "एकाङ्ग वीर रस" आदि किसी वात रोग नाशक योग के साथ अनुपान रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप से भी प्रयुक्त होता है। इसके सेवन से सभी प्रकार के वात रोगों का शमन होता है। कष्ट साध्य वायु के रोगों में इस क्वाथ को निरन्तर कुछ मास तक सेवन करना इष्ट है।

वात-व्यधि में पथ्यापथ्य—बलवान् वायु को रोकने के लिये मनोबल की अत्यधिक आवश्यकता है। वात व्याधि होने पर यदि चित्त की निर्बलता बनी रहे; तो रोग निवारण होने की सम्भावना नहीं होती। मनोबल पूर्ण रहते हुये औषध-योजना करने से वायु के रोग शीघ्र ही शान्त होते हैं। जिस वात व्याधि में मानस विकार कारण हो, अथवा रोग के उत्पन्न होने पर चित्त के धैर्य, विवेक, एकाग्रता आदि सात्त्विक गुणों का अभाव हो जाय; तो उस अवस्था में रोगी के मानसिक बल की वृद्धि करने वाले उपाय आचरणीय हैं। मन में चञ्चलता तथा एकाग्रता होने से शरीरगत प्राण, उदान आदि समस्त वायु में चाञ्चल्य एवं स्थिरता अवश्य

आती है। अतएव प्रकृत रोग में मन को स्थिर रखना अभीष्ट है। इसके लिये ईश्वर भक्ति, आध्यात्मिक ज्ञान, तत्त्व चिन्तन, दान, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, धैर्य, एकाग्रता आदि शास्त्रीय उपायों का अवलम्बन श्रेष्ठ है। जिन साधनों से मन में सात्त्विक गुण की वृद्धि और रज तथा तम की निर्बलता हो; उनको आचरण में लाना वाञ्छनीय है। तैल का मर्दन, निर्वात स्थान में निवास, उष्ण जल पीना, उष्ण पानी से स्नान करना, स्वेदन, वस्तिक्रिया, विश्राम, उचित श्रम करना, घी, दूध, तैल, पुराने चावल, गेहूँ, माष (उरद), मूंग; मधुर, अम्ल तथा लवण–रस; परवल, लौकी, तोरई आदि शाक, हरड़, आमला, काली मरिच, शुण्ठी, अजवाइन आदि हितकर हैं।

मानसिक अशान्ति, चित्त की चञ्चलता, अधैर्य, मैथुन, रात्रि जागरण, उपवास, अल्प आहार, मल, मूत्र आदि के आगत वेगों को रोकना, अत्यधिक परिश्रम, धूम्रपान आदि व्यसन, चना, मटर, पत्तों के शाक, शीतल जल से स्नान करना, ठण्डा जल पीना, पर्युषित, मलिन आहार आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं। इनसे वायु-रोगों की वृद्धि होती है।

अथ वातरक्त-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२१॥

वातरक्त रोग के कारण—क्रोध करने से, दिन में अधिक सोने से, रात्रि में जागने से, व्यायाम न करने से, लवण, अम्ल, कटु, क्षार, आदि पदार्थों को अधिक खाने से; अजीर्ण में भोजन करने से और विरुद्ध आहार करने आदि अनेक कारणों से वात तथा रुधिर प्रकुपित हो जाते हैं। वायु और रक्त के दुष्ट होने से वातरक्त रोग उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रारम्भ पैर तथा हाथों से होता है। यदि आरम्भ में इसकी योग्य चिकित्सा नहीं होती, तो यह हाथ तथा पैरों से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाता है।

वातरक्त व्याधि के लक्षण—शरीर का वर्ण काला होना, हाथ तथा पैरों में चकत्ते तथा कण्डू (खुजली) का हो जाना, शरीर में आलस्य, शून्यता का होना आदि अनेक लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—

(१) पलाण्ड्वादि प्रलेप

भूभल में भुना हुआ **पलाण्डु** (प्याज), और सरसों का शुद्ध तैल—प्रत्येक द्रव्य १-१ सेर तथा देशीय मोम एक पाव लें। प्रथम भुने हुए प्याज को पीस कर, कल्क (लुगदी) बना लें और एक लोहे की कड़ाही में तैल तथा कल्क को एकत्र डालकर, मन्दाग्नि पर पकावें। जब कल्क का जलीयांश जल जाय एवं यह रक्तवर्ण हो जाय, तो इसमें मोम को डाल कर, कड़्छी से चला करके, मिला दें और कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार लें। इसके पश्चात् इसे खरल में डाल कर, एक दिन दृढ़ता से मर्दन करें। अथवा कड़ाही में ही १२ घण्टे घोट करके, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

उपयोग—वातरक्त जिस स्थान में हो, उस स्थान को नीम के पत्तों में पकाये हुए जल से स्वच्छ धो करके, उसे शुष्क वस्त्र से पोंछ लें। वस्त्र से पोंछने के उपरान्त इस लेप को लगा दें। इसे दिन में दो बार लगाना चाहिए और प्रतिदिन एक बार नीम के पत्तों में पकाये हुए जल से उस स्थान को धोना आवश्यकीय है। इस प्रलेप को लगाने से वातरक्त तथा पामा (एग्जिमा) रोग नष्ट होता है। इससे वातरक्त जनितव्रण भी शीघ्र पूर्ण हो जाता है। अनुभूत है। यह प्रयोग श्री रामसिंह की नानी जी (मेरठ) से प्राप्त हुआ है।

(२) वातरक्त-गजाङ्.कुश प्रलेप

रक्त फिटकरी, गन्धक और राल—तीनों द्रव्य ४ तोले एवं रस कर्पूर ६ माशे लें। इन सबको सूक्ष्म पीस लें। गौ के मक्खन को कांसी की थाली में रख करके पानी से १०१ बार धो लें और इस धुले हुए मक्खन में उक्त औषधियों के चूर्ण को मिला कर, ६ घण्टे मर्दन कर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये। इसका नाम "वातरक्त

गजाङ्कुश प्रलेप" है । इसे लगाने से वातरक्त रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। कठिन से कठिन वातरक्त को नष्ट करने के लिए अत्युत्कृष्ट प्रयोग है। वातरक्त से पीले जल का स्राव होना, कण्डू (खुजली) तथा पीड़ा आदि उपद्रव शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। यह विसर्प तथा उपदंश में भी लाभप्रद है । परीक्षित है ।

(३) विषहरी

वनस्पति के पञ्चाङ्ग को गौ मूत्र के साथ सूक्ष्म पीस कर लेप लगाने से वातरक्त रोग नष्ट होता है। पैर आदि अङ्गों में जहाँ वातरक्त हो; उस स्थान पर इस लेप को लगा देने से कष्ट साध्य रोग भी अल्प समय में निर्मूल होता है। परीक्षित है। **वक्तव्य**—अपामार्ग को विषहरी कहते हैं।

(४) योगसारामृत

शतावर, गंगेरन, उटंगण के बीज, विधारा, सांठी, गुडूची, छोटी पिप्पली, अश्वगन्ध और गोखरू—प्रत्येक द्रव्य आध-आध पाव, मिश्री ४५ तोले, दालचीनी, छोटी एलायची और तेजपात–प्रत्येक द्रव्य १।।-१।। तोला लेकर समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त मधु १६ तोले, घृत ८ तोले–इन दोनों को चूर्ण में मिला करके, इसे शीशे के पात्र में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ तोला, केवल प्रातः समय खावें। यह योग वातरक्त, रुधिर के विकार, कुष्ठ, वातपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से कफ के रोग भी शान्त होते हैं। शरीर में बल वीर्य की वृद्धि होती है। परीक्षित है। बंगसेन०

(५) लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ

मजीठ, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, कुटकी, वचा, देवदारू, हल्दी, गिलोय और नीम की अन्तश्छाल—प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर, यवकुट चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को २ तोले की मात्रा में लेकर, आध सेर जल में मिट्टी के पात्र में पकावें। मन्द अग्नि दें और पात्र को बिना ढके रखें। अष्टमांश (५ तोले) जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और मधु मिलाकर, पिलावें। इसे दिन में २-३ बार सेवन करें।

गुण—लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ के सेवन से वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू, पामा, दद्रु, विसर्प—ये समस्त रोग नष्ट होते हैं। इस क्वाथ को कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से वातरक्त आदि व्याधियाँ अवश्य शान्त होती हैं।

वातरक्त रोग में पथ्यापथ्य—जौ, साठी चावल, गो घृत, दूध, गेहूँ, चना, मूंग, अरहर आदि दाल, वथुआ, चौलाई, लौकी, परवल आदि शाक, द्राक्षा, मिश्री, आदि हितकर पदार्थों को सेवन करना उत्तम है। अधिक दूध, शरीर से परिश्रम न करना, अग्नि के समीप अधिक रहना, खटाई, लाल मिर्च, लवण, तैल, काञ्जी, स्वभाव विरुद्ध पदार्थ तथा गरिष्ठ आहार का सेवन करना, क्रोध आदि से वातरक्त रोग की वृद्धि होती है।

अथ-आमवात-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२२॥

भोजन करके तुरन्त व्यायाम, जल में तैरना वा परिश्रम करने से, शारीरिक उचित परिश्रम न करने से, मन्दाग्नि होने से, विरुद्ध आहार के सेवन आदि अनेक कारणों से आमवात रोग उत्पन्न होता है। कभी-कभी यह व्याधि औपसर्गिक पूयमेह (सुजाक) से भो होती है। इस रोग को सन्धिवात, ग्रन्थिवात, आमवात और गठिया आदि अनेक नामों से बोला जाता है। इस रोग में आम रस तथा वायु ये दोनों एक साथ प्रकुपित होते हैं। क्रुद्ध हुआ आमवात, त्रिकप्रदेश तथा सन्धियों में जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ पर पीड़ा के सहित शोथ उत्पन्न हो जाता है। उस स्थान में तीव्र वेदना होती है। मन्दाग्नि, भोजन में अरुचि, उत्साह का क्षय, दाह, निद्रानाश, आन्त्र में कूजन आदि अनेक लक्षण होते हैं। इसे आमवात (गठिया) कहते हैं।

आमवातनाशक प्रयोग—

(१) आमवातारि गुटिका

सोंफ, शुद्ध सुहागा, लवङ्ग, काली मिर्च, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, यवक्षार, छोटी पिप्पली—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, धनिया, श्वेत जीरा—प्रत्येक दो-दो तोले, अजवाइन ८ तोले, शुण्ठी १६ तोले, कचूर, छोटी इलायची के बीज, तेजपात और दालचीनी—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे, मिश्री एक सेर, तेरह छटांक और मधु ५ तोले लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनावें। पीछे मिश्री में जल डाल कर चाशनी बना लें। जब यह चाशनी मोदक (लड्डू) बनाने के योग्य हो जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार करके, इसमें चूर्ण तथा मधु मिला दें। उत्तम प्रकार से मिलने पर ६-६ माशे प्रमाण में वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर लें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ वटी तक, प्रातः समय सेवन करें।

गुण—इस आमवानारि गुटिका के सेवन से सुख-साध्य, कष्ट-साध्य और असाध्य आमवात रोग (गठिया) नष्ट होता है। "यथानाम तथा गुणाः" इस वचन के अनुसार वस्तुतः यह योग आमवात का शत्रु ही है। इसके सेवन से अम्लपित्त और रक्तपित्त रोग में भी उत्तम लाभ होता है। परीक्षित है।

(२) आमवात प्रमथिनी वटी

कलमी शोरा, अर्कमूल, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म—इन पाँच द्रव्यों को समान भाग लेकर, सबको एकत्र मर्दन करें। इसके उपरान्त अमलतास के

रस में २ दिन तक स्थिरता से घोट कर, २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, निशोथ के क्वाथ के साथ, प्रातः समय सेवन करें।

गुण—यह वटी आमवात (गठिया) जनित उपद्रवों, कफ वृद्धि एवं कफ सम्बन्धी विकारों को नष्ट करती है। गठिया में जब तीव्र शूल होता हो, तब और उसकी जीर्णावस्था में इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है। र० यो० सा०।

(६) वात गजकेशरी-गुग्गुलु

शुद्ध गुग्गुलु, शुद्ध आमलासार गन्धक और त्रिफला—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले लेकर, इनको सूक्ष्म पीस कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में शुद्ध एरण्ड तैल ५ तोले मिला कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—६ से ९ माशे तक, उष्ण जल के साथ केवल प्रातःकाल सेवन करें।

गुण—वातगजकेशरी गुग्गुलु के सेवन से आमवात रोग का प्रशमन हो जाता है। सन्धिवात (गठिया) के निराश रोगी भी इस प्रयोग के सेवन से स्वस्थ हो जाते हैं। इसे २० से ४० दिन पर्यन्त नियमित रूप से खाना चाहिए। अनुभूत।

(४) आमवातघ्न चूर्ण

शुण्ठी १ तोला, निशोथ २ तोले और कुटकी ३ तोले लेकर, इनका वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ माशा, उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से गठिया रोग नष्ट होता है। अनुभूत है।

(५) चक्रमर्दादि चूर्ण

चक्रमर्द (पमार) के बीज, कलौंजी, कुटकी और शुण्ठी—इनको समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे, उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण सन्धिवात तथा अन्य वायु विकारों में अत्युपयोगी है। अनुभूत है।

(६) गुञ्जा प्रयोग

बालगुञ्जा (चौंटली) की हरी पत्तियों का रस ५ तोले, काली मिर्च (११ दाने) का वस्त्रछन चूर्ण—दोनों को एकत्र मिला कर, पीवें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करें। इस प्रयोग से आमवात रोग नष्ट होता है। आमवात (गठिया) रोग में अत्युपयोगी प्रयोग है। यह सैंकड़ों बार का अनुभूत है।

(७) मल्लादि वटिका

शुद्ध मल्ल (संखिया) क्षार, शुद्ध कुचला और सैंधव लवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर, सूक्ष्म चूर्ण बना कर, एक दिन माला के रस में दृढ़ता से मर्दन करके १-१ रत्ती की वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, उष्ण जल के साथ दें।

गुण—इस वटी के सेवन से सन्धिवात (गठिया) में होने वाली तीव्र वेदना शान्त होती है और जठराग्नि तीव्र होती है। आमवात के रोगी के शरीर के अङ्गों में जब वृश्चिकदंश के तुल्य वेदना होती है, तो इस वटी के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

(८) राजिकादि प्रलेप

काली राई, अफीम—प्रत्येक ६-६ माशे, लाल मिर्च, लशुन, अरणी के पत्र, काले धत्तूरे की जड़ की छाल और सहिजन की जड़ की छाल—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर, समस्त औषधियों को सूक्ष्म पीस कर, गौ मूत्र के साथ मर्दन कर, कल्क बना लें। इसके उपरान्त एक लोहे की कड़ाही अथवा मिट्टी की हण्डी में एक सेर गौ मूत्र के साथ कल्क को डाल कर, मन्दाग्नि पर पकावें। जब यह गाढ़ा हो जाय, तो अग्नि से नीचे उतार लें और सहने योग्य उष्ण रहते हुए सन्धिवात (गठिया) के शोथ पर लगा दें। यह लेप गाढ़ा-घना लगाना चाहिए। एक लेप को २४ घण्टे तक बन्धा रखने दें। इसके उपरान्त दूसरा लेप लगा दीजिए। तृतीय लेप के लगाने के पूर्व उस स्थान को गौमूत्र से धो लेना चाहिए। गौमूत्र से धोने के पश्चात् शुष्क वस्त्र से पोंछ कर, लेप करना इष्ट है। उस स्थान को जल से धोना अनिष्ठ है।

गुण—इस प्रलेप को लगाने से आमवात में होने वाला शोथ तथा तज्जनित वेदना का प्रशमन होता है। गठिया के शोथ और शूल को नष्ट करने के लिए यह प्रलेप अत्युत्तम लाभप्रद है। अनुभूत है।

आमवात रोग में पथ्यापथ्य—दूध, एरण्ड का तैल, वस्तिकर्म, विरेचन, अल्प परिश्रम, ब्रह्मचर्य, पवित्र विचार, मानस शान्ति, मट्ठा, उष्ण जल, लशुन, अदरक, परवल, लौकी, पुराना चावल, पुराना गेहूँ आदि हितकर आहार विहार मे व्याधि शीघ्र नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त गरिष्ठ, मलिन, पर्युषित, दूषित तथा अपनी प्रकृति के प्रतिकूल आहार का सेवन, मैथुन, अजीर्ण में भोजन करना, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के वेगों को रोकना, शीतल जल पीना, रात्रि में जागना, शारीरिक उचित परिश्रम न करना आदि अहितकर हैं।

अथ गुल्म-प्लीहा-यकृत्-जलोदर-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२३॥

गुल्म-रोग का सामान्य परिचय—आहार-विहार के अयुक्त होने से वात आदि दोष प्रकुपित होकर गुल्म रोग को उत्पन्न करते हैं। हृदय तथा वस्ति—इन दोनों स्थानों के मध्य प्रदेश में एक प्रकार की गोल ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न हो जाती है, जो उदर में एक स्थान से अन्य स्थान पर चली जाती है अथवा एक स्थान पर अवस्थित रहती है—उसे "गुल्म" कहते हैं।

गुल्मव्याधिनाशक प्रयोग—

(१) सर्वगुल्मविध्वंसक रस

लोह भस्म ८ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, बड़ी हरड, बहेड़ा, आमला, शुण्ठी, काली मिर्च, छोटी पिप्पली, नागर मोथा, वायविडंग, श्वेत जीरा, काला जीरा, अजवाइन, अजमोद, चिरायता, निशोथ, दन्ती, नीम की छाल, सैंधव लवण, काला नमक, सोंफ, सुहागा, सर्जक्षार, यवक्षार, समुद्रफेन—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, घृत १६ तोले, त्रिफले का क्वाथ दो सेर, जम्बीरी निम्बू का रस और मिश्री—प्रत्येक एक-एक सेर लें।

प्रथम त्रिफला क्वाथ और निम्बू के रस को एकत्र मिला कर, मन्द-अग्नि पर पकाइये। जब यह कुछ गाढ़ा बन जाय, तो इसमें मिश्री डाल कर पकावे। कुछ समय तक मन्द-मन्द अग्नि से पकने पर जब यह कुछ कड़ा हो जाय, तो अग्नि से नीचे उतार लें और इसमें भस्में तथा घृत और शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण डाल कर, उत्तम प्रकार से मिला लीजिए। सम्यक् प्रकार मिलने पर ३-३ माशे की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दो समय उष्ण जल वा सद्यः पानी से साथ सेवन करावें।

गुण—इस रस को सेवन करने से समस्त प्रकार के गुल्म, उदर व्याधि, यकृत्, प्लीहा, कामला, पाण्डु, शोथ, जीर्णज्वर आदि अनेक रोग निर्मूल होते है। गुल्म रोग को नष्ट करने के लिए अत्युत्कृष्ट प्रयोग है। अनुभूत है।

(२) लवणादि प्रयोग

सैंधव, साम्भर, समुद्र, सञ्चर और काला नमक, नवसादर, कलमी शोरा, लाल फिटकरी तथा गन्धक—ये ९ द्रव्य १-१ तोला लेकर, पृथक्-पृथक् चूर्ण बना लें। पांचों लवणों को एकत्र मिला लीजिए। इसके उपरान्त एक मिट्टी के पात्र के

ऊपर वस्त्र मिट्टी करके, उसे धूप में शुष्क करें। तत्पश्चात् इसमें सर्व प्रथम आधा लवण चूर्ण, लवण के ऊपर आधा नवसादर, उसके ऊपर आधा कलमी शोरा, शोरे के ऊपर आधी फिटकरी और तदुपरि सम्पूर्ण गन्धक को रख दीजिये। तदुपरान्त गन्धक के ऊपर शेष औषधियों के चूर्ण को (फिटकरी, शोरा, नवसादर तथा लवण— इनको क्रमशः एक के ऊपर दूसरे को) रख दें। अर्थात् गन्धक के ऊपर फिटकरी, फिटकरी के ऊपर शोरा, उसके ऊपर नवसादर और नवसादर के ऊपर लवण को रख दें। मुख मुद्रा दृढता से करके सम्पुट बना लें और पांच सेर उपलों के मध्य में रखकर अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोल करके, औषधि को ग्रहण करें और इसे सूक्ष्म पीस कर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१॥ से ३ माशे तक, अम्ल मट्ठा के साथ सेवन करें। मट्ठा यथेष्ट दें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से रोगी को विरेचन होते हैं। यह उदर की शुद्धि करके, गुल्म रोग को नष्ट करता है। प्लीहा तथा यकृत् के लिए भी अत्युपयोगी है। परीक्षित है। श्री आत्मानन्द जी से प्राप्त।

(३) बृहद् अश्वकञ्चुकी रस (अश्व चोली रस)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, ताम्र भस्म, हरिताल भस्म, जावित्री, जायफल, श्वेत मुशली, शुद्ध सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ विष, यवक्षार, शुद्ध श्वेत ब्रह्मपुत्र विष, काला जीरा, नीम की गिरी, वायविडग, दारु हल्दी, शुद्ध मनःशिला, अकरकरा, लवङ्ग, पिप्पली मूल, समुद्रफल, चोपचीनी, नाग केशर, कूठ, काकड़ाशिंगी, ज्योतिष्मती, कुष्ठ पत्थर, शुद्ध धत्तूरे के बीज, नवसादर, चित्रक और पारसी अजवाइन—प्रत्येक द्रव्य २-२ भाग, भीमसेनी कर्पूर, पक्विका (पंचिका-पच्चिका) कर्पूर, कुङ्कुम— प्रत्येक १-१ भाग, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, शुण्ठी, काली मिर्च, छोटी पिप्पली, देशीय अजवाइन—प्रत्येक द्रव्य ३-३ भाग और सम्पूर्ण औषधियों को मिला करके जितना भार हो, उतना ही शुद्ध दन्ती बीज लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके, उसमें भस्मों को मिला कर, मर्दन करें। इसके उपरान्त शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में मिला करके घोटें। तत्पश्चात् भृङ्गराज के रस में ४५ प्रहर (१३५ घण्टे) दृढ़ता से मर्दन करें। जितनी अधिक घुटाई होगी औषधि उतनी ही अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। **मर्दनं गुण वर्धनम्**। १३५ घण्टे तक स्थिरता से घोटने पर जब यह औषधि मक्खन के तुल्य बन जाय; तो आध-आध रत्ती प्रमाण की वटी बना करके, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार सुखने पर इन गोलियों को शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें। इसको—"बृहद् अश्व कञ्चुकी रस" कहते हैं।

मात्रा—१ से २ वटी तक। **अनुपान**—अदरक के रस, गोदुग्ध आदि रोगानुसार किसी उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—वृहद् अश्व कञ्चुकी रस सम्पूर्ण प्रकार के गुल्म, ८० प्रकार के वात रोग, ४० प्रकार के पित्त रोग, २० प्रकार की कफ व्याधि, २० प्रकार के प्रमेह, समस्त प्रकार के कुष्ठ रोग, शोथ, प्लीहा, यकृत्, पाण्डु आदि सभी रोगों को नष्ट करता है। इसको अनुपान भेद से उक्त सम्पूर्ण व्याधियों में सेवन कराना चाहिये। यह रस आयुर्वेद की उत्कृष्ट महौषधि है। इसको मैंने सैकड़ों रोगों पर अनुभव किया है। इससे मुझे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। यदि वैद्य इस प्रयोग को बना करके, विवेक बुद्धि से प्रयुक्त करे, तो रोग शत्रुओं पर विजयी होगा। यह रस सैकड़ों बार का परीक्षित है। सिद्ध महौषधियों में अन्यतम है।

गुल्म रोग में—

पथ्यापथ्य—मानस शान्ति, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, उचित शारीरिक श्रम, पुराने चावल, लाल चावल, गौ का दूध, घी, गेहूँ, द्राक्षा, खजूर, अनार, आमला, हरड़, मट्ठा, नीम्बू, लशुन, हींग, शुण्ठी, काली मरिच, पिप्पली, उबाल करके शीतल किया हुआ जल, सैंधव लवण आदि हितकर हैं। उदर की शुद्धि भी करनी आवश्यक है।

रात्रि को जागना, दिन में सोना, मैथुन, मानस चंचलता, अधिक परिश्रम, शोक, चिन्ता, क्रोध, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आए हुए वेगों को रोकना अधिक भोजन करना, पर्युषित, गरिष्ठ, वायु कारक आहार सेवन आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

प्लीहा (तिल्ली)—प्लीहा को तिल्ली नाम से बोला जाता है। यह एक प्रकार का शारीरिक यन्त्र है, जो सभी स्त्री-पुरुषों के उदर में रहता है। प्लीहा उदर में बायीं ओर अवस्थित है। यह सर्वदा एक ही आकार में स्थित नहीं होता। कभी घट जाता है और कभी बढ़ जाता है। जब तक यह यन्त्र स्वाभाविक अवस्था में रहता है, तब तक प्लीहा सम्बन्धित कोई रोग नहीं होता। किन्तु अयुक्त आहार-विहार के कारण से जब यह अधिक बढ़ जाता है, तो उदर के वाम भाग में वेदना, ज्वर का आना, जठराग्नि का मन्द होना, शरीर के बल का क्षय, देह में पीलापन का होना आदि लक्षण होते हैं। तिल्ली के अत्यधिक बढ़ने पर मुख से रुधिर का निकलना भी देखा जाता है। प्रायः बालकों में यह रोग विशेष होता है। प्लीहा के अत्यधिक बढ़ने पर अनेक रोगियों की मृत्यु भी हो जाती है।

प्लीहा नाशक प्रयोग—

(१) घृतकुमारिकादि योग

घीग्वार की वपा (गूदा) चार सेर, अग्नि पर फुलाया हुआ नवसादर आधा पाव, मण्डूर भस्म, कौडी भस्म, यवक्षार, सर्जक्षार, काला नमक, खाने का सोडा और चित्रक की छाल—ये ७ द्रव्य प्रत्येक एक-एक छटांक, घी में भुनी हुई हीरा हींग १ तोला लें चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके, समस्त औषधियों को एक चीनी मिट्टी।

के बड़े पात्र में भर दें और उसके ऊपर ढक्कन लगा कर, उत्तम प्रकार सन्धि बन्द करें। इसके उपरान्त इस पात्र को गोबर की खाद के अन्दर रख दें। १५ दिन तक इसे खाद के भीतर रहने दें। तत्पश्चात् खाद से निकाल लें और हाथ से मर्दन करके छान लीजिए। इसे शीशियों में भर करके डाट लगा दें और सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ तोला, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—यह प्रयोग प्लीहा की वृद्धि तथा गुल्म रोग को समूल नष्ट करता है। प्लीहा वृद्धि तथा गुल्म रोग को नष्ट करने के लिए इसे १५ से ३० दिन तक निरन्तर सेवन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण उदर-शूलों में तुरन्त लाभप्रद है। वातज शुष्क कास में अनुभव सिद्ध है। श्वासयन्त्र में सञ्चित हुये कफ को पिघला करके बाहर निकाल देता है। कोष्ठाश्रित वृद्धि दोषों का भेदक है। वातज तथा कफज रोगों में अत्युपयोगी है। किन्तु किञ्चित् पित्तकारक है। अनुभूत है।

(२) भृष्ट चणक प्रयोग

प्लीहा के रोगी को सायं तथा प्रातः समय भुने हुए चने चबाने चाहियें। प्रातः सूर्योदय होने से पूर्व रोगी के उदर में प्लीहा के ऊपर मक्खन को मलें। इसके उपरान्त धुनी हुई स्वच्छ रुई में एक बड़ा भिलावा लपेट करके उसे इस प्रकार से तोड़िये कि जिससे टूटने पर भिलावे का तैल रूई के अन्दर ही प्रविष्ट हो जाय, रूई के बाहर न जाय। इस रूई को नवनीत लिप्त उदर पर प्लीहा के ऊपर मर्दन करें—कुछ समय मलें। इस प्रकार प्रतिदिन भुने हुए चने प्रातः सायं दोनों समय सेवन करना, मक्खन का मर्दन तथा भिलावे के तैल से युक्त रूई को तिल्ली पर मलना—इन तीनों प्रयोगों को साथ-साथ चलावें। इससे ३ से ५ दिन में प्लीहा की वृद्धि न्यून होकर, रोग शान्त हो जाता है। यह तिल्ली को न्यून करने के लिए अव्यर्थ है।

(३) काशीश योग

काशीश भस्म १ से ४ रत्ती तक दधि के साथ दें। इससे प्लीहा रोग नष्ट हो जाता है। यदि प्लीहा की वृद्धि अधिक होने से यह नाभि प्रदेश तक आ गई हो; तो इसमें एक अनुभवी महात्मा जी, काशीश ६-६, माशे, दहि १०-१० तोले के अनुपान से सेवन कराते रहते हैं। स्थूल दृष्टि से मात्रा अत्यधिक प्रतीत होती है। किन्तु इस प्रयोग से केवल ४ दिन में प्लीहा के अनेक ऐसे रोगी भी स्वस्थ हुए हैंजिनको डाक्टरों ने शल्य चिकित्सा (अपरेशन) की अनुमति दी थी। यह अनेक रोगियों पर अनुभूत है।

(४) नरसारादि चूर्ण

नरसार (नवसादर) ८ तोले, काला नमक और सोना गेरू—१-१ तोला लेकर चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ से ८ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय जल के साथ सेवन करें। यह चूर्ण प्लीहा तथा यकृत् की वृद्धि, शोथ, मूत्र-दोष तथा उदर रोग —इन सभी व्याधियों में लाभप्रद है। स्वा० श्री सदानन्द जी गिरी।

(५) लवणादि चूर्ण

सैंधव लवण, विड्लवण, हीरा काशीश—प्रत्येक ८-८ तोले लेकर, सूक्ष्म चूर्ण बना, गोमूत्र में खरल करें। उत्तम प्रकार मर्दन करने पर जब यह लेप लगाने योग्य सूक्ष्म हो जाय; तो मर्दन बन्द कर दें। इसके पश्चात् पक्व पीत वर्ण के अकं पत्र १०० नग लें और इन पत्रों के ऊपर उक्त औषधि का लेप लगा कर, इनको छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार सूखने पर इसे ४ वस्त्र मिट्टी की हुई हण्डी में रखकर, मिट्टी के ढक्कन से हण्डी के मुख को बन्द कर, वस्त्र मिट्टी से सन्धि बन्द करके, धूप में शुष्क करके, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर औषधि ग्रहण कर लें। इसे खरल करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४ से ८ रत्ती तक, मधु के साथ दें।

गुण—इस चूर्ण को सेवन करने से प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि, वात गुल्म, वातरोग, शूल, आमवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं।

(३) स्फटिकादि चूर्ण

फिटकरी और सुहागा—प्रत्येक २-२ तोले लेकर, इनका सूक्ष्म चूर्ण बना पृथक्-पृथक् तवे पर भून लें। इसका वस्त्रछन चूर्ण बना, एकत्र सम्मिश्रण करके, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२–२ रत्ती, प्रातः सायं दिन में दोनों समय बंगला ताम्बूल में रख कर खावें।

गुण—यह चूर्ण प्लीहा वृद्धि और वायु गोला में अपूर्व लाभप्रद है। इसके सेवन से तिल्ली की वृद्धि तथा अधोवायु के अवरोध से होने वाला वायु का गोला नष्ट होता है। शतसोऽनुभूतः।

(७) प्लीहान्तक प्रयोग

नवसादर तथा कलमी शोरा–प्रत्येक ४०-४० तोले लेकर, दोनों को पृथक्-पृथक् चूर्ण बना, एक शीशे वा पत्थर के पात्र में डाल करके, इसे ओस में रख दें। प्रातः काल पात्र में आये हुए ओस के जल को शीशी में रखते रहें। जब यह सम्पूर्ण औषधि जल रूप होकर शीशी में आ जाय, तो इसमें लोह भस्म अथवा मण्डूर भस्म १ पाव मिला लीजिए। इसे प्रतिदिन हिलाते रहें। आठ दिन के उपरान्त उपयोग में लीजिये।

मात्रा—६-६ माशे, प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह प्रयोग कष्ट साध्य प्लीहा की वृद्धि में अत्युपयोगी है। इससे यकृत् की वृद्धि में भी लाभ होता है। अनुभूत है।

(८) प्लीहारि रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, ताम्र भस्म—प्रत्येक १-१ भाग, लोह भस्म २ भाग, मृग के चर्म की भस्म, और अमलतास की जड़ की छाल का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण—प्रत्येक ४-४ भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके, उसमें भस्में मिला कर, मर्दन करें। पश्चात् चूर्ण सम्मिश्रण कर, घोटें। तदुपरान्त अमलतास के रस में एक दिन मर्दन करके—४-४ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, मधु के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—इस रस के सेवन से प्लीहा सम्बन्धी रोग अवश्य नष्ट हो जाता है। अनुभूत है।

(९) कुपीलु प्रयोग

कुपीलु (कुचला) के वृक्ष की जड़ की छाल ५ तोले लेकर, स्वच्छ जल से धो लें। इसे शिला पर पीसें। इसमें काली मिर्च का चूर्ण ३ माशे मिला कर, जल के साथ अच्छी प्रकार घुटाई करिये। उत्तम प्रकार घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने योग्य सूक्ष्म हो जाय; तो एक मिट्टी के शराव में बिनौले (कपास के बीज) भर कर, बिनौले क ऊपर उक्त लेप को तिल्ली के प्रमाण में टिकिया बनाकर, रख दें। इसे रोगी के उदर में बायीं ओर प्लीहा के ऊपर शराव को विपरीत करके, पात्र सहित बान्ध दें। १५ मिनट के पश्चात् रोगी के उदर में वेदना होती है। इससे कुछ कष्ट तो होता है; किन्तु छाले नहीं पड़ते। रोगी को धैर्य धारण करना इष्ट है। तीन घण्टे तक इसी प्रकार से बन्धा रहने दीजिये। इसके पश्चात् इसे खोल दें। इस औषध को लगाने से पूर्व रात्रि को रोगी के लिए आहार में पूड़ियाँ दें। रात्रि को पूड़ियाँ खिलाने के उपरान्त प्रातः समय इस प्रयोग को करना अभीष्ट है। प्लीहा की वृद्धि को नष्ट करने के लिये यह अत्युत्तम उपचार है। इससे बढ़ी हुई तिल्ली एक ही दिन में अवश्य नष्ट होगी। प्लीहा के लिए उत्तम और अनुभूत प्रयोग है।

(१०) कण्टकारी प्रलेप

कटेली के पञ्चाङ्ग को जल के साथ सूक्ष्म पीस कर, लेप लगाने योग्य बना लें। जब पिसने पर यह सूक्ष्म बन जाय, तो इसे एक स्वच्छ श्वेत वस्त्र के ऊपर चन्द्राकार में लगा कर, उदर पर प्लीहा के ठीक ऊपर चिपका दीजिये। इससे बढ़ी हुई तिल्ली अल्प होकर, रोग नष्ट हो जाता है। प्लीह-वृद्धि को न्यून करने के लिए अत्युपयोगी उपचार है।

यकृद्रोग (जिगर के रोग)

"यकृत्"—यह एक शारीरिक यन्त्र है। यह प्लीहा की अपेक्षाकृत कई गुणा बड़ा होता है। उदर में दक्षिण भाग में यकृत् का स्थान है। यकृत् का प्रधान कार्य है पित्त को निकालना। यकृत् यन्त्र से थोड़ा-थोड़ा पित्त निकलता है, जो यकृत् की नली में होकर छोटी आन्त्र की नली में गिरता रहता है। वहाँ खाद्य पदार्थों में मिल कर, भोजन को पचाने का कार्य करता है। जब तक यह यन्त्र स्वस्थ रहता है; तब तक भोजन का पाचन और मल विसर्जन आदि क्रियाएँ उचित रूप में होती रहती हैं। यकृत् के विकार-ग्रस्त होने पर खाया हुआ आहार यथोचित रूप से नहीं पचता और मलावरोध आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। यकृत् यन्त्र को लीवर तथा जिगर आदि नामों से बोला जाता है।

दूषित आहार-विहार के कारण यकृत् में विकृति होती है। इससे लीवर की वृद्धि, शोथ, विद्रधि, आदि यकृत् सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। यन्त्र की वृद्धि होने पर रोगी के उदर में दक्षिण प्रदेश में सूई चुभोने के समान तीव्र पीड़ा होती है। कास का वेग उठता है। रोगी दाहिनी करवट से शयन नहीं कर पाता। क्षुधा का नाश तथा मलावरोध हो जाता है। प्लीहा और यकृत् सम्बन्धी रोगों के कारण तथा चिकित्सा में अत्यधिक साम्य है। जो कारण प्लीहा रोग के कहे गये हैं उन्हीं हेतुओं से यकृद्विकारों की उत्पत्ति होती है और जो औषधि प्लीहा रोगों में प्रयुक्त होती है; वही यकृत् रोगों में भी लाभप्रद होती है। इसी प्रकार यकृद्व्याधिनाशक योग प्लीहा रोग को नष्ट करते हैं।

यकृत् रोग में लाभप्रद प्रयोग

(१) देवदार्वादि भस्म

देवदारु, सैंधव लवण, शुद्ध आमलासार गन्धक—प्रत्येक द्रव्य पाँच-पाँच तोले, ले करके, सूक्ष्म पीस कर, जल के साथ मर्दन करें। ६ घण्टे तक घुटाई होने पर, इस का गोला बना, धूप में गोले को सुखा लें। अच्छी प्रकार सूखने पर शराव सम्पुट करके, बीस सेर जंगली काण्डों में रख कर, अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोल कर, औषधि को ग्रहण करें और खरल में मर्दन करके, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशे तक, गोमूत्र अथवा रोहितकारिष्ट वा जल के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह भस्म यकृत् और प्लीहा के रोगों में अत्युपयोगी है। इसको सेवन करने से यकृत् की वृद्धि तथा शोथ का शमन हो जाता है। तिल्ली की वृद्धि को भी शान्त करता है। अनुभूत है।

(२) करकादि चूर्ण

करक (अनार) के बीज, श्वेत जीरा, काला नमक, शुष्क पुदिन, हरड़, बहेड़ा, आमला, सैंधव लवण, साम्भर लवण, शुण्ठी—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला और सनाय

१० तोले ले करके, इन समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण बना करके, शीशी में सुरक्षित रख लीजिये।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ माशे तक, उष्ण जल के साथ, रात्रि में शयन करते समय सेवन करें।

गुण—यकृत् व्याधि में प्रायः मलावरोध रहता है। मलावरोध के रहने से जिगर के रोगों में वृद्धि होती तथा रोगी की पीड़ा भी बढ़ती है। सोते समय जल के साथ इस चूर्ण को सेवन करने से अच्छी प्रकार उदर की शुद्धि हो जाती है। विबन्ध (कब्ज) नहीं होता। फलतः यकृत् रोग में इससे लाभ हो जाता है। यकृत्-रोगी के लिए यह अत्यावश्यक है कि उसको विबन्ध नहीं होने देना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन से उदर की शुद्धि होकर, रोग के निवारण में अत्यधिक सहयोग मिलता है। यह चूर्ण उदर के शूल तथा अफारे को भी नष्ट करता है। अनुभूत है।

(३) मुक्तामिश्रण

मुक्ता शुक्ति भस्म और गोदन्ती हरिताल भस्म—प्रत्येक ५-५ तोले ले करके दोनों को ३ घण्टे घोट करके, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ से ५ रत्ती तक प्रातः सायं दिन में दोनों समय, मधु के साथ दें। ग्रीष्मकाल में वनपसादि के पानक (शर्बत) के साथ दें। भोजन के उपरान्त रोहितकारिष्ट १ से २ तोले तक सेवन करावें।

गुण—यह प्रयोग यकृत् रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से यकृत् सम्बन्धी रोगों में आशातीत लाभ होता है। कुछ काल तक निरन्तर सेवन करने से यकृद्रोग का प्रशमन होता है। यह अनुभूत है।

(४) रोहितकारिष्ट

रोहितक (रोहेड़ा) की छाल ५ सेर को यवकुट करके, २ मन, ३२ सेर, ३२ तोले जल में मन्दाग्नि पर पकाइये। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें। इसके उपरान्त छने हुए क्वाथ में-गुड़ १० सेर, धाय के पुष्प ६४ तोले, छोटी पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक की जड़, शुण्ठी, दालचीनी, तेजपात, बड़ी एला, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, काली मरिच— प्रत्येक ४-४ तोले लेकर यवकुट चूर्ण बना—इन समस्त औषधियों को मिला दीजिये। इसके पश्चात् घृत लेपित मिट्टी के पक्के पात्र में भर करके, अरिष्ट विधि से सन्धान करें। इसे एक मास तक रहने दीजिये। एक मास के उपरान्त इसे निकाल कर, छान लें और शीशियों में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ तोला तक, समभाग पानी मिलाकर, भोजन करने के उपरान्त प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह अरिष्ट यकृत, प्लीहा, वायु का गोला, अग्निमान्द्य, हृदय के रोग, पाण्डु, संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, शोथ आदि अनेक व्याधियों को नष्ट करता है। इससे

खाया हुआ भोजन उचित समय पर पच जाता है और क्षुधा की वृद्धि होती है। उक्त समस्त व्याधियों को नष्ट करने के लिये यह अरिष्ट उत्कृष्ट औषधि है। अनुपान रूप से तथा स्वतन्त्र रूप में भी इसका सेवन किया जाता है। अनुभूत है।

प्लीहा और यकृत रोग में पथ्यापथ्य—मानसिक शान्ति, ब्रह्मचर्य, उचित परिश्रम करना, भ्रमण, रात्रि को शीघ्र सोना और प्रातः समय शीघ्र उठना, शुद्ध वायु मण्डल में जा करके दीर्घ-श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करना, समय पर उचित मात्रा में हितकर आहार करना, गौ और बकरी का दूध, मट्ठा, पुराने लाल चावल, मूंग, अरहर की दाल, लशुन, सैंधव लवण, काली मरिच, पिप्पली, शुण्ठी, हरड़, बहेड़ा, आमला, इलायची, नींबू, पुदिन, अदरक, बथुआ, पालक, परवल, अनार दाना, सन्तरा, पपीता आदि हितकर हैं।

मानसिक अशान्ति, चञ्चलता, मैथुन, रात्रि जागरण, अधिक श्रम करना, अधिक जल पीना, गरिष्ठ, मलिन, पर्युषित आहार, पत्तों के शाक का अत्यधिक सेवन, नमक, लाल मरिच, दही आदि को अधिक खाना, अश्व, साइकिल आदि की सवारी करना, अधिक घूमना, धूप में बैठना आदि अपथ्य हैं।

जलोदर रोग—जो पुरुष घृत आदि स्नेह को पीने के पश्चात् शीतल जल-पान करते हैं, जो मन्दाग्नि वाले मनुष्य मात्रा से अधिक जल पीते हैं, उनकी जठराग्नि अधिक मन्द हो जाती है। दूषित वायु कफ की सहायता से स्रोतों में अवरोध कर देती है। स्रोतों के अवरुद्ध होने से जलोदर व्याधि हो जाती है। जलोदर रोग में आतुर के पेट में पानी भर जाता है, पेट फूलता है और उसमें गुड़-गुड़ शब्द होता है; भोजन की इच्छा नहीं होती—इत्यादि लक्षण होते हैं।

जलोदर रोगहर प्रयोग—

(१) जलोदर हरी गुटिका

शिरीष (सिरस) की छाल, कचनार की छाल, कुकरौंधे के पत्र, काली मरिच और कुटकी—प्रत्येक ३-३ तोले ले करके, वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिए। इस चूर्ण को कुकरौंधे के रस में एक दिन मर्दन करके, जंगली बेर के समान वटी बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२-२ वटी, प्रातः सायं दिन में दोनों समय निम्नांकित क्वाथ के साथ सेवन करावें।

(२) कांचनारादि क्वाथ

कचनार की छाल, सिरस की छाल—१-१ छटाँक और कुटकी २॥ तोले लेकर इन तीनों को यवकुट चूर्ण बनावें। १ तोला चूर्ण को एक पाव जल में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके छान लीजिए। इस क्वाथ की मात्रा ५ तोले है।

गुण—जलोदर हरी गुटिका को काञ्चनारादि क्वाथ के साथ सेवन करने से प्रबल से प्रबल जलोदर रोग भी नष्ट हो जाता है। इसको ७ से २१ दिन तक सेवन करने से जलोदर व्याधि निर्मूल होगी। अनुभूत है।

(३) हरिद्रादि सार (अर्क)

दारुहरिद्रा, गोखरू, सोंफ, कासनी, दालचीनी, विसखपरा, आकाश बेल—इन सात द्रव्यों को सम भाग लेकर, मोटा-मोटा कूट कर चूर्ण बना अष्ट गुणित जल में भिगो दें। १२ घण्टे तक भीगने दें। १२ घंटे तक भीगने के पश्चात् नाडिका यन्त्र (भबका) से मध्यम अग्नि पर सार (अर्क) निकाल लें। इसे शीशियो में भर कर,डाट लगा कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२ से ३ तोले तक, इसमें व्याधि सुधा की १ से ३ बिन्दु डाल करके रोगी को पिला दें। इसे रात्रि तथा दिन में ५–६ वार सेवन करावें। इसके साथ ही आकाश बेल को पीस कर उसका कल्क (लुगदी) बना लें। इस कल्क को पकाकर, ईषदुष्ण रहते हुए उदर पर मोटा लेप लगाकर ऊपर से बाँध दें। इसे २४ घण्टे में १-२ बार बांधना चाहिये।

वक्तव्य—श्वेत पुनर्नवा को विसखपरा कहते हैं।

गुण—इस अर्क को सेवन करने और आकाश बेल का भरता उदर पर बाँधने से जलोदर रोग में तुरन्त लाभ होता है। जलोदर रोग में यह सार (अर्क) अत्युत्कृष्ट औषधि है। सहस्रों रोगियों पर सुपरीक्षित हैं।

(४) जलोदरारि चूर्ण

शुद्ध गन्धक, पुनर्नवा, सिरस की छाल—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले, कुटकी १५ तोले और मिश्री २० तोले लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन मे दोनों समय, शिवादिक्वाथ के साथ दें।

गुण—इस चूर्ण को सेवन करने से जलोदर व्याधि नष्ट होती है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता और उदर में संचित हुए मल, मूत्र आदि को बाहर निकालता है। इसके सेवन से जलोदर में अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त प्लीहा तथा यकृत् की वृद्धि के लिए उपयोगी है। भयानक शोथ को भी शान्त करता है। इस औषधि को सेवन करते समय केवल दूध ही सेवन करना इष्ट है। अन्न, जल, लवण सर्वथा त्याग दें।

(५) शिवादि क्वाथ

बड़ी हरड़, जल में डूबी आकाशबेल, सोंफ, गुलाब के पुष्प, काकमाची (मकोय), अर्क की छाल—प्रत्येक द्रव्य को ३-३ माशे लेकर, यवकुट चूर्ण बना, आध सेर जल में मिट्टी के पात्रमें मन्दाग्नि पर, पात्र को विना ढके हुए पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि सेनीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके, छान लें। उपर्युक्त जलोदरारि चूर्ण को खिलाकर, ऊपर से इस शिवादि क्वाथ को पिला दें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से सशोथ जलोदर व्याधि नष्ट होती है। यह शरीरस्थ विकृत विष को मल-मूत्र के द्वारा बाहर निकालता है। इससे दोषों का पाचन होता है। वात, पित्त तथा कफ की विषमता दूर हो करके इनकी समता हो जाती है। यह क्वाथ हृदय को निर्बल नहीं होने देता।

अथ हृद्रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२४॥

आयुर्वेद-शास्त्र के तत्त्ववेत्ता महर्षियों ने मानव शरीर में एक सौ सात मर्म स्थानों का उल्लेख किया है। उन सभी में शिर, हृदय तथा वस्ति—ये तीन मुख्य मर्म हैं। इन तीन मर्मों में सभी हृदय स्थान वरिष्ठ है। सम्पूर्ण शरीर में हृदय का वही स्थान है जो चक्र में नाभि का होता है। जिस प्रकार गाड़ी के पहिये के मध्य में नाभि लगी रहती है और नाभि के अन्दर अरा (खड़े हुए डण्डे लगे रहते हैं) अनुस्यूत रहते हैं, उसी प्रकार शरीर रूपी यान में हृदय के अन्दर प्राण, उदान आदि वायु, ओज, मन, इन्द्रियाँ, वस्ति, मूर्धा आदि बंधे हुए रहते हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के रचयिता भगवान् विष्णु जी स्वयं हृदय में विद्यमान रहते हैं और जिस आत्मा के लिए विधाता ने शरीर रूपी रथ का निर्माण किया है वह विशुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा भी इसी प्रदेश को निवास स्थली बनाये हुए है। सुख, दुःख आदि भावों की अनुभूति हृदय में होती है। हृदय वक्षः स्थल में वाम स्तन के समीप अवस्थित है। योगज्ञ इसे अनाहत चक्र कहते हैं। इस चक्र पर धारणा ध्यान तथा समाधि लगाने से "हृदय" का निर्भ्रान्त ज्ञान हो जाता है।

जीवन को सुखमय तथा शान्तिप्रद बनाने के लिए हृदय को स्वस्थ रखने का प्रयास करना अभीष्ट है। जब तक शरीर में हृदय यन्त्र समुचित प्रकार से क्रिया करता रहता है; तब तक आयु सुख पूर्वक व्यतीत होती है। हृदय में विकृति आने पर मनुष्य का जीवन दुःखमय तथा भार रूप हो जाता है। हृदय को दूषित करने वाले जितने कारण हो सकते हैं उन सभी में मनोविकार बलवत्तम हेतु है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, शोक, चिन्ता आदि मनोविकारों का हृदय के ऊपर घातक प्रभाव होता है। काम, क्रोध आदि चैत्तिक दोषों से दूषित हुआ हृदय वात, पित्त तथा कफ को मलिन करके सम्पूर्ण शरीर में विकृति कर देता है।

मनोविकारों का मूल कारण है अविद्या—जो अविनाशी विशुद्ध आत्मा शरीर, मन, बुद्धि आदि संघात का स्वामी है; वह अविद्या के कारण अपने स्वरूप को विस्मृत कर लेता एवं स्वान्तःकरण पर संयम न रखने से, काम, क्रोध आदि मलिन भावों के अधीन हो जाता है और हृद्गतिरोध, हृदय-शूल, खिन्नता, आदि अनेक रोगों से पीड़ित सा रहता है। जो व्यक्ति काम पर नियन्त्रण नहीं रखते, उनके शरीर में वीर्य की न्यूनता होकर, प्रतिलोम क्रम से रस, रक्त आदि धातुओं तथा शरीर धारक श्रेष्ठ धातु ओज का क्षय हो जाता है। इससे हृद्रोग उत्पन्न हो जाता है। अत्यधिक वीर्यक्षय का हृदय यन्त्र पर घातक प्रभाव होता है।

क्रोध के वेग को शान्त करने का यदि कोई उपाय न किया जाय; तो अकारण ही क्रोध उत्पन्न होने लगता है। जब छोटी-छोटी घटनाओं से मन विक्षुब्ध होता है; तो इसी से हृदय में अशान्ति रहने लगती है। ऐसी अवस्था में उत्तम से उत्तम पौष्टिक आहार करने पर भी उसका पाचन नहीं होता। फलतः खाये हुए आहार से रस, रक्त आदि धातुओं का निर्माण नहीं होता। अनेक व्यक्ति पारिवारिक समस्याओं के प्रतिकूल होने पर, अथवा भावी जीवन से सम्बन्धित तुच्छ बातों पर अहर्निश चिन्ता करके ही हृद्रोग से पीड़ित देखे जाते हैं। धन के नष्ट होने पर, अथवा बन्धु, बान्धव किसी आत्मीय व्यक्ति विशेष की मृत्यु होने पर शोक के कारण तुरन्त प्राणान्त हो जाता है अथवा असाध्य हार्द व्याधि होती है। शोक के कारण हृदय की गति अवरुद्ध होने से एक क्षण में मृत्यु हो जाती है। आधुनिक सभ्य समाज में हृद्-गत्यवरोध से मृत्यु अधिक हो रही है। इसी प्रकार दूसरों की प्रगति को देख करके जो ईर्ष्या उत्पन्न होती है; यह भी हृदय को मलिन बना देती है और जीवन की नैसर्गिक शान्ति का विनाश करने में प्रमुख कारण बनती है।

भय के कारण भी हृद्रोग होते हैं। मन में भय उत्पन्न होने पर हृदय की धड़कन स्वाभाविक अवस्था में नहीं रहतीं। उसका प्रभाव श्वास-प्रश्वास तथा अङ्गुष्ठ मूल नाड़ी के ऊपर शीघ्रता से होने लगता है। भयभीत व्यक्ति के श्वास-उच्छ्वास में क्षीणता आ जाती है और उसकी नाड़ी की गति मन्द हो जाती है। विवेक ज्ञान से यदि भय के कारण का अपनयन न हुआ; तो उसका भयानक परिणाम होता है। इससे हृदय की गति अनियमित हो जाती है। चित्त की प्रसन्नता नष्ट होती है और निद्रा तथा क्षुधा का क्षय हो जाता है। जो व्यक्ति आस्तिक नहीं हैं तथा जो अध्यात्म ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं, वे भयग्रस्त अधिक देखे जाते हैं। अज्ञ व्यक्ति को शोक और भय सन्तप्त करते रहते हैं। अतएव महाभारत में कहा है—

शोक स्थान सहस्राणि भय स्थान शतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

अर्थात् विवेकहीन मनुष्य को प्रतिदिन हजारों शोक तथा सैकड़ों भय संतप्त करते हैं, विवेक सम्पन्न व्यक्ति को शोक और भय पीड़ित नहीं कर पाते।

शरीर तथा मन से अत्यधिक श्रम करने से अथवा किसी प्रकार का शारीरिक श्रम न करने से, अधिक विरेचन से, अधिक वमन से, अत्यधिक उपवास करने से, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आगत वेगों को बलपूर्वक रोकने से, वक्षःस्थल में आघात होने से, अत्युष्ण, भारी, कसैले, तीक्ष्ण, पर्युषित, मलिन और अशुद्ध अन्न पान के सेवन से, मद्य, भांग, चरस, धूम्रपान, चाय, काफी आदि का अत्यधिक प्रयोग करने आदि कारणों से हृदय रोग होते हैं।

हृदय के रोगों के भेद—१—वातज, २—पित्तज, ३—कफज, ४—सन्निपातज

और ५—कृमिज—ये पांच प्रकार के हृद्-रोग होते हैं। इन ५ प्रकार के रोगों का संक्षेप से लक्षण लिखा जाता है—

१—वातिक हृदय के रोग के लक्षण—उक्त काम आदि मनोविकारों से अथवा मिथ्या आहार विहार से प्रकुपित हुई वायु हृदय यन्त्र को दूषित कर देती है। इससे रोगी के वक्षः स्थल में तीव्र शूल होता है। हृदय में सुई चुभोने वा कुल्हाड़ी से काटने के सदृश उग्र वेदना होती है। हृदय में कम्पन, शोषण, भय, निद्रा का क्षय, अन्न जीर्ण होने पर विशेष रूप में शूल का होना आदि लक्षण होते हैं। इन सभी लक्षणों में वायु प्रधान होती है।

(२) पित्तज हृदय के रोग के लक्षण—उष्ण, अम्ल, लवण, मरिच, मद्य आदि के अधिक सेवन से, क्रोध से, धूप तथा अग्नि के अधिक सेवन से हृदय में पित्त कुपित होकर हृद्रोगों को उत्पन्न करता है। इसमें पिपासा की अधिकता, भ्रम, दाह स्वेद, खट्टी डकारें आना, व्याकुलता, नेत्रों के समक्ष अन्धकार का होना, ग्लानि का होना आदि लक्षण होते हैं। इन लक्षणों के होने पर हृदय रोग में पित्त की प्रधानता जानी जाती है।

३—कफज हृदय के रोग के लक्षण—कफ वर्धक आहार-विहार से कफज हृद्रोग उत्पन्न होता है। इसमें हृदय में गुरुता, तन्द्रा, अरुचि, जड़ता, हृदय प्रदेश पत्थर से दबा हुआ सा हो जाना, कास का वेग उठना आदि लक्षण देखे जाते हैं।

४—सन्निपातज हृदय रोग के लक्षण—उपर्युक्त वात, पित्त तथा कफ इन तीनों के मिले हुए लक्षण जिस रोग में पाये जाते हैं उसे सन्निपातज वा त्रिदोषज हृदय-रोग समझना चाहिये। इसमें भी जिस दोष के लक्षण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं; रोग में उसकी प्रधानता मानी जाती है और उसी के अनुसार चिकित्सा की जाती है।

५—कृमिज हृदय रोग का कारण और लक्षण—त्रिदोषज हृदय व्याधि के होने पर भी जो रोगी उसकी उचित चिकित्सा नहीं कराता और तिल, दूध, गुड़ आदि कृमि उत्पादक आहार का सेवन अधिक करता है, उसके हृदय के किसी एक भाग में ग्रन्थि बन जाती है। उससे जो रस निकलता है वह कृमि उत्पन्न कर देता है। इससे कृमिज हृद्रोग हो जाता है। इस रोग में हृत्प्रदेश में उत्पन्न हुए कृमि इतस्ततः भ्रमण करते और खाते-पीते रहते हैं, अतः वहां सूई चुभोने के समान पीड़ा, कण्डू (खुजली) का होना, नेत्रों के श्वेत भाग में काली-काली बिन्दु सी होना, उबकाई आना आदि अनेक लक्षण होते हैं।

हृदय रोग के उपद्रव—क्लम (विना श्रम किये हुए ही थकावट का होना), मुख का शुष्क होना, विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, कास, हिचकी, श्वास, मुख का स्वाद विकृत होना, तृषा, वमन, कफ के उत्क्लेद में वेदना, अरुचि आदि उपद्रव (हृद्रोग में) होते हैं।

हृद्रोगों की चिकित्सा—हृदय रोगों की स्थायी चिकित्सा के लिए मानसिक शान्ति तथा अध्यात्मज्ञान का अवलम्बन लेना नितान्त आवश्यक है। जिन काम, क्रोध, भय आदि मनोविकारों से चित्त की शान्ति नष्ट होती है, उनको तथा अपनी अन्तरात्मा के प्रतिकूल असत्य, कटु, निंदा, अतिभाषण आदि वाचिक क्रियाओं को और हिंसा, अपहरण आदि निन्दनीय शारीरिक व्यापार को विशेष रूप से त्यागना उत्तम है। हृदय प्रदेश में स्वयं विशुद्ध आत्मा विराजमान है। यदि अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल शरीर-मन और वाणी इन तीनों का व्यापार बनाया जाय, तो कोई रोग होने की सम्भावना नहीं होती। रोग होने पर भी यदि अन्तरात्मा की सूक्ष्म ध्वनि को श्रवण करने का प्रयास हो और तदनुसार व्यवहार बनने लग जाय, तो अनायास हृदय रोग नष्ट होता है। जिस प्रकार मनोविकार हृदय रोगों को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार ईश्वर भक्ति, आत्म-चिन्तन, धर्मनिष्ठा, ब्रह्मचर्य, सत्संग, स्वाध्याय, धैर्य, सन्तोष, दान, आदि से हृदय की रक्षा होती है। संसार की उच्च से उच्च बहुमूल्य औषधि भी हृदय को उतनी शान्ति नहीं दे सकती; जितनी की अन्तरात्मा के अनुकूल व्यवहार करने से स्वत: प्राप्त होती है। जिन महापुरुषों ने भगवदनुग्रह से अपनी हृदय रूपी गुहा में विद्यमान विशुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का अनुभव कर लिया है, वे महानुभाव अपने हृदय में जिस सुदिव्यानन्द का रसास्वादन करते हैं, उसे बहुमूल्य औषधियों के सेवन से कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को अपनी अन्तरात्मा के अनुरूप ही आहार विहार करना इष्ट है। जिन-जिन व्यापारों से चित्त में क्लेश, भय, क्रोध आदि विकार उत्पन्न हों और जिस आहार-विहार से ओज का क्षय होता हो, उन समस्त प्रकार के व्यापारों को त्यागना हितकर है। जो व्यक्ति आहार-विहार की पवित्रता पर ध्यान नहीं देते और उत्तम औषधि की गवेषणा करते हैं, वे हृदय को स्थायी लाभ नहीं दे सकते। आहार-विहार को युक्ति-युक्त बनाने के साथ-साथ यदि औषध-प्रयोग सेवन किये जायें, तो हृदय रोग में तुरन्त लाभ होगा और उसका प्रभाव भी स्थाई होगा।

वातज हृदय रोग का प्रतिकार—वात प्रधान हृदय रोग में प्रथम आतुर को स्नेह पान करावें। स्नेह पान कराने के उपरान्त दशमूल के क्वाथ में तैल तथा सैंधव लवण मिलाकर, रोगी को पिला दें। इस क्वाथ को पीने के पश्चात् रोगी को वमन करा दें। वमन कराने के पश्चात् पुराने लाल चावल वा पुराने साठी के चावल तथा मूंग की दाल की अच्छी प्रकार पकी हुई खिचड़ी, घृत और सैंधव लवण मिलाकर, पथ्य में दें। इसके उपरान्त वातनाशक औषधियों के द्वारा पकाये हुए तैल की वस्ति दें। वस्ति कर्म के पीछे रोगी को पूर्व कथित घृत युक्त मूंग की खिचड़ी का आहार दें। उबाल करके शीतल किया हुआ जल पीने के लिये दें। इस विधि से वमन तथा वस्ति कर्म के द्वारा शुद्ध किये हुए हृदय के रोगी को निम्नाङ्कित प्रयोग सेवन करावें।

(१) पुनर्नवादि तैल

पुनर्नवा, देवदारू, लघुपंचमूल, रास्ना, जौ, कच्चे बेल की गिरी, कुलथी तथा बेर—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले लेकर, यवकुट चूर्ण बनाकर, आठ सेर जल में मन्दाग्नि पर क्वाथ बनावें। चतुर्थांश २ सेर जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके, छान लें। इस छने हुए क्वथित जल में आध सेर तिलों का तैल मिलाकर, मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। तैल मात्र अवशिष्ट रहने पर छानकर, शीशी में भरकर सुरक्षित रखिये। इस तैल को खाने और मर्दन करने के उपयोग में लिया जाता है। रोगी के वक्षःस्थल पर इसको आवश्यकता के अनुसार प्रातः सायं दिन में दोनों समय मलना चाहिये और बल, अवस्था आदि के अनुसार उचित मात्रा में पिलाना इष्ट है। इससे वातज हृद्रोग में अच्छा लाभ होता है।

(२) पुष्करमूलादि घृत

पुष्कर मूल (पोहकर मूल), बिजौरे के वृक्ष की जड़, शुण्ठी, कचूर, बड़ी हरीतकी की छाल, यवक्षार, सैंधव लवण— प्रत्येक द्रव्य ३-३ तोले लेकर, यवकुट कर, चार सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ बना, छान लें। छने हुये जल में एक पाव गो घृत डालकर, मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार लें और छानकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ से २ तोले तक इस घृत को पीवें। इस घृत के पीने से वात प्रधान हृदय के रोगों में कैंचीं से काटने के समान शूल होना, निद्रा का क्षय, भय होना आदि जो लक्षण होते हैं, वे सभी शान्त होते हैं।

(३) पुष्करादि क्वाथ

पुष्कर (पोहकर मूल), बिजौरे की छाल वा पुष्प, पलाश के फल (ढाक के फल), अजवाइन, कचूर और देवदारु—प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर, समस्त औषधियों का यवकुट चूर्ण बना कर, रखिये। इस चूर्ण को १ से २ तोले तक की मात्रा में लेकर १½ पाव जल में, मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकाइये। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन कर, छान लीजिये। इसके उपरान्त—सोंठ, भुना हुआ जीरा, वचा, मरेठी, अजवाइन, यवक्षार तथा सैंधव लवण—समस्त द्रव्य समभाग लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसे ३ से ६ माशे तक क्वाथ में सम्मिश्रण करके, अल्पोष्ण रहते हुए वातज हृदय-रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दो समय नवीन क्वाथ बनाकर, उक्त शुण्ठ्यादि चूर्ण के साथ पिलाना चाहिए। इसके सेवन से वातज हृदय रोग में अवश्य लाभ होता है।

मेरे एक मित्र की धर्मपत्नी को हृदय का रोग था। उसके हृदय में कैंची से काटने के समान पीडा होती थी। दोनों पसलियों तथा योनि में तीव्र शूल उठता था। कास, उदर में वायु गोला उठता तथा पेट फूल जाता और तृषा की अधिकता थी।

रुग्णा को अत्यधिक कष्ट होने से उसके मन में अशान्ति एवं चञ्चलता उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। अनेक वैद्य तथा बहुत से अनुभवी डाक्टरों के द्वारा पूर्ण प्रयास होने पर भी रोग की अवस्था में सुधार नहीं हुआ। परिवार के सभी सदस्य निराश तथा हतोत्साह थे। दैवसंयोग से अन्तिम समय उन्होंने मुझे भी बुलाया। उस समय ईश्वरानुग्रह से निम्नांकित प्रकार से चिकित्सा करने पर लाभ हुआ—

प्रातः समय भैरवनाथी "पञ्चामृत पर्पटी" (रस रत्न समुच्चय) पिप्पल्यादि कल्क के साथ सेवन कराई गई। जिस कल्क के साथ पर्पटी दी गई उसके निर्माण की विधि लिखते हैं।

(४) पिप्पल्यादि कल्क

छोटी पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सौंठ, कचूर, बड़ी हरड़ की छाल, बिजौरा निम्बू की जड़, पुष्करमूल, और घी—समस्त द्रव्य समभाग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर, उसे उत्तम मद्य के साथ पीस करके, कल्क बना लीजिए। इस कल्क में सैंधव लवण तथा घृत मिला दीजिए। इसके उपरान्त तिलों के तैल तथा घृत के साथ छोंककर, बलानुसार सेवन कराइये। यह अनुभूत है।

(५) भोजन में **"महास्नेह घृत"** (श्री वाग्भट्टाचार्य प्रोक्त) प्रातः सायं दोनों समय दिया गया। भोजन करके आध घण्टे के उपरान्त "अगस्त्य हरीतकी" (चरक संहिता कथित) दी गई। मध्याह्न में "स्वर्णघटित मकरध्वज" शुण्ठी घृत के साथ और सायंकाल—"हृदयार्णव रस" (भै० र०) सेवन कराया गया। पिपासा को शान्त करने के लिए—"लघु पञ्चमूल" के द्वारा सिद्ध किया हुआ जल दिया गया। इस प्रकार से रुग्णा ने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया था।

हृदय रोग में तृषानाशक उपाय—रोगी के हृदय में शूल की अधिकता हो और तृषा भी विशेष हो तो उस अवस्था में—लघु पञ्चमूल से वा शुण्ठी से सिद्ध किया हुआ जल, मद्य का मण्ड अथवा धान की काञ्जी सेवन कराना उत्तम है। यदि वात प्रधान हृद्रोग में—हृदय की धड़कन तीव्र हो, अचेतना हो, तो ऐसी दशा में स्निग्ध रसों को पिलाना अच्छा है।

वातिक हृद्रोग में हृदय की व्यथा तथा धड़कन के साथ-साथ वक्षःस्थल में खिचाव होता हो, ऐसे लक्षणों वाले रोगी की जठराग्नि यदि बलवान् हो, तो उसे दूध, दही, घी, गुड़ आदि पदार्थों का सेवन कराना उत्तम है। परन्तु वातिक हृद्रोग के अतिरिक्त कफज आदि हृदयरोग में दूध आदि पदार्थों का सेवन करना इष्ट नहीं है। वातज हृद्रोग में भी जब तन्द्रा, जड़ता आदि कफज लक्षणों का अनुबन्ध हो, तब उक्त दूध आदि पदार्थों को कदापि नहीं देना चाहिए। उस अवस्था में रुक्ष तथा उष्ण उपचार होना वाञ्छनीय है। वातज हृद्रोग में मधुयष्टी के कल्क से एक सौ बार पकाया हुआ घृत सेवन कराना अच्छा है।

(६) दशमूल क्वाथ

दशमूल का यवकुट चूर्ण १ तोला को एक पाव जल में मन्द अग्नि पर पकावें। जब चौथाई जल शेष रह जाय; तब इसे अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके, छान लें। इसमें यवक्षार और सैंधव लवण का चूर्ण ३-३ रत्ती मिला करके, रोगी को पिला दीजिए। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में २ बार नवीन क्वाथ सिद्ध करके सेवन करावें। हृद्रोग में जब गुल्म, श्वास, कास तथा शूल होवें; तो इस क्वाथ के सेवन से उत्तम लाभ होता है। हृद्रोग पीड़ित प्रसूता स्त्री के लिए यह क्वाथ अत्युत्तम प्रयोग है। अनुभूत है।

पित्तज हृदय रोग चिकित्सा—पैत्तिक हृद्रोग में विरेचन कराने के उपरान्त औषधि सेवन करावें।

(१) मधुयष्ट्यादि कल्क

मधुयष्टी (मुलहठी) और कुटकी समान भाग ले करके, वस्त्रछन चूर्ण बना, इस चूर्ण को जल के साथ पीस करके, कल्क बना लें। इस कल्क (लुगदी) को १ तोला लेकर, मिश्री के पानक (शर्वत) के साथ पित्त-प्रधान हृदय रोगी को खिला दें। यह पैत्रिक हृद्रोग को नष्ट करता है। इस कल्क को खिलाने के साथ-साथ "चन्दनादि प्रलेप" को रोगी के हृदय प्रदेश पर लगाना उत्तम है।

(२) द्राक्षादि घृत

द्राक्षा (मुनक्का), बला, गजपिप्पली, शुद्ध मिश्री, खजूर, काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, नीलोफर, मेदा, महामेदा और बड़ी हरड़—समस्त द्रव्य समान भाग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त चूर्ण के साथ मुनक्का आदि को मिलाकर, जल के साथ सूक्ष्म पीस कर, कल्क बनालें। कल्क का जितना भार हो, उससे द्विगुणित गौ घृत तथा उतना ही गौ का दूध लेकर, मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और शीशे के पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ तोला, प्रातः सायं दोनों समय सेवन करें। यह घृत पित्तज हृदय रोग में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से पित्त-प्रधान हृदय रोग सोपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

(३) पुण्डरीकादि घृत

पुण्डरीक (पुण्डरिया), कसेरू, जल की काई, शुण्ठी, कमलकन्द, मुलहठी—प्रत्येक द्रव्य २-२ तोले लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना, शेष द्रव्यों को चूर्ण में मिला, जल के साथ पीस कर, कल्क बना लें। पाँच छटांक गौ घृत और दश छटांक गौ का दूध ले करके, कलई किये हुए पात्र में इन तीनों औषधियों को एकत्र मिला कर, चूल्हे पर चढ़ा दें और मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और शीशे आदि के उत्तम पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लें। इसमें ढाई छटांक मधु और मिलाकर प्रयोग करें।

मात्रा—१-१- तोला खावें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। इस घृत के सेवन से पित्तज हृदय रोग अवश्य नष्ट होता है। पित्तज हृदय रोग में अंगूर आदि मधुर फलों के रस तथा ईख का रस, ये अत्युत्तम हैं। गौ दुग्ध का सेवन सर्वोत्तम है।

(४) पार्थ क्वाथ

अर्जुन (पार्थ) की छाल दो तोले लेकर, यवकुट चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को ३२ तोले जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। अष्टमांश ४ तोले जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें। इसके उपरान्त सद्योगृहीत (ताजा) गौ दुग्ध ३२ तोले में क्वथित जल को डालकर, मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। कुछ गाढ़ा होने पर अग्नि से नीचे उतार, इसमें ढाई तोले शक्कर मिला कर, शीतल होने पर पिलादें। प्रातः सायं दोनों समय सेवन करावें। इस क्वाथ के सेवन से हृदय की धड़कन, दाह, शूल, नाड़ी की गति में तीव्रता का होना, चित्त की व्याकुलता, निद्रा का क्षय, श्वास की ऊर्ध्वगति आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। पित्तज हृदय रोग के लिये अनुभूत उत्तम औषधि है।

(५) सम्भ्रमहृद्रोगहर चूर्ण

गावजवां के पत्ते २ तोले, भीमसेनी कर्पूर, मूंगे की जड़, मुक्ता (मोती), कच्चा कतरा हुआ अवरेशम, शुष्क धनिया और भुनी हुई फिटकरी—प्रत्येक द्रव्य १०-१० माशे, सम्भालु के बीज, मुस्तक (नागरमोथा), वंशलोचन–प्रत्येक द्रव्य ७-७ माशे और गिले अरमनी मिट्टी १॥ तोला लें। सर्वप्रथम मूंगे की जड़ तथा मोती को एकत्र मिलाकर, गुलाब के अर्क में चार दिन तक निरन्तर घोटिए। थोड़ा-थोड़ा गुलाब का अर्क डालते हुए मर्दन करिये। इस प्रकार स्थिरता के साथ चार दिन तक मर्दन करने के उपरान्त इसे छाया में शुष्क करें। सूखने के पश्चात् इसमें कर्पूर, अवरेशम, अरमनी मिट्टी तथा वंशलोचन—इन चार औषधियों का एकत्र मिला हुआ सूक्ष्म चूर्ण डाल करके घोटिए। इसके उपरान्त शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण डाल करके, एक दिन मर्दन करें और शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—७-७ माशे, मिश्री की चाशनी के पानक (शर्बत) के साथ दिन में ३-४ बार सेवन करावें।

उपयोग—"सम्भ्रम" पित्तज हृदय रोग है। इसका मुख्य कारण तिर्यग्गामी दोष हैं। कभी-कभी आमाशय गत दूषित वात आदि दोष अपनी विशेष प्रकार की ऊष्मा द्वारा (जो तीव्र ऊष्मा उसमें से निकलती है; उसके द्वारा) हृदय को मलिन कर देते हैं; फलतः यह भयानक व्याधि उत्पन्न हो जाती है। इसमें रोगी के हृदय में एक प्रकार का ताप होता है। इसके साथ-साथ हृदय प्रदेश में शूल तथा चित्त में भ्रान्ति भी होती है। आतुर के वक्षःस्थल में बाँयी ओर तीव्र वेदना होती है। कभी-कभी

सम्पूर्ण शरीर में ताप का बोध होता है। यह व्याधि कष्ट साध्य होती है। जीर्ण होने पर असाध्य हो जाती है। इसको "सम्भ्रम हृद्रोग" संज्ञा दी है।

सम्भ्रम हृद्रोगहर चूर्ण के सेवन से उक्त लक्षण वाले हृदय रोग में तुरन्त लाभ होता है। यह चूर्ण भ्रम, हृदय की धड़कन, शूल तथा तृषा की अधिकता और हृदय की निर्बलता को समाप्त करके हृदय को बलवान् बनाता है। इसके सेवन से शरीर में शुद्ध रक्त का संचार होने लगता है। बहुमूत्र, सोम रोग, वृक्क एवं मूत्रमार्ग के शूल तथा इनके शोथ, जीर्णज्वर, यकृत् सम्बन्धित रोग, आमाशय दोष–इन सभी रोगों में अपूर्व गुण दिखाता है। प्रमेह, पुराने औपसर्गिक पूयमेह (सुजाक), शुक्रमेह तथा अधिक उत्तेजना को शान्त करता है। यह मूत्र को स्वच्छ करता और धातु को पुष्ट बनाता है। पुराने अतिसार तथा रक्तपित्त को समूल शान्त करता है। शरीर के किसी भी अङ्ग से निकलने वाले रक्त को रोकने के लिए इसका प्रयोग अद्‌भूत लाभ-प्रद है। रक्तार्श से बहने वाले रुधिर में एक दो दिन के सेवन से रोगी को स्वयं लाभानुभूति होती है। सभी प्रकार के पाण्ड रोग में समान लोह भस्म के साथ मिश्रण करके, मट्ठा के साथ सेवन करने पर आशु लाभकर होता है। रक्त प्रदर में इसे मक्खन १ तोला में रख कर खाने को दें और ऊपर से महानिम्ब का रस दो तोले पिलादें—उसी दिन से लाभ होगा। जीर्णज्वर में सुदर्शन चूर्ण या उसके अर्क के साथ सेवन कराने पर उत्तम लाभप्रद होता है। मस्तिष्क के विकारों को भी शान्त करता है। यह चूर्ण एक साथ अनेक रोगों को निर्मूल कर देता है। हमने इस औषधि को सैंकड़ों रोगों में अनेक रोगियों पर प्रयोग किया और प्रभु की कृपा से पूर्ण सफलता प्राप्त की है। जनता जनार्दन के उपकारार्थ यह लिखा गया है। अत्युत्कृष्ट महौषधि है।

कफज हृदय रोग चिकित्सा—कफ प्रधान हृद्रोग में वचा तथा निम्ब की छाल के क्वाथ में मैनफल का चूर्ण मिला कर, रोगी को पिला दें और वमन करा दें। स्वेदन और लंघन कराना भी लाभप्रद है। तीक्ष्ण मद्य का सेवन कराना भी हितावह है। कुलथी और धनिये के क्वाथ में जौं का भात पकाकर सेवन करना अच्छा है।

१—कायफल, सोंठ, दारुहल्दी, बड़ी हरड़ की छाल, तथा अतीस—इनका सूक्ष्म चूर्ण समभाग लेकर, गौ मूत्र के साथ पका कर पिलाने से कफ प्रधान हृदय रोग में लाभ होता है।

२—पीपल, कचूर, पुष्करमूल, रास्ना, वचा, हरड़ और शुण्ठी–इनको समान भाग लेकर वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, रखिये।

मात्रा—३ से ६ माशे तक, उष्ण जल अथवा त्रिफले के क्वाथ के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करावें। यह चूर्ण कफज हृद्रोग में अच्छा लाभकर है।

३—वचा, भुनी हींग, सैंधव लवण, संचर लवण, सोंठ, बड़ी इलायची, अजवाइन, पीपल तथा यवक्षार—इनको समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, उष्ण जल वा गौ मूत्र के साथ प्रातः सायं दिन में दो समय सेवन करने पर कफजनित हृदय रोग में लाभ होता है।

४—शिवादि क्वाथ

बड़ी हरड़ की छाल, गूलर की छाल, पीपल की छाल, अर्जुन की छाल, ढाक की छाल, रोहेड़े की त्वचा—इनको समान भाग में ले करके, स्वच्छ कर लें और मोटा-मोटा कूट कर, क्वाथ बना लें। इस क्वाथ में—शुण्ठी, काली मरिच, पीपल और निशोथ—इनका समभाग सूक्ष्म चूर्ण मिला करके, अल्पोष्ण रहते हुए पिला दें। इसे प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करावें। इस क्वाथ की मात्रा—५ से ८ तोले तक है। यह क्वाथ कफज हृदय रोग को शान्त करता है।

सन्निपातज हृद्रोग की चिकित्सा—तीनों दोषों से उत्पन्न हुए हृद्रोग में दोषों की अल्पता, अधिकता, तथा मध्यावस्था आदि को विचार करके, दोषानुसार उपवास, वमन, विरेचन आदि क्रिया करनी तथा उसी के अनुसार चिकित्सा करनी इष्ट है।

कृमिज हृदय रोग चिकित्सा—कृमिजन्य हृदय विकार में प्रथम रोगी को गौघृत में सैंधव लवण मिला कर, पिलावें। घृत पान करने के उपरान्त अनुपान रूप में उष्ण जल पिलावें। इस प्रकार तीन दिन तक घृत पान करावें। इससे रोगी का शरीर स्निग्ध हो जायगा। घृतपान क्रिया करते समय रोगी को पुराने लाल चावलों का भात और मूंग की दाल की खिचड़ी पथ्य में दें। स्नेहन क्रिया कराने के उपरान्त रोगी को चौथे दिन दालचीनी, इलायची, तेजपात, सैंधव लवण, श्वेत जीरा—समभाग इनका वस्त्रछन चूर्ण तथा इसमें शक्कर मिला दें। पश्चात् इस चूर्ण में कोई विरेचक योग मिला करके, रोगी को खिला दें। इससे आतुर को विरेचन होंगे। विरेचन क्रिया करने के पश्चात्—वायविडङ्ग तथा कूठ—इन दोनों को समान भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, रखिये। इस चूर्ण को २ से ३ माशे तक, खिला करके, ऊपर से एक छटांक गोमूत्र पिला दें। इस प्रकार १ से ३ दिन तक गोमूत्र के साथ इस चूर्ण को खाने से कृमिजन्य हृदय विकार नष्ट हो जाता है। प्रयोग से विरेचन होकर, मलद्वार से कृमि बाहर निकल जाते हैं।

अवस्था विशेष में हृदय विकार का प्रतीकार—यदि त्रिदोषज हृदय रोग में भोजन करने के पश्चात् तुरन्त हृदय प्रदेश में पीड़ा होने लगे और आहार के जीर्ण होने पर पीड़ा शान्त हो जाय; तो ऐसी अवस्था में—

१—देवदारु, कूठ, पठानीलोध, सैंधव लवण, वायविडङ्ग और अतीस—इन ६ द्रव्यों को तुल्य भाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना कर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिये। इस चूर्ण को ३ से ६ माशे तक, उष्ण जल के साथ सेवन करें। इससे उक्त दशा में होने वाला हृदय शूल शान्त हो जाता है।

२—जिस रोगी के भुक्त आहार के जीर्ण होने पर हृदय प्रदेश में तीव्र शूल होता हो, उसको हरीतकी आदि रेचक द्रव्यों से पकाया हुआ घृत अथवा एरण्ड तैल आदि स्निग्ध द्रव्यों द्वारा विरेचन देने पर लाभ होता है। अथवा—त्रिफला, अमलतास, काला दाना, मुलहठी, इनको समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को ३ से १० माशे तक, उष्ण जल के साथ सेवन करावें।

३—जिस आतुर के हृदय में सदा शूल बना रहता हो, उसे दन्ती, निशोथ, इन्द्रायण आदि मूलनी द्रव्यों से रेचन कराना अभीष्ट है।

प्रायः जब वायु अवरुद्ध गति होकर, आमाशय में प्रकुपित होती है; तब शूल आदि की उत्पत्ति होती है। उस दशा में संशोधन, लंघन, दीपन, पाचन आदि से वायु को अनुलोमन करना शूलादि की श्रेष्ठ चिकित्सा है। वातानुलोमन होने पर हृदय का शूल समाप्त हो जाता है।

हृदयविकार में कतिपय अनुभूत प्रयोग—

(१) हृदयशूलघ्न चूर्ण

लवङ्ग का मोटा चूर्ण बना लें और चूर्ण के समान भाग में शक्कर लेकर, इन दोनों को एकत्र सम्मिश्रण करके, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१०-१० माशे चूर्ण, बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय खाने से हृदय में होने वाला शूल तुरन्त शान्त हो जाता है। अनेक बार का परीक्षित है।

(२) शृङ्गभस्म मिश्रण

बारह सिंहा की उत्तम भस्म २ रत्ती, भुना हुआ काला जीरा १ माशा, मिश्री आधा तोला–इनका सूक्ष्म चूर्ण बना करके, गोदुग्ध अथवा जल के साथ सेवन करावें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दो समय दें। इसके सेवन से हृदय विकार में आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसके उपयोग से अनेक रोगियों ने स्वास्थ्य लाभ किया है।

(३) शुण्ठी-मिश्रण

शुण्ठी का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण २ माशा, मृगशृङ्ग भस्म २ रत्ती–इन दोनों को गौ के मक्खन में मिलाकर, चटा दें। इस प्रकार प्रातः सायं दोनों समय देने पर हृदय का शूल, व्याकुलता आदि हृद्रोगों में लाभ होता देखा गया है।

(४) कलौंजी का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा—३-३माशे चूर्ण को खाकर, ऊपर से गदही का दूध एक छटांक पिला दें। इसे प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करावें। इस प्रयोग के सेवन से हृदय की अधिक धड़कन, दुर्बलता आदि हृदय के विकारों का शमन हो जाता है। इसे १५ दिन तक सेवन करने पर हृद्रोग में अच्छा लाभ होता है। अनुभूत है।

यद्यपि हृदय विकार को नष्ट करने के लिए शतादधिक योग विद्यमान हैं; तथापि हमारे अनुभव के अनुसार हृदय रोग को नष्ट करने में अर्जुन का विशिष्ट स्थान है। हमने अर्जुन के उपयोग से सैंकडों रोगियों को स्वस्थ करने का अवसर प्राप्त किया है। इसमें सर्वान्तर्यामी प्रभु का अनुग्रह भी अवश्य रहा है। औषधियों की जो अचिन्त्य शक्ति रोग निवारण करती है; उसमें सर्वान्तर्यामी अखिल ब्रह्माण्ड नायक की अनुकम्पा अवश्य होती है। रोगी तथा चिकित्सक उस विश्वात्मा के ऊपर विश्वास रखकर यदि औषधि योजना करें, तो संसार में मनुष्यों को पीड़ित करने वाली आधि-व्याधियों की संख्या न्यूनतम हो जाय। अस्तु

(५) पार्थ चूर्ण

अर्जुन की छाल का चूर्ण ४ से ६ माशे, मुलहठी का चूर्ण १ माशा—दोनों को मिलाकर, गौ के दूध के साथ सेवन करें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय खावें। यह चूर्ण हृदथ विकार में अच्छा हितकर है। अनुभूत।

(६)—अर्जुन के वृक्ष की अन्तश्छाल का वस्त्रछन चूर्ण वना लें। यह चूर्ण १॥ माशा, बकरी का दूध ३ छटांक और गौ का घी १ तोला, तीनों द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, मन्दाग्नि पर पकाइये। १-२ उबाल आने पर अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने पर इसमें १ तोला मधु तथा डेढ़ तोले मिश्री मिलाकर हृदय के रोगी को पिला दीजिये। प्रातः सायं दोनों समय दें। इस प्रयोग के सेवन से हृदय का शूल, धड़कन, हृदय की गति में अनियमितता का होना आदि विकार शान्त होते हैं। परीक्षित है।

(७)—अर्जुन की छाल का सूक्ष्म चूर्ण १ तोला, गोदुग्ध १ पाव, और जल आध पाव लेकर—तीनों को एक मिट्टी के पात्र में मिलाकर, चूल्हे पर चढ़ा दें और मन्दाग्नि पर पकावें। दूध मात्र के शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, इसमें मिश्री एक तोला मिलाकर, रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दोनों समय नवीन औषधि बनाकर सेवन करावें। इसके सेवन से हृदय की धड़कन, निर्बलता आदि हृदय के रोग शान्त होते हैं और हृदय में बल आता है। अनुभूत प्रयोग है।

(८) अर्जुनाद्यरिष्ट

अर्जुन की छाल दश सेर, अश्वगन्ध पञ्चाङ्ग ५ सेर, कटेली पञ्चाङ्ग, सौंदी पञ्चाङ्ग, महुए के पुष्प और अड़ूसा पञ्चाङ्ग—प्रत्येक सवा-सवा सेर लेकर, इनको अच्छे प्रकार स्वच्छ कर, यवकुट चूर्ण बना कर, इस चूर्ण को ५ मन जल में डाल कर, मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश सवा मन जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर छान लें। इसे मोटे वस्त्र से छानना चाहिये। इस छने हुए जल को लकड़ी के पीपे में भर दें। इसके उपरान्त—पुराना गुड़ १५ सेर, धाय के पुष्प ५० तोले, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लवङ्ग, शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली—

प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोले, और कर्पूर ३ तोले लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का यवकुट चूर्ण बनाकर, समस्त द्रव्यों को पीपें में डाल दें। इनको अच्छी प्रकार मिलाकर, मुख मुद्रा कर दें। दश-दश दिन के अन्तर से इसे चलाते रहें। डेढ़ मास तक पीपे में रखने के उपरान्त इसे छानकर, शीशियों में भर लें। इसका ऊपर का स्वच्छ जल ही ग्राह्य है। यह अरिष्ट जितना पुराना होगा उतना ही अधिक गुणकारी होगा।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ तोले तक, द्विगुण जल के साथ, दिन में २-३ वार सेवन करें।

गुण—अर्जुनाद्यरिष्ट के सेवन से हृदय के सम्पूर्ण विकार शान्त होते हैं। इस अरिष्ट को किसी योग के साथ अनुपान रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप से उपयोग किया जाता है। हृदय का शूल, धड़कन, कम्पन, आदि हृदय सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने के लिए यह अरिष्ट अत्युत्कृष्ट औषधि है। इसके अतिरिक्त उदरशूल, पार्श्व वेदना, यक्ष्मा, कास, फुफ्फुसीय रोग आदि अनेक व्याधियों में अत्युपयोगी अनुभूत प्रयोग है।

(९) हृद्रोगहर घृत

जीवनीय गण के द्रव्य और दशमूल द्रव्य—इनका क्वाथ, शतावरी का रस और अजा दुग्ध इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृत दुग्ध में डालकर सेवन कराने से सम्पूर्ण हृदय विकारों में आश्चर्य जनक लाभ होता है। यह घृत क्षय रोग में भी उत्तम बलदायक है। अनुभूत है।

(१०) हृत्पुष्टिकरावलेह

वंश लोचन ८ तोले, मिश्री १६ तोले, छोटी पिप्पली ४ तोले, लघु एला २ तोले, दालचीनी, गुडूची सत्त्व, रूमी मस्तगी, मृगशृङ्गभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, किशमिश ५ तोले, स्वर्ण वर्क ११ नग, रजत वर्क २१ नग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् इस चूर्ण में स्वर्ण वर्क मिला करके, घोटें। एक-एक वर्क को चूर्ण में डालकर घोटें और एक वर्क अच्छी प्रकार मिलने के पश्चात् दूसरा वर्क चूर्ण में डालना चाहिये। इस प्रकार १-१ वर्क को मिलाते हुए स्वर्ण तथा रजत के समस्त वर्कों को चूर्ण में विलीन कर दें। तत्पश्चात् शेष भस्म तथा किशमिश को डाल कर घोटें। तत्पश्चात् एक पाव मधु और डेढ पाव गौ का मक्खन (अभाव में अर्जुन घृत आधा सेर) चूर्ण में मिला कर मर्दन करें। उत्तम प्रकार घुटाई होने के पश्चात् इसे शीशे के पात्र में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—आधा से १ तोला तक, अजा दुग्ध के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह अवलेह हृदय के शूल, धड़कन, दुर्बलता आदि हृदय सम्बन्धी रोगों को नष्ट करके हृदय को बलवान् तथा स्वस्थ बनाता है। इसके सेवन से उरःशूल, पार्श्व शूल, कन्धों में होने वाली पीड़ा, रक्त वमन, कास, श्वास, जीर्णज्वर, प्रलापक ज्वर, क्षय

आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं। राजयक्ष्मा रोग में अत्युपयोगी है। अनेक रोगियों पर अनुभूत है।

(११) नारङ्गादिसार (अर्क)

नारंगी के पुष्प ४ सेर, गुलाब के पुष्प १ सेर, सौंफ, मुनक्का, किशमिश—प्रत्येक १५-१५ तोले, अगर, कर्पूर-कचरी, रक्त वहमन, श्वेत वहमन, सकाकुल—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, अम्बर २ माशे लेकर, इनको स्वच्छ करके, यवकुट चूर्ण बना, पन्द्रह सेर जल में सायं काल मिट्टी के पात्र में भिगों दें। पात्र को ढक दें। प्रातः समय नाडिका यन्त्र से इन औषधियों का सार (अर्क) निकाल लें। ५ सेर अर्क निकालना अच्छा है। इसे स्वच्छ शीशियों में भरकर रखिये।

वक्तव्य—यदि आवश्यकता हो; तो इसमें ताम्बूल (पान) पत्र १०० नग दाल चीनी, छोटी इलायची तथा लवङ्ग—प्रत्येक १४-१४ माशे और मिला दें।

मात्रा—२ से ५ तोले तक, दिन में ३-४ वार तक दें।

गुण—इसके सेवन से हृदय की व्याकुलता, पीड़ा, भय, आदि हृदय विकार, उष्णता, तृषा इन सभी रोगों में उत्तम लाभ होता है। उन्माद व्यधि को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। यह मानसिक प्रसन्नता तथा उत्साह की वृद्धि करता है। इस प्रयोग के सेवन से अनेक रोगों का निर्मूलन हो जाता है। बहुत रोगियों पर अनुभूत है।

(१२) पीयूष वटी

शुद्ध जहर मोहरा खताई, निर्विषी (जदवार) और रजत वर्क—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, रजत वर्क मिलाकर मर्दन करें। इसके उपरान्त वेदमुस्क (लता कस्तूरी), गुलाब तथा केवड़ा—इन तीनों के अर्क में ७ दिन तक मर्दन करें। प्रथम लता कस्तूरी (वेद मुस्क) के अर्क में ३० घण्टे तक घुटाई करके, छाया में शुष्क करें; पश्चात् गुलाब के अर्क तथा केवड़े के अर्क में पृथक्-पृथक् ३०-३० घण्टे घोट करके, चना प्रमाण में गुटिका बना, छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार सूखने पर, इन वटियों को शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—२ से ३ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय गौ के दुग्ध के साथ सेवन करावें।

गुण—पीयूष वटी के सेवन से हृदय रोग की निर्बलता, शूल, धड़कन आदि हृदय विकार, मस्तिष्क दोष, शीघ्र पतन, स्वप्न दोष आदि धातु सम्बन्धी रोग, कास, श्वास, प्रतिश्याय (जुखाम), दुष्ट प्रतिश्याय (नजला) आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। मूर्धा, हृदय तथा वस्ति इन तीनों मर्म स्थानों पर यह गोली उत्तम प्रभावकारी है।

इस गोली को सैंकड़ों रोगियों पर अनुभव किया है। रोगानुसार उचित अनुपान की योजना करके इस गुटिका को अनेक रोगों में देना चाहिये। मैंने इसके द्वारा विशेष सफलता प्राप्त की है।

(१३) प्रभाकर वटिका

स्वर्ण माक्षिक भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, वंश लोचन और शुद्ध शिलाजीत—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, ३ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त अश्वगन्ध की जड़ के रस तथा अर्जुन की छाल के क्वाथ में पृथक्-पृथक् १-१ दिन घोट करके २-२ रत्ती प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा—१ से ३ वटी तक।

अनुपान—मधु में मिला कर, दिन-रात्रि में ४ वार दें। ऊपर से अर्जुनारिष्ट पिलावें। यह वटी हृदय के शूल, धड़कन, आदि सभी प्रकार के हृद्रोगों में लाभप्रद है। अनुभूत है।

(१४) शूलघ्नी गुटिका

बड़ी हरड़ की छाल, छोटी पिप्पली, काली मरिच, शुण्ठी, घी में भुनी हुई हींग, सैंधव लवण, शुद्ध कुचला, शुद्ध आमलासार गन्धक—ये आठ द्रव्य समभाग लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना कर, आर्द्रक के रस में १ दिन उत्तम घुटाई करके, २-२ रत्ती की गुटिका बना, छाया में शुष्क करें। अच्छे प्रकार से सूखने पर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, अजवाइन के अर्क वा उष्ण जल के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—इस वटी को खाने से हृदय का शूल, उदरशूल, पार्श्वपीड़ा—इन रोगों में अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन से मन्दाग्नि का नाश और क्षुधा की वृद्धि होती होती है। इससे दीपन, पाचन और वात का अनुलोमन होकर शरीर की शक्ति बढ़ती है। अनुभूत है।

(१५) हृद्रोगहरी वटी

("योगमहार्णव" हस्तलिखित के आधार पर)

पारद भस्म (रस सिन्दूर), रजत भस्म, ताम्र भस्म, समान भाग लेकर, खरल में एकत्र मिलाकर ६ घण्टे मर्दन करें। इन तीनों की सूक्ष्म पिष्टी बनावें। पिष्टी के भार के तुल्य अभ्रक भस्म लेकर, इस पिष्टी में डालकर स्थिरता से घोटिये। सम्पूर्ण औषधि को तोल करके जितना भार हो उसका ५वां भाग शुद्ध गन्धक, सोलहवाँ भाग

शुद्ध वत्सनाभ विष, और दो भाग शुद्ध पारद—इसमें और सम्मिश्रण कर दें तथा उत्तम प्रकार घोटें। घोटते-घोटते जब यह कृष्णवर्णा पिष्टी बन जाय; तो जम्बीरी निम्बू के रस में एक दिन मर्दन करें। इसके पश्चात् इस औषधि को मिट्टी के पात्र में डाल कर, त्रिफला, दशमूल और शतावरी के क्वाथ में पृथक्-पृथक् १-१ दिन मन्दाग्नि पर पकावें। जिस पात्र में इसको पकावें; उसके ऊपर ४–५ वस्त्र मिट्टी करके ही औषधि पाक करें। सम्पूर्ण क्वाथों में पाक क्रिया के समाप्त होने पर २-२ रत्ती प्रमाण की गुटिका बना, छाया में शुष्क करें और उचित प्रकार सूखने पर गोलियों को शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, मधु के साथ खिलाकर, अर्जुनारिष्ट पिलावें। दोषानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—यह गोली हृदय का शूल, धड़कन, भय आदि हृदय विकार, प्लीहा तथा यकृद् रोग, उदर रोग, मूर्च्छा, अपतन्त्रक तथा वात व्याधियों को नष्ट करती है। यह अनेक रोगों में अनुभूत है। उक्त हृदय विकार आदि में अद्भुत प्रभावकारी महौषधि है। सशूल हृदय विकार को नष्ट करने के लिए अद्वितीय प्रयोग है।

(१६) श्री हरिहर रसायन

शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ३ तोले, कृष्णाभ्रक भस्म डेढ तोला, लोह भस्म, ताम्रभस्म, रससिन्दूर, शंख भस्म, कौड़ी भस्म, शुक्ति भस्म, वंशलोचन, छोटी एला के बीज, छोटी पिप्पली, काली मरिच, सोंठ, और शुद्ध शिलाजीत—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लीजिये। इसके पश्चात् भस्मों को कज्जली में मिलाकर, ६ घण्टे मर्दन करें। तत्पश्चात् इसमें शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके घोटिये। तत्पश्चात् अदरक के रस, अडूसा के रस, अश्वगंध के रस, कासमर्दनी के रस और अर्जुन की छाल के रस में पृथक्-पृथक् १-१ दिन स्थिरता से मर्दन करके २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार से सूखने के पश्चात् इन गोलियों को शीशी में भर-कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, मधु के साथ मिलाकर चटा दें और ऊपर से दूध वा अर्जुनाद्यरिष्ट दें।

गुण—यह रसायन हृदय की धड़कन, हृदय का शूल आदि समस्त हृदय विकारों को नष्ट करके हृदय को बलवान् तथा स्वस्थ बनाता है। इसके अतिरिक्त उरःक्षय (टी०बी०), कास, निर्बलता, स्वर यन्त्र सम्बन्धी विकार आदि में उत्तम प्रभाव कर है। उक्त सभी रोगों में इस रस को सेवन कराने पर आशु प्रभाव होता है। उक्त विकारों में बालकों के लिये इसे $\frac{1}{6}$ से आधी गोली तक, माता के दूध में घोल कर देना चाहिये। इस रसायन को उचित मात्रा में प्रातः सायं सेवन कराने पर

बालकों के अतिसार, वमन, पसली चलना, कास, ज्वर आदि रोग शान्त होते हैं। यह रसायन अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

(१७) हृदयेश्वर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, उत्तम लोह भस्म, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता पिष्टी—प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाइए। इसके उपरान्त शेष भस्में तथा मुक्ता पिष्टी को कज्जली में मिला करके ४ प्रहर (१२ घण्टे) तक दृढ़ता से मर्दन करें। १२ घण्टे तक शुष्क घुटाई होने के उपरान्त इसे घृत कुमारी के रस में २ दिन (२४ घण्टे) तक घोटते रहिए। घृत कुमारी (घीग्वार) के रस में २४ घण्टे तक दृढ़ मर्दन होने पर जब यह औषधि सूक्ष्म तथा गोली बनने योग्य बन जाय, तो दो-दो रत्ती प्रमाण में गुटिका बना करके, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार शुष्क होने पर इन गोलियों को शीशी में भरकर, ढक्कन लगाकर, सुरक्षित रखिये। आ० वि०

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, अर्जुन की छाल के क्वाथ में घृत डाल कर (गोली खिला कर) ऊपर से इस अर्जुन क्वाथ को पिला दें। आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार सेवन करावें।

गुण—यह रस धड़कन, हृदय की निर्बलता, शूल आदि हृदय यन्त्र सम्बन्धी समस्त रोगों को नष्ट करता है। फुफ्फुस में होने वाले क्षय, राजयक्ष्मा, शुक्रमेह, भयानक प्रदर, जीर्णज्वर आदि दारुण व्याधियों में इस रस के प्रयोग से आशातीत लाभ होता है। हृदय तथा फुफ्फुस में उत्पन्न होने वाला कोई भी रोग क्यों न हो; उसमें उचित अनुपान के साथ हृदयेश्वर रस को सेवन करने पर अवश्य लाभ होता है। यह रस शिर, हृदय तथा वस्ति—इन तीनों मर्मस्थानों को स्वस्थ एवं बलवान् बनाता है। वातवाहक केन्द्रों तथा ज्ञानवाहक तन्तुओं की कार्यक्षमता की वृद्धि करके उनको दीर्घायु के योग्य निष्पन्न करता है। हमने हृदयेश्वर रस को अनेक रोगियों पर अनुभव किया है। यह आयुर्वेदीय दिव्यौषधियों में मान्य है।

(१८) हृद्रोगान्तक वटिका (गुप्त प्रयोग)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, उत्तम लोह भस्म, उत्तम प्रवाल भस्म, मोती भस्म, न्यूनातिन्यून शतपुटी निश्चन्द्र अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म—प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। पारद तथा गन्धक की कज्जली बना कर, सम्पूर्ण भस्मों को कज्जली में मिला करके १२ घण्टे तक दृढ़ता से मर्दन करें। **"मर्दनं गुणवर्धनम्"** के अनुसार जितनी अधिक घुटाई होगी, औषधि उतनी ही अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। १२ घण्टे तक अजस्र घोटने के उपरान्त घृतकुमारी के रस, विजौरामूल के रस वा क्वाथ, अर्जुन की छाल के रस अथवा क्वाथ के साथ पृथक्-पृथक् एक-एक दिन मर्दन करें। तीन दिन तक अनवरत दृढ़तापूर्वक घुटाई होने के पश्चात् जब यह औषधि गोली बनाने योग्य

हो जाय; तो २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना करके, छाया में शुष्क कर लें। उत्तम प्रकार सूखने पर, गोलियों को शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, मधुयष्टी (मुलहठी) के क्वाथ में एक सौ बार पका करके सिद्ध किये हुए घृत के साथ सेवन करावें।

गुण—यह रसायन सम्पूर्ण हृदय विकारों को निर्मूल कर देता है। हृदय रोगों को विनष्ट करने के लिए तथा हृदय को सुस्वस्थ रखने के लिए अत्युत्कृष्ट महौषधि है। हमने इस रसायन को अनेक रोगियों पर अनेक बार परीक्षण किया और शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त की है। यह गुप्त योग प्रकाशित किया है। कोई हृदय सम्बन्धी रोग ऐसा नहीं है; जिसको यह रस शान्त करने में असमर्थ हो। मृत्यु वारण की तो कोई औषधि ही नहीं है। बलवान् दैव के अतिरिक्त साध्य, कष्ट-साध्य तथा याप्य हृदय विकारों को शान्त करने के लिए हृद्रोगान्तक वटिका पूर्ण समर्थ है। किन्तु रोगी यदि इस औषधि को सेवन करता हुआ पथ्य का परिपालन तथा अपथ्य का परित्याग करेगा, तभी पूर्ण लाभ होगा; अन्यथा नहीं। कोई भी चिकित्सक-बन्धु उपर्युक्त विधि के अनुसार इस रसायन का निर्माण करके हृदयविकारों में सहर्ष परीक्षा कर सकता है।

हृदय रोग में पथ्यापथ्य—मानसिक एकाग्रता, चित्त की शान्ति, अध्यात्म-विद्या, धैर्य, इन्द्रिय निग्रह, रोग को देखकर भयभीत नहीं होना, आशावादी होना, परमात्मा तथा आत्मा के ज्ञान विषयक उपनिषदादि अध्यात्म ग्रन्थों का श्रवण, अध्ययन, मनन, ईश्वर भक्ति, आस्तिकता, सन्तोष, मानसिक भावों की पवित्रता, चित्त को सर्वदा शिवसङ्कल्पमय बनाने के लिए प्रयास, ब्रह्मचर्य आदि से विशेष लाभ होता है। पवित्र वायु मण्डल में साधारण भ्रमण, दीर्घश्वास-प्रश्वास का अभ्यास तथा शिष्ट मनोरञ्जन से रोग की निवृत्ति में अच्छी सहायता उपलब्ध होती है। आहार में पुराने लाल चावल एवं पुरातन साठी चावल, मूंग की दाल, घी, दूध, मिश्री, पुराना गुड़, परवल, लौकी आदि शाक, केले की फली, अङ्गूर, सेव, मीठा अनार, मीठा आम का फल, नवीन मूली, द्राक्षा, सैंधव लवण, शुण्ठी, अदरक, पिप्पली, धनिया, अजवाइन, लशुन, हरीतकी, सिरका, मधु आदि पदार्थों को सेवन करना उत्तम है। इनकी उचित योजना करने से हृद्रोगों में शान्ति होती है।

मानसिक अशान्ति तथा चञ्चलता, नास्तिकता, मस्तिष्क तथा हृदय में उत्तेजना, चित्त में अभद्रभावों की धारणा, परदोष-दर्शन, क्रोध, चिड़चिड़ापन, वीर्य की रक्षा में प्रमाद, कुत्सित पुस्तकों को पढ़ना तथा चलचित्र आदि का अवलोकन, मल, मूत्र, अधोवायु आदि के वेगों को रोकना, दूषित जल तथा मलिन दूध आदि अपेय पदार्थों को पीना, मलिन, पर्युषित, गरिष्ट भोजन खाना, उष्ण, कसैले, कड़वे, रूक्ष, अम्ल, पदार्थों को अधिक सेवन करना, पत्रों का शाक खाना, रात्रि जागरण आदि से हृदय-विकार की वृद्धि होती है।

अथ पाद-दाहादि रोग चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२५॥

(१) **पाददाहघ्न प्रलेप**—रेणुका (सम्भालु के बीज) बीज की गिरी को गौ के दूध में सूक्ष्म पीस करके, पैरों के तलुओं आदि स्थान में जहाँ दाह (जलन) होता हो; वहाँ पर इसका लेप लगावें। इस लेप को आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार लगाया जा सकता है। यह लेप पैरों में होने वाले दाह (जलन) को शान्त करने के लिए अत्युत्तम है। जिन व्यक्तियों के पैरों के तल आदि स्थान में दाह उत्पन्न हो; उनके लिए यह लेप अच्छा है। अनुभूत है।

मूत्रकृच्छ्ररोगहर प्रयोग—जिस रोग में मूत्र को त्यागते समय रोगी को कष्ट हो, मूत्रेन्द्रिय तथा वस्ति में तीव्र वेदना हो, अच्छी प्रकार से मूत्र न आता हो; उसे "मूत्रकृच्छ्र रोग" कहते हैं। अधिक व्यायाम करने से, रूक्ष, लाल मरिच, तीक्ष्ण औषध आदि द्रव्यों को अत्यधिक सेवन करने से, अश्वादि का पीठ पर बैठ कर अधिक सवारी करने आदि कारणों से मूत्रकृच्छ्र होता है।

(१) **कुशाद्यवलेह**—कुश, कांस, खस, काली ईख और सरकण्डा—इनकी जड़ें जल से धोकर शुष्क की हुई–प्रत्येक १०-१० तोले लेकर, यवकुट चूर्ण बना, १६ सेर जल में पकावें। अष्टमांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतारकर, हाथ से मर्दन कर, छान लें। इसके पश्चात् छने हुए क्वाथ में आध सेर चीनी डाल करके, चाशनी बना करके, उसमें मुलहठी, ककड़ी की गिरी, पेठे की गिरी, खीरे की गिरी, वंशलोचन, आमला, तेजपात, दालचीनी, लघु एला के बीज, नाग केशर, वरुण त्वक्, गिलोय, प्रियंगु के पुष्प—इन प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ६-६ माशे मिला कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—आधा से एक तोला तक, प्रातः सायं दिन में दो समय, सद्योजल (ताजे पानी) में मिला कर, पीने से समस्त प्रकार से मूत्रकृच्छ्र रोग, अश्मरी (पथरी), मूत्राघात तथा प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

(२) **राल प्रयोग**—(रक्त मूत्रकृच्छ्र में)—राल चूर्ण ६ माशे को समभाग मिश्री चूर्ण में मिला करके पानी के साथ खाने पर मूत्र में निकलने वाला कच्चा रुधिर रुक जाता है। अनुभूत है।

(३) **यवक्षार प्रयोग**—यवक्षार ६ माशे को मधु १ तोला में मिलाकर खाने से समस्त मूत्रकृच्छ्र रोगों में लाभ होता है।

(१) **वृद्धावस्था जनित मूत्र विबन्ध नाशक प्रयोग**—वृद्धावस्था में जिन व्यक्तियों का मूत्र रुक जाता है; उनको अतिकष्ट होता है। ऐसी अवस्था में रोगी को शलजम का रस पिलावें। मूत्र बन्ध नष्ट होने के उपरान्त आतुर को शलजम का

शाक खाने के लिए दें। इस रोग में शलजम अत्युपयोगी औषधि है। शलजम का रस पीने और उसका शाक खाने से मूत्रावरोध अवश्य नष्ट होता है। यह प्रयोग— श्री मोतीराम जी, मुज़फ्फ़र नगर से प्राप्त हुआ है।

(२) मूत्र ग्रन्थि नाशक प्रयोग

कलमी शोरा, देशीय नवसादर—प्रत्येक १५-१५ तोले, संगयहूद (वेर पत्थर) ७½ तोले, यवक्षार (जवखार), संगसरमाही—प्रत्येक ३-३ तोले, शुद्ध अफीम ४½ माशे; ३ किलो मूली का रस, और ३ किलो पलाण्डु (प्याज) का रस लें। संगयहूद (वेर पत्थर) को सूक्ष्म पीस कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को लोहे की खरल में डाल करके मूली के रस में ६ घण्टे मर्दन करिये। इसके पश्चात् इसमें शेष समस्त औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण डाल करके, थोड़ा-थोडा मूली का रस डालते हुए १ दिन घोटिये। मर्दन करते जायें और अल्प-अल्प मूली का रस डालते जायें। एक दिन घुटाई करने के उपरान्त कलईयुक्त लोहे की कड़ाही में इस औषधि को डाल करके, मूली के रस के साथ मन्दाग्नि पर पकावें। मन्द अग्नि जलाते हुए ही पकावें और कड़छी से औषधि को चलाना चाहिये। इस प्रकार मृदु अग्नि पर ३ किलो मूली तथा ३ किलो प्याज—इन दोनों से निकाला हुआ रस औषधि में विलीन कर दीजिये। औषधि जलने न पावे। सम्पूर्ण रस के शुष्क होने पर कडाही को अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर औषधि को खुरच कर शीशी में रखिये।

वक्तव्य—इसमें थोडा-थोड़ा रस डाल कर पकाना चाहिये। एक ही वार में सम्पूर्ण रस न डाला जाय।

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे, फ्रूट साल्ट १ चम्मच भर एक गिलास जल में घोल करके (प्रथम औषधि को मुख में डालकर) ऊपर से इस गिलास के जल को पीजिये। यह औषधि केवल प्रातः समय ही सेवन करें।

गुण—यह योग मूत्रग्रन्थि (गदूद) के लिये श्री रामबाण के समान अव्यर्थक है। आन्तरिक अश्मरी (पथरी) और वृक्कशूल आदि में अत्युपयोगी है। समस्त प्रकार की अश्मरी को तोड़ करके, मूत्र मार्ग से निकाल देता है। अनुभूत प्रयोग है। यह प्रयोग संन्यासि-प्रदत्त है।

वक्तव्य—मूत्रग्रन्थि रोग में मूली तथा पलाण्डु, और वृक्कशूल एवम् अश्मरी रोग में मूली तथा सलगम ग्रहण करें। "फ्रूट साल्ट" की छोटी शीशी अंग्रेजीं औषधि विक्रेताओं के यहाँ से प्राप्त करें।

(३) अश्मरीहर चूर्ण

बाजा शोरा ३ तोले, संगयहूद (वेर पत्थर) १ तोला, नवसादर ठीकरी ६ माशे, कच्चा सुहागा ३ माशे और एक रीठे के ऊपर का छिलका लें। प्रथम शोरे को सूक्ष्म पीस करके एक मिट्टी के पात्र में आध पाव जल के साथ डाल कर, इस पात्र को चूल्हे पर चढा कर, मन्दाग्नि पर पकावें। जब आधा जल शेष रह जाय;

तो इसमें शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला दें। इसे कड़छी आदि से अच्छी प्रकार चलाते रहिये। जब यह औषधि मिल करके, एकाकार में हो जाय और इसका जल भी शुष्क हो जाय; तो अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। शीतल होने पर इसे खरल में डाल कर, सूक्ष्म चूर्ण बना, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—४ रत्ती से ८ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय अजा (बकरी) से मट्ठे के साथ दें। मट्ठा बिना मीठा मिलाये ही सेवन करावें। **पथ्य**—कन्द-शाक खाने के लिए दें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से शल्यकर्म (आपरेशन) के बिना ही पथरी गल कर, मूत्र मार्ग से बाहर निकल जाती है। अश्मरी के जिन रोगियों के वस्तिप्रदेश में शूल होता हो, मूत्र विसर्जन करने में कष्ट होता हो; उन रोगियों को २-३ दिन इस चूर्ण को सेवन कराने से लाभ होता है। पथरी के कारण से मूत्र में आने वाला रुधिर भी रुक जाता है। इस चूर्ण के प्रभाव से पुनः नवीन पथरी उत्पन्न नहीं होती। यह चूर्ण पथरी के अनेक रोगियों पर अनुभूत है। अश्मरी को नष्ट करने के लिए अव्यर्थ औषधि है।

(४) वृक्कशूलघ्न प्रयोग—वृक्कशूल (गुर्दे की पीड़ा)–संग यहूद (बेर पत्थर) १ तोला लें और इसे कोमल जवासे के कल्क (लुगदी) में रख करके, गोला बना लीजिये। इसके उपरान्त गोले को उत्तम प्रकार धूप में शुष्क करके, शराव सम्पुट में बन्द कर, उसके ऊपर वस्त्र मिट्टी कर, धूप में सुखाकर, ५-६ सेर उपलों के मध्य में रख कर, अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर, सम्पुट को खोल कर, बेर पत्थर की भस्म को सावधानी से ग्रहण कर लें। यह भस्म कुस्ता होगी। कुस्ता रेत के समान होता है। इसे सावधानता से संगृहीत कर, शीशी में सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती भस्म, बतासे में रख कर, रोगी को खिला दें।

गुण—यह भस्म वृक्कशूल (गुर्दे की पीड़ा) को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। यह औषधि जैसे ही उदर में जायेगी; वृक्कशूल के ऊपर तुरन्त शामक प्रभाव होगा। शतसोऽनुभूतः

(५) महानिम्ब चूर्ण

महानिम्ब के फलों के छिलके लेकर, उनका वस्त्रछन चूर्ण बना कर सुरक्षित रखिये। इस चूर्ण को ३-३ माशे की मात्रा में खिला कर, ऊपर से मिश्री मिला गौ का दूध पिलावें। आहार में रोगी के लिए दूध तथा भात दें।

गुण—यह चूर्ण वृक्कशूल के लिए उपयोगी है। इसे सात दिन तक खाने से गुर्दे की वेदना नष्ट होती है।

(६) शोरक प्रयोग—कलमी शोरा आध सेर को एक लोहे की कड़ाही में डालकर, चूल्हे के ऊपर कड़ाही को रख दें और तीव्र अग्नि जलावें। तीव्र अग्नि जलने पर जब यह शोरा पिघल जाय, तो इसमें ३२ दाने भिलावे के डाल दें। अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला कड़ाही में डाले हुए भिलावों को जला देगी। जब भिलावों को जलाकर कड़ाही की अग्नि स्वतः शान्त हो जाय, तो अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर कढ़ाही से औषधि को ले करके, सूक्ष्म पीस लीजिए और शीशी में भर लीजिए।

मात्रा और अनुपान-१ से २ माशा तक, उष्ण जल के साथ सेवन करावें। इस चूर्ण के खाने से वृक्कशूल (गुर्दे की वेदना) तथा मूत्रेन्द्रिय में होने वाली वेदना शान्त हो जाती है।

(७) भल्लातक वटी

अशुद्ध भल्लातक (भिलावों) को विस्तृत वायु मण्डल में कोयलों की अग्नि पर जला लीजिए। जलाते समय भिलावों के धूम्र से अपने नेत्र, मुख आदि शरीराङ्गों की रक्षा अवश्य करिये। भिलावों के जल जाने पर, शीतल होने के पश्चात् सूक्ष्म पीस लें और इसके समान भाग देशीय मोम मिलाकर दृढता से मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान——१ गोली खाकर, ऊपर से उष्ण जल पीवें।

गुण—यह वटी वृक्कशूल के लिए विशेष औषधि है। इसके सेवन से पुराने से पुराना और नवीन गुर्दे का शूल नष्ट होता है। परीक्षित है।

(८) वस्तिशूलहर चूर्ण

कलमी शोरा, पाँचों लवण, सर्जक्षार, रससिन्दूर और यवक्षार, प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोले लेकर, खरल में डालकर, ३ घण्टे तक मर्दन करके, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान-२ से ४ रत्ती तक दें। समभाग मिश्री चूर्ण के साथ देने पर यह चूर्ण वस्तिशूल तथा नाभि की वेदना को शान्त करता है। इस चूर्ण का नाम "शोथशार्दूल चूर्ण" है। अनुपान भेद से यह चूर्ण अनेक व्यधियों को नष्ट करता है। हमने इसे केवल वस्तिशूल पर अनुभव किया है। वस्ति प्रदेश में होने वाली वेदना को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है।

(९) भृङ्गराजभस्म का प्रभाव वस्ति तथा दोनों वृक्कों के ऊपर अच्छा होता है।

(१०) वस्ति शूलघ्न कषाय

बबूल के सद्योगृहीत हरे पत्र १३ तोले, जल तीन पाव–इन दोनों द्रव्यों को सायं काल मिट्टी के पात्र में डालकर, ढक करके, रख दें। प्रातः समय हाथ से मर्दन करके छान लें। इस छने हुए कषाय में—मिश्री, मधु और घृत-प्रत्येक ४-४ तोले मिलाकर दिन भर में १-२ वार में पिला दें। इस कषाय को पिलाने के साथ-साथ रोगी के वस्ति प्रदेश पर-वरुणा का पञ्चाङ्ग तथा पलाश (ढाक) के पुष्पों को जल के

साथ सूक्ष्म पीस कर, इस लेप को लगावें। इस प्रकार से इन दोनों प्रयोगों के करने से वस्तिशूल, मूत्र बन्ध, मूत्रेन्द्रिय का दाह, ये रोग नष्ट होते हैं। यह प्रयोग मूत्रल है। इस कषाय के सेवन से वीर्य की पुष्टि, बल की वृद्धि और रक्त की शुद्धि होती है। यह संन्यासी द्वारा प्राप्त योग है। इस कषाय को ८ दिन तक अनवरत पीने से अच्छा लाभ अनुभव होगा।

(११) उष्णवातघ्न प्रयोग---समुद्र शोष आध सेर को जल से स्वच्छ धोकर, लोहे अथवा पत्थर के खरल में डाल कर, स्थिरता से मर्दन करें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर जब यह समुद्र शोष सुरमा के समान सूक्ष्म घुट जाय; तो इसमें उत्तम खाण्ड अथवा मिश्री डेढ सेर सम्मिश्रण करके और घोटिये। घुटाई होने पर जब ये दोनों द्रव्य मिलकर एकाकार में हो जायें; तो इस औषधि को शीशियों में भरकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान---आध पाव की मात्रा में इस औषधि को लेकर, एक पाव जल में मिलाकर, उष्णवात के रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः, मध्याह्न तथा सायं काल दिन में तीन बार सेवन करावें।

गुण---अधिक व्यायाम करने से, धूप में बहुत रहने से, अग्नि के समीप अधिक बैठने आदि कारणों से पित्त कुपित हो जाता है और वह वायु के सहयोग से मूत्राशय में जाकर लिंगेन्द्रिय, गुदा तथा वस्ति में दाह उत्पन्न कर देता है। मूत्र पीला वा लाल वर्ण का कष्ट के साथ होता है। किसी रोगी के शरीर में बद निकलते हैं और उष्ण औषधि देने पर शरीर की धातुओं की हानि होती है---ऐसे लक्षण होने पर इस प्रयोग का सेवन कराना अत्युत्तम है। यह औषधि अत्यधिक शीतल है। इसके सेवन से मूत्र विरेचन होता है और रुधिर की शुद्धि तथा धातु की पुष्टि होती है। यह प्रयोग पण्डित वंशीधर जी का है। सैंकड़ो बार का अनुभूत है। अव्यर्थ है।

वक्तव्य---इस प्रयोग को सेवन कराने से पूर्व रोगी को स्नेह पान कराकर, विरेचन देकर, कोष्ठ की शुद्धि करानी आवश्यक है। कोष्ठ की शुद्धि कराने के पश्चात् इस प्रयोग को दना चाहिए। इससे औषधि का प्रभाव पूर्ण होगा।

स्वप्नावस्था में होने वाला मूत्र स्राव और उसकी चिकित्सा---

जो बालक रात्रि में सोते हुए विस्तर के ऊपर मूत्र त्याग कर देते हैं; यह भी शारीरिक व्याधि है। इसका कारण है---शरीर की निर्बलता अथवा मेरुदण्ड गत ज्ञान तन्तुओं की स्वाभाविक शक्ति का अभाव। जिन बालकों के शरीर में अधिक निर्बलता आ जाती है अथवा जिनके मेरुदण्ड में अवस्थित ज्ञान वाहक तन्तु नैसर्गिक सामर्थ्य से शून्य हो जाते हैं, वे बालक अज्ञात अवस्था में सोते हुए मूत्र त्याग देते हैं। इस रोग में निम्नलिखित प्रयोग सेवन करने पर अच्छा लाभ होता है---

१. कुपीलु प्रयोग

शुद्ध कुशला चूर्ण १/२ से २ रत्ती तक, सायं समय जल के साथ सेवन कराने से स्वप्नावस्था में होने वाला मूत्र स्राव रुक जाता है। इसके सेवन से २-३ दिन में ही लाभ प्रतीत होने लगता है।

२. मरिचाद्यवलेह

श्वेत मरिच, बजरूल बीज, प्रत्येक ५-५ तोले, अकरकरा, छड़ीला-प्रत्येक-४-४ माशे, केशर ढेड़ तोला, शुद्ध अफीम ४ तोले, लें। समस्त द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना कर, एकत्र सम्मिश्रण करके, मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने के पश्चात् इसमें—सम्पूर्ण चूर्ण के भार से त्रिगुणित मधु मिलाकर, घोटें और उत्तम घुटाई होने पर इस अवलेह को शीशे के पात्र में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ माशा अवलेह चाट करके, ऊपर से दूध पीवें। प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल दिन में तीन समय सेवन करें।

गुण—इस अवलेह के सेवन से निद्रा अवस्था में निकलने वाला मूत्र रुक जाता है। हमने इस प्रयोग को अनेक रोगियों के ऊपर परीक्षण किया है। यह अवलेह स्वप्ना-वस्था में बिस्तर पर मूत्र करने वाले रोगियों के लिए अत्युत्तम है। इसके अतिरिक्त यह प्रवाहिका (पेचिश) रोग को भी नष्ट करता है। अनुभूत है।

अथ प्रमेह रोग चिकित्सा प्रकरणम् ॥२६॥

जिस रोग में मूत्र मार्ग से रस, मेद, शुक्र, ओज आदि शारीरिक धातुओं का अत्यधिक मात्रा में स्राव होता है उस रोग को "प्रमेह" कहते हैं। शीघ्र पतन, वीर्य का पतलापन, स्वप्न दोष, मूत्र-विसर्जन-काल में प्रथम तथा पश्चात् होने वाला एवं मूत्र में मिश्रित रूप से होने वाला वीर्य स्राव इत्यादि समस्त धातु सम्बन्धी रोग प्रमेह के अन्तर्गत ही आते हैं। मनुष्यों के नैसर्गिक सुख तथा शान्ति का नष्ट करके सन्तप्त करने वाले रोगों में प्रमेह अन्यतम है। वात, पित्त और कफ इनकी विषमता के बिना कोई शारीरिक रोग होने की सम्भावना नहीं है। अतएव प्रमेह व्याधि भी वात आदि दोषों की विषमता का फल है। वात, पित्त तथा कफ इन तीन दोषों को प्रकुपित करने वाले अनेक कारण होते हैं; जो प्रमेह रोग को उत्पन्न कर देते हैं। उनमें निम्नाङ्कित कारण प्रबल हैं—

(१) महत्त्वाकाङ्क्षा का अभाव—जो व्यक्ति अपने जीवन का उच्च लक्ष्य निर्धारण नहीं कर पाते उनकी बुद्धि तथा मन में वैषयिक विचारों की अधिकता का होना अवश्यम्भावी है और वैयषिक चिन्तन का शरीरगत शुक्र एवम् ओज पर कुप्रभाव पड़ता है; जो प्रमेह रोग का कारण बन जाता है। जो मनुष्य अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य निश्चित कर लेते हैं और उसकी प्राप्ति करने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं, वे विषय चिन्तन से दूर रहते हैं। उनको प्रमेह रोग पीड़ित नहीं कर सकता। श्री शङ्कराचार्य जी, श्री रामानुजाचार्य जी, श्री महर्षि दयानन्द जी, महामना श्री मदनमोहन जी आदि अनेक महापुरुष महत्त्वाकाङ्क्षी होने से धातु सम्बन्धी व्याधियों से पीड़ित नहीं हुए। आजकल के समय में भी अनेक ऐसे आदरणीय महापुरुष हैं जो उच्च लक्ष्य की दिशा में चलने के कारण वीर्य रोगग्रस्त नहीं हैं।

ईश्वर साक्षात्कार, आत्मानुभूति, ब्रह्मचर्यव्रत, समाज सेवा, देश सेवा आदि किसी शुभेच्छा को अपने जीवन का लक्ष्य मानने से बुद्धि में स्थिरता आने लगती है। स्थिर बुद्धि से शिव संङ्कल्प की रक्षा होती है और उससे वीर्य की अधोगति न होकर, ऊर्ध्व गति होती है। वीर्य विकारों से सुरक्षित रहने के लिए महत्त्वाकाङ्क्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। महत्वाकाङ्क्षी व्यक्ति आसुरी भावों पर विजयी होगा।

(२) मनोविकार—प्रमेह रोग को उत्पन्न करने वाले कारणों में मनोविकार भी प्रबल हेतु होता है। उठते, बैठते, खाते, पीते, सर्वदा मन में निन्दनीय विचारों का आना, निकृष्ट भावों पर बुद्धि का नियन्त्रण न होना, शरीर के लिए अधिक अनिष्टकर होता है। जो व्यक्ति अत्यधिक वैषयिक चिन्तन करते हैं; उनके मन की अशान्ति तथा चञ्चलता उत्तरोत्तर बढ़ती है। इस अशान्ति एवं चञ्चलता के कारण वीर्य में भी

कम्पन होता है। इससे शुक्र की अधोगति होने लगती है। स्वप्नदोष की अधिकता, धातु में पतलापन, कामुकताजन्य उत्तेजना का होना आदि अनेक रोग एक साथ आक्रमण करते हैं। ऐसी अवस्था में लोक तथा परलोक की सुख, शान्ति समाप्त हो जाती है।

क्रोध की अधिकता, स्वभाव में चिड़-चिड़ापन होना, शोक करना, भयभीत होना, अनावश्यक तुच्छ बातों की उधेड़बुन करना और उन्हीं को मस्तिष्क में प्रश्रय देना आदि मनोविकारों से वात आदि दोष प्रकुपित होकर प्रमेह रोग उत्पन्न होते हैं। यदि कोई व्यक्ति कामुकता सम्बन्धी विचारों को मन में आश्रय नहीं देता; परन्तु क्रोध, शोक आदि अन्य मानस विकारों से पीड़ित रहे; तो उसे भी प्रमेह रोग हो जाता है।

(३) आहार दोष—घी, दूध, मीठा, बादाम, पिस्ता आदि गरिष्ठ पदार्थों को अत्यधिक सेवन करना, भोजन में लोलुपता का होना, रूक्ष, कटु, कषाय, लालमरिच, नमक, खटाई आदि पदार्थों को अधिक सेवन करना, अधिक उपवास करना, मात्रा से न्यून आहार करना, मलिन, पर्युषित, मांस, मदिरा, चरस, भांग आदि से प्रमेह व्याधि होती है।

(४) उचित क्रिया योग का अभाव—यदि आहार की ओर विशेष दृष्टि रहे और पौष्टिक भोजन करके भी शारीरिक उचित परिश्रम की ओर ध्यान न दिया जाय; तो भक्षित आहार द्रव्यों का सम्यक् प्रकार पाचन नहीं होता। मन्दाग्नि तथा अजीर्ण हो जाता है। इससे खाये हुए भोजन से रस आदि धातुओं का निर्माण नहीं होता। उत्तम से उत्तम पौष्टिक बहुमूल्य पदार्थों के सेवन करने पर भी कोई लाभ नहीं होता। ऐसी अवस्था में मल मूत्र आदि का यथोचित विसर्जन नहीं होता है। उदर में मलावरोध हो जाता है। मल-त्याग नियमित रूप से नहीं होता। रोगी को बलपूर्वक कांख कर मल निकालने का प्रयास करना पड़ता है। इससे वीर्य कोष पर अनुचित प्रभाव होकर, शुक्र का क्षय होने लगता है और चित्त में उदासी, अप्रसन्नता, ग्लानि, शरीर में गुरुता आदि उपद्रव हो जाते हैं। बुद्धिजीवी मनुष्यों और शरीर से उचित श्रम न करने वाले व्यापारी वर्ग में यह रोग तीव्रता से हो रहा है। इसका मूल कारण है शारीरिक उचित श्रम का अभाव। शरीर द्वारा उचित मात्रा में परिश्रम न करने से देह को स्वस्थ रखना असम्भव है।

जिस प्रकार शरीर से उचित श्रम का न होना प्रमेह रोग का कारण है, उसी प्रकार अत्यधिक मात्रा में परिश्रम करना भी वातिक प्रमेह को उत्पन्न करता है। अतः समुचित श्रम करना ही अभीष्ट है।

(५) अयुक्त विहार—प्रमेह रोग को उत्पन्न करने वाला पांचवा कारण है "अयुक्त विहार"। कुसङ्ग करना, सिनेमा देखना, उपन्यास, फिल्मी गाने आदि के अभद्र साहित्य को पढ़ना वा श्रवण करना, दिनचर्या वा रात्रिचर्या को अव्यवस्थित रखना,

मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आगत वेगों को रोकने का प्रयास करना, स्थान, शरीर, वस्त्र आदि की पवित्रता पर ध्यान न देना आदि अयुक्त विहार के कारण भी प्रकृत रोग होता है।

प्रमेह रोग के लक्षण

मूत्र का अधिक मात्रा में आना और रस वीर्य, ओज आदि शारीरिक धातुओं का मूत्र में मिश्रण होना, वीर्य का अत्यधिक पतला होना, स्वप्नदोष का अधिक होना, मूत्र तथा शरीर पर मक्खियों एवं चींटियों का बैठना, मुख, तालु एवं कण्ठ का सूखना, मुख का मीठा होना, शरीर में शिथिलता का होना, देह में स्थूलता का आना, हाथ पैर में जलन का होना आदि प्रमेह के लक्षण हैं।

प्रमेह-रोग का प्रतीकार

क्योंकि किसी भी रोग की स्थायी चिकित्सा करने के लिए उसके मूल कारण को दूर करना आवश्यक होता है; अतएव प्रमेह-रोग को समूल नष्ट करने के लिए उसके उत्पादक घटकों का निराकरण होना सर्वोत्तम उपाय है। जिन कारणों से प्रमेह रोग की उत्पत्ति होती है; उन समस्त कारणों को स्मृति, बुद्धि एवं धृति द्वारा दूर करना चाहिए। जिन पवित्र भावों से वीर्य की पुष्टि और उसकी ऊर्ध्वगति होती है; उनको प्रयत्न करके धारण करे। देव दुर्लभ अमूल्य मानव जन्म का योग्य मूल्याङ्कन करे। जो शुक्र को पानी के तुल्य द्रवीभूत करके उसे अधोगति देते, मनुष्यता के प्रतिद्वन्द्वी और पाशविक वासनाओं के उद्बोधक विचार-शत्रु चित्त भूमि में निवास कर रहे हैं; उनको बुद्धि बल, तत्त्वबोध और शिवसङ्कल्प की धारणा से मनोराज्य की सीमा से भगाना चाहिए।

वीर्य की रक्षा करने अथवा प्रमेह व्याधि का मूलोच्छेद करने के लिए बुद्धि में शुभेच्छा की धारणा करनी आवश्यक है। आत्म दर्शन, ब्रह्म प्राप्ति आदि मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने वाले पवित्रतम लक्ष्य का निश्चय होने पर मन, इन्द्रिय तथा स्थूल शरीर के व्यापार में अनायास सुधार होने लगता है। उस समय बिना औषध-योग के सेवन किये ही वीर्य की रक्षा होती है। मन में अशुभ भावना न होने से मानसिक चञ्चलता तथा वीर्य सम्बन्धी विकारों के होने की सम्भावना नहीं रहती। वैषयिक चिन्तन करने से वीर्य अधोगामी होता है, तत्व चिन्तन से वही शुक्र ऊर्ध्वगामी होता है। मानसिक पवित्रता का वीर्य के ऊपर तुरन्त उत्तम प्रभाव होता है। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष इसका परीक्षण करके यथार्थ अनुभव कर सकता है कि मानसिक भावनाओं के शुद्ध होने पर धातु विकार होने की सम्भावना नहीं रहती। प्राचीनतम वैदिक वाङ्मय में "ऊर्ध्वरेता:", विद्या सम्बन्धी जो एकान्त-निवास, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, आदि अभ्यसनीय उपाय प्रोक्त हैं उनमें मानसिक पवित्रता सर्वोपरि उपाय है। आधुनिक काल में बहुत व्यक्तियों के द्वारा बुद्धि तथा मन की पवित्रता पर

ध्यान दिये बिना ही जो धातुपोषक प्रयोगों का भक्षण हो रहा है वह युक्तियुक्त नहीं है। इससे मानवता की क्षति और पशुता की वृद्धि होती जा रही है।

प्रमेह की स्थायी चिकित्सा के लिए चित्त की शुद्धि सर्वोत्कृष्ट उपाय है। अनेक साधु, महात्मा, संयमी ब्राह्मण व्यक्ति चित्त की पवित्रता से ही स्वस्थ रहते हुए जिस शान्ति तथा आनन्द की अनुभूति कर लेते हैं, उच्च से उच्च बहुमूल्य औषध प्रयोगों के सेवन करने पर भी अशुद्धान्तःकरण व्यक्ति उससे वञ्चित रहते हैं। इसके साथ ही विपुल धन राशि के व्यय होने पर भी स्थायी लाभ नहीं होता।

प्रकृत रोग का प्रतीकार करने के लिए भोजन पर संयम रखने की विशेष आवश्यकता है। आहार की मात्रा उतनी लेनी योग्य है, जो सुगमता से पच जाय। प्रकत रोग मलावरोध से वृद्धि करता है। अतएव विबन्ध करने वाले आहार द्रव्यों का उपयोग न करें। शरीर के लिए यथोचित सुपाच्य, पवित्र तथा मध्य आहार की व्यवस्था करने से रोग निवारण में अत्यधिक सहयोग मिलता हैं। भोजन में लोलुपता होने से प्रमेह रोग की वृद्धि होती है और आहार पर संयम होने से स्वास्थ्य में सुधार होता है। जिन रोगियों के शरीर में मेदोवृद्धि विशेष हो, उनको घृत, बादाम, रबड़ी, शक्कर, चीनी आदि पदार्थों का सेवन करना इष्ट नहीं है।

नित्यप्रति शारीरिक परिश्रम करना भी स्मरणीय है। जो व्यक्ति पौष्टिक आहार करते हैं, उनको उसे पचाने के लिए भ्रमण, यौगिक आसन, सूर्य नमस्कार, कृषि, गोपालन आदि अपने अनुकूल कोई कार्य करना इष्ट है। समुचित श्रम होने से खाया हुआ भोजन पचता है। निद्रा उचित आती है और शरीर के अगों में उत्साह, लघुता तथा नीरोगता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। अकर्मण्य जीवन व्यतीत करने से अनेक आधि-व्याधि उत्पन्न होती हैं और इससे मनुष्य को स्वाभाविक शान्ति तथा आनन्द की उपलब्धि भी नहीं होती। जो मनुष्य कर्म करने पर ध्यान नहीं देते और आहार, निद्रा आदि पर नियन्त्रण नहीं रखते, वे अधोगति से अपनी सुरक्षा नहीं कर सकते। उनको प्रमेह रोग से पीडित होना पड़ता है। कर्मठ मनुष्य के मन में पवित्रता और उसके शरीर में नीरोगता रहती है। परन्तु कर्म को समुचित रूप से निष्पन्न करने के लिए ज्ञान की सहायता लेनी इष्ट है। ज्ञान के प्रकाश में होने वाली क्रिया ही उत्तम कर्म होगा।

प्रकृत व्याधि से अपनी रक्षा करने के इच्छुक मतिमान् पुरुष को अपनी दिनचर्या तथा रात्रिचर्या पर ध्यान देना अभीष्ट है। सायंकाल शीघ्र सोना और प्रातः समय शीघ्र उठना, प्रातः सायं प्रभु का चिन्तन, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय आदि मानसिक शान्ति देने वाले उत्तम साधनों को करना श्रेष्ठ है। इस प्रकार से व्यवहार बनाने पर बिना औषधि सेवन किये ही प्रमेह रोग का प्रशमन हो जाता है। यदि औषधि सेवन करने की आवश्यकता हो, तो शास्त्रीय प्रयोगों का सेवन करना अच्छा है। कुछ

उपयोगी प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं। प्रमेह रोग को नष्ट करने के लिए इनका सेवन करना इष्ट है।

प्रमेह रोग नाशक प्रयोग—

(१) दुग्धिकादि प्रयोग

छोटी दुद्धी (दुग्धिका) १ तोला, बादाम ५ नग, काली मरिच १ माशा लेकर तीनों को एकत्र जल के साथ सूक्ष्म पीस लें। उत्तम प्रकार पिसने पर आध पाव जल में डालकर, छान, एक तोला मिश्री मिलाकर, रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दोनो समय पीने से प्रमेह रोग में अच्छा लाभ होता है। इससे मलावरोध भी नष्ट होता है। यह जठराग्नि को तीव्र करता है। प्रतिश्याय (जुकाम) नाशक है। परीक्षित है।

(२) बङ्गादि वटी

वंग भस्म, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची के बीज और नीली झाईं का वंशलोचन—प्रत्येक द्रव्य २-२ तोले लेकर, सबको एकत्र मिलाकर, मर्दन करें। इसके उपरान्त थोड़ा-थोड़ा मधु डाल करके २४ घण्टे तक घोटें। उत्तम घुटाई होने पर २-२ रत्ती प्रमाण में गोली बना कर, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक खा कर, ऊपर से दूध पीवें। यह वटी प्रमेह रोग को शान्त करने के लिए विशेष है। यह बहुमूत्र को दूर करती और शुक्र को गाढ़ा बनाती है।

(३) अमृतफल क्वाथ

अमृतफल (आमला) २ तोले को यवकुट चूर्ण बनाकर, एक पाव पानी में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने के पश्चात् हाथ से मर्दन कर, छान लें। इस क्वाथ में—बंग भस्म २ रत्ती, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण ४ रत्ती, हल्दी का सूक्ष्म चूर्ण २ माशा और मधु ६ माशे—इन सबको मिलाकर, पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। यह क्वाथ प्रमेह रोग को समूल नष्ट करता है। इसे निरन्तर ३-४ मास तक सेवन करने से कष्ट साध्य प्रमेह भी शान्त होता है। अनुभूत है।

(४) धात्रीफल रस

धात्रीफल (आमला) का स्वरस ४ तोले में हल्दी चूर्ण १ माशा और मधु ६ माशे, इन दो को मिलाकर पीवें। इस विधि से प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। इस प्रयोग को निरन्तर ८० दिन तक सेवन करने से समस्त प्रकार के प्रमेह में लाभ होता है। पित्तज प्रमेह तो निश्चित नष्ट होता है। अनुभूत है।

(५) शंख पुष्प्यादि चूर्ण

शंखपुष्पी (शंखाहुली), श्वेत एला के बीज, शुद्ध शिलाजीत, प्रत्येक १-१ छटांक, अरारोट, तबाशीर तथा मिश्री—प्रत्येक २-२ छटांक—इनको लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—६ से ६ माशे तक, धारोष्ण गोदुग्ध के साथ अथवा जल के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के खाने से बीस प्रकार के प्रमेह रोग शान्त हो जाते हैं। यह चूर्ण मस्तिष्क की विकृति को भी नष्ट करता है।

(६) शिवादि चूर्ण

शिवा (हरड़), बहेड़ा, आमला, मुलहठी, महुवे के पुष्प, कमल गट्टे की गिरी, जायफल और दालचीनी—प्रत्येक द्रव्य १-१ छटांक लेकर, समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में एक पाव मिश्री चूर्ण मिला कर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से एक तोला तक, घृत १ तोला और मधु ६ माशे में मिलाकर खावें ऊपर से दूध पीवें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से प्रमेह रोग तथा नपुंसकता में अच्छा लाभ होता है। यह वीर्य पोषक है। अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

(७) पञ्चामृत चूर्ण

कौंच बीज, अश्वगन्ध, गोरखमुण्डी, विदारी कन्द और कमल के बीज, प्रत्येक द्रव्य २-२ छटांक लेकर, वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त विदारीकन्द, भृङ्गराज, जायफल, केशर, मुलहठी—इनके रस में पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें। प्रत्येक भावना में ३ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना देकर छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार सूखने पर इसमें तुल्य भाग मिश्री मिलाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ तोला चूर्ण को, मधु १ तोला में मिलाकर खावें। प्रातः समय धारोष्ण दुग्ध के साथ और सायं काल अल्पोष्ण दुग्ध के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण वीर्य की तरलता, दुर्बलता, स्वप्नमेह, मूत्र के साथ वीर्य का गिरना आदि धातु सम्बन्धी रोगों में आश्चर्यजनक लाभप्रद है। हमने इस चूर्ण को वीर्य रोग पीड़ित अनेक रोगियों को दिया और आशातीत लाभ प्राप्त किया है। धातु सम्बन्धी व्याधियों में यह अत्युपयोगी है।

(८) बब्बूल चूर्ण

बबूल की कोमल कच्ची फलियाँ, कोमल पत्ते (कोपलें) और उसका गोंद—ये तीनों सम भाग लेकर, छाया में शुष्क कर, वस्त्रछन चूर्ण बना, इसमें समभाग मिश्री मिलाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से एक तोला तक, दूध वा जल के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण वीर्य को गाढ़ा बनाता है। इसके सेवन से स्वप्नदोष, मूत्र के साथ धातु का स्राव होना आदि वीर्य सम्बन्धी विकार नष्ट होते हैं। यह योग सुख-साध्य होने पर भी अत्युपयोगी है।

(९) चन्दनादि चूर्ण

श्वेत चन्दन, वंशलोचन, बबूल का गोंद, कहरवा कतीरा, निशास्ता, रूमी मस्तगी, खसखस के बीज (पोस्तदाना), सालम मिश्री, शुष्क पुदिन, कुलफा के बीज, शुष्क सिंघाड़े, मोचरस, छोटी इलाची के बीज और शुद्ध शिलाजीत,—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लीजिये। सम्पूर्ण चूर्ण के भार के समान भाग मिश्री मिलाकर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ तोला चूर्ण प्रातः सायं दिन में दोनों समय, गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से वातज, पित्तज और कफज, २० प्रकार के प्रमेह रोग, स्वप्नदोष, शीघ्र पतन आदि समस्त शुक्र विकार नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण शारीरिक बल की वृद्धि, वीर्य की पुष्टि, मानसिक उत्साह तथा स्फूर्ति के लिए अत्युपयोगी औषधि है। सैंकड़ों बार का अनुभूत है। निराश हुए प्रमेह रोगियों को भी आशावान् बनाता है।

(१०) प्रमेहघ्न चूर्ण

अभ्रक भस्म, वंग भस्म, लोह भस्म, नाग भस्म, रजत भस्म, संगयशव भस्म, संगजराहत भस्म, संगयहूद भस्म, तालमखाना, शुद्ध शिलाजीत, त्रिकटु, त्रिफला, अकरकरा, दालचीनी, नागकेशर, कौंच के बीच, मुलहठी, दोनों बहमन, मीठा सुरन्जान, सकाकुल, गोखरू, चित्रक, मोचरस, अगर, रत्नज्योति, दोनों मुशली, कबाब चीनी, इन्द्रयव, उटंगन, छोटी दुद्धी (दोहाक), पलाश (ढाक) का गोंद, कतीरे का गोंद, जायफल, जावित्री, लवङ्ग, दोनों एला, रूमी मस्तगी, तवाशीर, सालम मिश्री, गिलोय का सत्त्व, शतावरी,—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना, भस्मों को मिला लें। समष्टि चूर्ण के तुल्य मिश्री मिलाकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे, घृत मिश्रित दूध के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—यह चूर्ण सभी प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है। स्वप्न दोष की अधिकता, शीघ्र पतन, वीर्य की दुर्बलता का होना, मूत्र विसर्जन करते समय मूत्र में मिला हुआ अथवा मूत्र के प्रारम्भ वा अन्त में निकलने वाला वीर्य—इन सभी विकारों को नष्ट करने के लिए यह अत्युत्कृष्ट महौषधि है। इसके सेवन से वीर्य

गाढ़ा बन जाता है। जल के समान पतला शुक्र दधिवत् गाढ़ा बन जाता है। शरीर के बल की वृद्धि, धातु की पुष्टि होकर देह में उत्साह तथा स्फूर्ति आ जाती है। यह रुधिर की वृद्धि करता है और शरीर के रंग को उज्ज्वल बनाता है। यह चूर्ण न अति शीत है और न अति गर्म। सभी ऋतुओं में इसका सेवन कराया जाता है। हम इस चूर्ण को समस्त प्रमेह, स्वप्नदोष आदि धातु सम्बन्धी विकारों में अनेक वर्षों तक प्रयोग करते रहे हैं। उक्त रोग ग्रस्त व्यक्तियों को हमने इसे सभी ऋतुओं में सेवन कराया और आशातीत लाभ होता देखा है। आप भी इसकी परीक्षा करिये।

(११) प्रवालादि भस्म

शुद्ध प्रवाल ८ तोले, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक—प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर, उसमें प्रवाल का सूक्ष्म चूर्ण मिला दें और ६ घण्टे तक घोटें। इसके उपरान्त घीग्वार के रस में १२ घण्टे तक मर्दन करके, इसकी टिकिया बना लें और छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार से सूखने के पश्चात् इन टिकियों को शराव सम्पुट करके, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोलकर औषधि को ग्रहण कर, खरल में सूक्ष्म पीस करके, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२-२ रत्ती भस्म को केले की पक्की फली में रखकर, प्रातः सायं दिन में दोनों समय खावें।

गुण—यह भस्म सम्पूर्ण प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करती है। इसे न्यून से न्यून ४१ दिन तक निरन्तर सेवन करने से समस्त प्रमेह निर्मूल हो जाते हैं। परीक्षित है।

(१२) मण्डूराद्यवलेह

मण्डूर (लोहे को अग्नि में तपाने से जो उसका मल निकलता है उसे "मण्डूर" कहते हैं) को अङ्गूरी सिरके में १४ दिन तक भिगो कर रखिये। १४ दिन तक भीगने के पश्चात् मण्डूर को सिरके के अन्दर से बाहर निकाल लें और सुखा लें। यह मण्डूर १० तोले और बड़ी हरड़, आमला, बहेड़ा, छोटी पिप्पली, शुण्ठी, नागर मोथा तथा बालछड़—इन सात द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण पृथक्-पृथक् १०-१० तोले लेकर के समस्त औषधियों को एकत्र मिला लीजिए। इसके पश्चात् इसे बादाम के तैल में १२ घण्टे तक दृढ़ता के साथ घोटें। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर, इसमें मधु मिलाकर चाटने के योग्य बनाकर, चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर, रख लीजिए।

मात्रा—१ तोला अवलेह चटा दें और एक घण्टा के उपरान्त दूध पिला दें।

गुण—इस अवलेह के सेवन करने से कष्ट साध्य प्रमेह रोग भी नष्ट हो जाता है। अनेक औषधि सेवन करने पर भी जिस प्रमेह रोगी को लाभ न हुआ हो; वह इस प्रयोग के सेवन से स्वस्थ हो जाता है। शतसोऽनुभूतः। सैंकड़ों बार का परीक्षित है।

(१३) धात्रीफलादि योग

आमलों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण एक सेर और आमलों का रस एक सेर–दोनों को एकत्र मिलाकर, छाया में शुष्क करके, इसमें मिश्री चूर्ण और घृत–प्रत्येक आध-आध सेर एवं मधु एक पाव मिला करके शीशे के पात्र में रख लीजिए।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ तोले तक रोगी के बल, वय, आदि के अनुसार मात्रा दें। ऊपर से उष्ण जल पिलादें।

गुण—यह चूर्ण प्रमेह रोग को शान्त करता है। इसे ३-४ मास तक निरन्तर खाना चाहिए। इस योग को ३-४ बार निर्माण करके सेवन करें। इस योग की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही अल्प है। एक बार सेवन करने से इसके गुणों को रोगी स्वयं ही अनुभव करेगा। अनुभूत है।

(१४) प्रमेह कुठार रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, बंग भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, सूर्यपुटी प्रवाल भस्म, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची के बीज, भीमसेनी कर्पूर, आमला, मिश्री, जायफल, गोखरु, सेमल के वृक्ष की छाल, शतावर—इन १५ द्रव्यों को समभाग लें। प्रथम पारद और गन्धक को एकत्र मिला करके मर्दन करें। उत्तम घुटाई करने के उपरान्त इसमें भस्मों को डालकर घोटिए। इसके पश्चात् शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला करके स्थिरता से मर्दन करें। अच्छी प्रकार से घुटने पर इसे शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—८ रत्ती औषधि को मधु में मिलाकर चटादें और ऊपर से मिश्री मिला दूध पिला दें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करावें। पथ्य का विशेष ध्यान रखें।

गुण—प्रमेह कुठार रस के सेवन से २० प्रकार का प्रमेह रोग और सोम व्याधि नष्ट होती है। प्रमेह रोग को निर्मूल करने के लिए अत्युपयोगी औषधि है। अनेक बार का अनुभूत है।

(१५) गन्धक रसायन

शुद्ध आमलसार गन्धक ४० तोले लेकर गाय के दूध की तीन भावना देकर छाया में शुष्क करें! सूखने के पश्चात् इसको खरल में डालकर, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची—इन प्रत्येक का वस्त्रछन चूर्ण समभाग में लें और रात्रि में द्विगुणित जल में भिगो करके, ढक कर रख दें और—प्रातः काल हाथ से मर्दन करके छान लें और इस छने हुए पानी से पृथक्-पृथक् ८–८ दिन मर्दन करें। प्रत्येक भावना में ३ घण्टे मर्दन करें। तत्पश्चात् बडी हरड़, बहेड़ा, सोंठ–इनके क्वाथ और आमला, गिलोय, भांगरा और अदरक-प्रत्येक के स्वरस में पृथक्-पृथक् ८–८ दिन

मर्दन करके, छाया में शुष्क करें। सूखने के उपरान्त सूक्ष्म पीस लें और समान भाग मिश्री चूर्ण मिलाकर, शीशी में भर, सुरक्षित रख लें। इसे "गन्धक रसायन" कहा जाता है।

मात्रा और अनुपान—४ से ८ रत्ती तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, गो-दुग्ध वा जल अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

गुण—गन्धक रसायन प्रमेह, धातुक्षय, १८ प्रकार के कुष्ठ, चर्म विकार, अग्निमान्द्य, उदर रोग, शरीर में होने वाला दाह–इन समस्त रोगों में लाभप्रद है। इसे ४० दिन तक निरन्तर सेवन करने से उक्त व्याधियों में अच्छा लाभ होता है। गन्धक सेवन करने के उपरान्त यदि रोगी का शरीर निर्बल हो जाय तो, च्यवनप्राशावलेह १-१ तोला गोदुग्ध के साथ ४० दिन सेवन करने से पुनः पूर्ण बल प्राप्त हो जाता है। अनुभूत है।

गन्धक रसायन सेवन करते समय रोगी को—दूध, भात, गेहूँ का दलिया, यव, पुराना शाली चावल, बथुआ, पालक, चौलाई, परवल, सैंधवलवण आदि हितकर आहार दें। इसके अतिरिक्त सभी दालें, लवण, अम्ल द्रव्य निषिद्ध हैं।

(१६) बंग भस्म

शुद्ध बंग को पिघला करके उसके चतुर्थांश कलमी शोरा डाल दें। इसके पश्चात् काकमाची डाल कर, अग्नि दे करके, भस्म सिद्ध करें। इस प्रकार सिद्ध की हुई बंग भस्म अत्यधिक शीतल होती है। इस को अल्प मात्रा में जिह्वा पर रखने से हिम खण्ड के तुल्य शीतलता का अनुभव होता है। यह भस्म प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा पथरी रोग में अत्युपयोगी है। अनुभूत है।

(१७) रजत भस्म

किसी विधि से सिद्ध की हुई रजतभस्म और शुद्ध पारद–प्रत्येक १–१ तोला, इन दोनों को एकत्र खरल करें। उत्तम मर्दन करके, इसे रख लें। इसके पश्चात् श्वेत गुञ्जा २॥ तोले को जल के साथ सूक्ष्म पीस, कल्क बना लें। इस कल्क के अन्दर रजतभस्म तथा पारद के मिश्रण को रख कर, धूप में शुष्क करके, सम्पुट बना कर, चार सेर जंगली कण्डों में रखकर, अग्नि दें। स्वाङ्ग शीत होने पर सम्पुट से औषधि को ग्रहण कर लें।

मात्रा, अनुपान और गुण—½ से १ रत्ती तक, मक्खन में रखकर, निगल जायँ। यह प्रयोग प्रमेह रोग में उत्तम लाभप्रद है। इसके सेवन से वीर्य की पुष्टि और बल की वृद्धि होती है। अनुभूत है।

(१८) प्रमेहारि रस

, पारदभस्म, कान्तिसार लोहभस्म, विशुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत, स्वर्ण माक्षिक-भस्म, शुद्ध मैनसिल, शुण्ठी, छोटी पिप्पली, काली मरिच, बड़ी हरड, बहेड़ा, आमला,

अङ्कोल के बीज, कपित्थ (कैथ) और हल्दी–प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारद और भस्में मिला कर, मर्दन करें। इसके उपरान्त काष्ठौषधियों का वस्त्रछन चूर्ण मिला कर घोटें। तत्पश्चात् भृंगराज के रस और मूषक कर्णी के रस की पृथक्-पृथक् १०–१० पुट दें। प्रत्येक पुट में ३ से ६ घण्टे तक मर्दन करें। अन्तिम पुट दे करके, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा–१ से २ रत्ती तक, रोगी के बलानुसार मात्रा निश्चित करें। **अनुपान**-१–मधु में मिला कर दें ऊपर से दुग्ध पिलावें, २–बकायन के ४ बीजों का सूक्ष्म चूर्ण, घृत ६ माशे और तण्डुलोदक को एकत्र मिलाकर पिला दें। इनमें से किसी एक अनुपान के साथ दें।

गुण—इस रस के सेवन से पुराने से पुराना और नवीन प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है। सुख साध्य, कष्टसाध्य और असाध्य सभी प्रकार के प्रमेह रोग निर्मूल होते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क की निर्बलता, मन्दाग्नि आदि अनेक रोगों में लाभप्रद है। परीक्षित है।

स्वप्नदोष नाशक प्रयोग—

(१) हिंगुलादि चूर्ण

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक–प्रत्येक ७–७ तोले, शीतल चीनी ४ तोले, शुण्ठी, लाल चन्दन, केशर, जायफल, लवङ्ग, छोटी पिप्पली, जावित्री–प्रत्येक द्रव्य १॥–१॥ तोला लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना, सब को एकत्र मिलाकर, १२ घण्टे मर्दन करके, शीशी में भर सुरक्षित रख लीजिए।

मात्रा और अनुपान—½ से १½ माशा तक, मधु में मिलाकर, खावें। प्रातः काल दिन में एक समय सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण स्वप्न दोष को दूर करता है। वीर्य की पुष्टि, शरीर के बल की वृद्धि और जठराग्नि को दीप्त करने के लिये उत्तम है।

(२) पलाशनिर्यासादि चूर्ण

पलाश (ढाक) का आभायुक्त रक्तवर्ण का उत्तम निर्यास (गोंद) १० तोले, तालमखाने के बीज ५ तोले लें। प्रथम गोंद को घृत के साथ तवे पर मन्दाग्नि पर भून लें। इस प्रकार से भूनिए कि जिससे आधा निर्यास पक्व और आधा अपक्व रहे। यह ध्यान रहे कि गोंद जल न जाय। इसे चलाते हुए मन्द-मन्द अग्नि पर भूनें। इसके उपरान्त तालमखाने के बीज को भी तवे के ऊपर मन्दाग्नि पर भून लें। इन दोनों का सूक्ष्म चूर्ण बना करके, इसमें समभाग देशीय खाण्ड सम्मिश्रण कर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—६–६ माशे चूर्ण को खा करके, ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध मिश्रीयुक्त पीवें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से नवीन तथा पुराना स्वप्नदोष भी शीघ्र नष्ट हो

जाता है। जिन मनुष्यों को अधिक दिनों से स्वप्नदोष रोग ने पीड़ित कर रखा हो; वे इसे ४० दिन तक निरन्तर सेवन करके, आशातीत लाभ उठा सकते हैं। यह अनेक रोगियों पर अनुभूत है।

(३) वंशरोचनादि चूर्ण

वंशलोचन (वंशरोचना), नशास्ता, छोटी इलायची के बीज, गुडूची सत्त्व, शिलाजीत सत्त्व, शीतल चीनी, उत्तम बंगभस्म, लिसौडा, तालमखाना, श्वेत खदिर-सार (कत्था), उशीर (खस), कतीरा, गुलनार, मुलहठी, मेंहदी के पत्र, कृष्ण तिल, रेवन्द चीनी—प्रत्येक द्रव्य समान भाग में लेकर, समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। समष्टि चूर्ण के तुल्य भाग में मिश्री चूर्ण मिलाकर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला तक, प्रातः सायं मिश्री मिश्रित गोदुग्ध के साथ सेवन करावें।

गुण—यह चूर्ण स्वप्न दोष, प्रमेह, धातु की निर्बलता—इन रोगों में अव्यर्थ है। इसके सेवन से वीर्य की पुष्टि तथा स्तम्भन होकर शारीरिक बल की प्राप्ति होती है। आ० द०

(४) शिवादि वटिका

बड़ी हरड़ (शिवा), बहेड़ा, आमला, पुराना गुड़, वचा—प्रत्येक १-१ तोला, कर्पूर तथा रस सिन्दूर ६-६ माशे, शीतल चीनी ५ तोले लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना करके, शेष समस्त औषधियों को चूर्ण में मिला करके ३ घण्टे मर्दन करें। इसके पश्चात् आमले के रस में १ दिन दृढ़ता पूर्वक घोट कर १-१ माशा प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर लें और अच्छी प्रकार सूखने पर इन गोलियों को शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, मधु में मिलाकर खावें। केवल सायं समय सेवन करें। यह वटी स्वप्न दोष को नष्ट करती है और वीर्य को पुष्ट बनाती है। जिन पुरुषों को स्वप्न दोष ने अधिक पीड़ित कर दिया हो, उनके लिए यह औषधि लाभप्रद है।

(५) पाचक वटी

नवसादर (पपड़ी का), नरकचूर, काली हरड़, पीली हरड़, काबुली हरड़, वायविडङ्ग, काली मरिच, भुना हुआ सुहागा, सैंधव लवण, काला लवण, सामुद्रिक लवण और शुण्ठी—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर, वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण बना, अर्क गुलाब में मर्दन करके, ४-४ रत्ती प्रमाण में गोली बना, छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ गोली तक, भोजनोत्तर प्रातः सायं जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस वटी के सेवन से मन्दाग्नि नष्ट होती है और क्षुधा की वृद्धि होती

है। प्रायः यह देखा जाता है कि मन्दाग्नि तथा मलावरोध के होने पर स्वप्न दोष (प्रमेह) रोग उत्पन्न होता है। जब खाया हुआ भोजन नहीं पचता, तो विबन्ध (कब्ज) हो जाने के कारण समय पर मलविसर्जन नहीं होता। मल त्याग करते समय रोगी को बल लगाना होता है। पुरीषोत्सर्ग के लिये जो उदर की आन्तों पर बल दिया जाता है; वह अस्वाभाविक कर्म होने के कारण वीर्य विकारों को उत्पन्न करता है। स्वप्न दोष की अधिकता के अनेक कारणों में मलावरोध (कब्ज) भी प्रबल हेतु होता है। इस वटी के सेवन से उदर में मल का सञ्चय नहीं हो पाता। यथोचित समय पर शौच क्रिया हो जाती है। इस वटी के खाने से जठराग्नि की दीप्ति होती है और खाया हुआ आहार उचित प्रकार पचता है और उससे रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं का यथोचित निर्माण होता है। इस वटी के सेवन से स्वप्नदोष आदि धातु विकारों में उत्तम सहयोग मिलता है।

(६) जहर मोहरा खताई

यह एक प्रकार का पत्थर है जो कुछ श्वेत कुछ पीत तथा हरित वर्ण का होता है। यह यूनानी वैद्यक का प्रसिद्ध द्रव्य है। इसे घृतकुमारी के रस में ६ घण्टे तक घोट करके, गोला बना, धूप में गोले को सुखा करके, शराव सम्पुट बना कर, गजपुट की अग्नि दें। इस विधि से ७–८ बार पुट दे करके "जहरमोहरा खताई" की रक्तवर्ण की उत्तम भस्म सिद्ध होती है। इस भस्म को १ से ४ रत्ती तक की मात्रा में मक्खन वा मलाई में रखकर खावें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। इस भस्म के सेवन से वीर्य की पुष्टि होती और हृदय तथा मस्तिष्क को बल मिलता है। हमने स्वप्न दोष के अनेक रोगियों को जहरमोहरा खताई भस्म को बंगभस्म तथा सत्त्व बहरोजा के साथ मिश्रण करके, मलाई के अनुपान से सेवन कराकर अच्छा लाभ होते देखा है।

प्रमेह रोग में पथ्यापथ्य–धातु सम्बन्धी विकारों में ईश्वर भक्ति, जप, अध्यात्म विद्या का अभ्यास, महापुरुषों के जीवन चरित्रों का अवलोकन, पाठ, पूजा, मानसिक शान्ति, धैर्य, मनोभावों की पवित्रता, शुभ संकल्प को स्थिर रखना, प्रातः सायं कुछ समय ईश्वर का चिन्तन अवश्य करना, सत्संग, शुद्ध वायु मण्डल में निवास, प्राणायाम, यौगिक आसन, भ्रमण, स्नान, शीघ्र सोना और शीघ्र उठना, मेरुदण्ड को सीधे रखने का प्रयास, सुपाच्य सात्त्विक आहार करना, मात्रा में खाना, क्षुधा लगने पर ही आहार द्रव्य सेवन करना, ये हितकर हैं।

नास्तिकता, मन में उत्तेजना बढाने वाली कुपुस्तकों को पढ़ना, कामुकता वर्धक सिनेमा, नग्न चित्र आदि को देखना, अशिष्ट मनोरञ्जन करना, अमूल्य मनुष्य जीवन को व्यर्थ व्यतीत करना, (अकर्मण्य होकर पड़े रहना), कुसंग में रुचि और सत्संग में अप्रीति होनी, अधिक सोना, अधिक जागरण, स्नान न करना, अधिक आहार करना, गांजा, बीड़ी, सिगरेट, चाय, काफी, मद्य, मांस आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

अथ मधुमेह-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२७॥

मधुमेह (मूत्र में शक्कर आना)

जो कारण प्रमेह रोग को उत्पन्न करते हैं; रोग के प्रारम्भ में यदि उनका अपनयन न किया जाय; तो कालान्तर में मधुमेह रोग बन जाता है। जो व्यक्ति चीनी, गुड़, घी, मिठाई आदि का अधिक सेवन करते हैं और शारीरिक परिश्रम नहीं करते अथवा जो मानसिक चिन्तन में अहर्निश रत रहते हैं किन्तु शरीर की उपेक्षा कर देते हैं; वे व्यक्ति मधुमेह से पीड़ित हो जाते हैं। मधुमेह रोग असाध्य माना जाता है। यदि युक्ताहार–विहार होकर योग्य चिकित्सा की जाय; तो स्वास्थ्य लाभ होना सम्भव है।

मधुमेह नाशक कतिपय प्रयोग—

(१) मधुमेहहर चूर्ण

गुडमार २ तोले, जामुन की गिरी २ तोले, वंशलोचन और छोटी इलायची के बीज—प्रत्येक ६–६ माशे, गिलोय का सत्त्व १ तोला, पीपल की छाल ३ माशे, मण्डूर भस्म १ माशा, रजत भस्म ४ रत्ती और शुद्ध शिलाजीत ३ माशे लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, चूर्ण के साथ भस्मों को मिलाकर, १२ घण्टे तक मर्दन करें। तत्पश्चात् इस चूर्ण को शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३–३ माशे चूर्ण को प्रातः सायं दिन में दोनों समय गौ के दूध के साथ सेवन करें।

गुण—इस चूर्ण के सेवन से मधुमेह रोग में अच्छा लाभ होता है। यह अनेक बार का अनुभूत है। कुछ मास तक निरन्तर सेवन करने पर ही लाभ होगा; शीघ्रता से नहीं। मधुमेह के जो रोगी इस चूर्ण को ३--४ मास तक धैर्य पूर्वक सेवन करेंगे और पथ्य परिपालन में सावधान रहेंगे; तो उनको निश्चित लाभ होगा।

(२) गुडमार

यह औषधि मधुमेह रोग को नष्ट करने के लिए श्री रामबाण के तुल्य अमोघ प्रयोग है। इस औषधि की यह विशेषता है कि—इसके पत्तों को खाने के पश्चात् यदि गुड़, चीनी, मिश्री आदि कोई मिष्टान्न खाया जाता है; तो मधुर रस की प्रतीति नहीं होती। इस औषधि के वस्त्रछन चूर्ण को २ माशे प्रमाण में प्रातः सायं दिन में दोनों समय गौ के दुग्ध के साथ कुछ मास पर्यन्त नियमित रूप से सेवन करने पर मधुमेह रोग नष्ट हो जाता है। यह चूर्ण मूत्र की अधिकता, मूत्र में शक्कर का आना, तृषा आदि को शान्त करता है। अनुभूत है।

(३) मधुमेहान्तक चूर्ण

गुडमार के पत्र १० तोले, जामुन की गिरी, आम की गिरी, गूलर के फल, बालछड़—प्रत्येक २।।-२।। तोले और इन्द्रयव १। तोले लें। इन समस्त औषधियों को अच्छी प्रकार धूप में सुखा कर, इनका वस्त्रछन चूर्ण बना कर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशा तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय जल के साथ सेवन करावें।

गुण—यह चूर्ण मधुमेह रोग को शान्त करने के लिए अत्युपयोगी है। यह धातु की निर्बलता को दूर करके वीर्य की पुष्टि और शारीरिक बल की वृद्धि करता है। अनुभूत है।

(४) मेहहारी रस

उत्तम लोह भस्म ३ तोले, शुद्ध शिलाजीत ६ तोले, जावित्री, जायफल, शुद्ध धत्तूरे के बीज, लवङ्ग, विशुद्ध केशर, शुद्ध अफीम, गुडमार—प्रत्येक १-१ तोला लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर भस्म मिला कर, ६ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त छोटे-छोटे गूलर के फलों को शिला पर पीस कर, इसका रस निकाल लें और इस रस के साथ १२ घण्टे घोट करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क करके, शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं दिन में दोनों समय खावें और ऊपर से अजा दुग्ध पीवें।

गुण—इस रस को "बहुमूत्रान्तक" भी कहते हैं। मधुमेह रोग के लिए अपूर्व गुणदायी औषधि है। मधुमेह रोग में जो अधिक मूत्र आता है, इसके प्रयोग करने से उसमें तुरन्त लाभ हो जाता है। प्रथम दिन के सेवन से ही बहुमूत्रता में पर्याप्त सुधार हो जाता है। मधुमेह के रोगी को इस रस का सेवन ६ मास तक निरन्तर कराना चाहिए। अनुभूत है।

(५) वसन्तकुसुमाकर रस

प्रवालपिष्टी, चन्द्रोदय वा रस सिन्दूर, मुक्तापिष्टी, अभ्रक भस्म—प्रत्येक ४-४ भाग, रजत भस्म, स्वर्ण भस्म—प्रत्येक २-२ भाग, लोह भस्म, नाग भस्म और बंग भस्म—प्रत्येक ३-३ भाग लें। इन समस्त द्रव्यों को पत्थर के खरल में डाल कर ३ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त अडूसे के पत्रों का रस, हल्दी का रस, ईख का रस, कमल के फूलों का रस, मालती के फूलों का रस, शतावरी का रस, केले के कन्द का रस और चन्दन भिगोया हुआ जल, इन प्रत्येक की सात-सात भावना दें। प्रत्येक भावना में ६ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना देते समय इसमें २ भाग उत्तम कस्तूरी मिला लें और ३ घण्टे तक घोट करके २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी

में भर, सुरक्षित रख लें। इस योग में यदि दो भाग अम्बर भी मिला लें तो यह विशेष गुणकारी सिद्ध होता है। सि०यो० सं०

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं दिन में दो समय मधु में मिला कर दें। रात्रि को शयनकाल में "प्राण संजीवन रस" की एक वटी अवश्य दें। पथ्य में गौ की दही में घृत मिला कर दें। गौ की दही यथेष्ट सेवन करावें। मलाई युक्त दही खावें। इसमें अल्प मधु मिलाना उत्तम है। दही के अतिरिक्त कोई अन्य खाद्य द्रव्य न खावें।

गुण—यह रस कठिन से कठिन मधुमेह रोग को नष्ट कर देता है। मधुमेह रोग में होने वाले शक्कर के स्राव को यह प्रतिज्ञा पूर्वक रोक देता है। अल्पकालीन सेवन से शरीर हृष्ट पुष्ट हो जाता है। इसके सेवन से मस्तिष्क तथा हृदय को उत्तम बल मिलता है। अनुभूत है।

मधुमेह रोग में पथ्यापथ्य—मधुमेह रोग में प्रातः सायं शुद्ध वायु मण्डल में प्राणायाम, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन और भ्रमण करने से अच्छा लाभ होता है। आहार में—जौ के आटे की रोटी, बाजरा, गूलर का फल, कच्चा केला, परवल, पपीते का शाक, खजूर, छुआरा, अञ्जीर, बकरी का दूध, मीठा निम्बू, सैंधव लवण, अदरक, बकरी का मक्खन, घी, मधु आदि दें।

दिन में सोना, रात्रि में जागरण करना, मल, मूत्र, अपवायु आदि के वेगों को रोकना, अधिक जलपान, अत्यधिक चिन्ता, अकर्मण्य होकर रहना, मैथुन आदि को त्याग दें।

पूयमेह (सुजाक=औपसर्गिकपूयमेह)

पूयमेह नाशक प्रयोग

शुष्क धनियाँ ५ तोले को मोटा-मोटा कूट कर, सायं समय आध सेर जल में मिट्टी के पात्र में भिगोकर, ढक कर रख दें। प्रातः समय मन्द अग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें। इस क्वथित जल में–ब्राण्डी ३ तोले और चन्दन का तैल ६ माशे मिला करके शीशी में सुरक्षित रखिये।

मात्रा—१-१ तोला प्रातः, मध्याह्न तथा सायं समय दिन में तीन बार पीवें।

गुण—यह प्रयोग पूयमेह (सुजाक) को नष्ट करने के लिए अत्युपयोगी है। इसके सेवन से मूत्रदाह, वेदना, रक्तपूय, व्रण—ये सभी विकार शान्त हो जाते हैं। शतसोऽनुभूतः है।

अथोपदंश-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२८॥

उपदंश रोगहर प्रयोग—

(१) इच्छाभेदी रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध टंकण, शुण्ठी, छोटी पिप्पली—प्रत्येक द्रव्य १०-१० माशे, चोक (स्वर्णक्षीरी मूल) और शुद्ध दन्ती बीज—प्रत्येक ४०-४० माशे लेकर सबका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, खरल में एकत्र डालकर, ३६ घण्टे तक मर्दन करके, शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती प्रमाण में, गौ के दुग्ध के साथ खिला दें।

गुण—इस रस के सेवन से उपदंश, फिरंग (आतशक), पूयमेह (सुजाक), मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, समस्त प्रकार के अर्श, वातज मस्सा—ये सभी रोग नष्ट होते हैं। उपदंश फिरंग के लिए अमोघास्त्र है। इन रोगों में इसको ४१ दिन तक निरन्तर सेवन कराने से समूल व्याधि नष्ट होती है। यह उदरगत सञ्चित मल को गुदमार्ग से बाहर निकालकर उदर की शुद्धि करता है। क्षुधा की वृद्धि और मानसिक विचित्र स्फूर्ति तथा प्रसन्नता को उत्पन्न करता है। भयंकर रोगों में स्थायी लाभ करने के लिए इसका सेवन ४१ दिन तक कराना चाहिए। अनुभूत है।

(२) शिवादि वटिका

पीली हरड की छाल, श्वेत खदिरसार (कत्था), काली मरिच, आमला, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध पारद, शुद्ध रसकपूर, घुंघुची की दाल, वनफसा,—प्रत्येक द्रव्य ४-४ माशे लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शेष समस्त औषधियों के साथ मिला करके ३ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त आमले के क्वाथ में ३ घण्टे मर्दन करके, चणक प्रमाण में गोली बनाकर, छाया में शुष्ककर, शीशी में भरकर, रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी को, प्रातः सायं दोनों समय आम के अचार में लपेटकर निगल जायँ। यह औषधि दान्तों को स्पर्श न करे। औषधि सेवन करने के पश्चात् तुरन्त जल पीना वर्जित है। आध घण्टे के उपरान्त जल पी सकते हैं। इसमें मसूर की दाल और लाल मरिच त्याज्य हैं। इस वटी को सात दिन तक सेवन करने से सोपद्रव उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। यह अनुभूत है।

(३) केशरादि गुटिका

विशुद्ध केशर, शुद्ध रसकर्पूर अथवा कर्पूर माण्डेश्वर रस, मिश्री, श्वेतचन्दन, लवङ्ग, और जावित्री—प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, समस्त औषधियों को एकत्र मिला करके ३ घण्टे मर्दन करें। इसके पश्चात् जल के साथ घोटकर, २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, मक्खन वा मलाई में रखकर (दान्तों को औषधि स्पर्श न करे) निगल जाय।

गुण—यह वटी नवीन और पुराने उपदंश रोग को शान्त कर देती है। इसके सेवन से चालीस वर्ष तक पुराना उपदंश (आतशक) रोग भी नष्ट होता है। उपदंश जनित सन्धिवात (गठिया) तथा पक्षाघात आदि उपसर्ग भी निर्मूल होते हैं। अनुभूत है।

(४) फिरंगहरी वटिका

शुद्ध हिंगुल (रूमी), मुर्दासंग, शुद्ध तुत्थ, राल—प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे, और देशीय मोम ३ तोले लें। प्रथम मोम को अग्नि के ऊपर उष्ण करें। जब मोम गर्म होकर, पिघल जाय तो उसमें शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर ३ घण्टे मर्दन करें। उत्तम प्रकार घुटाई होने पर २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, घृत के साथ, प्रातः सायं दिन में दो समय खायें।

गुण—यह वटी फिरंग (आतशक) रोग में अत्युपयोगी है। अनुभूत है।

(५) त्रिफलादि गुटिका

त्रिफला ३ तोले, अजवाइन, अकरकरा, पुराना गुड़—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, शुद्ध पारद ३ माशे, शुद्ध भिलावे ७ नग, शुद्ध जयपाल १२ नग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शेष द्रव्यों को चूर्ण में सम्मिश्रण कर ३ घण्टे तक घोटें। इसके उपरान्त निम्बू के स्वरस में १ दिन स्थिरता से मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा निम्बू का रस डालता जाय और घोटता जाय। इस प्रकार १२ घण्टे (एक दिन) तक घोटने पर जब यह औषधि सूक्ष्म घुट जाय, तो ६-६ रत्ती प्रमाण में वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ वटी को एक तोला दही में रखकर खावें।

पथ्य में—तैल के बने पूड़े खावें। यदि रोगी को वमन होवे; तो तैल के अचार खाने के लिए दें।

गुण—इस वटी को खाने से फिरंग रोग में अच्छा लाभ होता है। इससे

रोगी को विरेचन होते हैं। यह रोग मुखपाक और विकलता को उत्पन्न नहीं करता है।

(६) स्वर्णक्षीरी रस

स्वर्णक्षीरी का रस २॥ तोले प्रातः समय रोगी को पिला दें। मध्याह्न में मूंग की दाल की खिचड़ी नमक के बिना दें। इस प्रकार ५ से ७ दिन तक रोगी को पथ्य में खिचड़ी देते रहें। इसके उपरान्त आध पाव से एक पाव तक मूंगफली खिलाकर ऊपर से दूध (अभाव में जल) पिला दें।

इस रस को सेवन करने से रोगी को वमन तथा विरेचन होते हैं। रोगी अधीर न हो जाय। यह उदर की शुद्धि, मलावरोध का नाश तथा फिरंग रोग जनित क्लीवता को दूर करता है। धातु क्षय, अर्श, अपीनस—इन रोगों के लिए भी उत्तम है।

(७) रसकर्पूरादि वटिका

शुद्ध रसकर्पूर १ तोला, पपरिया श्वेत कत्था और छोटी इलायची के बीज प्रत्येक ६-६ माशे, लवङ्ग १० दाने; शीतल चीनी और काली मरिच—प्रत्येक ३०-३० दाने लेकर, सम्पूर्ण औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, समस्त चूर्ण को एकत्र मिलाकर, अजा (बकरी) के दूध में एक दिन खरल करके, चणक प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्ककर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी को आम के अचार में रखकर निगल जाय। दान्त तथा मसूड़ों में औषधि को स्पर्श न होने दे। इस वटी को प्रातः एक ही समय खावें।

गुण—यह उपदंश रोग को नष्ट करने के लिए श्रीरामबाण के तुल्य अव्यर्थ प्रयोग है। इस वटी को ७ दिन तक खाने से उपदंश (आतशक) रोग का निर्मूलन हो जाता है। अनेक रोगियों पर अनुभूत है। इस औषधि के सेवन काल में रोगी के लिए पथ्य में बेसनी रोटी घी के साथ दें।

(८) अनन्तमूलादि सार (अर्क)

उसवा (विलायती अनन्त मूल), चोपचीनी, त्रिफला, नीम की अन्तश्छाल—प्रत्येक २०-२० तोले, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन और उन्नाव—प्रत्येक ५-५ तोले, करंज, निर्गुण्डी, आकाश बेल, पित्तपापड़ा, मकोय, जवासा, धमासा, निर्गन्ध बावरी, सरफोंका, देशीय अजवाइन और सनाय पत्र—प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोले लेकर यवकुट चूर्ण बनाकर, पन्द्रह सेर जल में मिट्टी के पात्र में रात्रि को भिगोकर, ढककर रख दें। प्रातः समय वारूणी यन्त्र से औषधि सार (अर्क) निकालकर शीशी में भर कर, रख लें।

मात्रा और अनुपान—५-५ तोले अर्क में २ तोले मधु मिलाकर, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—इस सार (अर्क) के सेवन से उपदंश, दद्रु, कण्डू, चर्मदल, लिङ्गेन्द्रिय व्रण, सर्व शरीरगत फोड़ा और मण्डल कुष्ठ—ये सभी रोग नष्ट होते हैं। इन रोगों में इसे एक मास तक निरन्तर सेवन कराने पर अच्छा लाभ होता है। अनुभूत है। इससे सप्त धातुगत उपदंश भी शान्त हो जाता है।

(९) किरातकादि सार (अर्क)

किरातक (चिरायता), गिलोय, वासा (अडूसा), मजीठ, चोपचीनी, बड़ी हरड़, छोटी हरड़, बहेड़ा, आमला, पित्तपापड़ा, नीम का पञ्चाङ्ग, सरफोंका, रक्त चन्दन, गुलाब के पुष्प, खसमूल, अनन्तमूल, उन्नाव, फालसे की छाल—प्रत्येक द्रव्य २०-२० तोले और मुण्डी ढाई सेर लें। इन समस्त औषधियों को यवकुट चूर्ण करके पञ्चगुणित जल में ४८ घण्टे भिगोकर रखिये। ४८ घण्टे तक भीगने के उपरान्त नाडिका यन्त्र से इनका सार निकाल कर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—५-५ तोले अर्क को प्रातः सायं दिन में दोनों समय दो-दो तोले "सारिवादि-पानक" (शर्बत) के साथ मिलाकर पीवें।

गुण—किरातकादि सार (अर्क) को "सारिवादि-पानक" के साथ मिलाकर पीने से रक्त शुद्ध होकर उपदंश रोग नष्ट होता है। उपदंशजन्य सन्धिवात आदि वायु विकारों में इसको कुछ दिन निरन्तर सेवन करने पर अवश्य लाभ होता है। यह अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

(१०) सारिवादि पानक

सारिवा (उसवा), चोपचीनी—प्रत्येक आध-आध पाव, सनाय के पत्र, उन्नाव—प्रत्येक १-१ छटाँक, रेवन्द चीनी, सुरञ्जानशीरी, इन्द्रायण मूल, कासनी, गुलाब के पुष्प, निशोथ, अजमोद, मजीठ, अफसन—प्रत्येक द्रव्य चार-चार तोले लेकर, यवकुट चूर्ण बनाकर सायंकाल ढाई सेर चिरायते के अर्क में भिगो दें। प्रातः काल मन्दाग्नि पर पकाकर, चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर हाथ से मर्दन करें और छान लें। इसमें मिश्री डेढ़ सेर और तुरञ्जबीन आध पाव डालकर मिलाकर पानक (शर्बत) बनाकर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—२ तोले शर्बत को किरातकादि सार के साथ पीवें। यह पानक फिरंग जन्य सन्धिवात (गठिया) को नष्ट करने में अव्यर्थ प्रयोग है। अनेक रोगियों पर परीक्षित है। हमने उपदंश जनित सन्धिवात (गठिया) के अनेक रोगियों को "किरातकादि सार (अर्क)" के साथ "सारिवादि पानक" का सेवन कराकर स्वस्थ किया है।

(११) तुत्थभस्म (उपदंश रोग में)

तुत्थ ३–४ तोले की एक डली और रीठा २० तोले लें। रीठों की छाल का सूक्ष्म चूर्ण बना लें। समान मुख वाले २ शरावे ले लें। शरावे में आधा-आधा रीठे का चूर्ण ऊपर नीचे और मध्य में उक्त तुत्थ की डली को रखकर सम्पुट करें। वस्त्र

मिट्टी से सन्धि बन्द करके धूप में शुष्क करें। सूखने पर १० सेर कण्डों के अन्दर रख-कर अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट से भस्म को निकाल लें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ रत्ती तक, रोटी के अन्दर रखकर निगल जाय और ऊपर से १० तोले घृत पी जाय। लगभग २ घण्टे के पश्चात् एकबार रेचन होगा। एकबार रेचन (दस्त) होने के पश्चात् पुनः ५ तोले घृत पिला दें। इस प्रकार प्रत्येक बार टट्टी होने के उपरान्त रोगी को ५ तोले घृत पिलाते रहें। जब गुदा द्वारा केवल घृत आने लगे तब घृत पीना बन्द कर दें। उस समय रोगी को मूंग की दाल की अच्छी पकी हुई खिचड़ी खाने के लिए दें।

यह घृत पीने की क्रिया किसी-किसी रोगी को १०—१२ बार तक करानी पड़ती है। इसमें रोगी को पीने के लिए जल न दिया जाय। जिस दिन घृतपान कराया जाय, उस दिन और उसके दूसरे दिन (२ दिन तक) रोगी को खाने के लिए मूंग की खिचड़ी ही पथ्य में दें। इसके उपरान्त प्रकृति के अनुसार आहार दें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से केवल एक दिन में उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। अशुद्ध रसकर्पूर घटित औषधि सेवन करने से जिस रोगी के शरीर में नाना उप-द्रव उत्पन्न हो गये हों उसके लिए यह औषधि अमृत के समान उपयोगी है। उपदंश रोग में यदि मांस भी दूषित हो गया हो, पित्त प्रकोप अधिक हो; तो ऐसी अवस्था में यह भस्म लाभप्रद है। विष विकार, दूषित-विष-प्रकोप, हृदय का दाह, हृदय का शूल, कुष्ठ, अम्लपित्त, मलावरोध, अर्श, आदि रोगों को शान्त करने में यह प्रयोग उत्तम है। इसके सेवन से वमन और विरेचन हो करके शरीर का शोधन हो जाता है।

सर्प के विष में इस भस्म को नेत्रों में अञ्जन करने से रोगी की मूर्च्छा तथा निद्रा नष्ट होती है। जल में मिलाकर सुंघाने से मस्तिष्कगत विष नासा द्वारा टपक-टपक कर बाहर निकल जाता है। खिलाने से वमन और विरेचन होकर विष बाहर निकल जाता है। इसके साथ ही दंश स्थान के ऊपर नौसादर का सूक्ष्म चूर्ण डालने से विष का प्रभाव शीघ्र नष्ट होगा।

(१२) पारद भस्म (उपदंश और कुष्ठ रोग में)

शुद्ध पारद १ तोला और गन्धक का तेजाब ५ तोले लें और इन दोनों को सात वस्त्र मिट्टी की हुई आतशी शीशी में डाल दें। इसके उपरान्त प्रज्वलित कोयलों की अग्नि पर शीशी को रख दें। (ध्यान रहे कि यह क्रिया खुले हुए स्थान में करनी चाहिये)। आध घण्टे के पश्चात् जब शीशी के मुख से धुवाँ निकलना बन्द हो जाय, तब शीशी को अग्नि से नीचे उतार लें और स्वाङ्ग शीत होने पर श्वेतवर्ण की भस्म को निकाल लें। इस भस्म का भार २ माशे अधिक हो जाता है।

मात्रा और अनुपान—१ से ४ चावल तक, मुनक्के के अन्दर अथवा लवण तथा मीठे के बिना सिद्ध हुए दलिये के मध्य में रख करके निगल जाय। यदि दान्तों

में औषधि लगेगी; तो दाँत निर्बल पड़ जायेगें अथवा उखड़ जायेगें। अतएव दाँतों को स्पर्श किये बिना ही औषधि को खाना इष्ट है।

उपयोग—यह भस्म उपदंश और कुष्ठ रोग के लिए अत्युत्तम है। इस भस्म को उपदंश रोग में प्रातः समय दिन में केवल एक बार दें। उपदंश के रोगी को आवश्यकता के अनुसार ३ से ७ दिन तक इसका सेवन कराने से लाभ होगा। कुष्ठ (कोढ़) व्याधि में इसे प्रातः सायं दिन में दोनों समय निरन्तर १५ से २० दिन तक प्रयोग करने पर सफलता मिलती है। हमने इस भस्म को उपदंश रोग पीड़ित सहस्रों आतुरों पर परीक्षण करके यह अनुभव किया है कि इसके सेवन से किसी भी प्रकार का अहित नहीं होता है। औषधि सेवन कराने के उपरान्त भविष्यत् में पारदीय कोई विकार देखने में नहीं आया। किसी-किसी रोगी को इसके सेवन से वमन तथा विरेचन होने लगते हैं। ऐसी अवस्था होने पर भयभीत नहीं होना चाहिए। समय पर रोग का वेग स्वयं शान्त हो जायेगा।

पथ्य—इस भस्म को सेवन कराते समय रोगी को फीका दलिया और मूंग की दाल का आहार दें। घृत विशेष मात्रा में सेवन करावें। इसके अतिरिक्त—दूध, दधि, मरिच, लवण, अम्ल पदार्थों का प्रयोग न किया जाय।

वक्तव्य—गन्धक का तेजाब विशुद्ध लें। तेल अथवा जल मिला हुआ न लें। यह भस्म अन्य धातुओं की भस्मों के साथ मिलाने के लिए उपयोगी नहीं है। कारण—खटाई लगने से पारद पुनः अपने मूल स्वरूप में आ जाता है।

(१३) उपदंशघ्न प्रयोग

शुद्ध रस कर्पूर, मुर्दासंग, छोटी इलायची के बीज और ताम्बूल (पान) के पत्तों का रस—प्रत्येक द्रव्य पांच-पांच माशे, काली मिर्च २।। माशे और गौ का घृत तीन छटांक लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् समस्त औषधियों को एक फूल के कटोरे में डाल दें। तत्पश्चात् नीम के दण्डे में शुद्ध ताम्र को लगाकर, इस दण्डे के द्वारा उक्त औषधि को १६ प्रहर तक निरन्तर मर्दन करें। ४८ घण्टे तक घुटाई करने के उपरान्त इसे शीशी में सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—२-२ रत्ती, ताम्बूल पत्र के रस के साथ उपदंश के रोगी को प्रातः सायं दोनों समय खिलावें और व्रणों पर लेप लगावें।

गुण—इस प्रयोग को खाने और लगाने के उपयोग में लिया जाता है। इसके १५ दिन के सेवन से भयङ्कर उपदंश रोग भी नष्ट हो जाता है। उपदंश (आतशक) व्याधि को नष्ट करने के लिए उत्तम अनुभूत औषधि है।

वक्तव्य—उपदंश वा फिरग यह अत्यन्त भयंकर सङ्क्रामक और चिरस्थायी रोग है। दुर्भाग्य से जिस व्यक्ति पर इस दुष्ट विकार का आक्रमण हो जाता है उसकी दुर्दशा किए बिना नहीं छोड़ता। प्रथम अवस्था में यह साध्य होता हुआ भी उपेक्षा करने से अथवा उचित चिकित्सा न होने से असाध्य कोटि को प्राप्त होता है।

असाध्य होकर के पुन: यह पुत्र, पौत्र आदि वंश परम्परा को भी आक्रान्त करता है। सात पीढ़ियों तक इसका प्रभाव देखा जाता है। आधुनिक सभ्यता के नवीन युग में आबाल वृद्ध सभी स्त्री पुरुष इस ग्राह से ग्रसित हैं। सद्वैद्यों के द्वारा चिकित्सा की जाने और पाश्चात्य चिकित्सा के त्वचोऽधःक्षेपणं (इन्जैक्शन) के प्रयोग होने पर भी प्राय: यह व्याधि शान्त नहीं होती—यह सर्वविदित है।

यद्यपि उपदंश रोग के लिए सैंकड़ों योग प्रकाशित हो चुके हैं और भविष्यत् में होते रहेंगे, तथापि हमने जिस प्रयोग से इस रोग शत्रु पर विजय प्राप्त की है, उसको नीचे लिखते हैं। इस रोग में वमन तथा विरेचन से लाभ होता है। अतएव रोगी के मल को फुलाने के लिए सर्वप्रथम इस क्वाथ का सेवन करावें।

(१४) निम्बपत्रादि क्वाथ

नीम के पत्र, सनाय के पत्र, मेंहदी पत्र और शाहतरा—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर, स्वच्छ करें और यवकुट चूर्ण बनाकर, आध सेर जल में सायं समय मन्दाग्नि पर पकावें। आधा जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, इसे मिट्टी आदि के उत्तम पात्र में डाल करके ढक दें। प्रातः काल हाथ से मर्दन करके छान लें और १-२ वार में रोगी को पिला दें। रोग की अवस्था के अनुसार इसे ३ से ७ दिन तक पिलावें। इस क्वाथ के सेवन काल में रोगी को आधार में केवल दूध और भात खाने के लिए दें। लवण सर्वथा वर्जित है।

गुण—इस निम्बपत्रादि क्वाथ को ७ दिन तक पीने से शरीर का मल फूल जाता है, रक्त की शुद्धि और शरीर में होने वाले दाह का नाश होता है। इस क्वाथ को ३ से ७ दिन तक सेवन कराना चाहिये। इसके उपरान्त "उपदंशनाथ रस" का सेवन करावें। यह रस नीचे लिखा जाता है—

(१५) उपदंशनाथ रस

बाजारु रस कर्पूर, शुद्ध श्वेत मल्ल (शंखिया), जङ्गार ताम्र और शुद्ध जयपाल, प्रत्येक १०-१० माशे, रीठे की छाल का चूर्ण और पुराना गुड़—प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोले लें। रस कर्पूर से लेकर के जयपाल पर्यन्त चार द्रव्यों को खरल में डाल किसी बलिष्ठ पुरुष के द्वारा निश्चन्द्र होने तक मर्दन कराइये। लगभग १२ घण्टे तक घुटाई होने के उपरान्त इसमें रीठा त्वक् चूर्ण डालकर ६ घण्टे तक घोटें। इसके उपरान्त गुड़ डाल करके ६ घण्टे और मर्दन करें। इस औषधि को जितना अधिक घोटा जायगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर इसका शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

किसी शुभ दिन में श्री भगवान् धन्वन्तरि जी को स्मरण करके—इस औषध को ४ से ६ रत्ती की मात्रा में, दही की मलाई में रखकर, उपदंश के रोगी को खिला दें और ऊपर से एक छटांक दही पिलादें। इस रस के सेवन से रोगी को वमन और

विरेचन होते हैं। किसी को औषधि सेवन के कुछ समय के उपरान्त ही वमन तथा विरेचन होते हैं और किसी को अधिक मात्रा में होते हैं एवं किसी-किसी को एक वा दो दिन तक न होकर, पश्चात् वमन और विरेचन होते हैं। यह रोगी के कोष्ठ के ऊपर निर्भर है। वमन तथा विरेचन के अधिक होने पर आतुर अधीर न हो जाय, उसे सान्त्वना दे करके उत्साहित करना चाहिये। हतोत्साह होना इष्टकर नहीं हैं।

औषधि सेवन काल में रोगी को दूध, भात, घृत और दधि (दही) का आहार दें। दूध तथा घृत की विशेष मात्रा देनी आवश्यक है। रोगी को यथेष्ट दूध में एक पाव घृत मिलाकर पिलावें। घी तथा दूध की मात्रा अल्प होने पर रोगी के शिर में दाह तथा मलावरोध आदि अनेक उपद्रव होते हैं। पर्याप्त घी दूध के सेवन से ये उपसर्ग नहीं होते। लवण, मिठाई, खटाई आदि पदार्थों को सर्वथा नहीं देना चाहिए।

इस रस के सेवन से उपदंश जनित व्रण, कुष्ठ, रक्त विकार—ये सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। जिनके सम्पूर्ण शरीर में पूयपूरित व्रण ही व्रण थे, जो डाक्टरों द्वारा असाध्य घोषित हो चुके थे; ऐसे उपदंश (आतशक) के अनेक रोगियों को इस "उपदंशनाथ रस" का सेवन कराकर ईश्वर के अनुग्रह से हमें सफलता प्राप्त हुई है। इससे सात दिन में उपदंश रोग निर्मूल हो जाता है। पर्याप्त मात्रा में घी दूध न मिलने पर इस रस का सेवन कराना इष्ट नहीं है।

(१६) धूम्रपान प्रयोग

अर्क (मदार) की छाल, देशीय अजवाइन, माजूफल (मायाफल), नीम का गोन्द, खुरासानी अजवाइन और शुद्ध हिंगुल—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर के सब को सूक्ष्म पीस कर चूर्ण बना लें और इस चूर्ण को खरल में डाल कर कत्थे के जल से एक दिन उत्तम मर्दन करके, तम्बाकू के समान बनाकर, रखिये। इसको २-२ माशे प्रमाण में लेकर के गोली बनाकर; एक गोली को चिलम में रख, ऊपर से अग्नि डाल कर इस का धूम्रपान करावें। इसको एक रात्रि में रोगी के बल, अवस्था आदि के अनुसार ३—४ चिलम तक पिला दें। धूम्रपान जिस रात्रि में कराना होवे, उस निशा में रोगी को अन्धेरी कोठरी में रख करके ही यह प्रयोग करना इष्ट है और उस सम्पूर्ण रात्रि में रोगी को शयन न करने दें। सम्पूर्ण निशा में आतुर जागरण करे।

गुण—यह धूम्रपान केवल एक रात्रि में ३–४ वार तक करने से फिरंग रोग वा उपदंश रोग को समूल नष्ट कर देता है। इससे लिङ्गेन्द्रिय में होने वाले व्रण और सर्वाङ्ग में उत्पन्न हुए उपदंशज व्रण निर्मूल हो जाते हैं। २५ वर्ष तक पुराने उपदंश रोग को भी यह प्रयोग नष्ट कर देता है। अनुभूत है।

(१७) मुखपाकहर प्रयोग

उपदंश रोग में प्रायः आतुर का मुख पक जाया करता है। उस समय माष (उरद) की दाल १ तोला और बादाम की गिरी ५ नग—इन दोनों को लें और सायं

काल एक मिट्टी के पात्र में आधा पाव पानी में भिगो दें। प्रातः काल इसे जल से बाहर निकाल कर, शिला पर सूक्ष्म पीसकर, उसी जल में मिला करके, अल्प मात्रा में पुराना गुड़ डाल कर रोगी को पिला दें। इस प्रयोग को ५ से ७ दिन तक करने पर उपदंश जनित मुखपाक नष्ट होता है। अनुभूत है।

१—**उपदंशव्रणहर प्रलेप**—रूमी हिंगुल, मुरदा संग, माजूफल (नवीन), बाजारू रस कर्पूर और तुत्थ—प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे और मक्खन ३ तोले लें। प्रथम मक्खन को १०१ बार जल से धो करके इसमें शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला दें और ६ घण्टे तक स्थिरता से मर्दन करके, इसे शीशी में भरकर सुरक्षित रखिये।

गुण—यह प्रलेप लगाने के लिए बाह्य प्रयोग है। उपदंश जन्य इन्द्रिय के व्रणों को निम्ब पत्र क्वाथ अथवा त्रिफले के क्वाथ से धो करके, शुष्क वस्त्र से पोंछ कर, इस लेप को लगावें। २४ घण्टे में एक-दो बार इस प्रकार से लगाने पर आश्चर्य-जनक लाभ होता है। यह प्रलेप उपदंश जनित व्रणों तथा नासूर (नाडीव्रण) को समूल नष्ट कर देता है। यह अनेक बार का परीक्षित है।

२—बबूल के पत्रों का वस्त्रछन चूर्ण और अनार के पत्रों का वस्त्रछन चूर्ण तुल्य मात्रा में ले करके, घृत में मिलाकर, प्रलेप लगाने से उपदंशजनित व्रणों में अच्छा लाभ होता है।

३—त्रिफले को अन्तर्धूम विधि से जलाकर, भस्म बना लें। इस भस्म को घी में मिलाकर लेप लगावें। शिश्न पर उत्पन्न हुए व्रणों को नष्ट करने के लिए यह लेप निश्चित रूप से लाभप्रद है।

४—निम्ब पत्र और त्रिफले के क्वाथ से इन्द्रिय को धोने और इसकी पिचकारी लगाने से उपदंशज व्रण अवश्य नष्ट होते हैं। इस जल से धो करके व्रणों के ऊपर कोई उत्तम लेप लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

उपदंश रोग में पथ्यापथ्य—ब्रह्मचर्य का विशेष पालन करना, मनोनिग्रह, चित्त की शान्ति, उत्तम शास्त्रों को पढ़ना और धर्माचरण से इस रोग में अच्छा लाभ होता है। गेहूं की रोटी, जौ की रोटी, दलिया, मूंग तथा अरहर की दाल, घी, दूध, मक्खन आदि हितकर पदार्थों का सेवन करना लाभप्रद है।

गुड़, तैल, नमक, मरिच, खटाई आदि अहितकर आहार से रोग की वृद्धि होती है। मांस, मदिरा, धूम्रपान, चाय, सिनेमा देखना, कुग्रन्थों को पढ़ना, मानसिक अशान्ति, मैथुन, रात्रि जागरण तथा दिन में सोना, अकर्मण्य जीवन व्यतीत करना—ये सभी त्याज्य हैं।

अथ-मेदोवृद्धि-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥२६॥

शरीर में मात्रा से अधिक मेदः (चर्बी) की वृद्धि होना भी एक रोग है। जब व्यक्ति के शरीर में मोटापन अत्यधिक हो जाता है तो उठने, बैठने, चलने में कष्ट होता है। कोई भी कार्य करने में श्वास-प्रश्वास की गति तीव्र हो जाती है और शरीर में गुरुता, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा आदि की वृद्धि होती है। मेदोवृद्धि के अनेक कारण हैं। उनमें—अधिक सोना, अधिक खाना, कफ वर्धक आहार का सेवन करना, शरीर से कोई भी परिश्रम न करना, निश्चिन्त रहना, आदि मुख्य कारण हैं।

मेदोवृद्धि नाशक उपाय--इस रोग में उचित आहार विहार करने से अच्छा लाभ होता है। मानसिक शुभ चिन्तन, जप, ईश्वर भजन, भ्रमण, अल्प निद्रा, अल्प आहार, उपवास, प्राणायाम, यौगिक आसन, रूक्ष आहार, शारीरिक श्रम करना—ये लाभप्रद होते हैं। इसके साथ-साथ निम्नलिखित प्रयोगों के सेवन से भी लाभ होता है।

(१) त्रिफला क्वाथ

बड़ी हरड़ २ भाग, बहेड़ा और आमला—१-१ भाग ले करके, यवकुट चूर्ण बना लें और शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें। इस चूर्ण को दो तोले की मात्रा में लेकर, ६ छटांक जल में मिट्टी के पात्र में चार घण्टे तक भिगोकर रखिए। इसके उपरान्त मन्दाग्नि पर पका करके चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें। चौथाई जल शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन कर छान लें और अल्पोष्ण में २ तोले मधु मिलाकर, रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दोनों समय नवीन क्वाथ बना करके, सेवन करावें। यह प्रयोग मेदोवृद्धि में अत्युपयोगी है। ४१ दिन तक निरन्तर सेवन करने से स्थूलता (मोटापा) न्यून हो जाता है।

(२) शुण्ठ्यादि चूर्ण

शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली, जीरा, चव्य, चित्रक मूल, काला लवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला और घी में भुनी हुई हींग ६ माशे लें। इन समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—३–३ माशे चूर्ण प्रातः सायं दोनों समय मधु के साथ मिला करके मेदोवृद्धि के रोगी को चटाइये। यह चूर्ण मेदोवृद्धि को नष्ट करता है। यह दीपन, पाचन और अनुलोमन है। इससे जठराग्नितीव्र होती और क्षुधा की वृद्धि होती है। कुछ दिन तक निरन्तर प्रयोग करने पर शारीरिक स्थूलता न्यून होती हैं।

मेदोवृद्धि में कठोर व्यायाम, यौगिक आसन, सूर्य नमस्कार, प्राणायाम—-इनसे अच्छा लाभ होता है।

अथ वृषणवृद्धि-आन्त्रवृद्धि-रोग-चिकित्सा प्रकरणम् ॥३०॥

वृषणवृद्धि रोग—

अयुक्त आहार और दूषित विहार के कारण अधोवायु (अपानवायु) प्रकुपित होकर जब वृषण की धमनियों को दूषित कर देती है तो उदर गुहा के नीचे अण्डकोष की वृद्धि हो जाती है। यह वृद्धि दक्षिण वृषण में होने पर दाहिना और वाम वृषण में होने पर बायाँ अण्डकोष फूल कर स्थूल हो जाता है। क्योंकि यह व्याधि अधोवायु के कुपित होने पर होती है और अधोवायु के कार्यक्षेत्र की सीमा में दोनों अण्डकोष आते हैं; अतएव कभी-कभी दोनों वृषण भी बढ़ जाते हैं। जिस पुरुष का वृषण बढ़कर मोटा हो जाता है, उसके बढ़े हुए अण्डकोष में कुछ वेदना होती है और शरीर में गुरुता, आलस्य तथा मूत्रकृच्छ्र के समान पीड़ा का होना आदि उपद्रव होते हैं।

अण्डकोषवृद्धि नाशक उपाय—

(१) अम्लिका प्रयोग

अम्लिका (इमली) के पत्र १ पाव को एक मिट्टी के पात्र में डालकर उसमें दो सेर गोमूत्र भर दें। इसके उपरान्त इस पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर तथा पात्र को ढककर मन्दाग्नि पर पकावें। जब इस पात्र में डाला हुआ गोमूत्र पूर्णतया जल जाय और इमली के पत्र उत्तम प्रकार पक जायें तो इसे अग्नि से नीचे उतार, इसकी वाष्प से बढ़े हुए वृषण को सेकें। सहने योग्य उष्ण रहने पर सेंकना चाहिये। अधिक उष्ण रहते हुए वाष्प की सेंक देना अच्छा नहीं होता। कुछ समय सेंक देने के पश्चात् जब ये पके हुए पत्र बांधने योग्य उष्ण रहें; तो इनको हाथ से मर्दन करके वृषण पर रखकर बाँध दें। ऊपर से कौपीन (लंगोट) बांध लें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दोनों समय बाँधना चाहिए। इस प्रयोग को ७ से २१ दिन तक निरन्तर करने से मूत्रज अण्डकोष की वृद्धि समाप्त होकर वृषण पूर्ववत् कोमल हो जाते हैं।

यदि अण्डकोष अधिक बढ़ने से उनका आकार कद्दू के समान हो गया हो; तो उसे उक्त प्रकार से इमली के पत्रों की वाष्प से सेंकना और उनको शोथ स्थल पर रख करके बाँधना अत्युपयोगी है। यह प्रयोग बिना शल्यक्रिया के ही वृषण वृद्धि को नष्ट करता है। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती।

(२) पुनर्नवादि प्रयोग

पुनर्नवा की जड़, पलाश पुष्प (टेसु), कड़वी तोरई, लोध, देवदारू, एरण्ड की जड़, मुशली, अरणी, काकमाची (मकोय), हरड़ बहेड़ा, आमला और बालछड़—इनमें से समय के अनुसार जितने द्रव्य उपलब्ध हो सकें, अधिक से अधिक उतने द्रव्य समभाग ले करके—इनके क्वाथ के वाष्प से सेंकना तथा इनको गलाकर शोथ प्रदेश पर बान्धना चाहिए। इन औषधियों के क्वाथ, वाष्प तथा प्रलेप के उपयोग से वृषण, लिंग, वस्ति,

तथा भग--इनका शोथ नष्ट होता है। वैद्य अपनी बुद्धि से उक्त औषधियों के क्वाथ आदि की युक्ति युक्त योजना करे।

(३) त्रिफला क्वाथ

बड़ी हरड़, आमला और बहेड़ा-इन तीनों को समान भाग लेकर, इनकी गुठली को दूर करके ऊपर की छाल को ग्रहण करें और मोटा-मोटा कूटकर, शीशी में भरकर रखिये। इस चूर्ण को १ से १॥ तोला तक लेकर, एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि के ऊपर पकाकर, चतुर्थांश शेष क्वाथ सिद्ध करें। इसे हाथ से मर्दन कर, छान लें और इसमें २ तोले गौ का मूत्र मिलाकर, रोगी को पिलादें। इस क्वाथ के सेवन से वातज और कफज वृषण शोथ में लाभ होता है।

(४) वृद्धिहरी वटिका

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,--प्रत्येक १-१ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ भाग और मोचरस चूर्ण २० भाग लें। प्रथम पारद और गन्धक को खरल में एकत्र डालकर, २४ घण्टे दृढ़ता पूर्वक मर्दन करें। तत्पश्चात् स्वर्णमाक्षिक भस्म मिला करके १२ घण्टे घोटें। अन्त में मोचरस चूर्ण को डालकर १२ घण्टे और मर्दन करने के पश्चात् अन्य मोचरस के क्वाथ की ७ भावना दें। प्रत्येक भावना में ३ से ६ घण्टे तक घोटें। अन्तिम भावना देने के उपरान्त ४-४ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर, सुरक्षित रखिए। मात्रा और अनुपान---२ से ४ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय सद्योजल के साथ सेवन करें।

गुण---अण्डवृद्धि को नष्ट करने के लिए यह औषधि अव्यर्थ है। इसके सेवन करने से वृषण की वृद्धि समाप्त हो जाती है। इस रोग में शीर्षासन का अभ्यास और "वृद्धिहरी वटिका" का सेवन--इन दोनों को एक साथ चलाना चाहिए। शीर्षासन का अभ्यास करते हुए यदि इस औषधि का सेवन कराया जायेगा, तो आश्चर्यजनक लाभ होगा।

शीर्षासन का प्रारम्भ १ मिनट से करना चाहिए और आध घण्टा तक वृद्धि करनी चाहिए। ३० मिनट से अधिक समय तक इसे न करें। प्रथम दिन १ मिनट से आरम्भ करके प्रतिदिन १--१ मिनट, की वृद्धि करते हुए क्रमशः अभ्यास को बढ़ाना इष्ट है। एक ही साथ वृद्धिक्रम का उल्लङ्घन करके शीर्षासन को करना इष्ट नहीं है। प्रतिदिन एक-एक मिनट का समय बढ़ाकर एक मास में आध घण्टा पर्यन्त शीर्षासन का अभ्यास करना उत्तम है।

शीर्षासन के पूर्व और उसके पश्चात् ३--३ प्राणायाम करने चाहिए। शुद्ध वायु मण्डल में पवित्र आसन पर उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख हो करके अपने शिर, ग्रीवा तथा वक्षः स्थल को समावस्था में रखते हुए, चित्त को समाहित करके और प्रभु का स्मरण कर प्राणायाम करे। **पूरक** (बाह्यवायु को नासा छिद्रों से उदर में भरना "पूरक" कहा जाता है), **रेचक** (उदरस्थ वात को शनैः शनैः नासिका के द्वारा

बाहर निकालना "रेचक" है) और कुम्भक (बाह्य वायु को उदर में भर करके वहीं रोकना "कुम्भक" है) इन तीनों का उपयोग करके ही प्राणायाम करना इष्ट है। इसमें मूलबन्ध और उड्डयान बन्ध को लगावे। इस प्रकार से यथाविधि ३ प्राणायाम करने के पश्चात् ५ से १० मिनट के व्यवधान से शीर्षासन करे। जितने समय तक यह आसन किया जाय उतने ही समय तक सीधा खड़ा होना अथवा शवासन में विश्राम करना आवश्यक होता है। इसके पश्चात् पुनः पूर्वोक्त विधि से तीन प्राणायाम करे। इस प्रकार शीर्षासन के पूर्व तथा पश्चात् ३-३ प्रणायाम करते हुए शीर्षासन करना चाहिए और उक्त वटी का सेवन भी करना चाहिए। एक मास के उपयोग से वृषण-वृद्धि सोपद्रव नष्ट हो जाती है। यह अनुभूत है।

आन्त्रवृद्धि रोग (हर्निया)

जिस रोग में उदर की आन्त्र अपने स्थान को छोड़ करके दूसरे स्थल पर आ जाती है, इसे "आन्त्रवृद्धि" "अन्त्रवृद्धि" "वङ्क्षणी आन्त्रवृद्धि" आदि नामों से बोला जाता है। भाषा में इस रोग को आन्त उतरना या हर्निया कहते हैं। यह रोग निम्न-लिखित कारणों से उत्पन्न होता है।

आन्त्रवृद्धि रोग के कारण—वायु को प्रकुपित करने वाले रूक्ष, शीतल, कड़वे पदार्थों को अधिक खाने से, अधिक उपवास करने से, शीतल जल में अधिक तैरने वा रहने से, मल, मूत्र, अपान वायु के आगत वेगों को रोकने से, अत्यधिक भारी बोझ को उठाने से, बहुत मार्ग चलने से और अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने आदि कारणों से वायु कुपित होकर उदर की आन्त्रों को दूषित कर देती है। प्रकुपित वात से दूषित होने के पश्चात् उदरगत आन्त्र निज स्थान को त्यागकर अप्राकृतिक स्थान में उतर जाती है। इसी को आन्त्रवृद्धि (हर्निया) कहा जाता है।

आन्त्रवद्धि का प्रतीकार—

(१) यवानिकादि चूर्ण

अजवाइन (यवानिका), घी में भुनी हुई हींग, छुवारे, सोवा, पुराना वाय-विडङ्ग, सोंफ, पुदिन, इन्द्रयव, श्वेत मरिच, बड़ी एला के बीज और छोटी हरड़—प्रत्येक १-१ तोला, बड़ी हरड़ और सनाय १॥-१॥ तोला; करंजगिरी और काला लवण—प्रत्येक २-२ तोले लें। सनाय को छोड़ करके शेष औषधियों को पृथक् पृथक् तवे पर डाल करके मन्द-मन्द अग्नि पर भून लीजिए। समस्त द्रव्यों के भुन जाने पर इनका वस्त्र-छन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—४ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, छोटी एला, दालचीनी, तथा लवङ्ग—इनका सूक्ष्म चूर्ण ३ माशे, आध सेर दूध में डाल कर, मन्दाग्नि पर पकावें; एक-दो उबाल आने पर इसमें मिश्री मिलाकर इसके साथ औषधि सेवन करें। इस दूध को उष्ण रहते हुए ही पीवें।

गुण—यवानिकादि चूर्ण के सेवन से आन्त्रवृद्धि (हर्निया), उदरशूल, मन्दाग्नि,

मलावरोध, और उदरवायु में अच्छा लाभ होता है। आन्त्रवृद्धि रोग में इसे एक से डेढ मास तक नियमित रूप से सेवन कराना चाहिए।

(२)आन्त्रवृद्धिहरी गुटिका

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गुग्गुलु, रक्त बोल, करंज क बीज, नवसादर, काला नमक और घी में भुनी हुई हींग–प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोले और एलुवा १० तोले लें। इनका वस्त्रछन चूर्ण बना करके एकत्र खरल में डालकर, घृतकुमारी (घीग्वार) के रस में १२ घण्टे तक मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने के पश्चात् जब यह सूक्ष्म पिस कर, गोली बनाने के योग्य हो जाय; तो चणक प्रमाण में वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार से सूखने पर, शीशी में भरकर, सुरक्षित रखिए। **मात्रा और अनुपान**–१ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, जल के साथ सेवन करें।

गुण – यह वटी आन्त्रवृद्धि, उदरशूल, उदर वायु आदि रोगों में लाभप्रद है। इसे न्यून से न्यून एक मास तक अवश्य खाना चाहिए। एक मास तक निरन्तर सेवन करने से आन्त्रवृद्धि (हर्निया) रोग में अच्छा लाभ होता है।

वृषणवृद्धि और आन्त्रवृद्धि रोग में पथ्यापथ्य—लाल चावलों का भात, पुराने शालि चावलों का भात, पुराने गेहूँ की रोटी, एरण्ड तेल, तिलों का तेल, घी, दूध, लशुन, हरड़, बहेड़ा, आमला, शुण्ठी, सैंधव लवण, परवल, लौकी, गाजर, सहिजन की फलियाँ आदि का शाक, मधु, उष्ण जल, उचित परिश्रम, उचित निद्रा और युक्तमात्रा में आहार—ये सब हितकर हैं।

नवीन अन्नों का सेवन करना, शीतल जल का सेवन, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के वेगों को रोकना, अधिक भार उठाना, बहुत चलना, अधिक खाना, दहि का सेवन, मैथुन, उपवास, आदि से रोग की वृद्धि होती है।

अथ-गलगण्डादि-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३१॥

१—कुकरौंधे की जड़ २॥ से ५ माशे तक लेकर उसे स्वच्छ जल से धोकर शिला पर पीस लें। सूक्ष्म होने पर इसे पान के पत्र में रखकर रोगी को खिला दें। इस प्रकार से प्रातः, मध्यान्ह और सायं दिन में तीन समय सेवन करावें। इसके सेवन से गलगण्ड (कण्ठ में होने वाली ग्रन्थि), कण्ठमाला (गण्डमाला), अर्बुद—ये रोग नष्ट होते हैं। इस प्रयोग से कुछ दाह होता है। सेवन करते समय कण्ठ में अल्प जलन होती है। परन्तु कण्ठ में होने वाली गाँठ को नष्ट कर देता है। नाड़ी व्रण (नासूर) में भी यह औषधि लाभप्रद है। कुकरौंधे की जड़ को सूक्ष्म पीस करके, वस्त्र से निचोड़कर, इसका रस निकाल लें। इसे २-३ बिन्दु तक नाड़ीव्रण के अन्दर डालने पर अच्छा लाभ होता है।

पथ्य—इस औषधि को सेवन करते समय पुराने गेहूँ की रोटी, चना, पुराने लाल चावलों का भात, दूध, घी एवं फलों का सेवन करना उत्तम है। लाल मिर्च, खटाई, लवण, गुड़ आदि अहितकर पदार्थों का सेवन करना इष्ट नहीं है। रोगी को मलावरोध (कब्ज) न होने दें। त्रिफला चूर्ण आदि किसी रेचक औषधि का सेवन करके उदर की शुद्धि करनी आवश्यक है।

२—**गण्डमालाहर प्रलेप**—दन्तीमूल, हरिताल, मनःशिला (मैंनसिल), गौरीपाषाण (संखिया), भिलावे, चित्रक मूल, स्नुही (सेहुण्ड) की जड़, हीरा कासीस और पुराना गुड़—ये समस्त औषधियाँ समभाग लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, शेष औषधियों के साथ चूर्ण को मिलाकर घोटें। इसके पश्चात् अर्क (मदार) के दूध में स्थिरता के साथ मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने पर जब यह औषधि सूक्ष्म पिस जाये, तो इसका गोला बना करके, धूप में सुखाकर रखिये। इस गोले को अर्क के दूध में घिस कर लेप लगाया जाता है।

गुण—यह बाह्य प्रयोग है। इसे केवल लेप लगाने के उपयोग में लिया जाता है। आहार-विहार के दूषित होने पर जो गले में ग्रन्थि हो जाती हैं, वहाँ पर इस लेप को लगाने से अच्छा लाभ हो जाता है। इस लेप को ग्रन्थि (गाँठ) के पकने के पूर्व लगाना चाहिये। इस लेप के लगाने से ग्रन्थि शीघ्र पक जाती है। यद्यपि यह लेप सभी प्रकार की ग्रन्थि, अर्बुद (रसौली), फोड़ा आदि को पकाकर शीघ्र स्वस्थ कर सकता है, तथापि मैंने इसका प्रयोग केवल कण्ठमाला (गण्डमाला) के रोगियों पर ही किया है। गण्डमाला के सैंकड़ों रोगियों पर परीक्षण करने पर मुझे शत-प्रतिशत पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इस लेप को २-३ बार के लगाने से आतुर

को स्वयमेव लाभ का अनुभव होगा। गले की गाँठों तथा अन्य ग्रन्थि, रसौली आदि को पका करके फोड़ने के लिए यह अत्युत्कृष्ट महौषधि है।

३—**मल्लादि प्रलेप**—मल्ल (संखिया) १ माशा, अग्नि में जलाया हुआ कुचला ६ दाने, सर्प की अस्थि की भस्म १ तोला, और मदार का दूध (अर्क दुग्ध) २ तोले लें। सब को खरल में एकत्र डालकर, १६ घण्टे मर्दन करें। १६ घण्टे घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने योग्य हो जाय, तो शीशी में सुरक्षित रख लें। इसे वस्त्र के ऊपर चिपका करके, गलगण्ड, गण्डमाला आदि स्थानों पर जहाँ लगाना इष्ट हो वहाँ पर लगा करके, ऊपर से पट्टी बाँध दें। इस प्रलेप के लगाने से गलगण्ड, गण्डमाला, अपची—ये पककर फूट जाते हैं। गलगण्ड आदि को पकाने के लिए ही इसका प्रयोग करें। जब इस प्रलेप के प्रयोग से गलगण्ड आदि पक करके फूट जायें, तब उस व्रण को भरने के लिए निम्नलिखित प्रलेप का उपयोग करें—

४—**निम्बादि प्रलेप**—नीम के पत्रों का रस, सत्यानाशी का रस, करंजुआ का रस और तिलों का तैल—प्रत्येक द्रव्य एक-एक पाव ले करके एक लोहे की कढ़ाही में सबको एकत्र मिला करके, मन्दाग्नि पर पकायें। जब यह कुछ गाढ़ा हो जाये, तो उस समय इसको अग्नि से नीचे उतार लें। यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य बात है कि—इस तैल को अधिक न जलाया जाय; कुछ कड़ा होने पर (गाढ़ा बनने पर) तुरन्त उतार लेना चाहिये। अधिक जलने से औषधि पूर्ण लाभप्रद नहीं होगी।

इसके पश्चात् इसमें मोम एक छटांक, मुरदासंग ६ माशे और तुत्थ ३ माशे तथा रसकर्पूर १ माशा, इन सबको (मुर्दासंग आदि का सूक्ष्म चूर्ण बना कर) मिला दें। पीछे १२ घण्टे तक घोट कर, शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें। इसको लेप लगाने के उपयोग में लें। यह प्रलेप समस्त प्रकार के व्रणों को भरने के लिये श्रीराम बाण के तुल्य अमोघ औषधि है। "मल्लादिप्रलेप" और निम्बादि प्रलेप" ये दोनों प्रयोग सैकड़ो बार के सुपरीक्षित हैं।

(५) अस्थि संहारकादि प्रलेप

अस्थिसंहारक (हड़जोड़) औषधि के रस में समभाग पारद मिश्रण करके अधिक से अधिक मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने योग्य बन जाय; तो इसे शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें। रूई के खण्ड (फाये) पर औषधि को लगा करके गण्डमाला (कण्ठमाला) के ऊपर चिपका दें। इसके पश्चात् इसे अग्नि से अच्छे प्रकार सेंक दें और सेंकने के उपरान्त पट्टी से बान्ध दीजिए।

गुण—इस प्रयोग से कण्ठमाला की ग्रन्थि (गिल्टी) २४ घण्टे में शान्त हो जाती है।

कण्ठशोथहर प्रयोग—

जिस रोग में कण्ठ प्रदेश में शोथ (सूजन) हो जाता है; उसे "कण्ठशोथ"

रोग कहते हैं। यह व्याधि स्वतन्त्र रूप में अथवा किसी रोग के साथ उपद्रव रूप में होती है। इसमें रोगी जल भी नहीं पी पाता है। किसी भी खाद्य अथवा पेय पदार्थ को कण्ठ से नीचे ले जाने में अत्यधिक कष्ट होता है। यदि ऐसी अवस्था अधिक दिनों तक बनी रहे तो मृत्यु आ जाती है अथवा रोगी मरणासन्न हो जाता है। ऐसी दशा होने पर रोगी को निम्नलिखित प्रयोग से तुरन्त लाभ होता है—

(६) कण्ठशोथघ्न धूम्रपान

अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष की जटा को छाया में सुखा करके अथवा बिना सुखाये ही सूक्ष्म पीस करके ½ से १ तोला तक चिलम में रख करके कण्ठशोथ के रोगी को इसे पिला दें। इस प्रयोग को रात्रि तथा दिन में ३–४ बार पिलाने से गले का शोथ शान्त हो जाता है। यदि कण्ठ के अन्दर कोई फोड़ा हो गया हो, तो इस धूम्रपान के करने से वह भी नष्ट हो जाता है।

गलगण्डादि रोग में पथ्यापथ्य—

स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, प्रलेप, धूम्रपान, पुराने गोघृत को पीना, पुराने साठी चावलों का भात, पुराने लाल चावलों का भात, गेहूँ, जौ, मूंग, अरहर, परवल, लौकी, करेला, सहिजन की फली आदि का शाक, अदरक, काली मरिच, शुण्ठी, पीपल, उष्ण जल आदि हितकर हैं।

गुड़, चीनी, शक्कर आदि मिष्टान्न, उड़द, रबड़ी, अधिक सोना, अधिक खाना, लाल मरिच, खटाई नमक आदि का अधिक सेवन करना—ये अहितकर हैं।

अथ-शोथ-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३२॥

पर्याय—शोथ, श्वयथु, शोफ ये सूजन के पर्याय वाचक शब्द हैं।

शोथ रोग के कारण—अधिक उपवास करने से, आलस्य युक्त अधिक बैठने से, शरीर की शुद्धि न होने से, वमन, विरेचन आदि के अयुक्त होने से और मिट्टी खाने आदि अनेक कारणों से शोथ रोग की उत्पत्ति होती है। एकदेशीय और सर्वाङ्गीणभेद से शोथ (सूजन) दो प्रकार का होता है। हाथ, पैर, मुख आदि शरीर के किसी एक अङ्ग में होने वाला एक देशीय और सम्पूर्ण काय में उत्पन्न हुआ शोथ सर्वाङ्गीण कहा जाता है।

शोथनाशक उपाय—

(१) त्र्यूषणादि लौह

शुण्ठी, छोटी पिप्पली, काली मरिच, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, दन्ती, अपामार्ग, त्रिमद, काकमाची (मकोय), पुनर्नवा और शुण्ठी—ये समस्त द्रव्य समान भाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। सम्पूर्ण चूर्ण का जितना भार हो; उतनी ही लौह भस्म मिलाकर ६ घण्टे घोटें। इसके पश्चात् पुनर्नवा के रस और काकमाची के रस में ७–७ भावनाएँ दें। प्रत्येक भावना में ३ से ६ घण्टे तक मर्दन करें। अन्तिम भावना देने के उपरान्त उत्तम मर्दन करके २–२ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार से सूखने पर इन गोलियों को शीशी में भर कर, सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ वटी तक, प्रातः, मध्याह्न तथा सायं दिन में तीन समय, काकमाची के रस के साथ सेवन करें।

गुण—त्र्यूषणादि लौह के सेवन से एकाङ्गीय शोथ और सम्पूर्ण शरीर में होने वाला सर्वाङ्गीण श्वयथु नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग सभी प्रकार के शोथ को शान्त करता है। अनुभूत हैं।

(२) पुनर्नवारिष्ट

श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, दोनों पाठे, दन्तीमूल, गिलोय, और चित्रक मूल–प्रत्येक ८–८ तोले तथा कटेली १२ तोले लें। इन सब का यवकुट चूर्ण बना कर, एक मन बारह सेर जल में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर शीतल होने पर हाथ से मर्दन करें और वस्त्र से छान लें। इस क्वथित जल को घृत तथा मधु से लिप्त एक मिट्टी के घड़े में भर दें और इसमें दश सेर पुराना गुड़ एवं मधु तेरह छटांक (इस में दो सेर तक मधु डाला जा सकता है)

डालकर उत्तम प्रकार से मिला दें। इसके उपरान्त मुख मुद्रा करके इस घड़े को यव की राशि में रख दें। एक मास तक जौ के ढेर में रहने के पश्चात् इस घड़े को बाहर निकाल कर औषधि को छान लें और दूसरे घड़े में भर दें। इसके पश्चात् इसमें—नागकेशर, दालचीनी, बड़ी इलायची के दाने, काली मरिच, सुगन्धबाला और तेजपात—प्रत्येक द्रव्य का वस्त्रछन चूर्ण २-२ तोले सम्मिश्रण करके मुख मुद्रा करें और एक मास तक इसी प्रकार रखने के उपरान्त इसे छान करके शीशियों में भर कर रखिये।

वक्तव्य—कतिपय वैद्य नागकेशर आदि के चूर्ण को इसमें न मिलाते हुए उनकी केवल धूनि देकर ही अरिष्ट संधान करते हैं।

मात्रा—१। से २।। तोले तक भोजनोपरान्त दोनों समय सेवन करायें।

गुण—पुनर्नवारिष्ठ सभी प्रकार के शोथ को नष्ट करता है। सूजन की भयङ्कर अवस्था में इसे कुछ दिन निरन्तर सेवन कराना अच्छा है। २-३ मास तक सेवन करने से कष्टसाध्य शोथ भी शान्त हो जाता है। यह प्रयोग निष्फल नहीं होगा, इसके सेवन से लाभ आवश्य होता है।

(३) पुनर्नवा प्रयोग

श्वेत पुनर्नवा (पत्थर चटा) का रस २ तोले और मधु ६ माशे—इन दोनों को एकत्र मिला करके शोथ के रोगी को पिला दें। इस प्रकार प्रातः, मध्याह्न तथा सायं दिन में तीन समय सेवन करने से शोथ रोग में लाभ होता है।

(४) पुनर्नवा क्वाथ

श्वेत पुनर्नवा का पञ्चाङ्ग आध सेर ले करके मोटा-मोटा कूट लें। इसे चार सेर जल में मिट्टी के पात्र में डालकर, मन्दाग्नि पर चतुर्थांश शेष क्वाथ सिद्ध करें। पश्चात् अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन कर, छान लें। इस छने हुए क्वाथ में पांच तोले शोरा और मिश्री एक सेर मिला दें। २४ घण्टे के उपरान्त पुनः छान करके शीशी में भर कर सुरक्षित रखिए।

मात्रा—२-२ तोले, प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करावें।

गुण—यह क्वाथ शोथ तथा सशोथ ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है। जिस शोथी को मूत्र विसर्जन क्रिया उचित प्रकार से नहीं होती हो; उसके लिए इस क्वाथ का सेवन करना अमृत के समान लाभप्रद है।

(५) पुनर्नवाष्टक क्वाथ

सद्योगृहीत श्वेत पुनर्नवा का पञ्चाङ्ग, पटोल पत्र, नीम की अन्तश्छाल, शुण्ठी, कुटकी, गुडूची, बड़ी हरड़ की छाल और देवदारू—ये अष्ट द्रव्य समभाग ले करके यवकुट चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को २ तोले की मात्रा में लेकर एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके छान लें और इसमें ६ माशे मधु मिला करके रोगी को पिला दें। यह क्वाथ प्रातः दिन में एक वार ही दें।

गुण—पुनर्नवाष्टक क्वाथ उदर शोधक, क्षुधावर्धक और शोथशामक है। जो रोगी अनेक उपचार कराने पर भी हाथ, पैर, मुख, उदर आदि के शोथ को दूर करने में असफल रहे हों और निराश हो गये हों; वे इस क्वाथ को १५ दिन तक निरन्तर सेवन करके लाभान्वित हो सकते हैं। यह क्वाथ एकाङ्गीय और सर्वाङ्गीण—इन दोनों प्रकार के शोथों को नष्ट करता है। यकृत् तथा प्लीहा की वृद्धि और प्रसूता के शोथ में अत्युपयोगी महौषधि है। पथ्य परिपालन और अपथ्य के त्याग करते हुए इस क्वाथ के सेवन से उक्त रोगों में अवश्य लाभ होगा। अनुभूत है।

(६) पुनर्नवा के पत्रों का शाक और काकमाची (मकोय) के पत्रों का शाक खाने से शोथ नष्ट होता है।

(७) बिल्वादि प्रयोग

बिल्व (बेल) के पत्रों का रस, और नीम के पत्रों का रस—प्रत्येक २-२ तोले इन दोनों को एकत्र मिला करके इसमें काली मरिच १० दाने का सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करें और रोगी को पिला दें। इस रस के सेवन से शोथ रोग शान्त हो जाता है। श्वयथु (सूजन) को नष्ट करने के लिए अत्युत्तम है।

(८) शोथहर प्रलेप

पुनर्नवा पञ्चाङ्ग, दारु हरिद्रा, शुण्ठी, सरसों और सहिजन की छाल—इन द्रव्यों को समभाग लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् इसे काञ्जी के साथ अच्छे प्रकार पीसें। जब घोटने पर यह लेप लगाने योग्य सूक्ष्म बन जाय; तो इसे पीतल की सलाई से शोथ प्रदेश पर लगा दें। इस लेप को दिन और रात्रि में दो बार लगावें। यह शोथ (सूजन) को शान्त करता है। सर्वाङ्ग शोथ प्रदेश पर लेप लगाने से अच्छा लाभ होता है।

(९) दशमूल तैल

दशमूल चार सेर को यवकुट चूर्ण बना कर, बत्तीस सेर जल में, मिट्टी के पात्र में २४ घण्टे तक भिगो कर रखिये। इसके उपरान्त मन्दाग्नि पर क्वाथ सिद्ध करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर इसे अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने दें। शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके वस्त्र से छान लें। यह क्वथित जल, तिलों का तैल दो सेर, गौ का दूध आठ सेर और दशमूल का कल्क (लुगदी) २० तोले—इन समस्त औषधियों को एक कड़ाही में एकत्र डाल कर, कड़ाही को चूल्हे के ऊपर चढ़ा कर मन्दाग्नि पर पकावें। मन्द-मन्द अग्नि के ऊपर पकाते हुए इसे चलाते रहें। तैल मात्र शेष रहने पर, अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और शीशी में भर कर, सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इस तैल को शोथ स्थान पर मर्दन करने से सूजन में लाभ होता है। इसे शोथ के ऊपर लगा कर हाथ से मर्दन करें। यदि आवश्यकता हो तो उस स्थान को अग्नि से सेक दें। यह तैल वातज, कफज, पित्तज और सन्निपातज—इन सभी प्रकार के शोथों को नष्ट करता है। सूजन को शान्त करने के लिए अत्युत्कृष्ट औषधि है।

(१०) स्वेदन प्रयोग

काकमाची के पत्र, धतूरे के पत्र, अर्क पत्र, कड़वी लौकी, बकायन के पत्र, बन्दाल, पुनर्नवा, निम्ब पत्र, और अफीम लें। इनको छोटे मुख के घड़े में डाल कर, उसमें जल भर दें और ढक करके अग्नि पर पकावें। उत्तम प्रकार से पकने पर अग्नि से नीचे उतार, शोथ स्थान में इसकी वाष्प दें। दिन और रात्रि में १-२ बार इसी प्रकार वाष्प लगावें। प्रथम उस स्थान पर दशमूल तैल वा अन्य कोई उत्तम तैल मर्दन करने के उपरान्त वाष्प प्रयोग करने पर शीघ्र लाभ होगा। यह प्रयोग क्षयरोग जनित शोथ तथा अन्य वातिक और कफज सूजन में लाभप्रद है।

(११) क्वाथ स्नान

कोकिलाक्ष (तालमखाना), काकमाची (मकोय) और आकाश बेल—इनको समभाग लेकर, जल में पकावें। अच्छी प्रकार से पकने पर इसे अग्नि से नीचे उतार कर छान लें। इस छने हुए जल में शोथयुक्त अंगों को डुबो कर रखें। कुछ समय जल में रखने के पश्चात् बाहर निकाल लें। यह प्रयोग शोथ को नष्ट करता है। सर्वाङ्गीण शोथ में अधिक मात्रा में क्वाथ सिद्ध करके, उसमें रोगी को अवगाहन (डुबो कर) स्नान करने पर लाभ होगा।

शोथ रोग में पथ्यापथ्य—पुराने लाल चावलों का भात, मूंग की दाल, जौ और पुराने गेहूँ की रोटी, करेला, आम, सहिजन की फली आदि का शाक, मधु, गौ का मूत्र आदि हितकर हैं। गरिष्ठ भोजन, अधिक खाना, मीठे का बहुत प्रयोग करना, आलस्य युक्त जीवन व्यतीत करना, अधिक सोना, दिन में सोना, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आगत वेगों को रोकना आदि—ये रोग वृद्धि करते हैं।

अथ-उपान्त्र-शोथ-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३३॥

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में बृहदन्त्र के एक सिरे पर एक नली लगी हुई होती है। यह नली आध इञ्च से आठ इञ्च तक लम्बी और हाथ की अङ्गुली के समान मोटी होती है। सभी व्यक्तियों में यह नली समान नहीं होती। किसी में आध इञ्च और किसी में २ इञ्च तथा किसी-किसी व्यक्ति में आठ इञ्च तक लम्बी होती है। यह नली सदा एक ही स्थान पर अवस्थित नहीं रहती। कभी ऊपर और कभी नीचे आती जाती है। इस नली को उपान्त्र, उण्डुकपुच्छ, आन्त्रपुच्छ, तथा परिशिष्ट आन्त्र आदि अनेक नामों से बोला जाता है। इसे "अन्धी आन्त" भी कहते हैं। इस नली का एक ओर का मुख बड़ी आन्त्र में जहाँ पर खुलता है वहाँ वह सङ्कीर्ण ही होता है। भुक्त आहार का कुछ कठोर अंश जब कभी इसके मुख में प्रविष्ट हो जाता है; तो संकुचित मुख होने से वह बाहर नहीं निकल पाता। फलतः वहीं सड़ कर शोथ को उत्पन्न करता है। इसी को उपान्त्र शोथ (परिशिष्ट आन्त्र शोथ) रोग कहते हैं।

कारण—मलावरोध होने से, गरिष्ठ आहार करने से, गुठली आदि कोई कठोर वस्तु उपान्त्र के मुख के अन्दर प्रविष्ट होने से तथा कृमियों से "उपान्त्र-शोथ रोग" की उत्पत्ति हो जाती है।

उपान्त्र शोथ रोग के लक्षण—परिशिष्ट आन्त्र शोथ का आक्रमण अकस्मात् होता है। रोग के प्रारम्भ में रोग उत्पादक हेतु का बोध प्रायः नहीं होता। जिस व्यक्ति को यह व्याधि होती है; उसके उदर के दक्षिण भाग में तीव्र वेदना होती है। वमन होता है। मांस पेशियों में विशेष प्रकार का तनाव वा ऐंठन होने लगता है। पीड़ा स्थल को हाथ से स्पर्श करने पर रोगी को तीव्र वेदना की अनुभूति होती है। यह वेदना कभी अधिक और कभी न्यून हो जाती है। कभी-कभी इतनी असह्य पीड़ा होने लगती है कि—रोगी का प्राणान्त हो सकता है। रोगी अपने दक्षिण पैर को संकुचित करके रखता है। ज्वर आ जाता है। किसी-किसी रोगी को मलबद्धता और किसी को अतिसार होने लगता है। नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। रोग की साधारण अवस्था में एक सप्ताह तक वेदना, ज्वर आदि उपद्रव प्रबल रूप में रहने के पश्चात् धीरे-धीरे शान्त होने लगते हैं और कभी पुनः रोग की वृद्धि हो जाती है। रोग की वृद्धि तथा अल्पता का क्रम निरन्तर चलता रहता है। जिस समय उपान्त्र में सामान्य शोथ न होकर विद्रधि (फोड़ा) बन जाती है; तो वेदना, ताप आदि सभी उपद्रव प्रबल रूप में होने लगते हैं। रोग के प्रारम्भ में लक्षणों से शीघ्रता से रोग का निर्णय नहीं होता।

चिकित्सा—उपान्त्र शोथ रोग का प्रतीकार शल्यक्रिया (आपरेशन) और औषध-प्रयोग—इन दोनों के द्वारा होता है। प्रकृत रोग की शल्यचिकित्सा उतनी उपादेय नहीं है; जितने कि औषध-प्रयोग होते हैं। हमने उपान्त्र शोथ के अनेक रोगियों को शल्य चिकित्सा कराने के उपरान्त देख करके अनुभव प्राप्त किया है कि—शल्यकर्म होने के पश्चात् आतुर की पाचन शक्ति का क्षय होता और शारीरिक निर्बलता अवश्य आ जाती है। जिन रोगियों ने शल्य चिकित्सा कराई, उन सभी में मन्दाग्नि तथा दैहिक दुर्बलता पायी गई है। तथाकथित रोगी प्रयत्न करने पर भी उक्त दोषों का प्रतीकार करने में असमर्थ रहे और आजीवन अपचन तथा दुर्बलता से पीड़ित ही रहे। अतएव उपान्त्र शोथ की शल्य चिकित्सा निरुपद्रव नहीं है।

यद्यपि औषधि चिकित्सा में कुछ विलम्ब अवश्य होता है; तथापि परिणाम में कोई अन्य उपद्रव उत्पन्न नहीं होता। रोग समूल नष्ट होगा। युक्त आहार और उचित विहार का आदर करते हुए औषधि प्रयोगों के सेवन से रोग का निर्मूलन अवश्य होता है। इसके साथ ही अपचन एवं निर्बलता आदि कोई उपसर्ग नहीं होगा। प्रकृत रोग-पीड़ित अनेक रोगियों पर परीक्षण करके हमें जिन प्रयोगों से सफलता उपलब्ध हुई है; उनको लिखा जाता है। पाठक वृन्द यथावसर इनका उपयोग करके लाभान्वित होवें।

(१) उपान्त्र शोथहर सार (अर्क)

घृतकुमारी के पत्र पांच सेर, त्रिफला और अजवाइन प्रत्येक १-१ सेर, सैंधव लवण २० तोले, शुण्ठी और चित्रक की जड़ की छाल—प्रत्येक ५-५ तोले लें।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम घीग्वार के पत्रों को छोटा-छोटा काटकर उनके खण्ड बना लें और शेष द्रव्यों का चूर्ण बना करके इन समस्त औषधियों को एकत्र मिला दें। इसके पश्चात् एक मिट्टी की हण्डी के मध्य भाग में कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रमाण में एक छिद्र करके उस हण्डी में सम्पूर्ण द्रव्यों को भर दें। तत्पश्चात् एक अन्य रिक्त मिट्टी की हण्डी को भूमि में इस प्रकार से गाढ़ दें कि जिससे कण्ठ भाग को छोड़ करके हण्डी का कोई अवयव दृष्टिगोचर न हो सके। जब गल प्रदेश तक हण्डी भूमि के अन्दर प्रविष्ट हो जाय तब उसके ऊपर उक्त औषधि युक्त हण्डी को सीधा रख दें और वस्त्र मिट्टी से सन्धि बन्धन कर दें। इसके पश्चात् ऊपर की हण्डिका को मिट्टी के ढक्कन से ढक करके उसके गलभाग तक चारों ओर जंगली कण्डों को उत्तम प्रकार से चयन कर दें और अग्नि लगा दें। अग्नि से ऊपर की हण्डिका में अवस्थित औषधियों का सार निकल करके नीचे के पात्र में सञ्चित हो जाता है। यदि एक बार के लगाने पर औषधियों का सार पूर्णतया न निकल पाय;

तो दूसरी बार और जंगली कण्डों को लगा करके सम्पूर्ण रूप में अर्क निकाल लें। औषधियों का सम्पूर्ण सार निकलने पर जब ऊपर की हण्डी में किट्ट मात्र शेष रह जाय तब सन्धिबन्धन खोल करके निम्न पात्रस्थ औषधि सार (अर्क) को ग्रहण करें। इसे छान करके स्वच्छ शीशी में भर करके सुरक्षित रख लें। यह औषधि सिद्ध हो गई है।

मात्रा—१॥ से ३ तोले तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय पीने के लिए दें।

उपयोग—इस प्रयोग के सेवन से रोगी को विरेचन हो करके रोग का निवारण होता है। अधिक मात्रा में देने से बहुत विरेचन होने लगते हैं; अतएव इसे उचित मात्रा में ही देना इष्ट है। रोगी की अवस्था, बल आदि को विचार करके ही इसको सेवन कराना चाहिए। उपान्त्र शोथ रोग में प्रायः आतुर को मलावरोध हो जाता है। इससे रोग की वृद्धि होती है। ऐसी अवस्था में इस अर्क का प्रयोग करने से उदरगत सञ्चित मल बाहर निकल जाता है। फलतः आतुर को स्वास्थ्य-लाभ का अनुभव होने लगता है।

(२) पथ्यादि चूर्ण

छोटी हरड़ १० तोले, नवसादर १ तोला, भुना हुआ श्वेत जीरा, शुण्ठी, सोंचर लवण, कलमी शोरा, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, बड़ी इलायची, काली-मरिच—प्रत्येक द्रव्य २॥-२॥ तोले, घी में भुनी हुई हींग ३ माशे और छोटी पिप्पली ६ माशे ले करके, इनका वस्त्रछन चूर्ण बना सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—३-३ माशे चूर्ण को भोजन के पश्चात् खा करके ऊपर से उष्ण जल पीवें। इसे भोजनोपरान्त दोनों समय प्रयोग करें।

(३) शंखादि प्रयोग

शंख भस्म १ माशा, घृत में भुनी हुई हींग २ रत्ती, सैंधव लवण, शुण्ठी, काली मरिच और छोटी पिप्पली—प्रत्येक ४-४ रत्ती, भुना हुआ सहिजन का गोंद ६ रत्ती लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर सबको एकत्र सम्मिश्रण करके, उष्ण जल के साथ दें। यह एक मात्रा है।

(४) उपान्त्र शोथहर प्रलेप

बकरे की मेदस् (चर्बी) ११ तोले और अशुद्ध पारद १ तोला—इन दोनों को पत्थर के खरल में एकत्र डाल करके, नीम के दण्डे से सूर्य के ताप में घोटें। अच्छी प्रकार से घुटाई होने पर जब यह मिलकर एकाकार हो जाय तो इसे रोगी के उदर के दक्षिण भाग में लेप लगा दें और उसके ऊपर बंगला ताम्बूल पत्र रख करके, वस्त्र से बान्ध दें। तत्पश्चात् तवे के ऊपर रूई वा वस्त्र का खण्ड उष्ण करके

उसकी सेंक दें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दोनों समय इस लेप को लगा करके सेंकना चाहिये।

उक्त प्रकार से औषधि योजना करके हमने उपान्त्र शोथ के अनेक आतुरों को स्वस्थ किया है; जो कि अभी तक स्वस्थ अवस्था में हैं।

कुमार्यासव (शाङ्गंर धरोक्त) इस रोग में उपयोगी है। यदि कुछ दिन तक निरन्तर कुमार्यासव का प्रयोग किया जाय तो प्रकृत व्याधि में अच्छा लाभ होता है।

उपान्त्र शोथ रोग में पथ्यापथ्य—पुराने शालि चावल और पुराने साठी चावलों का भात, मूंग की दाल, अरहर की दाल, परवल, लौकी, तोरई आदि शाक, गेहूं की रोटी, फलों में—अङ्गूर, द्राक्षा, सन्तरा, मौसमी, अनारदाना आदि, गौ का दूध, मट्ठा, जीरा, शुष्ठी, हरड़, आदि उपयोगी पदार्थों का सेवन करना अच्छा है। इनको उचित मात्रा में प्रयोग करना उत्तम है।

आलू, चना, आदि विष्टम्भक पदार्थ, सरसों का शाक, लालमरिच आदि विदाहक पदार्थ, पर्युषित आहार, मलिन जल का सेवन, दूषित भोजन, अपवित्र वायु मण्डल में निवास, आलस्य युक्त रहना आदि अहितकर होने से त्याज्य हैं।

अथ-व्रण-शोथादि-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३४॥

व्रणशोथ-नाषक उपाय

१—अङ्कोल की जड़ को स्वच्छ जल से धो करके शिला पर पीस लें। इसे पानी के साथ अच्छे प्रकार घोटकर सूक्ष्म बना लें। जब यह घुटने पर लेप लगाने योग्य हो जाय; तो इसे तवे के ऊपर उष्ण करके व्रण शोथ पर लेप लगा दें। यह लेप व्रण शोथ (गिल्टी) को शान्त करता है। शरीर के किसी भी प्रदेश में होने वाले व्रण शोथ (गिल्टी) को शान्त करने के लिए उपयोगी है। अनुभूत है।

२—घृतकुमारी (घीग्वार) के पत्र को मध्य भाग से चीर करके उसके ऊपर अल्प लवण का चूर्ण डाल दें और इसे गर्म करें। सह्य उष्ण रहते हुए ही इसको व्रण शोथ के ऊपर रख करके पट्टी बाँध दें। इस विधि से दिन और रात्रि में ३-४ बार बांधना चाहिए। व्रण शोथ के लिये अत्युपयोगी उपाय है।

व्रण रोपण प्रयोग (घाव भरने के लिये)—

१—निम्बादि प्रलेप

नीम के पत्रों का रस ४० तोले, गौ का घी १० तोले, देशीय मधूच्छिष्ट (मोम) २ तोले और रस कर्पूर १ तोला लें। प्रथम निम्ब रस और घृत को कड़ाही में एकत्र डाल करके मन्दाग्नि पर पकावें। जब नीम का रस और घी, ये दोनों पक करके औषधि कुछ गाढ़ी हो जाय, तो इसमें मोम मिला करके छान लें और शीतल होने पर इसमें रस कर्पूर मिला करके एक दिन उत्तम घुटाई करके शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—यह बाह्य प्रयोग है। इसे व्रण के ऊपर लेप लगावें। इस लेप के लगाने से सर्व प्रकार के नवीन और पुरातन व्रणों (घावों) का रोपण होता है। यह विषाक्त घावों को विषहीन करके भर देता है।

२—व्रणामृत प्रलेप

सिन्दूर, भुना हुआ तुत्थ और रस कर्पूर–प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, मुर्दासिंग और पपड़िया कत्था—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे, छोटी इलायची के बीज ३ माशे और मेंहदी के पत्र २॥ तोले लेकर समस्त औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एकत्र मिला लें। इस चूर्ण का जितना भार हो, उतना ही १०८ बार जल से धोया हुआ गौ का घृत सम्मिश्रण करके १८ घण्टे मर्दन करके शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—व्रणामृत प्रलेप को समस्त प्रकार के व्रणों पर लगाया जाता है। इसे दिन और रात्रि में १-२ बार लगावें। प्रतिदिन एक बार नीम के पत्रों को जल में पका करके उस जल से घाव को धोने के पश्चात् व्रणामृत प्रलेप को लगाना चाहिए। सपूयव्रण तथा उपदंश जनित व्रण को नीम के पत्रों से पकाये हुए जल से धो करके शुष्क वस्त्र द्वारा पोंछ करके इस लेप को लगा देना चाहिये। यह लेप असाध्य व्रणों को भी स्वस्थ बना देता है। सभी प्रकार के व्रणों को भरने के लिए अमृतवत् हितकर है। अनुभूत है। हमारे अनुभव के अनुसार व्रणामृत प्रलेप सम्पूर्ण प्रकार के घावों के लिए अव्यर्थ-उत्तम प्रयोग है।

सुषुम्ना व्रण नाशक प्रयोग—शरीर में मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त मेरुदण्ड गत नाड़ी को सुषुम्ना नाम से बोला जाता है। इस नाड़ी में कहीं पर व्रण होने पर निम्नांकित औषधियों का प्रयोग करिये—

१—मूषककर्णी (मूसाकन्नी) औषधि को जल के साथ शिला पर सूक्ष्म पीस करके लेप लगाने के योग्य बना लें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने योग्य बन जाय; तो व्रण पर पूर्ण रूपेण आ सके ऐसा एक वस्त्र गोलाकार में काटकर उसके ऊपर इस लेप को लगा दें और इसे अग्नि पर सेंक करके व्रण के ऊपर चिपका दें। ऐसा करने पर यह लेप जहां लगाया जाता है वहां तुरन्त चिपक जाता है।

गुण—यह प्रलेप एक ही वार के लगाने पर अच्छा लाभ करता है। व्रण के ऊपर चिपक जाने के पश्चात् उसे स्वस्थ बना देता है। मेरुदण्ड में होने वाला व्रण प्रारम्भ से ही कष्ट साध्य होता है। उसमें प्रयत्न करने पर भी अनेक वार सफलता नहीं होती। परन्तु इस प्रलेप को लगाने से लाभ होता है। पाश्चात्य चिकित्सा द्वारा असाध्य और जीवन से निराश हुए मेरुदण्ड व्रण के अनेक रोगियों को इस प्रलेप ने स्वस्थ किया है।

२—मूषककर्णी १ से २॥ तोले तक और काली मरिच ११ दाने—इन दोनों को जल के साथ सूक्ष्म पीस करके कल्क बना लें और उष्ण जल के साथ रोगी को खिला दें। मेरुदण्ड के व्रण में यह अत्युपयोगी है। उक्त प्रलेप के साथ-साथ इस कल्क को खिलाना चाहिए। इसे ७–८ दिन तक निरन्तर सेवन करें।

३—इस रोग में "नागार्जुनी" और "शंखपुष्पी" ये दोनों ही लाभप्रद हैं। इनका कल्क बना कर खाने और लेप लगाने से अच्छा हित होता है।

नाड़ीव्रण (नासूर) के लिए उपयोगी प्रयोग

१—देशीय हरिद्रा (हल्दी) को भूबल में रख दें। जब यह पककर निर्धूम हो जाय तब इसको अग्नि से बाहर निकाल लें। यह भुनी हुई हल्दी ६ भाग और तुत्थ

एक भाग लेकर इन दोनों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, एकत्र मिलाकर, शीशी में भर सुरक्षित रखिए।

प्रयोग करने की विधि—प्रथम नाडीव्रण (नासूर) को कारबोलिक साबुन से स्वच्छ धो करके उसे फलालेन के वस्त्र से शुष्क कर लें। इसके पश्चात् उसमें शुद्ध सरसों का तैल लगा दें और उक्त चूर्ण को व्रण के अन्दर पूर्णतया भर दें। जितना चूर्ण आ सके उतना भरें। इससे २–३ दिन के पश्चात् उस स्थान के शुष्क होने पर वहाँ दरार सी बन जाती है। उस दरार के ऊपर पूर्ववत् तैल लगा कर उसमें पुनः चूर्ण को भर दें। जब-जब वहाँ दरार सी पड़ती जायं, तब-तब सरसों का तैल लगाकर उनमें उक्त औषध चूर्ण को भरते रहें।

इस औषधि को लगाते समय यह ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि औषधि लगाने के पश्चात् उस स्थान पर जल का स्पर्श नहीं होने दिया जाय। यदि व्रण में पूय (मवाद) उत्पन्न हो जाय तो जल का उपयोग किया जा सकता है; अन्यथा नहीं। इसके साथ ही रोगी को दूध, दधि और चावल न दिया जाय।

गुण—इस प्रयोग के करने से सुखसाध्य, कष्टसाध्य, साध्य और असाध्य नाडीव्रण रोग निर्मूल हो जाता है। जिन रोगियों को डाक्टरों ने असाध्य घोषित करके त्याग दिया हो; ऐसे नाडीव्रण के निराश रोगी भी स्वस्थ हो जाते हैं। यह साधु प्रदत्त प्रयोग है और "शतसोऽनुभूतः" है।

२. **सिंदूरादि प्रयोग**—विशुद्ध सिन्दूर, शुद्ध सरसों का तैल और स्त्री के केश-प्रत्येक द्रव्य आध-आध पाव और कर्पूर १ रत्ती लें। इन समस्त द्रव्यों को एक कड़ाही में एकत्र डालकर अग्नि पर पकावें। पकने पर जब केश जल जांय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार लें और एक दिन घोट करके, शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इसे नाडीव्रण पर लगाइये और इसकी वर्त्तिका (बत्ती) बनाकर व्रण के अन्दर रखिये। रोग के निर्मूल होने तक कुछ दिन निरन्तर इसका प्रयोग करें। यह नाडीव्रण तथा सपूयव्रणों को स्वस्थ करता है। अव्यर्थ प्रयोग है।

३. कुकरौंधे की जड़ का रस निकाल कर उसे नाडीव्रण में प्रातः सायं दिन में दोनों समय डालना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिन तक इसे डालने से नाड़ीव्रण (नासूर) रोग में लाभ होता है।

४. **धूम्रपान प्रयोग**—अर्क (मदार) की जड़ एक छटांक, एरण्ड की जड़ दो छटांक और हिंगुल १ तोला लें। इन तीनों का सूक्ष्म चूर्ण बना करके एकत्र सम्मिश्रण करें। इसके उपरान्त एक तोला गुलाब का इत्र चूर्ण में डाल करके अच्छी प्रकार से घोटें। १२ घण्टे तक मर्दन करके इस सम्पूर्ण औषधि की १६ गुटिका बना करके, शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इसकी एक वटी को चिलम में रख करके नाडीव्रण के रोगी को धूम्रपान करावें। इसे शरीर में पचाता जाय—अर्थात् धूम्रपान इस प्रकार से करना चाहिए कि जिससे रोगी के शरीर पर पूर्ण रूपेण इसका प्रभाव होवे। इसे प्रातः समय दिन में एक ही बार सेवन करें और प्रतिदिन पीना चाहिये। इस धूम्रपान के सेवन करने से नाडीव्रण (नासूर), सन्धिवात (गठिया) और उपदंश—इन रोगों में लाभ हो जाता है। परीक्षित है।

वक्तव्य—इस धूम्रपान को करने के पूर्व रोगी को देशीय घृत का गण्डूष कराना चाहिए। रोगी को चाहिए कि वह अपने मुख में कुछ घृत डाल करके १० से २५ मिनट तक उसे मुख में ही रहने दें। तत्पश्चात् उसे कण्ठ से नीचे उतार ले अथवा मुख से बाहर ही निकाल देना चाहिए। इस क्रिया को करने के पश्चात् धूम्रपान करना अच्छा है। इससे दान्तों की सुरक्षा बनी रहेगी। अन्यथा दान्तों के गिरने की आशंका रहती है।

धूम्रपान सेवन काल में—घृत, दूध, भात तथा चने की रोटी आहार में दें। इसके अतिरिक्त और कुछ खाने के लिए न दिया जाय।

अभिघात (चोट) में तैल—

(१) निम्बादि तैल

नीम के पत्र ३० तोले, बड़ी हरड़ की छाल, बहेड़े की छाल, आमले की छाल, गुग्गुलु, राल, शिलारस, गन्धबिरोजा, और मोम—इन नौ औषधियों को पांच-पांच तोले, निर्गुण्डी के पत्र १५ तोले और तिलों का तैल एक सेर लें।

निर्माण विधि—नीम के पत्र, हरड़, बहेड़ा, आमला और निर्गुण्डी के पत्र-इन पांच औषधियों को मोटा-मोटा कूट करके चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को पांच सेर जल में डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके सूक्ष्म वस्त्र से छान लें। इस क्वथित जल एवं तैल को एक लोहे की कड़ाही में भरकर चूल्हे के ऊपर चढा दें। इसमें राल आदि पूर्वोक्त चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण और मोम आदि सम्पूर्ण औषधियों को मिला दें और मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। तैल-मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें और तुरन्त छान लें। इसके उपरान्त कार्बोलिक एसिड २॥ तोले और कर्पूर ५ तोले—इन दोनों द्रव्यों को एक शीशी में भर लें। जब यह औषधि शीशी में जल बन जाय; तो इसे तैल में मिला दीजिये और शीशी में सुरक्षित रखिये।

उपयोग—यह निम्बादि तैल चोट, व्रणऔर आघातज रक्त स्राव के लिए उत्तम है। किसी भी चोट से मांस का कुचल जाना, रुधिर निकलना, मांस कट करके घाव हो जाना, व्रण में पूय (मवाद=पीप) उत्पन्न होना, व्रणरोपण (घाव का भरना) न होना, जले हुए मांस में पूयोत्पत्ति का होना, तलवार आदि के लगने से रक्त की धारा का निकलना आदि में अद्भुत लाभप्रद है। इससे रुधिर स्राव तुरन्त रुक

जाता है। समस्त प्रकार के व्रणों को भर करके स्वस्थ बनाता और घाव की दुर्गन्ध को समाप्त करता है। अग्निदग्ध पर अत्युपयोगी है। शिर के फोड़ों के लिए लाभकर है। यह प्रयोग श्रीगोपालजी ठाकुर का है और हमारे द्वारा अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

मूढ़मार में अव्यर्थ मोमिया तैल—

(२) भल्लातकादि प्रलेप

पुष्ट मोटे भिलावे ४० तोले, गुग्गुलु २० तोले, तिलों का तैल, राल और कुचला – प्रत्येक द्रव्य १०–१० तोले, शुण्ठी, काली मरिच, पिप्पली, लवङ्ग, अश्वगन्ध और हिंगुल—प्रत्येक द्रव्य २--२ तोले लें। तैल के अतिरिक्त शेष द्रव्यों को कूट करके एक घड़े में एकत्र डाल दें। उसी में तिलों का तैल भी मिला दें। इसके पश्चात् पातालयन्त्र से तैल निकाल लें। पाताल यन्त्र से निकले हुए तैल को छान कर एक लोहे की कड़ाही में डाल करके मन्दाग्नि पर पकावें। जब यह पकने पर कुछ गाढ़ा हो जाय तब अग्नि से नीचे उतार लें और घोट करके रख लें। शीतल होने पर यह जम करके मोम के समान कड़ा हो जाता है।

उपयोग इस प्रयोग को मर्दन करने और खाने के उपयोग में लिया जाता है आवश्यकता के अनुसार इसे उचित मात्रा में ले करके, तिलों के तैल अथवा सरसों के तैल में सम्मिश्रण कर—अग्नि पर उष्ण करें। दोनों के एकाकार में होने के पश्चात् इसे मूढ़मार (गुप्त चोट) के ऊपर लगाकर हाथ से धीरे-धीरे वहाँ पर मर्दन करें। वक्षःस्थल, हाथ, पैर आदि शरीर के किसी भी अवयव में आयी हुई गुप्त चोट में इसे तैल में साथ पका कर सहने योग्य उष्ण को पीड़ा स्थान पर मलना चाहिये और मन्द अग्नि से सेंकना चाहिये।

यह मूढमार (गुप्त आघात), रक्त का सञ्चित होना, वात जनित शारीरिक पीड़ा वा ऐंठन का होना, कटि पीड़ा, पार्श्वशूल, सन्धिशूल आदि अनेक रोगों में अच्छा लाभ करता है। इन रोगों में इसे मर्दन करने के साथ-साथ २ रत्ती की मात्रा में १ तोला घृत के साथ मिला करके रोगी को खिलाना चाहिए। खाने के लिए इसे २ रत्ती से अधिक प्रयुक्त न करें।

जिन रोगियों के शरीर में गुप्त चोट लगने से अधिक दिनों से पीड़ा चला आ रही हो और अनेक उपाय करने पर भी लाभ की प्रतीति न हुई हो; उनके लिए यह औषधि अत्युपयोगी है। यह प्रयोग अव्यर्थ है। यह प्रयोग श्री गोपाल जी आयुर्वेदाचार्य का है और हमारे द्वारा अनेक बार का परीक्षित है।

(३) अस्थिसन्धान प्रलेप

एलुवा, लाल फिटकरी, हीरा बोल, गुग्गुलु, सरेश, मैदा की लकड़ी, उसारा रेवन, सज्जीक्षार, माजुफल, आमा हलदी और पठानी लोध—प्रत्येक द्रव्य १०–१० तोले ले करके इनका सूक्ष्म चूर्ण बना कर शीशी में भर सुरक्षित रख लें। आ० नि० मा०

उपयोग—आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रा में इस चूर्ण को लेकर धत्तूर

के पत्रों के रस में मन्दाग्नि पर पका कर हलुवा के सदृश बना लें और जिस स्थान पर लगाना इष्ट हो; वहाँ पर इसे लगा कर उसके ऊपर धुनी हुई स्वच्छ रुई चिपका दें और पट्टी बान्ध दें। धत्तूरे के पत्रों के रस में पका कर लेप लगाने से इसका शीघ्र प्रभाव होता है। उसके अभाव में उष्ण जल के साथ मिला करके पूर्वोक्त विधि से बांधना चाहिए।

एक बार का लेप ४८ घटे तक बन्धा रहने दें। इसके पश्चात् उसे खोल देना इष्ट है। लेप को सावधानी के साथ हटा कर उस स्थान को धोना चाहिए। यदि लेप खोलने पर उस स्थान की त्वचा लाल वर्ण प्रतीत हो; तो १२ घण्टे तक दूसरा लेप नहीं लगाना चाहिए। तब तक उस स्थान को आवरणहीन रखना उत्तम है।

इसके २-३ लेप लगाने पर अस्थिभग्नता (हड्डी का टूटना), भयङ्कर आघात का होना, लाठी आदि शस्त्र के आघात से शरीर में ग्रन्थि वा बन जाना, शोथ का होना अथवा मांस का कुचल जाना, और आघात जनित वेदना आदि दोषों में अच्छा लाभ होता है। यह प्रलेप बेलाडोन आदि प्लास्तर से अधिक उपयोगी तथा सत्वर लाभप्रद है। उक्त दोषों में इसका प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है। यह सहस्रों बार का अनुभूत है।

अग्नि से जलने पर —

(४) अग्निदग्धहर प्रयोग

कच्ची राल ५ तोले को वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसे अलसी के तैल २० तोले में मिला, कांसी की स्थाली में डाल करके, १५ तोले जल मिला दें और हाथ से मर्दन करें। पांच मिनट तक मर्दन करने के उपरान्त इसके जल को ऊपर से शनैः शनैः नितार दें। सम्पूर्ण जल के निकलने पर पुनः १५ तोले जल मिला कर पाँच मिनट तक हाथ से मर्दन करके पानी को बाहर निकाल दें। इस प्रकार से १०१ बार जल द्वारा औषधि को मथना चाहिए। १०१ बार जल से मन्थन करके इसे शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें। यह औषधि सिद्ध हो गई है।

उपयोग—जिस व्यक्ति का शरीर अग्नि से जल गया हो। कपोत (कबूतर) पक्षी के पखों से शरीर के जले हुए स्थान पर इस औषधि को लगावें। दिन और रात्रि मे ६ बार प्रयोग करें। आवश्यकता होने पर अग्निदग्ध स्थानों पर इतना मोटा लेप लगावें कि जिससे वह स्थान पूर्णरूपेण ढक जाय। आठ प्रहर में १० से १२ बार तक उक्त लेप को लगाया जा सकता है। २४ घण्टे में एक बार नीम के पत्रों में पकाया हुआ जल शीतल करके, उससे व्रणों को धोना उत्तम है।

इस लेप के लगाने पर तुरन्त शान्ति हो जाती है। रोता हुआ रोगी हसने लगता है। यह व्रण को शीघ्र भरता है। इससे उस स्थान पर होने वाला श्वेत चिह्न भी नहीं होता।

भगन्दर रोग

भगन्दर—वृषण और गुदा के मध्यवर्ती स्थान में एक पिडका हो जाती है। जब तक यह पक कर नहीं फूटती तब तक इसे भगन्दरी पिडका और फूटने के उपरान्त भगन्दर कहते हैं। इस रोग में निम्नाङ्कित प्रयोग लाभप्रद है—

(५) तुत्थादि भस्म

तुत्थ भस्म २० तोले और शुद्ध सोमल (संखिया) ६ माशे लेकर, इन दोनों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् रीठे के जल में एक दिन खरल करके, टिकिया को शुष्क करके शराव सम्पुट बना करके, कुक्कुटपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोल कर भस्म को लेकर खरल करके शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—आध रत्ती भस्म (=४ चावल) को घृत ६ माशे में मिला कर प्रातः काल दिन में केवल एक बार सेवन करावें।

उपयोग—यह भस्म भगन्दर रोग में अत्युपयोगी है। उक्त मात्रा तथा अनुपान के अनुसार इसको १५ दिन तक निरन्तर सेवन कराने के पश्चात् १५ दिन तक बन्द करना चाहिये। इसके उपरान्त पुनः पन्द्रह दिन पर्यन्त प्रयोग करके उतने ही समय तक त्याग दें। इस प्रकार से २-३ आवृत्ति करने पर कष्ट साध्य भगन्दर रोग भी समूल विनष्ट हो जाता है।

उक्त प्रकार से १५—१५ दिन के दो कल्प कराकर बन्द कर देने पर भगन्दर के एक निराश हुए सैनिक रोगी को एक वर्ष में पूर्ण लाभ हो गया था।

कफ वात प्रधान कुष्ठ रोग में भी यह अत्युपयोगी है। इसके अतिरिक्त नवीन और पुराने कष्टसाध्य उपदंश (आतशक) रोग को नष्ट करती है। उपदंश तथा फिरंग रोग में इसे २ से ६ रत्ती तक की मात्रा में पाँच तोले मक्खन में रख करके खिला दें। कुछ समय के उपरान्त पांच तोले मक्खन वा घृत और सेवन करावें। रोगी को जब-जब शुष्कता की प्रतीति होने लगे, तब-तब उसे नवनीत अथवा घृत देते रहें। इसके अतिरिक्त आतुर को अन्य कुछ भी आहार न दें। यह औषधि केवल प्रातःकाल ही दें। जिस दिन औषधि सेवन कराई जाय उस दिन रोगी को सायं काल पर्यन्त मक्खन वा घृत के अतिरिक्त और कुछ भोजन न दें। सायं समय रोगी की इच्छा के अनुसार आहार दें। औषधि सेवन कराकर रोगी को २४ घण्टे तक निद्रा न लेने दें।

इस विधि से पथ्य पूर्वक इस औषधि की एक दिन की एक ही मात्रा से उपदंश—और फिरंग व्याधि का उन्मूलन हो जाता है। उपदंश चाहे कितना ही भयंकर क्यों न हो वह एक ही मात्रा से उसी प्रकार नष्ट हो जाता है; जिस प्रकार अग्नि से जलने पर बीज की अंकुरोत्पादन शक्ति समाप्त हो जाती है।

द्वितीय विधि—इस भस्म को निर्माण करने की दूसरी विधि निम्नांकित है—

तुत्थ पांच तोले लें। रीठे की त्वचा एक पाव का वस्त्रछन चूर्ण बना करके, जल के साथ पीस कर उसकी लुगदी बना लें। इस कल्क (लुगदी) में उक्त तुत्थ को रख कर, उसे धूप में सुखा कर उसके ऊपर सात वस्त्र मिट्टी करके, शुष्क करें। वस्त्र मिट्टी के सूखने पर डेढ़ सेर उपलों में रख कर अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर तुत्थ भस्म को ग्रहण कर, खरल करके, शीशी में भर सुरक्षित रख लें।

इसकी मात्रा और अनुपान पूर्ववत् ही हैं।

अथ-कुष्ठादि-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३५॥

कुष्ठ रोग का कारण—दूध तथा नमक, मीठा एवं नमक आदि विरोधी अन्न-पान का सेवन करने से, दही, मछली, नमक और खट्टे पदार्थों को अधिक मात्रा में सेवन करने से, भोजन के पचे बिना ही पुनः भोजन करने से, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आये हुए वेगों को रोकने से, भोजन करने के उपरान्त तुरन्त व्यायाम, भ्रमण आदि परिश्रम करने से, दिन में शयन करने से, माता, पिता, गुरु, विप्र आदि पूजनीय व्यक्तियों का अपमान करने तथा पापाचरण आदि अनेक कारणों से कुष्ठ व्याधि होती है।

कुष्ठ रोग के लक्षण—शरीर में अधिक रूक्षता वा स्नेह का होना, अधिक स्वेद का आना अथवा पसीने का सर्वथा अभाव होना, शरीर का वर्ण विकृत हो जाना, देह में जलन और कण्डू (खुजली) की उत्पत्ति, त्वचा की स्पर्श शक्ति का अभाव, शरीर में सुई चुभने के समान वेदना का होना, रुधिर का वर्ण काला हो जाना आदि लक्षणों से कुष्ठ (कोढ़) रोग को जाना जाता है।

कुष्ठहर उपाय—

(१) उदयभास्कर रस

सोमनाथी ताम्र भस्म १० तोले, काली मिर्च का वस्त्रछन चूर्ण ५ तोले और शुद्ध वत्सनाभ विष का वस्त्रछन चूर्ण २ तोले लेकर सबको खरल में एकत्र डाल करके ३ घन्टे घोटें। इसके पश्चात् पीपल वृक्ष के पत्रों के रस के साथ एक दिन मर्दन करके १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर सुरक्षित रखलें।

मात्रा और अनुपान—१--१ वटी, मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ दें।

गुण—यह रस कुष्ठ और रक्त विकार के लिए अत्युपयोगी है। इस रस के सेवन से गलित कुष्ठ, मण्डल कुष्ठ आदि समस्त कुष्ठों का नाश होता है। अनुभूत है।

(२) कुष्ठघ्न प्रयोग

ताम्र भस्म, अपामार्गक्षार, यवक्षार तथा सर्जक्षार (सोडा), इनको समभाग लेकर एकत्र मर्दन करके शीशी में भरकर, रखिये।

मात्रा और अनुपान—१ से २ रत्ती तक मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ, प्रातः, मध्याह्न और सायं समय दें। भोजन करने के पूर्व ही सेवन करावें।

पथ्यापथ्य—इस औषधि को सेवन करते समय केवल दूध ही पथ्य मे देना इष्ट है। मांस,मच्छली, नमक, खटाई, जल आदि पदार्थों का सेवन करना अहितकर है।

गुण—यह योग समस्त प्रकार के कुष्ठों को निर्मूल करता है। साध्य और असाध्य कुष्ठ को शान्त करने के लिए लाभप्रद है। इसे निरन्तर दो मास तक सेवन करने से भयानक कुष्ठ में भी लाभ हो जाता है। भगन्दर के लिए भी हितकर है।

(३) वावची चूर्ण

वावची (वाकुची) का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शीशी में भरकर रखिये।

मात्रा और अनुपान—½ से १ तोला तक चूर्ण को खा करके ऊपर से उष्ण जल पीना चाहिए। यह औषधि केवल प्रातः काल दिन में एक बार सेवन करें। औषधि खा करके पीछे ३ घन्टे तक रोगी सूर्य के ताप में बैठे। इस प्रकार नियमित रूप से ४१ दिन तक औषधि का सेवन करने पर समस्त प्रकार के कुष्ठों में लाभ होता है। परीक्षित है।

इस प्रयोग को सेवन कराते समय रोगी को केवल दूध का सेवन कराना उत्तम है।

(४) महामंजिष्ठादि क्वाथ

मजीठ, नागर मोथा, कुटज की छाल, गुडूची (गिलोय), कूठ, शुण्ठी, भारंगी, छोटी भटकटैया, वचा, नीम के अन्दर की छाल, हल्दी, दारु हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला, परवल के पत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडङ्ग, विजयसार, चित्रक, शतावर, त्रायमाणा, पिप्पली, इन्द्र जौ, अडूसा के पत्र, देवदारू, भृङ्गराज, पाठा, खैर, लाल चन्दन, निशोथ, वरुण वृक्ष की छाल, चिरायता, वाकुची, अमलताश का मज्जा (गूदा), सिहोरे की छाल, बकायन की छाल, करंज की गिरी, अतीस, उशीर, इन्द्रायण मूल, अनन्तमूल और पित्तपापड़ा—इनको समभाग लेकर यवकुट चूर्ण बनाकर रख लें। शा० सं०

इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में ले करके १६ तोले जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके सूक्ष्म वस्त्र से छान लें। इस छने हुए जल में छोटी पिप्पली का चूर्ण १ माशा और शुद्ध गुग्गुलु १ माशा मिलाकर पिला दें। इस प्रकार प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करावें।

गुण—यह क्वाथ १८ प्रकार के कुष्ठ रोग, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद, अङ्गों की शून्यता, पक्षाघात, मेदोवृद्धि, आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। रक्त की शुद्धि करने के लिए अत्युपयोगी औषधि है। उक्त रोगों में इसे अकेला अथवा अनुपान रूप में सेवन किया जाता है। भयंकर कुष्ठ में धैर्यपूवक कुछ दिन तक नियमित रूप से इसका सेवन करने पर आशातीत लाभ होगा।

(५) कुष्ठघ्न रसायन

रजत भस्म और हरिताल भस्म १-१ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म, और प्रवाल भस्म ३-३ माशे ले करके सबको खरल में एकत्र डालकर एक दिन स्थिरता के साथ घोट करके, शीशी में भर सुरक्षित रखिये।

मात्रा और अनुपान—१-१ रत्ती, प्रातः सायं दिन में दोनों समय मलाई अथवा घृत में मिला करके चटायें। ऊपर से मंजिष्ठादि क्वाथ पिलायें।

गुण—यह रसायन सिध्ममहाकुष्ठ और गलित कुष्ठ को नष्ट करता है। जो

कुष्ठ श्वेत वर्ण का अथवा ताम्र वर्ण का होता है, जिसको रगड़ने से धूलि के सदृश चूर्ण निकलता है और लौकी के पुष्प के तुल्य होता है उसे सिध्मकुष्ठ कहा जाता है। यह कुष्ठ प्रायः वक्षःस्थल में होता है। यह कुष्ठ जिस रोगी के शरीर में हो जाये; उसे इस प्रयोग के सेवन से लाभ होता है।

जिस रोगी के हाथ तथा पैरों की अंगुलियाँ गलने लगी हों अथवा सम्पूर्ण शरीर गलने लगा हो; उस रोगी के लिए यह रसायन अत्युपयोगी है।

(६) तालकेश्वर रस

शुद्ध हरिताल ४ तोले और वत्सनाभविष १ तोला—इन दोनों द्रव्यों को एकत्र मर्दन करके, अङ्कोल मूल के रस में १२ घंटे तक दृढ़ता से घोंट करके इसकी टिकिया बना लें और धूप में शुष्क कर लें। इसके पश्चात् सात वस्त्र मिट्टी की हुई एक मिट्टी की हण्डी में नीचे पलास वृक्ष की भस्म (अभावे–अपामार्ग की राख) रखकर हाथ से दबा दें। उसके ऊपर उक्त सूखी टिकियों को रख करके ऊपर से पूर्वोक्त भस्म डालकर अच्छे प्रकार से दबा दें। तत्पश्चात् हण्डी के मुख को शरावे से ढक करके, वस्त्र मिट्टी द्वारा सन्धि बन्धन करें और सूखने पर इस हण्डी को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर मन्द, मध्यम और तीव्र विधि से क्रमाग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोल कर हण्डी के मध्य भाग में जो हरिताल भस्म है, उसे निकालकर तोल लें। चार तोले भस्म प्राप्त होगी।

मात्रा और अनुपान–२ से ३ रत्ती तक, बावची के तैल अथवा महामंजिष्ठादि क्वाथ के साथ प्रातः सायं दिन मे दोनों समय प्रयोग करे।

गुण—तालकेश्वर रस के सेवन से गलित कुष्ठ में सत्वर लाभ होता है। इस रस के सेवन के साथ ही रात्रि में शयन काल में चालमोंगरा का तैल वा गन्धक के तैल को मलना चाहिये। गलित कुष्ठ को नष्ट करने के लिए यह उत्कृष्ट अनुभूत प्रयोग है।

(७) हरिताल तैल

शुद्ध तबकी हरिताल और एरण्ड की गिरी—प्रत्येक १०-१० तोले लेकर दोनों को एकत्र मर्दन करें। उत्तम घुटाई करके कल्क बना लें। इसके पश्चात् सात वस्त्र मिट्टी की हुई शीशी मे इस कल्क को भर दें और लोहे के सूक्ष्म तारों की चालनी को शीशी के मुख पर अच्छी प्रकार से बाँध दें। तत्पश्चात् एक लोहे की कड़ाही अथवा मिट्टी की नांद के तले में ठीक मध्य भाग में एक ऐसा छिद्र बना ले जिसमें शीशी का कण्ठ आ सके। इस छिद्र में बोतल को विपरीत दिशा में—अधोमुख लगा दें और इसे एक चूल्हे पर चढ़ा दें। बोतल के मुख के नीचे एक शीशे वा चीनी मिट्टी का पात्र रख दें। तदुपरान्त शीशा के चतुर्दिक जंगली कण्डों को अच्छी विधि से चयन करें तथा अग्नि लगा दें। अग्नि शनैः-शनैः तीव्र दें।

इससे जब शीशी लाल हो जायगी, तो शीशीगत औषधि का तैल निकलकर

नीचे के पात्र में गिरने लगेगा। इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि शीशी का मुख और उसके नीचे रखा हुआ पात्र—इन दोनों को परस्पर मिला करके न रखिए। कुछ दूरी का अन्तर दे रखिये। स्वाङ्ग शीतल होने पर तैल को शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—इस तैल की आधी बिन्दु द्राक्षा में रख करके, गलित कुष्ठ के रोगी को खिला दें, ऊपर से मंजिष्ठादि अर्क पिला दें।

गुण—इस तैल के सेवन से असाध्य गलित कुष्ठी को भी लाभ होता है। दद्रु (दाद), कण्डू, अपरस, उपदंश, श्वेत कुष्ठ आदि रोगों को भी नष्ट करता है। इस औषधि को सेवन करते समय—गुड़, तैल, लवण, लालमिर्च तथा धूप का सेवन करना वर्जित है।

श्वित्रकुष्ठ नाशक उपाय

(८) शिवादिक्वाथ—शिव (आमला) और कत्था—इन दोनों को समभाग लेकर यवकुट चूर्ण बनाकर रखिए। इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में ले करके एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्द-मन्द अग्नि पर पकायें और पात्र का मुख ढक्कन से न ढकें। पकने पर जब चतुर्थांश जल शेष रह जाये तो अग्नि से नीचे उतारकर हाथ से मर्दन करके छान लें। इसमें ½ से १ तोला तक वाकुची का सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके रोगी को पिला दें। इस प्रकार कुछ दिन सेवन करने से शंख, चन्द्र और कुन्द के समान श्वित्रकुष्ठ नष्ट हो जाता है। परीक्षित है।

(९) अरणी कल्क

श्वेतपुष्प-अरणी वृक्ष की छाल १ तोला को दूध के साथ पीसकर कल्क बना लें। इसे दूध में मिला करके श्वित्रकुष्ठ के रोगी को पिला दें। प्रतिदिन इसी विधि से इसका सेवन करने से श्वित्रकुष्ठ निर्मूल हो जाता है। अनुभूत है।

(१०) नेत्रीय श्वित्रकुष्ठहर प्रलेप

वर्की हरिताल और वावची—इन दोनों को समान भाग ले करके सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ सूक्ष्म पीसकर लेप लगावें। इस लेप का उपयोग करने से नेत्रपटल (पलक) में होने वाला श्वेतकुष्ठ नष्ट हो जाता है। शतसोऽनुभूतः।

(११) पारदादि प्रलेप

पारा, गन्धक, तुत्थ, वर्कीहरिताल और वाकुची—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, मोम ६ माशे और सरसों का तैल २॥ तोले लें। प्रथम पारद और गन्धक को एकत्र मिलाकर मर्दन करें। जब यह घुटने पर कज्जल के तुल्य काला और सूक्ष्म हो जाय; तब इसमें तुत्थ, हरिताल और वाकुची—इनका वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर दृढ़ता से घोटें। तदुपरान्त तैल और मोम को कड़ाही में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब ये दोनों द्रव्य एकाकार में बन जावें तो इसे अग्नि से नीचे उतारकर इसमें कज्जली आदि पूर्वोक्त द्रव्यों को उत्तम प्रकार से मिला दें और १२ घंटे तक

घोटें। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर इसको शीशी में भरकर सुरक्षित रखिए।

उपयोग—इस प्रलेप को कुष्ठ स्थान पर लगा करके वहाँ हाथ से धीरे-धीरे मर्दन करें। तीन घंटे तक इस लेप को लगा रहने दें। इसके पश्चात् उष्ण जल से स्नान करना चाहिये। इसे सूर्योदय के पश्चात् केवल दिन में एक बार लगायें। यह प्रलेप श्वित्रकुष्ठ को समूल नष्ट करता है। यह कुष्ठ के चिह्नों में से दोषों का स्राव कराकर रोग को निर्मूल बना देता है। अनुभूत है।

(१२) उत्पलादि प्रलेप

उत्पल (कूठ), चकवड़ (पमाड़), सैंधव लवण, विडङ्ग और सरसों—इन पाँच द्रव्यों को समभाग लेकर काँजी के साथ सूक्ष्म पीसकर लेप लगाने से श्वित्रकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दद्रु रोग समूल नष्ट होता है। परीक्षित है।

(१३) तुत्थादि प्रलेप

तुत्थ, मल्ल (संखिया) और सुहागा—प्रत्येक द्रव्य आधा-आधा भाग, मूली के बीज और वावची—प्रत्येक १–१ भाग ले करके समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् कागजी निम्बू के रस में दो दिन तक मर्दन करके छोटी-छोटी वटी बना कर, छाया में शुष्क कर लें और शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें। इस वटी को निम्बू के रस अथवा सिरके में घिस करके कुष्ठ स्थान पर लेप लगावें। इस लेप को लगाने से सिध्म महाकुष्ठ (श्वेतकुष्ठ) निर्मूल होता है। यह प्रलेप शीघ्र लाभ प्रद है। सुपरीक्षित है।

(१४) चित्रकादि प्रलेप

चित्रक की छाल और वाकुची के बीज—इनको समान भाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को जल के साथ खरल करके लेप लगावें। इस लेप के साथ-साथ रोगी को "गन्धक रसायन" अथवा "हरिताल भस्म" का सेवन करावें। इस प्रकार से श्वित्रकुष्ठ में लाभ होता है।

दद्रु (दाद) की चिकित्सा—

(१) दद्रुगजकेशरी प्रलेप

कच्चा सुहागा, भुनी हुई फिटकरी और अशुद्ध गन्धक—प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला, रस कर्पूर ३ माशे और चीनी २ तोले लें। प्रथम सुहागा, फिटकरी और गन्धक—इनका वस्त्रछन चूर्ण बना कर रख लें। इसके उपरान्त केवल रसकर्पूर को खरल में डाल करके ३ घण्टे तक घोटें। जब यह उत्तम प्रकार से घुट जाय; तो इसमें पूर्वोक्त सुहागे आदि का सूक्ष्म चूर्ण डाल कर १२ घण्टे तक निरन्तर स्थिरता के साथ मर्दन करें। अच्छी घुटाई होने पर जब रसकर्पूर के साथ चूर्ण पूर्णरूप से मिल कर एकाकार हो जाय; तो इसमें चीनी मिला करके ३ घण्टे और घोटें और शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—प्रथम दद्रु (दाद) को किसी कड़ी वस्तु से घर्षण करके इस लेप को लगावें और लगाने के पश्चात् उस स्थान को हाथ की अंगुलियों से कुछ समय तक मलना चाहिये। इसे आवश्यकता के अनुसार [२४ घण्टे में] १–२ बार लगावें। उस स्थान को प्रतिदिन नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से धोना चाहिए। यह लेप कठिन से कठिन दाद को भी निर्मूल कर देता है। दद्रु को नष्ट करने के लिए अद्भुत प्रयोग है। एक बार के लगाने पर स्वयं रोगी को इसके विचित्र गुणों का बोध हो जाता है। परीक्षित है।

(२) दद्रुघ्न तैल

रत्नज्योति (रतनजोत) की छाल, सैंधव लवण और डली का चूना–प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला और तिलों का तैल १० तोले लें। रतन जोत की छाल को सूक्ष्म पीस करके उसमें लवण और चूना मिला कर जल के साथ घोट कर कल्क (लुगदी) बना लें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर जब ये तीनों द्रव्य सूक्ष्म पिस जायँ; तो इसे उक्त तैल के साथ एक लोहे की कड़ाही में डाल दें और मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। सावधानी के साथ पकावें। तीव्र-अग्नि देना इष्ट नहीं है। औषधि अधिक जलने न पाय। पाक होने पर अग्नि से नीचे उतार कर शीशी में भर कर रखिये।

उपयोग—तैल में नीचे स्थित जो गाद है; उसे दद्रु स्थान पर घर्षण करें और तत्पश्चात् तैल को लगा कर हाथ से धीरे-धीरे मलना चाहिए। दिन में एक बार नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से उस स्थान को धोना चाहिये।

इस तैल के लगाने से दाद कण्डू (खाज) आदि चर्मविकार अवश्य नष्ट होते हैं। कान में डालने से कर्णस्राव (कान का बहना) रुक जाता है। अनुभूत है।

(३) रालादि प्रलेप

राल, गन्धक, भुना हुआ सुहागा और फिटकरी—प्रत्येक द्रव्य १--१ तोला लेकर सबका वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में चार तोले गौ का घृत मिला कर एक दिन दृढ़ता के साथ घोट कर शीशी में भर कर सुरक्षित रखिये। इस लेप को लगाने से नवीन और पुराना दाद नष्ट हो जाता है। अनुभूत है।

(४) चक्रमर्दादि प्रलेप

चक्रमर्द (पमार) के बीज, लोनियां गन्धक, और सुहागा—समान भाग ले करके सबका वस्त्रछन चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् इस चूर्ण को चक्रमर्द के रस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा रस डालते हुए घुटाई करें। उत्तम घुटाई होने पर जब यह वटी बनाने योग्य बन जाय; तो बेर प्रमाण में गोली बना कर, छाया में शुष्क करके रखिए।

उपयोग—इस वटी को निम्बू के रस में घिस कर दाद पर लेप लगावें। औषधि

लगाने के उपरान्त रोगी २ घण्टे तक सूर्य के ताप में बैठे। इस लेप को एक दिन छोड़ करके तृतीय दिवस लगावें। ३ बार के लेप से दद्रु समूल नष्ट होता है। अनुभूत है।

कण्डू (खुजली) पामा (एक्झीमा) आदि रोग नाशक प्रयोग—

(१) कण्डू कण्टक

छोटी हल्दी, पलाश (ढाक) के बीज, वाकुची, काबुली बड़ी हरड़ और शुद्ध आमलासार गन्धक—प्रत्येक द्रव्य का पृथक्-पृथक् वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण २-२ तोले लेकर समस्त चूर्णों को एकत्र मिला लें और सम्पूर्ण औषधि की सात मात्राएं बना लें। इसकी एक मात्रा को साय काल एक मिट्टी के पात्र में आध पाव जल में भिगो कर ढक कर रख दें। बारह घण्टे तक भीगने के पश्चात् इसके जल को रोगी पीले। पात्र में नीचे जो औषधि शेष रह गई है उसमें सरसों का तैल मिला कर शरीर पर मर्दन करें। देह में औषधि लगा कर २—३ घण्टे पश्चात् नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से स्नान करें। इस प्रकार निरन्तर सात दिन तक औषधि सेवन करें।

पथ्य—इस उपचार काल में रोगी को खाने के लिए लवण के बिना बेशनी रोटी घृत के साथ दें।

गुण—कण्डू कण्टक के सेवन करने से शुष्क खाज और आर्द्र कण्डू का उन्मूलन हो जाता है। उक्त प्रकार सपथ्य औषधि सेवन से केवल सात दिन में रोग की जड़ कट जाती है। अनुभूत है।

(२) गन्धकादि चूर्ण

शुद्ध गन्धक, काली जीरी और स्वर्ण गेरू—प्रत्येक द्रव्य १--१ तोला लेकर सबका वस्त्रछन चूर्ण बना कर शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से २ माशा तक, दही के साथ सेवन करें। क्षुधा लगने पर केवल दहि का प्रयोग करें। इस प्रयोग से कष्ट साध्य कण्डू (खाज) भी शीघ्र नष्ट होती है।

(३) शिलादि प्रलेप

मनःशिला, तुत्थ, कलमी शोरा, और गन्धक—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे और पारद २ माशे लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लें। तत्पश्चात् शेष औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण कज्जली में मिला करके एक दिन सुदृढ़ मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने पर १०१ बार जल से धोये हुए तीन छटांक गौ के घृत में सम्मिश्रण करके शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

गुण—इस प्रलेप को खाज के स्थान पर लगा कर हाथ की अंगुलियों से धीरे-धीरे मर्दन करें और अल्प सेंक दें। दिन तथा रात्रि में इसे ३—४ बार लगावें।

इस प्रलेप का प्रभाव शीघ्र होता है। यह शुष्क तथा आर्द्र—दोनों प्रकार की कण्डू को समूल नष्ट करता है।

(४) सौभाग्यादि प्रलेप

अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, भैंसा गुग्गुलु और गन्धक—इन तीनों द्रव्यों को समान भाग में लेकर, सबका सूक्ष्म चूर्ण बना कर, जल के साथ सूक्ष्म पीस लें। जब यह गोली बनाने के योग्य सूक्ष्म हो जाय तो इसकी चणक प्रमाण में वटी बना कर छाया में शुष्क कर लें। उत्तम प्रकार से शुष्क होने पर शीशी में भर कर रखिये। इस वटी को जल के साथ घिस करके लेप लगाने से कण्डू (खाज), दद्रु आदि त्वचा के रोग नष्ट होते हैं। अनुभूत है। श्री राम कृष्ण जी सहारनपुर से प्राप्त।

(५) पामाहर प्रयोग

फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण १ तोला और अजा (बकरी) का दूध आध पाव—इन दोनों को एकत्र मिला दें। इससे दूध फट जाता है। इसको सारे शरीर पर मलना चाहिये। औषधि लगा करके तीन घण्टे तक स्नान न करें। स्नान करने की यदि इच्छा होवे; तो तीन घण्टे के उपरान्त उष्ण जल से स्नान करें। इच्छा न होने पर स्नान करना उचित नहीं है। यह प्रयोग पामा (एग्जीमा) को निश्चित नष्ट करता है। अनुभूत है। जिन व्यक्तियों के शरीर में शुष्क कण्डू (खाज) हो जाती है, उनके लिए यह प्रयोग अत्युत्तम है।

(६) सिन्दूरादि तैल

सिन्दूर, गुग्गुलु, रसोत, मोम और तुत्थ—प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला, सरसों का तैल एक पाव और एक सेर जल लें। प्रथम सिन्दूर, गुग्गुलु, रसोत और तुत्थ इन चार द्रव्यों को सूक्ष्म पीस कर जल के साथ कल्क बना लें। इस कल्क को तैल और जल के साथ एक लोहे की कड़ाही में एकत्र डाल करके मन्दाग्नि पर पकावें। जब तैल मात्र शेष रह जाय और जलीयांश पूर्णतया जल जाय तो कड़ाही में मोम को डाल दें। अच्छी प्रकार मोम के मिलने तक अग्नि पर रहने के पश्चात् कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार कर तैल को छानकर शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—यह तैल केवल लगाने के उपयोग के लिया जाता है। जिस स्थान पर लगाना इष्ट हो; वहाँ इस तैल को लगा करके हाथ से मर्दन करना चाहिए। इस तैल के लगाने से कण्डू (खाज), पामा (एग्जीमा) और कच्छु—ये चर्म विकार नष्ट हो जाते हैं। परीक्षित है।

(७) हरिद्रादि तैल

हल्दी का वस्त्रछन चूर्ण १ छटांक, सरसों का तैल एक पाव और अर्क (मदार) के पत्रों का रस एक सेर लें। हरिद्रा चूर्ण को जल के साथ पीस कर कल्क

(लुगदी) बना लें और एक लोहे की कड़ाही में समस्त द्रव्यों को डाल कर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। तैल मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार करके छान लें और शीशी में भर कर रख लें।

उपयोग—इस तैल को लगाने से कण्डू, पामा, विचर्चिका—ये सभी रोग निर्मूल हो जाते हैं। परीक्षित है।

(८) काशीशादि प्रलेप

काशीश, भुना हुआ तुत्थ और वर्की हरिताल—प्रत्येक द्रव्य १—१ तोला और नवसादर २ तोले लेकर सम्पूर्ण औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना करके काञ्जी अथवा निम्बू के रस में एक दिन मर्दन करके गोलियां बना, छाया में शुष्क कर, रख लें।

उपयोग—इस वटी को निम्बू के रस अथवा जल में घिस करके लेप लगावें। इस लेप को लगाने से कण्डू, योनिकण्डू, अण्डकोष, गुदा—इन स्थानों में होने वाली खुजली, बालकों की गुदा का पकना, (अहिपूतना रोग), अर्शांङ्कुर और शोथ; ये सभी विकार नष्ट होते हैं। इन सभी विकारों को शान्त करने के लिये अत्युपयोगी परीक्षित प्रयोग है।

(९) सैंधवादि प्रलेप

सैंधव लवण, हल्दी का चूर्ण, गौ का गोबर और मधु—इनको समान भाग में लेकर ६ घण्टे तक मर्दन करें। घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने योग्य सूक्ष्म बन जाय तो शीशी में भर कर रखिये। इस प्रलेप को लगाने से कण्डू (खाज), पामा (एग्जिमा) में अच्छा लाभ होता है। परीक्षित है।

(१०) सोमादि तैल

सोमा (वाकुची), हल्दी, दारु हल्दी, सहिजन के बीज, अमलताल के पत्र, कड़वा कूठ, करंज के बीज तथा पमार के बीज—प्रत्येक द्रव्य २—२ तोले लेकर, सब का सूक्ष्म चूर्ण बना लें और उसे जल के साथ पीस कर कल्क बना लें। यह कल्क (लुगदी), सरसों का तैल ६४ तोले और जल ३¼ सेर—इन समस्त द्रव्यों को कड़ाही में एकत्र डाल करके मदाग्नि पर तैल पकावें। तैल मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर शीतल होने के पश्चात् छान कर शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इस तैल को लगाया जाता है। इसे लगा कर हाथ से धीरे-धीरे मलना चाहिए। शरीर पर मर्दन करके तीन घण्टे पश्चात् नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से स्नान करना चाहिये। यह तैल १८ प्रकार के कुष्ठ, नाडीव्रण (नासूर), दुष्ट व्रण, गम्भीर वात रक्त, कण्डू, पामा आदि रोगों को समूल नष्ट करता है। परीक्षित है।

फोड़े-फुंसियों में उपयोगी प्रयोग—

निम्बादि प्रलेप

नीम के पत्र आधा सेर, घी २ तोले, आमा हरिद्रा का चूर्ण ६ माशे, अफीम २ रत्ती और काली मरिच के २० दानों का चूर्ण लें। प्रथम नीम के पत्रों और घृत को एक लोहे की कड़ाही में एकत्र डाल कर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें, इसे चलाते रहें। अग्नि से जलने पर जब पत्रों की भस्म बन जाय; तो कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार लें। इस भस्म को पत्थर की खरल में डाल करके मर्दन करें। तत्पश्चात् शेष द्रव्यों को इसमें सम्मिश्रण करके एक दिन सुदृढ़ मर्दन करके शीशी में भर कर सुरक्षित रखिये।

उपयोग—इस प्रलेप को लगाने से फोड़े तथा फुंसियाँ शान्त हो जाती हैं। गर्मी आदि के कारण से शरीर में होने वाले फोड़े फुंसियों को नष्ट करने के लिए यह लेप अत्युत्कृष्ट औषधि है। यह सहस्रों (हजारों) बार का सुपरीक्षित प्रयोग है।

रुधिर शोधक प्रयोग—

(१) निम्बादि सार (अर्क)

नीम के हरे पत्र, नीम के वृक्ष की सद्योगृहीत (ताजी) छाल, बकायन के हरे पत्र, बकायन की छाल, कचनार की त्वचा, मौलसिरी की छाल, छोटी दूधी, काला भृङ्गराज, जवासा गुल्लर के वृक्ष की छाल, मेंहदी के हरे पत्र, गोरखमुण्डी, शहतरा, अकतीयून, खस, सरफोंका, विजयसार, निलोफर, गुलाब के पुष्प, धनियां, श्वेत चन्दन, कासनी के हरे पत्र, कासनी के बीज, कासनी की जड़, मजीठ, वेदमुष्क (लता कस्तूरी) के पत्र, शीशम का चूर्ण (बुरादा), नीम की गिरी, गिलोय और उन्नाव—प्रत्येक द्रव्य १०—१० तोले और उसवा २० तोले लें। समस्त औषधियों को यवकुट चूर्ण बनाकर २० सेर जल में एक मिट्टी के पात्र में भिगो दें। २४ घण्टे तक भीगने के पश्चात् वारुणीयन्त्र से औषधसार (अर्क) निकाल लें और शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—३ से ५ तोले तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें।

गुण—कुष्ठ, दद्रु, कण्डू, फोड़े, फुंसी, प्रदर आदि रक्त विकृति जनित रोगों में यह अर्क अत्युपयोगी है। इसके सेवन से रुधिर की शुद्धि हो जाती है। रुधिर का शोधन होने पर रुधिर-दुष्टि जन्य कुष्ठ आदि समस्त व्याधियाँ शान्त होती हैं। रक्त विकृतिजनित रोगों को समूल नष्ट करने के लिए रुधिर की शुद्धि पर ध्यान देन आवश्यक है। रुधिर की शुद्धि किये बिना रक्त विकारजन्य रोग बाह्य उपचार से निर्मूल नहीं होते। अतएव उक्त दोषों में इस प्रयोग के सेवन से रुधिर का शोधन होकर रोग निर्मूल हो जाता है।

हमने अनेक रोगियों पर परीक्षण करके यह देखा है कि इस प्रयोग को कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से रुधिर की शुद्धि अवश्य हो जाती है। अन्य औषधियों के सेवन से सफलता न मिलने पर यह प्रयोग आश्चर्यजनक लाभ करता है।

(२) रक्तशोधक क्वाथ

अनन्तमूल, बड़ी हरड की छाल, चोपचीनी, मुलहठी, श्वेत मुशली, अश्वगन्ध, गोरखमुण्डी और सनाय—प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला, सोंफ, मजीठ, लालचन्दन, श्वेत-चन्दन, उन्नाव और गुलाब के पुष्प—प्रत्येक द्रव्य ६–६ माशे, दाल चीनी, नागकेशर, छोटी एलायची और लवङ्ग—प्रत्येक द्रव्य ४–४ माशे लें। समस्त औषधियों को यवकुट चूर्ण बना करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ तोला चूर्ण को एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करके अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें और रोगी को पिला दें। इस विधि से प्रातः सायं दिन में दोनों समय नवीन क्वाथ सिद्ध कर पीना चाहिए।

गुण—यह क्वाथ रुधिर शोधक है। सभी प्रकार के रक्त विकारों में अत्युत्कृष्ट है। कुष्ठ, दद्रु, कण्डू, फोड़े, फुंसियाँ, आतशक, प्रमेह, पुराना मलावरोध, आदि रोगों में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इस क्वाथ को ५० दिन तक सेवन करने से विचित्र लाभ होता है। परीक्षित है।

कुष्ठ आदि रोगों में पथ्यापथ्य

मानसिक शान्ति, यम तथा नियमों का पालन करना, माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि माननीय व्यक्तियों का यथायोग्य आदर करना, रात्रि को शीघ्र सोना और प्रातः काल सत्वर उठना, प्रातः सायं दिन में दोनों समय शुद्ध वायुमण्डल में भ्रमण, दीर्घ श्वास-प्रश्वास, प्राणायाम करना, ब्रह्मचर्य की रक्षा, पुराना गेहूँ तथा चावल, जौ, मूंग, अरहर, मसूर, घी, दूध, सेव, सन्तरा, अनार दाना, ककड़ी, द्राक्षा आदि फल, परवल, लौकी, तोरई, बथुआ आदि का शाक, हरड, बहेड़ा, आमला, नीम की कोमल पत्तियाँ, वमन, विरेचन आदि पञ्च कर्मों का प्रयोग—ये सभी हितकर हैं।

मानसिक अशान्ति, अधर्म में प्रीति, कृतघ्नता, माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि का अपमान, विरुद्ध आहार का सेवन, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आगत वेगों को रोकना, अधिक खाना, अजीर्ण में भोजन करना, खट्टे, नमकीन आदि पदार्थों का सेवन और मांस, मद्य, मैथुन आदि त्याज्य है।

अथ-शीतपित्तादि-प्रकीर्ण-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३६॥

शीतपित्त (पित्ती उछलना)

शीतल वायु के लगने से जब वात अदि दोष प्रकुपित होकर त्वचा और रुधिर आदि को दूषित कर देते हैं; तो शीतपित्त रोग उत्पन्न हो जाता है। शीतपित्त को भाषा में "पित्ती उछलना" या "छपाकी" कहते हैं। जिस व्यक्ति के शरीर में यह रोग होता है उसकी त्वचा के ऊपर बर्र के काटने के समान चकत्ते पड़ जाते हैं, खुजली और सूई चुभोने के तुल्य पीड़ा का होना आदि लक्षण होते हैं। इस व्याधि के लिए निम्नाङ्कित प्रयोग अत्युपयोगी हैं—

(१) शीतपित्तहर प्रयोग

काली मरिच का वस्त्रछन चूर्ण बना कर शीशी में भर कर सुरक्षित रखिये।

सेवन विधि: प्रथम रोगी के कोष्ठ की शुद्धि करानी आवश्यक है। इसके पश्चात्—इस चूर्ण को ३ से ६ माशे तक की मात्रा में मधु के साथ मिला करके शीतपित्त के रोगी को चटाना चाहिये। इस प्रकार से प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। इस प्रयोग को १४ दिन तक नियमित रूप से सेवन करने पर शीतपित्त रोग समूल नष्ट हो जाता है। यह सन्त प्रदत्त प्रयोग "शतसोऽनुभूतः" है।

व्रणजनित त्वचा-विकृति के लिए उपयोगी प्रयोग

शरीर में जो व्रण हो जाते हैं और उनके अच्छे होने पर वहाँ त्वचा में व्रण (घाव) के चिह्न पड़ जाते हैं; जो देखने में कुरूप प्रतीत होते हैं। उनको नष्ट करने के लिए—

(१) शिलादि प्रलेप

मनः शिला (मैनसिल), मजीठ, लाख (लाक्षा), हल्दी, दारुहल्दी,—प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोले ले करके समस्त औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसमें पुराना गोघृत और मधु प्रत्येक द्रव्य ६–६ तोले मिला करके, एक दिन घोट कर, शीशी में भर कर सुरक्षित रखिए।

गुण—इस प्रलेप को लगाने पर व्रणजन्य त्वचा की विकृति दूर हो जाती है। परीक्षित है। र० त० सा० सि०

मशक (मस्सा)

क्षुद्र रोगान्तर्गत त्वग्विकार मशक (मषक) नाम से अभिहित है। इसमें शरीर के ऊपर पीड़ा रहित, निश्चल माष (उड़द) के तुल्य कृष्णवर्ण के चिह्न देखे जाते हैं,

जो उन्नत होते हैं। इनको भाषा में मस्सा वा मसा कहा जाता है। किसी-किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर में यत्र-तत्र सर्वत्र मशक उत्पन्न हो जाते हैं और एक-दो मस्से तो प्राय: सभी व्यक्तियों के शरीर में देखे जा सकते हैं।

(१) मशकहर प्रलेप

काला जीरा १ तोला, नवसादर २ तोले, शुक्ति (सीप) का चूर्ण ३ तोले और तुत्थ ४ तोले लेकर, सबको सूक्ष्म बनाकर एकत्र मिला लें। तत्पश्चात् इसे गौ के मूत्र तथा भृंगराज के रस में पृथक्-पृथक् ६—६ घण्टे मर्दन करके, बेर प्रमाण में वटी बना लें और धूप में शुष्क करके शीशी में भर कर रखिये।

उपयोग—इस वटी को वत्सतरी (बछिया) गौ के मूत्र में घिस करके मशक (मस्से) के ऊपर लेप लगावें। इस लेप को दिन में ३—४ बार लगाना चाहिए। किसी कठोर वस्तु से मस्सों को घिस करके लेप लगाना इष्ट है। उस स्थान को गौ के मूत्र से धोना चाहिए। इस प्रकार से कुछ दिन लेप लगाने से मशक समूल नष्ट होते हैं। परीक्षित है। सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न हुए मषक भी निर्मूल हो जाते है।

पथ्य—गेहूँ और चने की रोटी घी के साथ दें।

वक्तव्य—इस प्रयोग के निर्माण में वत्सतरी (बछिया) गौ का मूत्र प्रयुक्त करना श्रेष्ठ है।

२.—तीक्ष्ण क्षुरिका से मशक (मस्सा) को काट दें। चूना और तुत्थ इन दोनों को समभाग में लेकर जल के साथ सूक्ष्म पीस कर कटे हुए स्थान पर लेप लगा दें। इससे मस्से नष्ट हो जाते हैं।

३.—दीपशलाका (दियासलाई) की प्रज्वलित सींक से मस्से को जला दें। इस प्रकार से एक के पश्चात् दूसरी शलाका को जला कर प्रयोग करें। ३—४ सलाई से जला देने पर मस्सा नष्ट होता है। अनुभूत है।

रुधिर स्रावहर प्रयोग

यदि शस्त्रादि से कटने पर शरीर के किसी अवयव से रक्त निकल रहा हो तो उसमें—अपामार्ग के रस में रूई को भिगो करके उस स्थान पर (व्रण के ऊपर) रख कर साधारण अग्नि से सेंक देने पर बहता हुआ रक्त रुक जाता है। रुधिर के स्राव को अवरुद्ध करने के लिये यह आशु लाभप्रद है।

पलित रोग (बालों का श्वेत होना)

केशों का श्वेत हो जाना पलित नाम से बोला जाता है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक भेद से यह दो प्रकार का है। जरावस्था (वृद्धावस्था) में जो केश शुक्ल होते हैं उसे स्वाभाविक पलित कहा जाता है और वृद्धत्व के बिना ही जो बाल श्वेत हो जाते हैं उसे अस्वाभाविक अथवा अकालज पलित कहते हैं। इनमें स्वाभाविक पलित की चिकित्सा नहीं होती। अकालज, (अल्प-अवस्था में केशों का शुक्ल होना) रोग में कतिपय उपयोगी प्रयोग लिखे जाते हैं—

(१) भृङ्गराज तैल (शा० सं०)

भृङ्गराज का रस चार सेर, मण्डूर चूर्ण, बड़ी हरीतकी, आमला, बहेड़ा और अनन्तमूल—प्रत्येक द्रव्य ४—४ तोले लेकर इन पांच औषधियों का वल्क बना लें। तिलों का तैल एक सेर और जल चार सेर लें। इन समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तो अग्नि से नीचे उतार करके तैल को छान लें और सुरक्षित रख लें। इसे "भृङ्गराज तैल" कहते हैं।

गुण—भृङ्गराज तैल को लगाने से—मर्दन करने से शिर का दारुणक (सिर से भूसी का झड़ना) रोग, अकाल में केशों का पकना, शिर की कण्डू (खुजली), शिर में होने वाली फुंसियाँ आदि रोग निश्चित नष्ट होते हैं। यह परीक्षित है।

(२) भल्लातक प्रयोग

भल्लातक (भिलावे) सवा पाँच सेर लें और इनको कूट कर सूक्ष्म बना लें। उत्तम प्रकार से कुटाई होने पर जब भिलावे सूक्ष्म बन जायें तो इनको उत्तम उर्वरा भूमि की मिट्टी पांच सेर के साथ सम्मिश्रण कर दें और इसे टीन अथवा बाल्टी में भर कर रख दें। इसमें कुछ जल डाल कर ऐसे सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए जहाँ उसे सूर्य का ताप, प्रकाश—प्राप्त हो सके। आवश्यकता के अनुसार इसमें जल डालना चाहिए। जब यह पूर्ण रूप से सड़ जाय तो बोने के योग्य उत्तम उर्वरा भूमि में डालकर उत्तम प्रकार से मिट्टी में मिला दें और उस स्थान पर मेथी बो दें। इसे उचित समय पर जल से सींचते रहें। जब यह मेथी शाक खाने के योग्य हो जाय; तो इसका शाक बना कर रोटी के साथ सेवन करना चाहिये। इस मेथी पर लगने वाले पुष्प काले वर्ण के होते हैं।

गुण—इस मेथी के शाक को न्यून से न्यून ४० दिन पर्यन्त खाने से असमय में पके हुए केश कृष्ण वर्ण बन जाते हैं और वातज तथा कफज रोगों में लाभ होता है।

(३) काकजङ्घादि प्रयोग

काकजङ्घा के पत्र, पिया बासे की जड़ और केतकी की जड़—इनको छाया में शुष्क करके बनाया हुआ वस्त्रछन चूर्ण (प्रत्येक द्रव्य का पृथक्-पृथक्) ३-३ छटांक, भृंगराज का रस और समभाग त्रिफले का रस—प्रत्येक आध-आध सेर और तिलों का तैल एक सेर लें। इन सम्पूर्ण औषधियों को एक लोहे के पात्र में भरकर ढक्कन से बन्द कर दें और इस पात्र को भूमि में गाड़ दें। एक मास पर्यन्त भूमि के अन्दर रहने दें। तत्पश्चात् बाहर निकाल करके छान लें और शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

गुण—इस तैल को प्रतिदिन केशों में लगाने से बाल काले हो जाते हैं। श्वेत केश नहीं उगते। अनुभूत प्रयोग है।

प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि साधन से उत्पन्न हुई शुष्कता (खुश्की) के लिए उत्तम अनुभूत प्रयोग —

१-बादामादि प्रयोग—मधुर बादाम की गिरी ११ दाने, काली मरिच १

दाने, सौंफ ४ माशे, गुलाब के पुष्प चार माशे, कासनी चार माशे, बनफशा चार माशे, बड़ी एला के बीज २ माशे—इन सब औषधियों को सूक्ष्म पीसकर छान लें। इसमें एक छटांक मिश्री अथवा बूरा मिला करके दूध वा जल में घोलकर पीवें। शीतकाल में घृत से संस्कृत (छोंक) करके पीयें। यह एक मात्रा है। आवश्यकता के अनुसार इसकी मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से प्राणायाम, धारणा आदि साधन करने से उत्पन्न हुई शुष्कता नष्ट होती है। यह अनुभूत है। पा० यो० प्र०

२—छोटी एला के बीज, जीरा, मधुर बादाम की गिरी, मुनक्का, बनफशा के पुष्प और मिश्री—इनको पीस करके चाटें। **मात्रा**—बल के अनुसार निश्चित करें। इसे आवश्यकता के अनुसार प्रातः सायं दिन में दोनों समय सेवन करें। अनुभूत है। पा० यो० प्र०

३—रूमी मस्तगी, छोटी एला के बीज और वंशलोचन—इन तीनों औषधियों को समभाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। चूर्ण से द्विगुणित मिश्री मिलाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से दो तोले तक, १ तोले मक्खन वा घृत में मर्दन करके चाटें और ऊपर से दूध पीवें अथवा अल्पोष्ण जल सेवन करें। यह केवल सायं समय सेवनीय है।

गुण—इस प्रयोग से प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि साधन जनित मस्तिष्क की शुष्कता में लाभ हो जाता है। अनुभूत है।

वक्तव्य—प्राणायाम को अधिक मात्रा में करने से अथवा अविधि पूर्वक प्राणायाम करने से, अधिक त्राटक से, धारणा तथा ध्यान में शक्ति से अधिक प्रवृत्त होने आदि से मस्तिष्क, वक्षःस्थल आदि शारीरिक अंगों में वेदना, शुष्कता, तनाव आदि विकार अवश्य होते हैं। इससे अनेक साधक उन्मत्त (पागल) भी हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में उपर्युक्त योगों के सेवन से लाभ तो होता है; किन्तु यहां स्मरणीय बात यह भी है कि—प्राणायाम की उचित विधि और उचित मात्रा का अनादर करते रहने से उक्त योगों के सेवन से पूर्ण सफलता नहीं होगी। जिस अभ्यासी के शरीर में जब कभी रूक्षता की वृद्धि, शिर तथा वक्षःस्थल में वेदना, नाड़ियों में तनाव आदि विकारों की अनुभूति होने लगे तो उस साधक को यह जान लेना इष्ट है कि उसका अभ्यास साधनोचित पद्धति के प्रतिकूल हो रहा है। ऐसी अवस्था में अभ्यास के दोष को जानकर उसका अपनयन करना उचित है। इसके साथ ही साथ उक्त औषधियों को सेवन करने से शीघ्र लाभ हो जाता है।

अञ्जनहारी (गुहेरी) में

चाकू के फलक को अग्नि में उष्ण करके अञ्जनहारी (गुहेरी) को सात बार दागने से गुहेरी सूखकर शान्त हो जाती है। अनुभूत है।

अथ-ऊर्ध्वजत्रु-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥ ३७॥

(१) मुखरोगहर घृत (मुख के रोगों में)

गौ का घृत २ तोले और तीन माशे की एक डली तुत्थ की लें। इन दोनों को एकत्र मन्दाग्नि पर पकावें। जब तुत्थ (नीला थोथा) फूल जाय तो अग्नि से नीचे उतार कर घृत से तुत्थ की डली को बाहर निकाल लें। इस घी को शीशी में भर कर रखिये। इस घृत को लगाने से (चुपड़ने से) मुख में होने वाले छाले, मुख का पकना आदि समस्त मुख व्याधियों में लाभ होता है। उपदंशज मुखरोग में भी यह विशेष लाभप्रद है।

(२) श्वेतसारादि वटिका

श्वेतसार (पपरिया कत्था), शीतल चीनी, देशीय कर्पूर, छोटी इलायची के बीज, फिटकरी, संग जराहत और चिकनी सुपारी—ये समस्त औषधियाँ समभाग में ले करके सब का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसे खदिर (पपरिया कत्था) के क्वाथ में एक दिन मर्दन करके चणक प्रमाण में वटी बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर करके रख लें।

उपयोग—इस वटी को मुख में रखकर चूसने से जिह्वा, ओष्ठ, तालु आदि स्थानों में होने वाले छाले शीघ्र शान्त होते हैं। यह गोली बालकों के लिए भी लाभप्रद है। जिन रोगियों का मुख पक गया हो उनके लिए यह कल्याणकर है। दिन रात्रि में इसे ३-४ बार चूस सकते हैं।

(३) गण्डूष प्रयोग

हरीतकी, आमला, बहेड़ा, चमेली के पत्र, गिलोय, मुनक्का, दारु हल्दी—इनको समभाग में ले करके यवकुट चूर्ण बनाकर रखिए। इस चूर्ण को १ से २ तोले तक लेकर आध सेर जल में मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर इसे छान कर मुख में रखना चाहिये। इस क्वाथ को अधिक से अधिक समय तक मुख में धारण करने के पश्चात् इसे मुख से बाहर निकाल दें। इस उपचार का नाम गण्डूष प्रयोग है। आवश्यकता के अनुसार इसे दिन और रात्रि में ४-५ बार करें। गण्डूष प्रयोग से जिह्वा, तालु और ओष्ठ आदि मुखगत स्थानों में होने वाले छाले, फुंसियाँ व्रण, और मुख का पकना आदि रोग शान्त होते हैं।

दन्त रोग

क्योंकि दांतों की सुरक्षा रहने से शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति और उनमें रोग होने से शरीर में विकृति अवश्य हो जाती है, अतएवं सभी व्यक्तियों के लिए

दांतों की सुरक्षा करना हितकर है । दान्तों में विकार हो जाने पर नेत्र, मस्तिष्क और उदर में उसका प्रभाव हो जाता है । दान्तों के अभाव में भोजन का उचित चर्वण नहीं होता तथा दान्तों का कार्य आन्तों से होने लगता है । फलतः अग्निमान्द्य, अजीर्ण आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । अतः स्वास्थ्य के लिये दन्तरक्षा आवश्यक है । दान्तों को स्वस्थ रखने के लिए दन्त धावन (दातुन) सर्वोत्तम साधन है । इसके लिए नीम, बबूल, मौलसरी आदि वृक्षों की दन्तपवन (दातौन) करना लाभप्रद है । यदि उसकी व्यवस्था न हो सके; तो कोई उत्तम दन्त मञ्जन करना इष्ट है ।

दन्तरोग हर प्रयोग—

(१) दन्तरोगान्तक (पायोरिया आदि में)

मौलसिरी के फलों का चूर्ण एक पाव, पपरिया कत्था, रूमी मस्तगी और भुनी हुई फिटकरी—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले, सैंधव लवण १ तोला, शुद्ध तुत्थ १ माशा, और देशीय कर्पूर ६ माशे लें । इन समस्त औषधियों का वस्त्रछन सूक्ष्म चूर्ण बना करके इसमें एक माशा पिपरमेण्ट मिलाकर शीशी में सुरक्षित रख लें । इस मञ्जन को प्रातः सायं दिन में दोनों समय हाथ की अङ्गुलि से धीरे-धीरे दान्तों और मसूड़ों पर मलना चाहिए ।

उपयोग—इस मञ्जन के लगाने से दन्तवेष्ट रोग (पयोरिया) में लाभ होता है । जिस दान्त के रोग में रोगी के दन्तमूल (मसूड़ों) से रुधिर और पीप बहने लगता है, दान्त हिलने लगते हैं और मसूड़े पक जाते हैं उस रोग को दन्तवेष्ट (पायोरिया) कहते हैं । ऐसे लक्षणों के होने पर इस मञ्जन से शीघ्र रोग निवारण होता है । यह अनेक रोगियों पर परीक्षित है ।

(२) मोहन मञ्जन

दालचीनी, जला हुआ बादाम का छिलका, जली हुई सुपारी, माजुफल, खैर, लवङ्ग, काली मरिच, सैंधव लवण, छोटी हरड़, भुनी हुई फिटकरी, सोंठ, प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, बबूल का कोयला और खड़िया मिट्टी— प्रत्येक द्रव्य २-२ तोले, कायफल और कर्पूर प्रत्येक ६-६ माशे ले करके समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, शीशी में भर कर सुरक्षित रखिये ।

उपयोग—इस मञ्जन को प्रातः सायं दिन में दोनों समय करें । मञ्जन लगाकर तुरन्त जल से मुख नहीं धोना चाहिये । मञ्जन लगाकर २०-३० मिनट के पश्चात् कुल्ला करना हितकर है । यह दान्तों की जड़ों को बलवान् बनाता है । हिलते हुए दान्तों को दृढ़ करता है । दान्तों को स्वस्थ रखने के लिए अत्युत्कृष्ट अनुभूत प्रयोग है ।

(३) स्फटिकादि मञ्जन

फिटकरी, पंचलवण और गेरु—प्रत्येक ५-५ तोले, खड़िया मिट्टी १० तोले, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आमला) ३ तोले, तेजोवल २॥ तोले, माजूफल २ तोले, शुण्ठी, काली मरिच, पीपल, दालचीनी, अकरकरा, कत्था, शीतल चीनी, शुद्ध कुचला'

लवङ्ग, बड़ी एला, रूमी मस्तगी, और सुहागा—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, कपूर ६ माशे, शुद्ध तुत्थ डेढ़ माशा, और पिपरमेण्ट १ माशा लेकर, सबका वस्त्रछन चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखिये।

उपयोग—इस मञ्जन को करने से दन्तमूल से रुधिर तथा पीप का निकलना, दान्तों का हिलना आदि दन्त व्याधियाँ नष्ट होती हैं। इससे दान्तों की जड़ें बलिष्ठ बन जाती हैं।

मुख-रोग में पथ्यापथ्य—गेहूँ और जौ की रोटी, मूंग, अरहर आदि की दाल, घृत, पीने के लिए गर्म करके शीतल किया हुआ जल और हस्तपाद प्रक्षाणार्थ अल्पोष्ण पानी, परवल, लौकी, करेला आदि का शाक, तिल-तैल अथवा सरसों के तैल गण्डूष, पानी के गण्डूष, उदर की शुद्धि के लिए मृदु विरेचन आदि पथ्य हैं।

आम का अचार आदि खटाई, लाल मरिच, गुड़, दधि, दिन में शयन ये वर्जनीय हैं।

कर्ण-रोग (कान के विकार)

कर्णस्रावहर उपाय—जिस रोगी के कानों में पूय (पीप) उत्पन्न हो गया हो; उस रोगी के लिए निम्नाङ्कित प्रयोग लाभप्रद है—

(क) सर्वप्रथम आतुर के कान में अग्नि पर फुलाये हुए सुहागे का वस्त्रछन चूर्ण १ रत्ती प्रमाण में डाल दें। इसके उपरान्त उसमें स्वच्छ चूने का नितरा हुआ जल इतना डालिए कि जिससे कान पूर्ण रूप से भर जाय। १०-१५ मिनट तक इस जल को कान में रहने दें। पश्चात् उलटा करके कर्ण के अन्दर से जल को बाहर निकाल दें। तत्पश्चात् धुनि हुई स्वच्छ रूई से कान को स्वच्छ करके उसमें बादाम का तैल ४-५ बिन्दु डाल देना चाहिए। इस विधि से प्रतिदिन एक मास पर्यन्त उपचार करें। इसके साथ ही साथ रोगी को "त्रिभुवन कीर्त्तिरस" (ज्वरप्रकरणोक्त) को खिलायें।

उपर्युक्त चिकित्सा द्वारा कर हमने कर्णपूय के अनेक असाध्य रोगियों को स्वस्थ किया; । जिस रोगी का कान पक गया हो और उसमें से पूय (पीप) निकलता हो; चाहे यह रोग अधिक पुराना भी हो गया हो; तो भी उपर्युक्त विधि से उपचार करने पर उस रोगी को लाभ होगा।

(ख) नर कपालास्थि की भस्म १ रत्ती प्रमाण में लेकर उसे रोगी के कान में डालकर ऊपर से उसमें तुलसी के पत्रों का रस अथवा गूलर के पत्रों का रस भर दें। १०—१५ मिनट के पश्चात् उस रस को कान से बाहर निकाल दें और उसमें बादाम के तैल की ४—५ बिन्दु भर दें। इसको कुछ दिन तक निरन्तर करने से असाध्य कर्णपूय रोग भी शान्त हो जाता है।

कान की पीड़ा तथा कर्णस्राव के लिए उत्तम प्रयोग

(ग) नीम के रक्त वर्ण के पत्रों का रस अथवा अडूसा (वासा) के पत्रों का रस—इन दोनों में से किसी एक का रस लें। प्रथम रस को वस्त्र से छान कर,

उसमें समान भाग देशीय मधु मिला करके, दोनों को शीशी में भर कर रख लें। कान को नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से धोने के पश्चात् इस औषधि को कान में डालना चाहिये। यदि बहते हुए कान में इस औषधि को डालना इष्ट हो, तो नीम के पत्रों में पकाये हुए जल से कान को धोना उत्तम है। कर्ण पीड़ा में बिना धोये ही औषधि डाल दें।

गुण—इस औषधि को कान में डालने से कान की वेदना और कर्णस्राव (कान का बहना) ये दोनों रोग नष्ट हो जाते हैं। कर्ण की पीड़ा तथा उसका बहना—इन दोनों रोगों को नष्ट करने के लिए यह अव्यर्थ प्रयोग है। अनुभूत है। एक-दो बार के प्रयोग से लाभ की प्रतीति होने लगती है।

(घ) मूलक तैल—मूली का रस आध सेर और एरण्ड का तैल एक पाव—इन दोनों को एकत्र मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें, तैल मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर छान लें और शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें। इस तैल को कान में डालने से कर्णस्राव (कान का बहना) बन्द हो जाता है। परीक्षित है।

(ङ) बिम्बी=कन्दूरी के स्वरस को कान मे डालने से बालकों के कान का बहना रुक जाता है। अनुभूत है।

कान के रोगों में पथ्यापथ्य—मानसिक शान्ति, ब्रह्मचर्य, अल्प भाषण, धीरे-धीरे बोलना अर्थात् उच्च स्वर से न बोलना, विरेचन, घृत पान, पुराने गेहूँ, जौं और शालि चावल, मूंग, अरहर, दूध, परवल, लौकी, सहिजन की फली आदि सेवनीय हैं।

विरुद्ध अन्नपान का सेवन, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आगतवेगों को रोकना, व्यायाम, नदी में तैरना, डुबकी लगा करके स्नान करना, मैथुन, मानसिक चञ्चलता, तिनके आदि से कान को खुजलाना, मलावरोध का होना, सिर को धोना, अधिक भाषण, उच्च स्वर से बोलना आदि ये कान के रोग की वृद्धि करते है।

नेत्र रोग

नेत्र रोगों के कारण—मानसिक दुःख से, अहर्निश चिन्ता करने से, अधिक क्रोध से, बहुत मैथुन करने से, अधिक रोने से, सिर में आघात होने से, रात्रि को जागने से, अधिक उपवास करने से, सूक्ष्म वस्तु को देखने से, अधिक दूर तक देखने से, अल्प तथा अधिक प्रकाश में अध्ययन करने से, मदिरा, भांग, बीड़ी, सिगरेट आदि के सेवन से, अपान वायु, मल, मूत्र आदि के वेगों को रोकने से, ऋतुचर्या के प्रतिकूल आचरण करने आदि अनेक कारणों से नेत्रों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

नयन रोगों में उपयोगी प्रयोग—

(१) नेत्र पीड़ाहर उपाय

सहिजने के पत्रों का रस और मधु—इन दोनों को समान भाग में लेकर नेत्रों के अन्दर प्रातः सायं दिन में दो बार लगावें इस प्रयोग को तीन दिन तक चलाने से

नेत्रों का आना, आँखों का दुःखना रोग नष्ट हो जाता है। इस औषधि को नयन में डालने के उपरान्त १०--१५ मिनट तक कुछ वेदना तो अवश्य होती है; किन्तु रोग चला जाता है। अनुभूत है।

(२)—निर्मली के बीजों को पत्थर पर जल के साथ घिस करके चक्षुओं के भीतर लगाने से नेत्रों की पीडा, रक्तिमा (लाली), जल का बहना आदि नेत्रों के रोगों में लाभ होता है।

(३) नयनामृत बिन्दु

गूलर का सत्त्व (सार) आधा तोला और गुलाब का जल चार औंस—दोनों को शीशी में भर करके डाट लगा दें और अच्छे प्रकार से शीशी को हिला दें। इस औषधि को २--२ बिन्दु, चक्षुओं के अन्दर डालें। दिन में चार बार प्रयुक्त करें। इस प्रयोग से नयनों की ज्योति का मन्द होना, पीड़ा, जल का गिरना और रक्तिमा-नेत्रों के ये सभी रोग नष्ट होते हैं। यह प्रयोग नेत्र रोग पीड़ित सैंकड़ों आतुरों पर अनुभूत है। भगवान् श्री रामचन्द्र जी के बाण के सदृश अव्यर्थ है।

(४) उड़ाये हुए शुद्ध नवसादर-पुष्प को शलाका से नेत्रों में अञ्जने से- नयनों की रक्तिमा, जलस्राव, जाला, माड़ा--ये नेत्रीय रोग अवश्य नष्ट होते हैं।

(५) नेत्र सुधा प्रलेप

शुद्ध रसौत, बबूल का गोंद, समुद्र फेन, फिटकरी-पुष्प और मिश्री—ये पांच द्रव्य २--२ तोले और शुद्ध अफीम १ तोला लें। सब को एकत्र मिला करके जल के साथ मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा जल डालते हुए घोटें। एक ही बार में अधिक पानी नहीं डालना चाहिए। अल्प-अल्प पानी डालते जायें और घोटते जायें—इस प्रकार से तीन दिन तक मर्दन करने के उपरान्त जब यह औषधि अवलेह के समान गाढ़ी बन जाय, तो इसकी छोटी-छोटी गोलियां बना करके छाया में शुष्क करें और शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें। आवश्यकता अनुसार १--२ रत्ती की मात्रा में इस गोली को जल के साथ सीप वा कटोरी में घिसें। जब घिसने पर यह दधि के तुल्य लेप लगाने योग्य बन जाय, तो इसे नेत्र रोग से पीड़ित व्यक्ति की चक्षु के बाहर नीचे तथा ऊपर के पलकों में प्रलेप लगावें और कुछ औषधि नयन के अन्दर भी प्रविष्ट करें।

उपयोग—इस प्रलेप को लगाने से नेत्रों की रक्तिमा (लाली), जलन, कण्डू, भयंकर शोथ, पूयस्राव और शूल आदि चक्षु रोगों का शमन होता है। इसे एक मास के बच्चे से ले करके युवा तथा वृद्ध पुरुषों और स्त्रियों के नयनों में निर्भयता पूर्वक लगाया जाता है। इस प्रयोग का अनेक बार परीक्षण किया है।

वक्तव्य—तीक्ष्ण नेत्रीय रोगों में शीतल जल तथा वायु आदि से नयनों की रक्षा करें। अल्पोष्ण जल में वस्त्र अथवा रुई को भिगो कर, उससे चक्षुओं को स्वच्छ करें। नेत्रों में शूल होने पर स्वच्छ रुई के फोये को फिटकरी के जल में भिगो कर, घी में

तलें और इसे शयन करते समय रात्रि को नेत्रों पर रख कर पट्टी बान्ध दें। तीव्र प्रकोप बढ़ने पर इसका प्रयोग न करें। ब्र० सदानन्द जी गिरी से प्राप्त।

(६) नेत्रसुधा अञ्जन

तुत्थ ३ तोले, फिटकरी ४ तोले, रसौत ५ तोले और निम्बू का रस २० तोले और शुद्ध अफीम ३ माशे लें। रात्रि में उक्त औषधियों को निम्बू के रस में भिगो दें। प्रातः समय एक कड़ाही में डाल करके उसे चूल्हे के ऊपर चढ़ा कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब यह पक कर एकाकार हो जाय और गाढ़ा बन जाय; तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर पत्थर के खरल में घोटें और इसकी वत्ती बना करके छाया में शुष्क करें और शीशी में रख लें।

उपयोग—इसे जल के साथ घिस करके नेत्रों में आञ्जना चाहिए। इस अञ्जन को लगाने से नेत्रों का फूला, रोहा, रक्तिमा, नेत्र पीड़ा आदि चक्षु के रोग नष्ट होते हैं। अनुभूत है।

(७) नेत्रों के फूले में

पंच पंखड़ी के सम्भालु के पत्रों का रस और विषखपरा (श्वेत पुनर्नवा) बूंटी का रस—१-१ तोला लेकर दोनों को शीशी में भर कर डाट लगा कर रखिये।

उपयोग—इस रस को प्रतिदिन चक्षुओं में डालने से नेत्रों में होने वाला फूला कट जाता है। जिस व्यक्ति की एक अथवा दोनों नेत्रों में फूला उत्पन्न हो गया हो उसे इस रस का प्रयोग करने से निश्चित लाभ होगा। अनुभूत है।

(८) नेत्रपुष्प (फूला) हर अञ्जन

न्यग्रोध (बरगद) का दूध ३ बिन्दु, खिन्नी की गिरी १ नग, शंख की कच्ची नाभि १ रत्ती, शुद्ध तुत्थ १ रत्ती, हरा कांच १ रत्ती और समुद्र फेन २ चावल—इन सब द्रव्यों को पत्थर के खरल में डाल करके मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने पर जब यह औषधि घिस करके सूक्ष्म कज्जल के समान हो जाय; तो इसे शीशी में भर कर सुरक्षित रखिये।

उपयोग—इसे मधु के साथ मिला कर प्रातः सायं दिन में दोनों समय नेत्रों में लगावें। इस अञ्जन को लगाने से तृतीय दिन से लाभ अनुभव होगा। १५ दिन के प्रयोग से नेत्रों का फूला नष्ट हो जायगा। परीक्षित है।

(९) चक्षुःपुष्पहर

हरा कांच ३॥ माशे, कुक्कुट की विष्ठा (बीट) का श्वेत भाग, मुर्गी के अण्डे का छिलका और बिना विंधे हुए मोती—प्रत्येक द्रव्य ४॥-४॥ माशे और हल्दी २ माशे लें। प्रथम कांच को तीन दिन तक जल में खरल करें। इसके पश्चात् शेष औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके ३२ घण्टे तक स्थिरता से शुष्क पीसें— मर्दन करें और शीशी में भर लें।

उपयोग—इस अञ्जन को प्रतिदिन नेत्रों में आञ्जना चाहिए। प्रातः सायं दिन में दोनों समय लगाने के साथ—ही साथ सिरस के पत्रों को जल में पका करके उसकी टिकिया बना कर नेत्रों पर रख कर बांध दें। इसको केवल सायं समय में बांधें। इस प्रयोग से साधारण फूला और चेचक से उत्पन्न हुआ फूला कट जाता है। अनुभूत है।

(१०) उत्तमाञ्जन
(फूले आदि नेत्र के रोगों में लाभप्रद)—

पाँच लवण ८ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नवसादर, कलमी शोरा, तुत्थ (नीला थोथा), काँच भस्म,—इन प्रत्येक द्रव्य को ४—४ तोले और विशुद्ध ममीरा, ३ माशे लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना कर सबको संगमूसे के खरल में डाल करके १२ घण्टे तक शुष्क मर्दन करें। इसके पश्चात् घृतकुमारी (घीग्वार) के रस में ३ दिन घोटें। घीग्वार का रस थोड़ा-थोड़ा डालता जाय और घुटाई करता जाय। इस प्रकार घृतकुमारी के रस में तीन दिन सुदृढ़ मर्दन करने के पश्चात् जब यह औषधि मैदा के तुल्य सूक्ष्म पिस जाय; तब इसे वायु प्रविष्ट न हो सके ऐसी स्वच्छ शीशियों में भर करके सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इस अञ्जन को शयन काल में रात्रि को नेत्र में लगावें। जिस नेत्र में फूला आदि विकार हो उसी नेत्र में सोते समय आञ्जना चाहिए। यदि दोनों नेत्रों में दोष हो गया हो; तो दोनों चक्षुओं में अञ्जन लगाया जाता है। इसके प्रयोग करने की विधि यह है कि—अल्प मात्रा में इस अञ्जन को लेकर थोड़े जल के साथ मिला करके नेत्रों के अन्दर डाल दें।

इस अञ्जन के प्रयोग से नेत्रों का फूला निश्चित कट जाता है। चाहे फूला बढ़ करके सम्पूर्ण चक्षु में व्याप्त हो गया हो, तो भी इससे निर्मूल हो जायगा। नेत्रों के फूले को नष्ट करने के लिए यह शल्य चिकित्सा से भी अधिक उपयोगी है।

यह प्रवाल, जाला, माड़ा, मोतिया बिन्दु, और धुन्ध—इन नेत्रों के विकारों में अत्युत्कृष्ट प्रयोग है। हमने इसे ६४ रोगियों पर अनुभव है। कोई भी वैद्य बन्धु इसकी परीक्षा कर सकते हैं। अधिक क्या लिखा जाय? अनुभव करने से ही यथार्थता का बोध होगा।

(११) शीतला माता के फूले में श्रेष्ठ प्रयोग

शंख की नाभि को कांसे की थाली पर कृष्णवर्ण के गदहे के मूत्र में घिस करके नेत्र के अन्दर लगावें। इस विधि से प्रातः सायं दिन में दोनों समय प्रयोग करें।

वक्तव्य—गदहा कृष्णवर्ण ही हो। अन्य वर्ण के गदहे का मूत्र प्रयुक्त न करें और पुरुष जाति का ही मूत्र लें। एक बार का ग्रहण किया हुआ मूत्र १५ दिन तक प्रयोग करें। इसके उपरान्त नवीन मूत्र लेना इष्ट है।

गुण—इस प्रयोग से शीतला माता से उत्पन्न हुआ फूला अवश्य कट जाता है। नवीन और पुराने नेत्रपुष्प (फूला) को नष्ट करने के लिए अत्युत्तम प्रयोग है। नवीन फूले में २ माह तथा पुरातन में ६ मास तक निरन्तर प्रयुक्त करने पर लाभ होगा। १० रोगियों पर परीक्षित है।

(१२) नेत्र दिवाकर

काँच चूड़ी भस्म, समुद्रफेन, शुद्ध धत्तूरे के बीज, शुद्ध तुत्थ, शंख भस्म, शुद्ध मनः शिला, शुद्ध गोरोचन, स्वर्णमाक्षिक भस्म, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, ताम्रेश्वर अथवा ताम्रभस्म, मोती भस्म (मोती सीप), शुद्ध गेरू, शुद्ध फिटकरी, नवसादर भस्म और कलमीशोरा—इन प्रत्येक को समान भाग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर समस्त औषधियों को एकत्र मिलाकर पत्थर की खरल में १ दिन घोटें। इसके उपरान्त अजा-दुग्ध, वट के दूध, और भृङ्गराज के रस में पृथक्-पृथक्-३-३ भावना दें। प्रत्येक भावना के साथ ८ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना देने के पश्चात् छाया में शुष्क करके स्वच्छ शीशियों में भरकर डाट लगा करके सुरक्षित रखिए।

उपयोग—स्वर्ण, चान्दी, लोहा आदि किसी भी धातु की शलाका (सलाई) को जल से आर्द्र करके उसमें इस अञ्जन को लगा करके नेत्रों के भीतर डालें। लगाने के पश्चात् कुछ समय तक नयनों को बन्द रखें। तत्पश्चात् चक्षुओं को खोल दें। इससे नेत्रों से पानी गिरता है। इसे प्रातः सायं दिन में दोनों समय प्रयुक्त करें। इस अञ्जन के लगाने से सुखसाध्य, कष्टसाध्य, याप्य और असाध्य नेत्र-पुष्प नष्ट हो जाता है। पुराने से पुराना फूला भी निर्मूल हो जाता है। बड़े फूले को नष्ट करने के लिए इसे निरन्तर दो मास तक लगावें। शतसोऽनुभूतः। सैंकड़ों बार का अनुभूत है।

(१३) पक्ष्मकोप (उपरिवाल—परवाल) के लिए प्रयोग—

उत्तम गेरू १ तोला और श्वेत फिटकरी ४ तोले लें। इन दोनों का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बना लें। एक मिट्टी के पात्र में फिटकरी के चूर्ण को डालकर मन्द-मन्द अग्नि जलाकर इसको पिघलावें। जब अग्नि से फिटकरी पिघलकर जल के समान द्रवरूप हो जाय; तो उसमें गेरू के चूर्ण को डालकर कलछी आदि के द्वारा अच्छे प्रकार से चलाइये। इन दोनों द्रव्यों के मिलने पर—एकाकार में होने पर उसे अग्नि से नीचे उतार लें और सूक्ष्म पीस कर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त इसे कृष्णपाषाण निर्मित खरल में डालकर २४ घण्टे तक सुदृढ़ मर्दन करें। उत्तम घुटाई होने के पश्चात् जब यह सुर्मा के सदृश सूक्ष्म पिस जाय; तो स्वच्छ शीशी में भर कर सुदृढ़ डाट लगाकर रख लें।

उपयोग—इस अञ्जन को प्रातः सायं दिन में दोनों समय नेत्रों के अन्दर लगाइये। इसको लगाने की विधि यह है कि—नेत्रों के पलकों पर उत्पन्न हुए बालों

को चिमटी से उखाड़ कर इसे नेत्रों में आञ्जिए। यह अञ्जन पक्ष्मकोप (परबाल वा उपरिबाल) रोग में अत्युपयोगी सिद्ध-औषधि है। इसके लगाने से पुनः बाल उत्पन्न नहीं होते और नेत्र पूर्ववत् स्वस्थ हो जाते हैं। हमने इसे १४ वर्षों तक पक्ष्मकोप पीड़ित अनेक नेत्र रोगियों पर अनुभव किया है और इसमें हमें आशातीत सफलता मिली है। उक्त रोग में इसे १५ से ३० दिन तक निरन्तर लगाना चाहिए।

(१४) निर्मलाञ्जन

श्वेत अञ्जन, फूला यशद, कलमीशोरा, शुद्ध सुहागा, शुद्ध फिटकरी और सैंधव लवण—प्रत्येक द्रव्य समान भाग में लेकर सूक्ष्म बना लें और शिरस की छाल के रस में तीन दिन तक मर्दन करें। पीछे शुष्क होने पर सूक्ष्म वस्त्र में छान करके शीशी में भर कर रखिए।

उपयोग—जिन रोगियों के पलक गल करके रक्तवर्ण के हो गये हों और नेत्रों के बाल झड़ गये हों; उनके लिए यह अञ्जन अत्युत्कृष्ट है। इसे प्रातः सायं दिन में दोनों समय चक्षुओं में लगावें। अनुभूत है।

(१५) त्रिफला कषाय से नेत्रों को धोना

हरड़, बहेड़ा और आमला—इन तीनों को समभाग लेकर सूक्ष्म पीस लें। इस चूर्ण को १ से २॥ तोले तक ले करके सायंकाल एक मिट्टी के पात्र में दो पाव जल में भिगोकर ढककर रख दें। प्रातः समय हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें। इस जल से नेत्रों को धोना चाहिए। त्रिफले के जल से चक्षुओं को धोने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है, शोथ, रक्तिमा, पीड़ा आदि नयनों के विकार शान्त होते हैं। जो व्यक्ति अपने नेत्रों को सुरक्षित रखना चाहते हों, उनके लिए यह प्रयोग उत्तम है। अनुभूत है।

(१६) चक्षु के रोगों में शिवादि चूर्ण

शिवा (बड़ी हरड़) और वंशलोचन—१-१ तोला, मधुयष्टि (मुलहठी), सैंधव लवण और छोटी-पिप्पली—प्रत्येक द्रव्य तीन-तीन तोले, बहेड़ा ४ तोले, आमला और मिश्री—प्रत्येक ८-८ तोले लें। इन समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर शीशी में सुरक्षित रखिए।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, विषम भाग मधु तथा घृत के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण समस्त प्रकार के नेत्र-रोगों में लाभप्रद है। इसके सेवन से चक्षुओं की ज्योति बढ़ती है। अनुभूत है।

(१७) नेत्र विकारों में गो-सेवा से लाभ

गौ की सेवा करने से, घास खिलाने से, पानी पिलाने से, दोनों समय गौ की पीठ पर हाथ फेरने से हाथ में विद्युत् उत्पन्न होती है। इससे नेत्रों के रोग, कण्डू (खुजली) आदि रोग नष्ट होते हैं। परीक्षित है।

नेत्र के रोगों में पथ्यापथ्य

मानसिक शान्ति, ईश्वर भक्ति, ब्रह्मचर्य, निश्चिन्त जीवन, विचारों की पवित्रता, विशुद्ध वायुमण्डल में निवास, घृतपान, पैरों की शुद्धता, गेंहू, जौ, लाल चावल, साठी चावल, मूंग, परवल, लौकी, मूली, पुनर्नवा, बथुआ, केला, करेला आदि का शाक, सैंधा नमक, धनियां, हरड़, बहेड़ा, आमला, दूध, मक्खन, मिश्री, खाण्ड, पादुका धारण करना आदि से नेत्रों के रोगों में शीघ्र शान्ति होती है।

मानसिक क्लेश, नास्तिकता, मैथुन, शोक, अधिक रोना, रात्रि जागरण और दिवाशयन, अधिक सोना, क्रोध करना, अधिक उपवास करना, मल, मूत्र, अपान वायु—इनके आगत वेगों को रोकना, धूप में बैठना वा चलना, अग्नि के समीप बैठना, विरोधी अन्न-पान का सेवन करना, लालमरिच, नमक, खटाई, तैल, मांस, मदिरा, धूम्रपान, चाय, सिनेमा देखना आदि से चक्षु रोगों की वृद्धि होती है।

मस्तक व्याधि

शिरोरोग—(मस्तक में होने वाले शूल, दाह, गुरुता आदि शिर के रोग)

शिरोरोग का कारण—मानसिक अशान्ति, अधिक चञ्चलता, अधैर्य, वीर्य का अधिक क्षय, क्रोध की अधिकता, चिडचिड़ाहट, अधिक बोलना, उच्च स्वर से बोलना, दूसरों की उन्नति को देखकर जलना, रात्रि जागरण और दिवाशयन, विरुद्ध अन्नपान का सेवन करना, रूक्ष आहार का अधिक सेवन, अधिक उपवास, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आगत वेगों को रोकना, आदि अनेक कारणों से वात आदि दोष प्रकुपित हो जाते हैं और शिर की वेदना, प्रदाह, गुरुता आदि मस्तक के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

चिकित्सा—हृदय, शिर तथा वस्ति—इन तीनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानसिकी पवित्रता तथा अपवित्रता का सूक्ष्म प्रभाव इनके ऊपर तुरन्त होता है। मानस शान्ति, अध्यात्म विचार, ब्रह्मचर्य, ईश्वर चिन्तन आदि दैवी सम्पत्ति के होने पर एक प्रकार की अचिन्त्य दिव्य शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जिस व्यक्ति के साथ इस दिव्य शक्ति का सम्पर्क रहता है उसके मस्तक, हृदय आदि मर्म त्रय सुसन्तुलित रहते हैं; फलतः शिर आदि में कोई रोग उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती। अतः दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों को चूर्ण, वटी, अवलेह आदि के सेवन किये बिना ही सुस्वास्थ्य और सुख की उपलब्धि होती है; जो स्थायी होती है। जो बुद्धिमती नारी एवं प्रज्ञावान् पुरुष अपने शिर को स्वस्थ रखने के इच्छुक हों उनके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि—वे मस्तक को उत्तेजित करने वाले काम, क्रोध, लोभ आदि आन्तरिक मनोविकारों के साथ मैत्री न करें और ब्रह्मचर्य, शान्ति ईश्वर भक्ति आदि दिव्य सम्पदा की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहें। ऐसा करने पर शीर्ष विकार सन्तप्त नहीं कर सकते।

रोग होने पर उसकी योग्य चिकित्सा करनी विधेय है। शिर के रोगों में लाभप्रद कतिपय प्रयोग लिखे जाते हैं। युक्ताहार और उचित-विहार के साथ यदि इन प्रयोगों का उपयोग होगा; तो ये प्रयोग सत्वर आरोग्यकर सिद्ध होंगे।

(१) शिरःशूलघ्न रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, भांग के बीज, शुद्ध धत्तूरे के बीज, छोटी कटेली के बीज, तालमखाने के बीज और विधारा के बीज—इनको समान भाग में लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना लें। तत्पश्चात् शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण कज्जली में मिला करके मर्दन करें। इसके उपरान्त अदरक के रस की सात भावना दें और प्रत्येक भावना में ८ घण्टे मर्दन करें। अन्तिम भावना पूर्ण होने के उपरान्त ४-४ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर, छाया में शुष्क करें। उत्तम प्रकार से शुष्क होने पर शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, सद्योजल के साथ दें।

गुण—इस वटी के सेवन से नवीन और पुराने से पुराना शिर का शूल, दारुण सन्निपात-ज्वर, आमवात, ग्रीवा एवं मस्तिष्क की जकड़न, संग्रहणी, श्लीपद (फील पाँव), आन्त्रवृद्धि, भगन्दर, कामला, शोथ, पाण्डु, पीनस, अर्श आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं। अनुभूत प्रयोग है।

(२) अर्धावभेदक (आधाशीशी=आधे शिर में होने वाली पीड़ा) के लिए

उत्तम नारियल के गोले ३ नग, काली मिरच का वस्त्रछन चूर्ण ४॥ तोले, खाण्ड ४॥ छटांक और गौ का घृत ४॥ छटांक लें। एक गोले में एक छिद्र बनाकर उसमें काली मरिच का चूर्ण १॥ तोले, खाण्ड १॥ छटाँक और घी १॥ छटांक—इन तीनों को एकत्र मिलाकर भर दें और कटे हुए भाग से जोड़कर उस भरे हुए गोले को सुरक्षित रख दें। तृतीय दिन से गोले को सेवन करें। इस गोले के समान-समान तीन भाग करके उनमें से एक भाग को प्रातः समय निरन्न (बिना कुछ खाये हुए) मुख होकर खा लें। जिस दिन खाना आरम्भ करें उसी दिन पूर्वोक्त विधि से द्वितीय गोले को भर करके रख दें। प्रथम गोले को तीन दिन तक खाने के उपरान्त चतुर्थ दिन से द्वितीय गोले का सेवन करें और उसी दिन तृतीय गोले को पूर्ववत् भर करके रख दें। इस प्रकार इन तीनों गोलों को ९ दिन तक निरन्तर खाने से अर्धाव-भेदक (आधाशीशी) नामक शिरोरोग नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग श्री घसीटा लाला जी पचहण्डा (मु० नगर) से प्राप्त है और अनुभूत है।

(३) मधुकादि तैल

मधुक (मुलहठी), सुगन्ध बाला, मजीठ, नागरमोथा, नख, कर्पूर, तेजपात, बड़ी हरड़, पद्म काष्ठ, कूठ, भृंगराज, अडूसा, तालीसपत्र, धूप, पत्रज, विडंग, सोंफ, अश्वगन्ध, भिलावे, नारियल की जड़—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, तिलों का तैल, घृतकुमारी (घीग्वार) का रस, धत्तूरे का रस, और भृङ्गराज का रस प्रत्येक द्रव्य १-१ सेर लें। प्रथमोक्त औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें और उसे चार सेर अजा (बकरी) के दूध में सायंकाल भिगोकर, ढक करके रख दें। प्रातः काल दूध से औषधि को निकालकर शिला पर सूक्ष्म पीस करके उसका कल्क बना लें। इसके उपरान्त एक कड़ाही में सम्पूर्ण द्रव्यों को एकत्र डाल करके मन्द-मन्द अग्नि पर पकाकर तैल

सिद्ध करें। तैल मात्र के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतारकर, छान लें और शीशी में रख लें।

गुण—इस तैल को शिर पर मलने से मस्तक का शूल, ग्रीवा की नाड़ियों में होने वाला दाह, शोथ, मूर्च्छा, आदि अनेक रोग शान्त हो जाते हैं।

(४) विशुद्ध स्प्रीन ५ तोले को जल के साथ मर्दन करके १-१ माशा प्रमाण में वटी बना, छाया में शुष्क करके शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः, मध्याह्न तथा सायं दिन में तीन समय जल के साथ खाने से शिर की वेदना तुरन्त शान्त होती है। मस्तक की पीड़ा को नष्ट करने के लिए अत्युत्तम है। शतसोऽनुभूतः।

(५) शिरःशूलान्तक प्रलेप

तिलों का तैल ५ तोले और देशीय मोम १॥ तोले—इन दोनों द्रव्यों को एक लोहे की कड़ाही में डाल करके चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब ये दोनों औषधि मिलकर एकाकार में हो जायें तब कड़ाही को अग्नि से नीचे उतार लें। इसके उपरान्त—दालचीनी, अजवाइन का सत्त्व, अफीम, कर्पूर, पुदिने का सत्त्व—अथवा पिपरमेण्ट और लवङ्ग का तैल—प्रत्येक द्रव्य—२-२ माशे लेकर, चूर्ण करने योग्य औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर इन समस्त द्रव्यों को कड़ाही में डाल दें और उत्तम प्रकार से मिलाकर शीशी में सुरक्षित रख लें।

उपयोग—यह प्रलेप मस्तक के शूल और पसलियों की वेदना को नष्ट करता है। इसके लगाने की विधि यह है कि—इसमें से कुछ औषधि ले करके शूल स्थान पर लगाकर हाथ की अङ्गुलियों से उस स्थल को धीरे-धीरे मर्दन करें। इस प्रयोग से शीर्ष-शूल तथा पार्श्व वेदना की शान्ति होती है।

(६) एरण्डादि प्रलेप

एरण्ड वृक्ष की जड़ की छाल, कडवा कूठ, सोंठ और वैतला—इनको समान भाग ले करके चूर्ण बना लें और इस चूर्ण को मट्ठा में भिगो दें। दो घण्टे तक भीगने के पश्चात् इसे शिला के ऊपर रख कर सूक्ष्म पीस लें। अच्छे प्रकार पिसने पर जब यह लेप लगाने योग्य बन जाय; तो इसे अल्पोष्ण करके मस्तक पर लगा दें। आवश्यकता के अनुसार दिन में २-३ बार लगावें। इस प्रलेप को लगाने से शिर का शूल नष्ट हो जाता है। २ प्रलेप लगाने से शिर की तीव्र वेदना का भी शमन हो जाता है।

शिरोरोग में पथ्यापथ्य—मानसिक शान्ति, ब्रह्मचर्य, अल्प भाषण, विश्राम, नस्य, घृतपान, पुराना शालिचावल, साठी चावल, गाय का दूध, मक्खन, मिश्री, मूंग की दाल, परवल, लौकी, बथुआ, आमला, हरड़, सैंधव नमक आदि मस्तक के रोगों में हितकर हैं।

चित्त की अशान्ति, व्यवाय, अधिक भाषण करना, उच्च स्वर से बोलना, शोक करना, क्रोध करना, साधारण सी बातों को लेकर अनावश्यक चिन्ता में डूबना, रात्रि में जागरण करना और दिन में सोना, मलावरोध (कब्ज) रहना, मल, मूत्र तथा अपानवायु आदि के आगत वेगों को रोकना, अधिक चाय पीना, तम्बाकू आदि धूम्रपान—इनसे रोग की वृद्धि होती है।

अथ-स्त्री-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३८॥

सृष्टिकर्त्ता परमात्मा ने विश्व की रचना करने में सर्वोत्कृष्ट प्रज्ञा का उपयोग किया है। विश्व की प्रत्येक वस्तु सार्थक और सूक्ष्म विज्ञान से परिपूर्ण है। संसार के गूढतम रहस्य को पूर्णतया जानना मनुष्य के लिए असम्भव है; परन्तु आंशिक रूप से बोध होना सम्भव है। शास्त्रावलोकन से और प्रत्यक्ष अनुभव से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि—विधाता ने समस्त प्राणियों में मनुष्य शरीर को श्रेष्ठ बनाया है। क्योंकि उत्तम बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ आदि मोक्ष प्राप्ति कराने वाले आवश्यकीय सम्पूर्ण साधन नर के लिए सुलभ हैं, अतएव मानव योनि श्रेष्ठ है। ईश्वर ने मनुष्य को सूक्ष्म और पवित्र बुद्धि दे करके महती कृपा की है। मनुष्यता की रक्षा पवित्र बुद्धि से होती है। निर्मल बुद्धि से हित, अहित, सत्य, असत्य आदि का ज्ञान होता है। मलिन बुद्धि द्वारा यथार्थ बोध नहीं होता। यद्यपि सृष्टि रचयिता भगवान जी स्वयं प्रत्येक स्त्री-पुरुष के हृदय-प्रदेश में सर्वदा विराजमान रहते हैं और सभी व्यक्तियों के अन्तःकरण में दुर्गुण, दुर्व्यसन तथा मिथ्याचरण से दूर होने के लिए एवं भद्र मार्ग का अनुगमन करने के लिए अहर्निश पवित्र प्रेरणा देते रहते हैं; तथापि विशुद्ध अन्तःकरण का अभाव होने पर सर्वान्तर्यामी प्रभु की दिव्य प्रेरणाओं को ग्रहण नहीं किया जाता। शरीर और मन को पूर्ण रूप से स्वस्थ रखने के लिए घी, दूध, अन्न, वस्त्र आदि बाह्य पदार्थों का उपभोग मात्र ही यथेष्ट नहीं होता, प्रत्युत उसके लिए सर्वान्तर्यामी ईश्वर की प्रेरणा को ग्रहण करना और तदनुसार आचरण करना भी अनिवार्य है।

जो स्त्री पुरुष अपने सत्यहितैषी प्रभु की अन्तर्ध्वनि का आदर नहीं करते उनके मन, इन्द्रियाँ और शरीर में पवित्रता नहीं रहती। ऐसे व्यक्तियों का जीवन पशुता से ऊपर नहीं उठता और उनको यथार्थ सुख तथा शान्ति की उपलब्धि भी नहीं होती। यथार्थ शान्ति तथा सुख की प्राप्ति के लिए एवं स्वस्थ रहने के लिए बुद्धि, मन, इन्द्रिय और स्थूल शरीर पर नियन्त्रण रखना अत्यधिक आवश्यक है। यदि बुद्धि, मन आदि करणों का संयम न किया जाये; तो जीवन में उच्छृंखलता अवश्य आ जाती है। उससे उद्दाम पाशविक वासनायें और अधिक विकराल हो जाती हैं। ऐसी अवस्था होने पर विश्व के उन समस्त हितकर नियमों का उल्लंघन स्वतः होने लगता है जो विधाता ने प्रजा के कल्याणार्थ बनाये हैं।

क्योंकि सृष्टि में दृश्यमान प्रत्येक पदार्थ प्राणियों के हितार्थ बना है; अतएव

यहाँ ईश्वर सृष्ट तथा शास्त्र विहित सभी नियम-उपनियम प्रजा के कल्याण के लिए हैं। यदि प्राकृतिक नियमों का आदर करते हुए जीवन यापन हो तो कोई भी स्त्री पुरुष अस्वस्थ और अशान्त न हो। जब-जब विश्वसनीय हितकर नियमों का उल्लंघन किया जाता है; तब-तब आधि व्याधियों का आक्रमण होता है। जो स्त्री पुरुष अज्ञान के कारण यम--नियमों की उपेक्षा करके असंयमित जीवन यापन करते हैं; वे मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से वञ्चित रहते हैं और अपने अमूल्य मनुष्य तनु की सार्थकता नहीं कर पाते।

अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण स्त्री तथा पुरुष इन दोनों में तुल्य होता है और सुख तथा दुःख की अनुभूति भी दोनों को एक समान होती है। यद्यपि मानसिक एवं शारीरिक रोगों के उत्पादक हेतु बहुत होते हैं; तथापि उन सभी में मनोविकार बलिष्ठ और दुर्जय होता है। मानसिक रोगों का प्रभाव शरीर के ऊपर अवश्य होता है। परन्तु चित्त के स्वस्थ रहने पर शारीरिक रोगों का प्रभाव मन पर नहीं होता। जो स्त्री पुरुष ईश्वर भक्ति, योगाभ्यास आदि किसी साधन के अनुष्ठान से अपने मन को समाहित करने की योग्यता रखते हैं; वे इस बात का अनुभव अवश्य कर लेते हैं कि भयानक से भयानक शारीरिक व्याधियाँ भी समाहितचित्त व्यक्ति को उसी प्रकार से व्याकुल नहीं कर पातीं; जिस प्रकार सुषुप्ति में दुःख। अतएव महर्षियों ने चित्त की एकाग्रता का महत्व प्रदर्शित किया है। प्रज्ञावती नारी तथा विवेकवान् पुरुष के विशिष्ट कर्त्तव्यों में चित्त की स्थिरता अन्यतम कार्य है। मनोविकारों का उन्मूलन करने के लिए और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए मनोनिग्रह का अभ्यास प्रबल प्रयोग है। अतएव कल्याण के इच्छुक प्रत्येक स्त्री पुरुष के द्वारा ईश्वर भक्ति, जप आदि मनोनिरोधक उपाय आचरणीय हैं।

स्त्रियों के स्वास्थ्य, सुख तथा शान्ति को विनष्ट करने वाले रोग शत्रुओं में "**प्रदर**" नामक रोग भीषण है। जिस रोग में मासिक धर्म के बिना ही योनि मार्ग से रक्त आदि धातुओं का स्राव होता है; उसे "प्रदर रोग" कहते हैं। रोग के प्रारम्भ में यदि उचित चिकित्सा न की जाय; तो यह व्याधि असाध्य हो जाती है। जिस नारी को प्रदर रोग हो जाता है, उसका मन उदास रहने लगता है। किसी भी कार्य को करने के लिए उत्साह नहीं रहता। शिर में चक्कर आना, मेरुदण्ड में पीड़ा का होना, मन्दाग्नि की वृद्धि तथा क्षुधा का समाप्त हो जाना, खाया हुआ भोजन उचित समय पर न पचना, मलावरोध का होना, शरीर का रंग पीला वा श्वेत होना, आलस्य की अधिकता आदि अनेक लक्षण होते हैं।

क्योंकि समस्त रोगों की उत्पत्ति में प्रज्ञापराध अवश्य रहता है, अतएव प्रदर आदि नारी रोगों में भी प्रज्ञापराध अनुस्यूत होता है। विषयों का अधिक चिन्तन करने से, मैथुन-आसक्त होने से, मानसिक चञ्चलता से, चित्त की अशान्ति से, शोक करने से, उत्तेजक अभद्र पुस्तकें पढ़ने से, सिनेमा देखने से, दिन में शयन

करने से, रात्रि में अधिक जागने से, अधिक क्रोध करने से, चिड़चिड़ा स्वभाव होने से, शारीरिक उचित श्रम न करने से, अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने से, अत्यधिक खाने से, विबन्ध रहने से, मल, मूत्र, अपानवायु आदि के आये हुए वेगों को रोकने आदि अनेक कारणों से शरीरस्थ वात आदि दोष प्रकुपित हो जाते हैं और प्रदर आदि स्त्रैण रोगों के हेतु बनते हैं। इन सम्पूर्ण कारणों में सूक्ष्म रूप से बुद्धि का दोष अन्वित रहता है।

प्रदर नाशक प्रयोग—

(१) महिला मित्र गुटिका

शतावर, कौंच के बीज, शुण्ठी, काली मरिच, छोटी पिप्पली, गोखरू, अश्वगन्ध, विधारा, वायविडङ्ग, और अजमोद—प्रत्येक द्रव्य १-१ पाव, अर्क (मदार) के पुष्प अथवा अर्कमूल त्वचा आध सेर, शुद्ध कुचला ३ सेर और शुद्ध महिषाक्ष (भैंसा) गुग्गुलु ६ सेर लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनावें। तत्पश्चात् गुग्गुलु को दूध में पकावें। मन्द-मन्द अग्नि जला करके पाक करें। जब यह कुछ गाढ़ा हो जाये, तो इसे अग्नि से नीचे उतार करके, इसमें सम्पूर्ण औषधियों के चूर्ण को उत्तम प्रकार से मिलाकर एक दिन मर्दन करें। अच्छे प्रकार से घुटाई होने पर ४-४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना करके, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ४ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय—उष्ण दूध वा जल के साथ सेवन करें।

गुण—इस औषधि को खाने से रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, मासिक धर्म का रुकना, अनियमित रूप से शीघ्र-शीघ्र मासिक धर्म का होना, शिर में वेदना का होना, प्रसूता रोग, अपतन्त्रक (=योषापस्मार=हिस्टीरिया), शरीर का वर्ण पीला हो जाना, आलस्य, मन्दाग्नि, नाडियों में रुधिर का सञ्चित होना और विषम ज्वर आदि स्त्रियों के अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्रयोग "धात्रीकर्मशिक्षा" नामक पुस्तक का है जो हमारे द्वारा सहस्रों बार का परीक्षित है। इसका निर्माण करके लाभान्वित हों।

(२) शतवीर्यादि चूर्ण

शतावर (शतवीर्या), नागोरी अश्वगन्ध, पठानीलोध, विधारा, समुद्रशोष, माजुफल, कमलगट्टा, मोचरस, चुन्नी, गोन्द कतीरा,—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले लेकर सबका वस्त्रछन चूर्ण बना लें। सम्पूर्ण चूर्ण के समभाग शक्कर मिलाकर शीशी में भरकर सुरक्षित रखलें।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ माशे तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, दूध अथवा जल के साथ।

गुण—यह चूर्ण रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर में अत्युपयोगी है। अनुभूत है।

इसके सेवन से प्रदर रोग शान्त होकर शारीरिक बल और उत्साह की प्राप्ति होती है।

(३) सुन्दरीरक्षक चूर्ण

विदारीकन्द, दालचीनी, पर्वतीय गोखरू, श्वेत तुन्दरी, समुद्रशोष, बीजबन्द, तालमखाना, सकरकुल, पंजासालम, बिहीदाना, दिल्ली की मुशली, रक्त बहमन, श्वेत बहमन, उटंगण के बीज, शुद्ध कौंच बीज, शतावर, इन्द्रयव, कतीरा गोन्द, ईसबगोल का सत्व, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़ा, आमला, सनाय, बबूल की फली, तबाशीर (तवक्षीर), लक्ष्मणा, अश्वगन्ध, और मोचरस—प्रत्येक द्रव्य एक-एक छटांक, शिलाजीत आध सेर और बंगभस्म १ तोला लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिला लें और समष्टि चूर्ण के समभाग मिश्री मिला करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—४-४ माशे, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, उष्ण दूध के साथ सेवन करें।

गुण—जिस प्रकार से पुरुषों में वीर्यस्राव, प्रमेह आदि धातु सम्बन्धित विकार होते हैं; उसी प्रकार से स्त्रियों में प्रदर रोग होता है। इस व्याधि के होने पर योनि स्थान से लाल, पीला, नीला, काला तथा श्वेतवर्ण का जलवत् द्रव पदार्थ निकलता है; जिसमें रुधिर आदि शारीरिक धातुओं का मिश्रण होता है। क्योंकि प्रदर रोग में शारीरिक धातुओं का क्षय होता है; अतएव प्रदर-ग्रस्त महिलाओं के शिर, कटि आदि स्थानों में वेदना, शारीरिक निर्बलता, मन्दाग्नि का होना, क्षुधा का क्षय, मानसिक प्रसन्नता का अभाव, उदास भाव की वृद्धि, शरीर में आलस्य का रहना आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। सुन्दरी रक्षक चूर्ण के सेवन से सोपद्रव प्रदर रोग निर्मूल हो जाता है। समस्त प्रकार के प्रदर रोग को नष्ट करने के लिए अत्युत्कृष्ट प्रयोग है। अनुभूत है।

(४) पुष्यानुग चूर्ण

पाठा, जामुन की गिरी, आम की गिरी, पाषाण भेद, शुद्ध रसोत, आमडा (अभावे लक्ष्मणा), मोचरस, लाजवन्ती, पद्माक्ष, नागकेशर, अतीस, मोथा, बिल्वगिरी, लोध, शुद्ध सोना गेरू, कायफल, काली मरिच, शुण्ठी, द्राक्षा (मुनक्का), लालचन्दन, सोना पाठे की छाल, कुड़े की छाल, अनन्तमूल, धाय के पुष्प, मुलहठी, और अर्जुन की छाल २-२ तोले लेकर पुष्य नक्षत्र में वस्त्रछन चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखलें। इस चूर्ण को पुष्य नक्षत्र में ही खाना आरम्भ करें।

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे चूर्ण, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, मधु में मिलाकर चटावें और ऊपर से चावल का पानी पीने के लिए दें।

गुण—पुष्यानुगचूर्ण के सेवन से श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, योनिदोष, रजोदोष, ये सभी रोग और अर्श तथा अतिसार रोग में होने वाला रुधिर-स्राव शान्त हो जाता है। यह प्रयोग "चरक संहिता" का है और हमारे द्वारा परीक्षित है।

(५) स्त्री रसायन

लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमले का छिलका, काली मरिच, शुण्ठी और छोटी पिप्पली—समान भाग लेकर, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर, भस्में मिलाकर शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ माशा चूर्ण मधु के साथ प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—इस रसायन के सेवन से समस्त प्रकार के प्रदर, कटिशूल, मन्दाग्नि आदि स्त्री रोग नष्ट होते हैं। यह स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए अत्युत्तम प्रयोग है। अनेक वार का अनुभूत है।

(६) प्रदरहर क्वाथ

मेंहदी के बीज ५ तोले को मोटा-मोटा कूटकर ६ छटांक जल में, मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें और शीतल होने पर छान करके पीने के लिए दें। ऊपर से शुद्ध गुलाब का जल अल्पमात्रा में पिला दें।

वक्तव्य—इस क्वाथ को मासिक धर्म होने से पांच दिन पूर्व से पीना प्रारम्भ करे और मासिक धर्म के आरम्भ होने पर इसका सेवन न किया जाय। इस प्रकार से मास में केवल पांच दिन इसे पीना चाहिए। अधिक समय तक निरन्तर इसे सेवन न करें। रोग की निवृत्ति होने तक उक्त विधि से सेवन करें। वैद्य रुग्णा की प्रकृति और ऋतु को विचार करके ही इसका प्रयोग करें।

गुण—यह क्वाथ समस्त प्रकार के प्रदर, मासिक धर्म की अधिकता वा अल्पता का होना आदि रोगों में अत्युत्तम है। अनेक वार का सुपरीक्षित प्रयोग है।

(७) दारुहरिद्रादि क्वाथ

दारुहरिद्रा, रसाञ्जन (रसोत), अडूसा के पक्व पत्र, चिरायता, कच्चे बेल का गूदा (अभावे, जड़), और भिलावा—समान भाग में २ से ३ तोले तक लेकर यवकुट चूर्ण बनावें और आध सेर जल में मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। अष्टमांश (एक छटांक) जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतारकर शीतल होने के पश्चात् हाथ से मर्दन करके, वस्त्र से छान लें और इसमे ६ माशे मधु मिला करके प्रदर रोग पीड़ित स्त्री को पिला दें। इस क्वाथ को पीने से अति प्रबल सशूल नीला, मांस धोवन के समान काला, लाल और श्वेत वर्ण का प्रदर रोग निर्मूल हो जाता है। अनुभूत है।

(८) कष्टार्तवहर क्वाथ

काले तिल और पुराना गुड़-प्रत्येक द्रव्य १—१ तोला लें और इन दोनों को एक पाव जल में मन्दाग्नि पर पकावें। अष्टमांश (२॥ तोले) जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर हाथ से मर्दन करके छान लें। "रजः प्रवर्त्तनी वटी" की एक गोली को खा करके ऊपर से इस क्वाथ को पीवें।

(९) रजः प्रवर्त्तनी वटी

इसबन्द एक छटांक, शुद्ध चौकिया सुहागा, समुद्रफेन, मुसब्बर, नागकेशर, हीरा कसीस, यवक्षार, बड़ी एलायची के बीज, सैंधवलवण, वायविडङ्ग, इन्द्रायण की जड़ की छाल, चित्रक, सोंठ, सर्जक्षार, कबूतर की विष्ठा (बीट) और बबूल का कोयला —प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर समस्त द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बनावें। इसके पश्चात् जल के साथ एक दिन मर्दन करके ३-३ चने के समान गोलियाँ बना करके छाया में शुष्क करें और उत्तम प्रकार से शुष्क होने पर शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी को खा करके ऊपर से उपर्युक्त "कष्टार्त्तवहर क्वाथ" को पीवें।

गुण—यह वटी कष्टार्तव में उत्कृष्ट प्रयोग है। जिन स्त्रियों को अतिकष्ट के साथ ऋतु स्राव होता है; उनके लिए यह वटी अत्युपयोगी है। इस वटी को "कष्टार्तवहर क्वाथ" के साथ दो मास तक सेवन करने पर रजः स्राव सम्बन्धित सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। अनुभूत है। "कष्टार्तव" में अव्यर्थ प्रयोग है।

(१०) पुनर्नवादि क्वाथ

पुनर्नवा की जड़ २ तोले, मुलहठी १ तोला और अजवाइन ३ माशे लेकर मोटा-मोटा कूटलें और आध सेर जल में मन्दाग्नि पर पकावें। अष्टमांश (१ छटांक) जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर हाथ से मर्दन करके छान लें। अल्पोष्ण रहते हुए ही इसमें २ तोले मधु मिलाकर पिला दें। इस क्वाथ को पीने से मासिक धर्म तुरन्त हो जाता है। ऋतु स्राव का अवरोध नष्ट होकर रजः स्राव अविलम्ब होता है।

अपतन्त्रक (योषापस्मार=हिष्टीरिया) रोग नाशक प्रयोग

(११) अपतन्त्रकहरी वटिका

देशीयकर्पूर, घृत में भुनी हुई हींग और गाँजा—प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे, खुरासानी अजवाइन १ तोला लेकर समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर मधु के साथ मर्दन करके २-२ रत्ती प्रमाण की वटी बना कर शीशी में भरकर रखें।

मात्रा—२—२ वटी, प्रातः मध्याह्न और सायं समय दिन में ३ समय दें।

अनुपान—जटामांस्यादि क्वाथ के साथ दें।

गुण—यह वटी अपतन्त्रक (योषापस्मार=हिष्टीरिया) रोग में विशेष लाभप्रद है। इससे पुराने से पुराना कष्टसाध्य योषापस्मार (हिष्टीरिया) रोग भी निश्चित रूप से विनष्ट हो जाता है। अनुभूत है।

(१२) जटामांस्यादि क्वाथ

जटामांसी १ तोला, अश्वगन्ध ३ माशे और खुरासानी अजवाइन ४ रत्ती लेकर, सब को यवकुट चूर्ण बना एक पाव जल में मिट्टी के पात्र में मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन कर, वस्त्र से छान लें। अपतन्त्रक-हरी वटी को खाकर ऊपर से इस क्वाथ को पीवें। हिष्टीरिया रोग में यह क्वाथ सत्वर लाभप्रद है।

(१३) केशरादि वटी

केशर, जावित्री—प्रत्येक ४–४ माशे, अश्वगन्ध, जायफल और गौ के दूध में शोधित छोटी पिप्पली—प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला, आर्द्रक २ तोले और बंगला पक्व श्वेत ताम्बूल पत्र १० नग लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना कर अदरक तथा ताम्बूल पत्रों को चूर्ण में मिलाकर १२ घण्टे मर्दन करें। उत्तम प्रकार से घुटाई होने पर जब यह वटी बनाने के योग्य बन जाय; तो २–२ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाकर, छाया में शुष्क करके, शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१–१ वटी प्रातः सायं दिन में दोनों समय पान के पत्र में रखकर खावें।

गुण— यह वटी योषापस्मार (हिष्टीरिया) रोग में अत्युपयोगी है। इसे न्यून से न्यून २ मास पर्यन्त सेवन कराना चाहिए।

अपतन्त्रक (हिष्टीरिया) की रुग्णा यदि मलावरोध (कब्ज) से पीड़ित होवे, तो उपर्युक्त औषधि के साथ ही साथ निम्नाङ्कित विरेचक चूर्ण को सेवन कराना चाहिये। इस चूर्ण के सेवन से उदर की शुद्धि होकर शीघ्र रोग निवारण हो जाता है।

(१४) विरेचक चूर्ण

मुलहठी, सोंफ, शुद्ध गन्धक, श्वेत निशोथ और गुलाब के पुष्प—प्रत्येक द्रव्य २–२ तोले, सनाय ५ तोले और मिश्री १० तोले लेकर सब का वस्त्रछन चूर्ण बना कर स्वच्छ शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से १ तोला तक इस चूर्ण को खिलाकर ऊपर से उष्ण जल, अथवा मिश्रीयुक्त गर्म दूध में बादाम का तैल ३ से ६ माशे तक डालकर इस दूध को पिला दें। यह चूर्ण सायं काल खाने से प्रातः अनायास मल रेचन होकर कोष्ठ का शोधन हो जाता है।

उपर्युक्त विधि से चिकित्सा करने पर योषापस्मार (हिष्टीरिया) रोग निश्चित शान्त हो जाता है।

सूतिका रोग नाशक प्रयोग

सन्तान उत्पन्न होने के पश्चात् अहितकर आहार विहार के सेवन से सूतिका रोग उत्पन्न हो जाता है। जिन स्त्रियों को यह रोग होता है उनके शरीर में गुरुता, अङ्गों में वेदना, शोथ, मन्दाग्नि, ज्वर, पिपासा आदि विविध लक्षण देखे जाते हैं। उस दशा में निम्न प्रयोग लाभप्रद हैं—

(१५) सौभाग्यादि वटिका

शुद्ध सुहागा, (सौभाग्य) लवङ्ग, शुद्ध सिङ्गिया विष, सर्जक्षार, यवक्षार, श्वेत जीरा, काला जीरा, शुण्ठी, छोटी पिप्पली, काली मरिच, बड़ी इलायची के बीज, कूठ, सैंधव लवण, सोंचर लवण, काला नमक, जावित्री, जायफल, घी में भुनी हुई हींग, नागर मोथा, कायफल, त्रिफला, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म,—इन समस्त औषधियों को समभाग लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके उसमें भस्में मिलाकर ६ घण्टे मर्दन करें। इसके पश्चात् शेष काष्ठौषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण सम्मिश्रण करके घोटें। तदुपरान्त अपामार्ग, निर्गुण्डी, भृङ्गराज और पान—इनके स्वरस वा क्वाथ में पृथक्-पृथक् एक-एक दिन मर्दन करके ४—४ रत्ती प्रमाण में गोलियाँ बना लें और छाया में शुष्क करके शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा—१ से २ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

अनुपान—प्रसूता रोग में दशमूल के क्वाथ के साथ दें। रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

गुण—इस वटी को अनुपान भेद से सेवन कराने पर प्रसूता विषमज्वर, जीर्ण-ज्वर, प्लीहा तथा यकृत् से उत्पन्न होने वाला ज्वर, सन्निपातज ज्वर, आमशूल, कास, श्वास, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। इस औषधि में मैंने अनेक उत्कृष्ट गुणों को अनुभव किया है।

(१६) प्रसूतारोगहर क्वाथ

१—बड़ी कटेली, २—छोटी कटेली, ३—जावित्री, ४—जायफल, ५—शुण्ठी, ६—छोटी पिप्पली, ७—अतीस, ८—वायविडङ्ग, ९—दूधिया वचा, १०—सोंफ, ११—पलाश पापड़ा, १२—केशर, १३—अमलतास का गूदा, १४—अजवाइन, १५—नागर मोथा, १६—काकड़ा सिंगी, १७—वंशलोचन, १८—दालचीनी, १९—इलायची, २०—ब्राह्मी, २१—बड़ी हरड़, २२—अश्वगन्ध, २३—शतावर, २४—गुलाब के पुष्प, २५—गिलोय, २६—कुटकी, २७—पटोल पत्र, २८—मुलहठी, २९—एलुवा बोल, ३०—अड़ूसा की छाल—प्रत्येक द्रव्य १—१ भाग और ३१—मजीठ दो भाग लें और यवकुट चूर्ण बना कर रखिये।

वक्तव्य—देश भेद से उपर्युक्त द्रव्यों में परिवर्त्तन भी किया जाता है। यथा—गुलाब के पुष्प के स्थान पर—गुल निलोफर, केशर के स्थान पर नागकेशर, जावित्री के स्थान पर—पत्रज और एलुवाबोल के स्थान पर—वेल आदि डाले जाते हैं। रुग्णा की प्रकृति के अनुसार वैद्यजन इसमें परिवर्तन कर सकते हैं; परन्तु पंसारी ऐसा नहीं कर सकता।

उपयोग—यह क्वाथ सूतिका रोग में अत्युपयोगी है। उक्त यवकुट चूर्ण में से १ से २ तोला तक की मात्रा में लेकर एक पाव जल में मन्द-मन्द अग्नि पर

पकावें और चतुर्थांश शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर, हाथ से मर्दन करके छान लें। उष्ण रहते हुए ही पिलावें। इस प्रकार से प्रातः सायं दिन में दोनों समय नवीन क्वाथ सिद्ध करके सेवन कराना चाहिए। इसको कुछ समय तक निरन्तर प्रयुक्त करने से प्रसूता के समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

(१७) स्तनपाक हर प्रलेप

धतूरे की जड़ अथवा पत्र और हल्दी का चूर्ण—इन दोनों औषधियों को समभाग लेकर जल के साथ सूक्ष्म पीस लें। अच्छे प्रकार से घुटाई होने पर जब यह लेप लगाने के योग्य सूक्ष्म पिस जाये; तो इसे पके हुए स्तन पर लगा दें। यह लेप स्तनों का पकना अथवा उनमें शोथ होना—इस रोग में हितकर है।

(१८) योनिशूलहर प्रयोग

झाड़बेरी के पत्रों को जल से धो करके शिला पर पीस लें। सूक्ष्म पिसने पर इसे योनि स्थान में रखने से भग में होने वाला शूल नष्ट होता है।

(१९) प्रलेप

आमलासार गन्धक, शख भस्म, आमला और मैनसिल—इन चारों द्रव्यों को समभाग लेकर, सूक्ष्म चूर्ण बना लें और जल के साथ घोटकर लेप लगाने योग्य सूक्ष्म बना लें। इस लेप को लगाने से योनि शूल तथा भग की दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

वन्ध्या, काकबन्ध्या और मृतवत्सा रोग में अनुभूत प्रयोग

(२०) बंगादिवटी (पुत्रप्रद प्रयोग)

उत्तम बंग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, उत्तम लोह भस्म, शिवलिंगी के बीज, मयूरशिखा (मोरशिखा), पारस पीपल, नागकेशर, अश्वगन्ध, सरफोंका, शतावर, मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आमला, देवदारु, अम्बरधान, कमलगट्टा, बीजबन्द, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, हल्दी और दारुहल्दी—प्रत्येक ४-४ तोले और वंशलोचन ८ तोले लें। प्रथम चूर्ण करने योग्य काष्ठौषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् भस्में और वंशलोचन को चूर्ण में मिलाकर एक दिन घुटाई करें। तदुपरान्त लक्ष्मणा (श्वेत कटेरी) के क्वाथ तथा जियापोता के बीजों के क्वाथ में एक-एक दिन पृथक्-पृथक् मर्दन करें। अच्छे प्रकार से घुटाई होने पर जब यह वटी बनाने के योग्य बन जाय; तो १-१ माशा प्रमाण में गोली बनाकर छाया में शुष्क कर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ वटी तक, बल के अनुसार दूध के साथ, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

गुण—इस वटी को सेवन करने से रजोविकार आदि दोष नष्ट होकर पुत्रोत्पन्न होता है। जो स्त्री जन्म से ही बन्ध्या है तथा जिसके एक सन्तान होने के उपरान्त दूसरा बालक नहीं होता है (काकबन्ध्या) और जिसके बच्चे जीवित नहीं

रह पाते (मृतवत्सा)—उत्पन्न होकर मर जाते है—इन तीनों प्रकार की महिलाओं को इस गोली को सेवन कराना हितकर है। इसे निरन्तर तीन मास तक सेवन कराने पर अवश्य दीर्घायु पुत्र होता है। यह प्रयोग सैंकड़ों बार का अनुभूत है।

मृतवत्सा स्त्री के लिए उपयोगी प्रयोग—

(२१) नागकेशरादि गुटिका

नागकेशर, शिवलिंगी के बीज, और छोटी पिप्पली—इन तीनों द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें और जल के साथ मर्दन करके चणक (चना) प्रमाण की गोली बनाकर छाया में शुष्क करें और उत्तम प्रकार से सूखने पर स्वच्छ शीशी में भर, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी प्रातः सायं दिन में दोनों समय, जल के साथ खावें।

गुण—जिस स्त्री के बालक वा बालिका उत्पन्न हो करके मृत्यु के मुख में चले जाते हैं, जीवित नहीं रह पाते उस स्त्री को "मृतवत्सा" कहते हैं। ऐसी महिलाओं के लिए यह गोली उपयोगी है। इसके सेवन करने से सन्तान जीवित रहती है। इसे ४० दिन तक निरन्तर सेवन करना इष्ट है।

मृतवत्सा रोग में गर्भपालक प्रयोग

(२२) समुद्रफलादि वटिका

समुद्रफल, लौंग, नागकेशर, शुद्ध मयूर शिखा, शिवलिंगी के बीज—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग और भाँग के बीज $\frac{1}{4}$ चौथाई भाग लेकर समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके उपरान्त गुलाब के अर्क में एक दिन मर्दन करके चणक प्रमाण में गोली बनाकर, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

उपयोग विधि—गर्भस्थिति हो जाने के पश्चात् ६१वें दिन नारी स्नान करके शिवलिंगी के ९ बीज पूर्ण (बिना तोड़े ही) निगल जाये और ऊपर से एक पाव गौ का दूध पीवे। इसके पश्चात् दूसरे दिन स्नान करके ५ बीजों को और तृतीय दिन ४ बीज पूर्ववत् गोदुग्ध के साथ निगल जाय। इस प्रकार से तीन दिनों में—९+५+४=१८ शिवलिंगी के बीज दूध के साथ गर्भवती नारी निगल जाये। इस क्रिया को करते समय दो बातें ध्यान रखने योग्य हैं। प्रथम बात तो यह है कि गर्भवती स्त्री इन तीन दिनों में प्रथम स्नान करके ही बीजों को निगलें। स्नान द्वारा शुद्ध हुए बिना इस क्रिया को नहीं करें। दूसरी बात यह है कि—शिवलिंगी के बीजों को बिना तोड़े ही सम्पूर्ण को निगलें। इस प्रकार से तीन दिन शिवलिंगी के बीजों को निगलने की क्रिया समाप्त करने के पश्चात् चतुर्थ दिन से "समुद्रफलादि वटी" का सेवन करना प्रारम्भ करें। १-गोली को खा करके ऊपर से गोदुग्ध पीवें। प्रातःकाल दिन में केवल एक ही बार प्रयोग करना इष्ट है। प्रसव होने तक इस गोली को निरन्तर खावें। बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् इसका प्रयोग न करें।

प्रसवोपरान्त नवजात शिशु की मुट्ठी में से एक-एक शिवलिङ्गी का बीज प्राप्त होगा। उसे निकालकर, ताबीज में भरकर बालक के कण्ठ वा हाथ में बाँध दें। इस प्रयोग से बालक जीवित रहेगा और वह बुद्धिमान्, कीर्तिमान्, गुणवान् और दीर्घायु होगा।

(२३) मृतवत्सा रोग में क्वाथ स्नान प्रयोग

सिहोरा (सिहोड़) वृक्ष की छाल (जिसके बीज श्वेत मटर के सदृश होते हैं), महुए के वृक्ष की छाल और कचनार की जड़ की छाल—प्रत्येक द्रव्य एक-एक सेर लेकर तीनों को मोटा-मोटा कूट करके, १५ सेर जल में डाल दें और चूल्हे के ऊपर चढ़ा करके मन्द-मन्द अग्नि पर पकावे। एक उबाल आने पर इसे अग्नि से नीचे उतार लें। इस जल को समान-समान तीन भागों में विभक्त करके तीन पात्रों में भर करके रख लें।

मासिक धर्म से शुद्ध होकर तीसरे दिन से इस क्रिया को आरम्भ करें। किसी निर्जन स्थान में अथवा एकान्त घर में निम्न प्रकार से स्नान करे—

एक मिट्टी की बड़ी नाँद अथवा लोहे के टब में बैठकर उक्त एक पात्र के जल से अपने सम्पूर्ण शरीर को चुपड़ लें और शरीर के अङ्गों को उत्तम प्रकार से मर्दन करें। किसी वस्त्र से पोंछना नहीं चाहिए। इस जल को बिना पोंछे ही शरीर पर शुष्क करें और शरीर के सूख जाने के पश्चात् वस्त्र धारण करें। इस प्रकार दूसरे और तीसरे दिन भी एक-एक पात्र के जल से स्नान करें। इस स्नान में निम्नाङ्कित बातें ध्यान रखने योग्य हैं—

(१) स्त्री सर्वाङ्गनग्न हो करके ही स्नान करे। (२) जल को वस्त्र आदि से पोंछे बिना ही उसे शरीर पर मर्दन करके सुखा ले। (३) तीनों दिनों में स्नान करते समय यह ध्यान रखे कि—क्वाथ के जल की एक बिन्दु भी टब आदि से बाहर भूमि पर न गिरे और स्नान करने के उपरान्त तीनों दिनों के सम्पूर्ण पानी को मिट्टी के घड़े में भर कर, जंगल में भूमि के अन्दर उस घड़े को गाढ़ दिया जाय।

जब गर्भ तीन मास का हो जाय; तो उस समय उक्त विधि के अनुसार ३ दिन तक दूसरी बार स्नान करना चाहिए। जब से यह स्नान क्रिया आरम्भ की जाय; तब से लेकर प्रसव होने तक मृतवत्सा स्त्री के लिए पथ्य में—खीर, बूरा, दूध, मक्खन, मूंग, गेहूं, चावल, सैंधव लवण आदि हितकर आहार दें।

खट्टे पदार्थ, लाल मरिच, उष्ण मसाले, तैल के बने खाद्य पदार्थ, अपने घर के अतिरिक्त बाहर से आये हुए खाद्य तथा पेय द्रव्यों का सेवन करना सर्वथा निषिद्ध है।

बालक उत्पन्न होने के कुछ दिन के पश्चात् उसे इस वटी का सेवन करावें—

रत्नज्योति की जड़ और काली मरिच—इन दोनों को समभाग लेकर सूक्ष्म पीस लें और जल के साथ घोट कर काली मरिच के चतुर्थ भाग प्रमाण में गोली

बनाकर, छाया में शुष्क कर, शीशी में भर कर रख लें। १-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दोनों समय जल में वा माता के दूध में घोल कर बालक को दें।

गुण—इस प्रकार से चिकित्सा करने पर मृतवत्सा नारी की सन्तान जीवित रहती है। इससे दीर्घायु पुत्र होगा। यह सन्तप्रदत्त प्रयोग है और हमारे द्वारा अनेक बार का परीक्षित है।

(२४) पुत्र कारक प्रयोग

भांग के बीज, बिना भेदन किये मुक्ता (अभावे-मुक्ता शुक्ति) मयूरशिखा, स्वर्णक्षीरीमूल, जायफल और श्वेत जीरा— प्रत्येक द्रव्य—८-८ माशे लेकर समस्त औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर समष्टि की ७ मात्राएँ बना लें। ऋतु स्नान के उपरान्त १ मात्रा प्रातः समय खा करके ऊपर से गोदुग्ध पीवें। इस प्रकार से सात दिन तक सेवन करने पर पुत्रोत्पत्ति होती है। पथ्य में—खाण्ड, गोदुग्ध और भात दें। लवण निषिद्ध है।

(२५) जिस गर्भ से कन्या ही कन्या उत्पन्न होती हों, पुत्र न होता हो, उसमें पुत्रप्रद योग

जौ का सूक्ष्म चूर्ण बना लें और अर्क (मदार) के दूध में मर्दन करके माष (उड़द) प्रमाण में वटी बनाकर, छाया में सुखाकर शीशी में भर कर रख लें। १ वटी, प्रातः समय दिन में केवल एक बार गौ के दूध के साथ स्त्री को खिलावें। जब गर्भ ३ मास का हो जाय; तब इस गोली को सेवन करना प्रारम्भ करें। औषधि सेवन काल में स्त्री के लिए दूध और चावल पथ्य में दें।

गुण—जिस स्त्री के गर्भ से कन्याएँ उत्पन्न होती हों; पुत्र न होता हो; उसके लिए यह प्रयोग लाभप्रद है। इस प्रयोग के सेवन से पुत्रोत्पत्ति हो जाती है। अनुभूत है।

(२६) गर्भधारक प्रयोग

१. पुत्रजीव (जिया पोता) की जड़ अथवा बीज का सूक्ष्म चूर्ण ३ माशे की मात्रा में गौ के दूध के साथ सेवन करें।

२. मयूर शिखा का चूर्ण ३ माशे लेकर गौ के दूध के साथ खावें।

३. पारस पीपल के बीजों का सूक्ष्म चूर्ण ३ माशे को गौ दुग्ध के साथ सेवन करें।

४. शिवलिङ्गी के बीजों का चूर्ण ३ माशे गौ के दूध के साथ खावें।

ये चारों प्रयोग गर्भधारक हैं। इनमें से किसी भी एक योग का सेवन करने पर गर्भधारणा होती है।

(२७) ओ३म् प्रसववेदनाहर प्रयोग

अपामार्ग (चिरचिटा) की जड़ ६ माशे को स्वच्छ जल से धोकर शिला पर सूक्ष्म पीस लें और इसे अल्पोष्ण गो दुग्ध में मिलाकर गर्भवती नारी को पिला दें।

इसके साथ ही साथ अपामार्ग की जड़ २ तोले पानी से धो करके जल के साथ सूक्ष्म पीस लें। घुटाई होने पर जब यह औषधि लेप लगाने योग्य सूक्ष्म पिस जाय; तो इसे भग के चारों ओर लेप लगा दें।

उपयोग—प्रसवकाल में गर्भिणी स्त्री को जब तीव्र वेदना हो रही हो और शिशु उदर से बाहर न आ रहा हो; तो ऐसी अवस्था में उपर्युक्त दोनों प्रयोगों से (पीने और लेप से) तुरन्त लाभ होता है। इससे बालक का जन्म सत्वर होता है। अनुभूत है।

वक्तव्य—प्रसव होने के उपरान्त पूर्वोक्त प्रलेप को तुरन्त हटा देना चाहिए। अन्यथा गर्भाशय के बाहर आने की सम्भावना है।

(२८) सद्यः प्रसवकारक क्वाथ

तुलसी के पात्र २ तोले को जल से धोकर एक पाव (२० तोले) जल में मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। दशमांश (२ तोले) जल के शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें और हाथ से मर्दन करके छान लें। इसमें घी और खाण्ड—प्रत्येक द्रव्य २-२ तोले मिला दें और अल्पोष्ण रहते हुए गर्भिणी को पिला दें।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से गर्भगत शिशु बाहर आ जाता है। यदि गर्भस्थ बालक मर चुका है; तो शल्यकर्म किये बिना ही भ्रूण बाहर आ जाता है। यह क्वाथ प्रसवकालीन वेदना को भी शान्त करता है। सन्त प्रदत्त प्रयोग है और परीक्षित है।

(२९) वचा प्रलेप

वचा को जल के साथ शिला पर सूक्ष्म पीस करके उसमें कुछ एरण्ड का तैल मिलाकर गर्भवती की नाभि के ऊपर लेप लगाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

(३०) वचादि वर्तिका प्रयोग

वचा ६ माशे और केशर १ माशे लें और दोनों को एकत्र मिलाकर गदही अथवा अजा (बकरी) के दूध में खरल करके इसकी एक लम्बी वर्तिका (बत्ती) बना लें और इसे योनि में रख दें। इस प्रयोग से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है। यदि उदर में बालक तिरछा हो गया हो, तो भी इस प्रयोग से सत्वर प्रसव हो जाता है।

(३१) फल घृत

बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला, मुलहठी, मीठा कूठ, हल्दी, दारु हल्दी, कुटकी, वायविडङ्ग, छोटी पिप्पली, नागर मोथा, कायफल, वचा, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, श्वेत सारिवा (सालसा), कृष्ण सारिवा, प्रियङ्गु के पुष्प (तुलसी की मञ्जरी), सोंफ, घी में भुनी हुई हींग, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जाति पुष्प (चमेली), वंशलोचन, कमल पुष्प, खाण्ड, अजमोदा और दन्ती की जड़—इन तीस द्रव्यों को एक-एक तोला लें। समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिला कर, जल के साथ घोट कर कल्क (लुगदी) बना लें। एक—वर्णी बछड़े

वाली गौ का घी एक सेर तथा ऐसी ही गौ का दूध चार सेर लेकर कल्क, घृत तथा दूध—इन तीनों औषधियों को एक कलई किये हुए पात्र में डालकर चूल्हे पर चढ़ा दें और मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब दूध जल जाय और घृत मात्र शेष रह जाए, तो अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और शीशे के पात्र में रख लें।

वक्तव्य—इस घृत को पुष्य नक्षत्र में पकावें। यदि लक्ष्मणा के पत्ते उपलब्ध हो सकें, तो १ तोला की मात्रा में उसे भी अवश्य डालिए। इसे जंगली कण्डों की अग्नि पर पकावें।

मात्रा—६ माशे सेवन करें, ऊपर से गौ का दूध पीवें।

गुण—बन्ध्या, काकबन्ध्या, मृतवत्सा—इन तीन प्रकार की बन्ध्याओं और जिन स्त्रियों के कन्या ही कन्या उत्पन्न होती हों; उन महिलाओं के लिए यह घृत अत्युपयोगी है। स्त्री तथा पुरुष—दोनों को इस घृत का सेवन कराने पर दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होता है।

सोमरोग में अनुभूत प्रयोग

(३२) श्रीफलादि चूर्ण

आमला (श्रीफल), शुष्क पिण्डालु, भिंडी की जड़ और विदारीकन्द—प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोले, माष (उरद) और मुलहेठी—प्रत्येक २-२ तोले लें। इन सभी का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर रखिये।

मात्रा और अनुपान—६-६ माशे चूर्ण को खाकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पिलावें। प्रातः सायं दिन में दोनों समय दें।

उपयोग—"सोमरोग" यह व्याधि केवल स्त्रियों में होती है। स्त्रियों में होने वाला "मूत्रातिसार" ही "सोमरोग" कहलाता है। इस रोग में यह श्रीफलादि चूर्ण अपूर्व लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस चूर्ण को कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करने से सोमरोग अवश्य नष्ट हो जाता है। अनुभूत है।

महिला रोगों में पथ्यापथ्य विचार

मानसिक शान्ति, चित्त की प्रसन्नता, धैर्य, ईश्वर भक्ति, जप, हृदय तथा मस्तिष्क को सुसन्तुलित रखना, ब्रह्मचर्य पालन, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन, भक्तिमती सुचरित्रवती देवियों के चरित्र-विषयक ग्रन्थों को पढ़ना, मानसिक उत्साह, शुद्ध वायुमण्डल में निवास, सूर्य-ताप-सेवन, उचित शारीरिक श्रम करना, मन तथा शरीर को शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना, समय पर सोना और समय पर जागना, पुराने लाल चावल, शालि चावल, पुराने गेहूँ, मूंग, अरहर, परवल, लौकी आदि शाक, घी, दूध, मक्खन, केला, सेव द्राक्षा आदि सात्त्विक आहार—ये सभी रोगों में लाभप्रद हैं।

मानस अशान्ति, चित्त की चञ्चलता, शोक करना, सर्वदा चिन्ताग्रस्त रहना, क्रोध करना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन होना, अभद्र कुत्सित पुस्तकों को पढ़ना, अकर्मण्य जीवन व्यतीत करना, अधिक श्रम, मैथुन की अधिकता, अशुद्ध वायुमण्डल में रहना, अधिक उपवास, बहुत खाना, मल, मूत्र, अपान वायु आदि के आये हुए वेगों को रोकना, रात्रि में जागरण तथा दिन में सोना, लाल मरिच, नमक, उष्ण मसाले, खटाई, चाय आदि का अधिक सेवन करना—ये रोगों की वृद्धि करते हैं।

अथ-बाल-रोग-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥३६॥

बालकों में उत्पन्न होने वाले अनेक रोग शत्रुओं का प्रमुख कारण माता की अनभिज्ञता होती है। जो माता अपने आहार पर ध्यान न देकर वातवर्धक वा पित्त-प्रकोपक अथवा कफवर्धक अन्न-पान का सेवन करती है, उसके स्तनों से दूध पीने वाले शिशुओं में तदनुसार वातज, पित्तज और कफज रोगों की उत्पत्ति होती है। वात से दूषित दूध को पीने वाले बालक निर्बल, कृश, क्षीणस्वर और मलावरोध तथा मूत्रावरोध ग्रस्त पाये जाते हैं। पित्त से दूषित दूध पीने वाले बालकों में—स्वेद की अधिकता, अतिसार का होना, पिपासा, शरीर के अंगों में अत्युष्णता का रहना आदि उपद्रव होते हैं और कफ से दूषित दूध को पीने वाले शिशु—मुख से लार का अधिक बहना, निद्रा की अधिकता, मेदोवृद्धि, शोथ आदि रोगों से पीड़ित देखे जाते हैं।

कुछ मातायें अपने शिशुओं को शीघ्र हृष्ट-पुष्ट बनाने के भाव से उनको दूध आदि आहार अत्यधिक मात्रा में देने लगती हैं; फलतः ऐसे बालक अजीर्ण, अतिसार, वमन आदि अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। बालकों के लिये उचित मात्रा में आहार देना स्वास्थ्यप्रद होता है; अतएव उनको उचित मात्रा में आहार दिया जाना अभीष्ट है। यदि दूध, अन्न, जल आदि को युक्तियुक्त योजना के साथ सेवन कराया जाय; तो प्रायः बालक स्वस्थ रहते हैं। उनके पहिनने, ओढ़ने और बिछाने के वस्त्रों को जल से स्वच्छ धोना, सूर्यताप देना और उनमें गुग्गुलु, अगर, तगर, घृत आदि सुगन्धित तथा रोगनाशक द्रव्यों की धूनि देनी अत्युत्तम है। आहार के समान ही स्नान, निद्रा, क्रीडा आदि आरोग्यप्रद अङ्गों पर ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में कुछ काल अल्पोष्ण जल से स्नान कराने के पश्चात् बालकों को शीतल जल से स्नान करने का अभ्यास स्वास्थ्यप्रद होता है।

शिशुओं के लिए अधिक निद्रा की आवश्यकता होती है। अधिक समय तक शान्ति से सोते रहने से बालकों के सम्पूर्ण अंगों की वृद्धि तथा पुष्टि होती है। इसके विपरीत अल्प निद्रा से उनके शरीर में कृशता तथा मस्तिष्क आदि अंगों में दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न होते हैं। बालकों के आरोग्य के लिए मनोरञ्जन की महती आवश्यकता है। किन्तु जिनसे शिशुओं के भावी जीवन की प्रगति होनी सम्भव हो; उन्हीं मनोरञ्जन के साधनों का आदर करना योग्य हैं।

माता, पिता आदि संरक्षकों के लिये, यह बात स्मरणीय तथा आचरणीय

है कि—बालकों की भावी प्रगति उनके सुसंस्कारों के आश्रित रहती है। खाना, पीना, उठना, बोलना, खेलना, हंसना आदि सभी क्रियाओं की बालकों के चित्त पर जो छाप पड़ती है; वही संस्कार कहलाते हैं। विदुषी नारी तथा विद्वान् पुरुष अपने शिशुओं के सर्वाङ्गीण प्रकर्ष के लिए उचित आहार, वस्त्र आदि के साथ ही साथ उनके मन में सत्य भाषण, ईश्वर भक्ति, धार्मिकता, सेवा, परोपकार आदि श्रेष्ठ संस्कारों को भी उत्पन्न करते हैं। तत्त्ववेत्ता महर्षियों ने जो शुभ संस्कारों के निर्माण पर विशिष्ट बल दिया है; वह मानव जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति का प्रमुख हेतु है। केवल कल्पना ही नहीं है, अनुभूत वैज्ञानिक तथ्य है।

स्थूलबुद्धि व्यक्तियों के दृष्टिकोण में जो बालकों का स्वास्थ्य केवल उनके बाह्य मांसपिण्ड की आकृति तक सीमित है वह वास्तविक आरोग्यता से पर्याप्त दूर है। जिन बालकों में धार्मिकता, ईश्वरभक्ति, माता, पिता, गुरुजनादि में आदर बुद्धि, सेवा, राष्ट्रभक्ति, कृतज्ञता आदि दिव्य संस्कारों का सर्वथा अभाव है; वे बालक वा बालिका शरीर से हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी रोगी ही होते हैं। अतएव ईश्वर-भक्ति, आदि भद्र संस्कारों को बालकों के अन्तःकरण में समाविष्ट करना वांछनीय है।

बालकों के रोगों में औषध प्रयोग

(१) बालानन्द वटी

अतीस, काकड़ासिंगी, छोटी पिप्पली, नागर मोथा, जायफल, केशर, वंश-लोचन, अकरकरा, मुलहटी, कटेली के पुष्प वा बीज, दालचीनी, भुनी हुई हरड, सुहागे का लावा, लवङ्ग पुष्प, भुने हुए कौंच के बीज,—इन १५ द्रव्यों को समभाग लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् दरियाई नारियल के जल में एक दिन मर्दन करके मूंग प्रमाण की वटी बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ वटी, प्रातः सायं दिन में दोनों समय माता के दूध में घोल करके पिला दें अथवा मधु में मिलाकर चटा दें। बालशोष (सूखा रोग) रोग में कंघी के रस के साथ दें। पसली के रोग (डब्बा रोग) में—कस्तूरी अथवा कच्छप-कपाल की भस्म के साथ दूध में घिसकर दें।

६ मास तक की अवस्था वाले बालकों को चौथाई गोली दें और १ से २ वर्ष तक के शिशुओं को आधी वटी और दो वर्ष से ऊपर की अवस्था वालों के लिए १ गोली दें।

उपयोग तथा गुण—इस वटी को सेवन करने से कास, अपचन, अतिसार, वमन, पसलीरोग (डब्बा) आदि बालकों के रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वटी बालकों को नीरोग बनाती है। परीक्षित हैं।

(२) बालामृत वटिका (अतिसार रोग में)

शुद्ध सुहागा, कच्ची हींग और शुद्ध अफीम—प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे, शुण्ठी

१ तोला, छोटी इलायची के बीज और पपरिया कत्था—६-६ माशे लें। अफीम तथा हींग को छोड़कर शेष सम्पूर्ण द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें और अफीम तथा हींग को जल में घोल करके, इस जल को चूर्ण में डालकर ८ घण्टे मर्दन करें। अच्छी घुटाई होने पर जब गोली बनाने योग्य औषधि बन जाय; तो मूंग के समान गोली बना करके छाया में शुष्क करें और स्वच्छ शीशी में डाल कर रख लें।

मात्रा—बालक की अवस्था और बल को देख कर मात्रा निश्चित करें। ½ से २ वटी तक दे सकते हैं।

अनुपान—माता के दूध में घोलकर, प्रातः सायं दिन में दो समय दें।

गुण—जिन बालकों को हरे, पीले वर्ण का मल बार-बार आता हो और अन्य उपाय करने पर भी लाभ न हो रहा हो, तो इस वटी के उपयोग से अवश्य लाभ हो जाता है। पतली टट्टियों को रोकने के लिए बालामृत वटी अत्युपयोगी है। अनेकबार की अनुभूत है।

(३) तालादि गुटिका (गुप्त प्रयोग)

गोदन्ती हरिताल भस्म ८ रत्ती, उत्तम ताम्रभस्म ४ रत्ती, शृङ्गराज भस्म, मुलहठी का सत्व, इन्द्रायण का गूदा, काला मुसब्बर और छोटी कटेली का घन सत्व-प्रत्येक द्रव्य ८-८ रत्ती, वचा और काकड़ासिंगी—प्रत्येक द्रव्य २-२ माशे लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का वस्त्रछन चूर्ण बना करके, चूर्ण के साथ भस्में सम्मिश्रण करें और आर्द्रक के रस की सात भावनाएं दें। प्रत्येक भावना में ८ घण्टे तक मर्दन करें। सातवीं भावना देकर अच्छी प्रकार से घोटें और २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना करके छाया में शुष्क करें। सम्यक् प्रकार से सूखने पर स्वच्छ शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—चौथाई से एक वटी तक, शिशु की अवस्था तथा बल को देख करके मात्रा निश्चित करें।

अनुपान—माता का दूध, अदरक के रस, पान के रस—इनमें से किसी एक अनुपान के साथ दें; अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें।

गुण—यह वटी बालकों के वातजनित तथा कफजन्य रोगों में अत्युपयोगी है। इसके सेवन से बालकों का श्वास, कास, पार्श्वशूल, फुफ्फुस सन्निपात (=न्यूमोनिया), आक्षेपक (=डब्बा) प्रभृति अनेक शिशु सम्बन्धी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं। बाल रोगों को नष्ट करने के लिए उत्कृष्ट अनुभूत औषधि है। आप इसका उपयोग करें। यह गुप्त-प्रयोग है।

(४) बालग्रहान्तक वटिका

राई, भुने हुए करंज के बीज, पमार के बीज, शिरीष (सिरस) के बीज, श्वेत मदार के पुष्प, भुनी हुई हल्दी, शुद्ध रसौत, मेंहदी के बीज, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमले का छिलका, देवदारु, शुण्ठी, काली मिर्च छोटी पिप्पली, लाल चन्दन का चूर्ण (बुरादा), मधुर वचा, मजीठ, घी में भुनी हुई हींग–प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला

लेकर समस्त औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इसके पश्चात् इस चूर्ण में थोड़ा-थोड़ा गौमूत्र डालता जाय और मर्दन करता जाय। इस प्रकार से १२ घण्टे तक सुदृढ़ मर्दन करने के उपरान्त जब यह गोली बनाने के योग्य बन जाय; तो एक-एक रत्ती प्रमाण की वटी बना लें और छाया में शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—चौथाई गोली से दो वटी तक—अवस्था के अनुसार दें।

अनुपान—माता के दूध, वा मधु में मिला करके दें।

गुण—यह वटी बालकों की ग्रहबाधा, मन्दाग्नि, अपचन, ज्वर, कास आदि अनेक शिशु सम्बन्धी रोगों में लाभप्रद है। इसके सेवन से ग्रहबाधा आदि बाल व्याधियाँ शान्त होती हैं। यह प्रयोग अनेक बार का अनुभूत है।

(५) कफघ्न प्रयोग

काकड़ासिंगी का चूर्ण ४ रत्ती को १ माशा मधु में मिलाकर प्रातः सायं दिन में दो बार चटावें। रोगनिवृत्ति होने तक कुछ समय तक निरन्तर प्रयोग करें। इसके सेवन से बालकों की श्वासनली में सञ्चित हुआ कफ पिघल कर बाहर निकल जाता है और कफज कास में तुरन्त लाभ होता है। अनुभूत है।

(६) अपामार्गक्षार १ से ४ रत्ती तक, मधु में मिलाकर चटावें। इसके सेवन से बालकों के वक्षःस्थल में सञ्चित कफ पिघल कर बाहर निकल कर बाल-कास रोग में अच्छा लाभ होता है।

(७) आटरूषादि प्रयोग

अडूसा (आटरूष) के पत्रों का रस और मधु प्रत्येक ६-६ माशे और छोटी पिप्पली का वस्त्रछन किया हुआ चूर्ण १ माशा—तीनों को एकत्र मिला लें। इसे थोड़ी-थोडी मात्रा में अल्पोष्ण करके दें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से श्वास, कास तथा मुख से रुधिर गिरना—ये बाल रोग तुरन्त नष्ट होते हैं। अन्य उपचार करने पर भी जब बालकों के श्वास, कास आदि रोगों में सफलता प्राप्त न होवे; तो इस प्रयोग से लाभ हो जाता है। अव्यर्थ प्रयोग है। अनेक वार का अनुभूत है।

आक्षेपक रोगनाशक प्रयोग (डब्बा व्याधि में)—

(८) शृङ्गभस्म

बारहसिंगा के ऊपर तिलों के तैल में भिगोया हुआ वस्त्र लपेट कर अग्नि में जला करके शृङ्ग की शुद्धि कर लें। इसके पश्चात् सींग के चार-चार अङ्गुलि प्रमाण में खण्ड करें। ग्वारपाठे के गूदे को ऊपर नीचे रखकर मध्य में कटे हुए शृङ्ग खण्डों को स्थापित करके, शराव सम्पुट करके गजपुटकी अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट को खोलकर शृङ्ग भस्म को निकाल लें और इसे आक (मदार) के दूध में भिगो दें। जिसमें औषधि डूब जाय, इतना अर्क दुग्ध डालें। पांच दिन तक इसी प्रकार से रहनेदें। इसके पश्चात् दूध सहित एक दिन मर्दन करके टिकिया बना लें और छाया में शुष्क करके शराव सम्पुट बनाकर, वस्त्रमिट्टी कर, धूप में सुखा लें और गजपुट की

अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर भस्म निकाल कर, खरल करके शीशी में भर कर रख लें। यह भस्म मृदु श्वेतवर्ण की होगी।

मात्रा—बालकों के लिए १ से ४ चावल तक, अवस्था तथा बल के अनुसार दें। बड़ों को आधी से एक रत्ती तक दें।

अनुपान—माता के दूध में घोलकर ३-३ घण्टे के अन्तर से सेवन करावें।

गुण—यह भस्म बालकों के आक्षेपक (डब्बा) रोग में सत्वर लाभप्रद है। इस व्याधि को नष्ट करने में अद्वितीय प्रयोग है। शृङ्ग भस्म फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया), श्वास, पार्श्वशूल आदि रोगों को शान्त करने के लिए अत्युत्कृष्ट औषधि है। परीक्षित है।

(९) शृङ्गादि मिश्रण (आक्षेपक रोग में)

शृङ्ग भस्म और गोदन्ती हरिताल भस्म २-२ भाग और उत्तम ताम्र भस्म १॥ भाग ले करके तीनों को एकत्र मर्दन करके रखिये।

मात्रा—१ से ४ चावल तक, दिन में आवश्यकता के अनुसार २-३ वार दें।

अनुपान—माता के दूध में अल्प मधु के साथ मिला करके बालक को खिला दें।

गुण—इस प्रयोग से बालकों के आक्षेपक (डब्बा) रोग में अच्छा लाभ होता है।

(१०) अपामार्ग क्वाथ

अपामार्ग की जड़ की छाल—२ से ३ माशे तक ले करके जल से स्वच्छ धो लें और यवकुट चूर्ण बना करके एक पाव जल में मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर हाथ से मर्दन करके छान लें और इसमें २॥ तोले मधु मिलाकर रख लें। इसमें से थोड़ा-थोड़ा क्वाथ दिन रात्रि में ५-६ वार बालक को चटावें।

उपयोग—जिस बालक के शरीर में अचेतना आ जाय, हाथ पैर आदि अङ्गों में ऐंठन हो जाय, दान्त भिच जाँय ओर नेत्र उलट जायें; तो ऐसी अवस्था में यह क्वाथ लाभप्रद है। उक्त लक्षणों के होने पर इस क्वाथ का उपयोग करना उत्तम है। इसके साथ ही साथ बालक को रात्रि में शुद्ध एरण्ड का तैल देना चाहिए। अनुभूत है।

(११) बालसञ्जीवनी वटिका (आक्षेपक आदि बाल रोगों में)

स्वर्णक्षीरी का सत्व और छोटी पिप्पली का चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, अपामार्ग का क्षार ६ माशे—इन तीनों को एकत्र मिलाकर उत्तम सुरा के साथ ८ घण्टे दृढ़ता के साथ मर्दन करें। थोड़ी-थोड़ी सुरा डालता जाय और घुटाई करता जाय। उत्तम घुटाई होने के उपरान्त जब यह वटी बनाने योग्य हो जाय; तो १-१ रत्ती की गोली बनाकर छाया में शुष्क करके शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा—आधी से २ वटी तक, प्रातः मध्याह्न तथा सायं समय दिन में ३ वार दें।

अनुपान—मधु में मिलाकर चटावें।

गुण—यह वटी आक्षेपक (डब्बा) रोग, वमन, अतिसार आदि बाल रोगों को शान्त करती है। मात्रा में वृद्धि करके इसे बड़ी आयु वाले व्यक्तियों के लिए भी दे सकते हैं। अनेक रोगियों पर अनुभूत है।

(१२) आक्षेपहर सेंक (पसली चलने के रोग में)

देशीय तम्बाकू तथा छिलका सहित एरण्ड के बीज--प्रत्येक द्रव्य १०-१० भाग, माल कांगनी, एलवा (मुसब्बर), पठानी लोध, प्रत्येक द्रव्य—पांच-पांच भाग, कच्चा सुहागा, सज्जीक्षार और पांच लवणों में से कोई एक लवण—प्रत्येक द्रव्य २।।-२।। भाग लें। चूर्ण करने के योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना करके सम्पूर्ण औषधियों को एकत्र मिलाकर अच्छे प्रकार से घोंटें। तत्पश्चात् एरण्ड का तैल मिलाकर मर्दन करें। जब अवलेह के सदृश औषधि सिद्ध हो जाय; तो इसे चौड़े मुख की शीशी वा डिब्बे में भरकर रख लें। यदि यह औषधि शुष्क हो जाय तो आवश्यकतानुसार इसमें एरण्ड का तैल मिला लिया जाय।

उपयोग और गुण—मोटे खद्दर के समान-समान प्रमाण के दो खण्ड बना लें और उनमें आवश्यकता के अनुसार एरण्ड तैल मिश्रित उक्त औषधि को रखकर दो पोटली बना लें। इनको तवे के ऊपर उष्ण करें। सहने योग्य गर्म होने पर रोगी की पसलियों के ऊपर पोटली रख कर सेंक दें। एक के पश्चात् दूसरी पोटली को उष्ण करके उससे सेंके। इस प्रकार से दोनों पोटलियों के द्वारा क्रमशः (रोग में शान्ति होने तक) दोनों ओर की पसलियों में अथवा एक ओर की पसलियों में जहां वेदना हो; वहां पर सेंक दें।

बालकों के आक्षेपक (पसली चलने का रोग) रोग, फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) में होने वाली पार्श्व वेदना और केवल पार्श्वशूल—इन समस्त व्याधियों में यह सेंक लाभप्रद है। जिन बालकों को पसली चलने का रोग हो गया हो उनके लिए और फुफ्फुस सन्निपात जनित पार्श्व वेदना पीड़ित व्यक्तियों एवं केवल पसलियों की वेदना-आक्रान्त बाल, युवा, वृद्ध सभी रोगियों के लिए यह सेंक सत्वर लाभकर है। अनेक रोगियों पर अनुभूत अव्यर्थ प्रयोग है।

वक्तव्य—इस सेंक को केवल पसलियों पर प्रयोग करें। उदर, वक्षः स्थल, हृदय तथा हृदय के समीप और ऊपर के अङ्गों में इसकी सेंक कदापि नहीं दें। यह घातक प्रयोग होने से उदर, छाती, हृदय आदि में इसकी सेंक देना अनिष्टकर है।

(१३) बालकृमिनाशक प्रयोग

वचा चूर्ण १ से २ रत्ती तक दूध में मिलाकर पिला दें। इस प्रकार प्रतिदिन ३-४ दिन तक वचा चूर्ण को सेवन कराने से बालकों के उदर में उत्पन्न हुए कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

(१४) बालमूर्च्छाहर उपाय

अशुद्ध दूध पीने से १-२ वर्षीय शिशुओं को मूर्च्छा रोग उत्पन्न हो जाता है। उस अवस्था में १ से २ रत्ती तक वचा चूर्ण को माता के दूध अथवा गौ के दूध में

घोलकर पिला दें। इसके साथ ही साथ वचा चूर्ण को घी में मिलाकर बालक के शिर अथवा सम्पूर्ण शरीर में मर्दन करें और इसी की धूनी दें। दूध के अभाव में मधु के साथ दें।

(१५) बाल विषम ज्वर नाशक प्रयोग

वचा और चिरायता दोनों को समभाग में लेकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ८ रत्ती तक, मधु के साथ, प्रातः मध्याह्न तथा सायं समय दिन में तीन वार दें। इसके साथ ही साथ वचा तथा हरड़—दोनों का समभाग चूर्ण बना करके, इसकी धूनी देने से बालकों का विषम ज्वर (मलेरिया बुखार) नष्ट हो जाता है।

(१६) पिप्पली मिश्रण—(कफज ज्वर नाशक)

पिप्पली चूर्ण और अपामार्गक्षार—प्रत्येक द्रव्य २-२ तोले लेकर, दोनों को एकत्र मर्दन कर स्वच्छ शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा और अनुपान— १ से ३ रत्ती तक, मधु में मिलाकर चटावें।

गुण—इस प्रयोग के सेवन से बालकों के कफज ज्वर, श्वास और उरोभाग में सञ्चित कफ में शीघ्र लाभ होता है। अनुभूत है।

बालशोष (बालकों का सूखा रोग) में उपयोगी उपाय—

(१७) कुकुन्दर प्रयोग

कुकरौंधे का फल अथवा पत्र २ से ३ तोले तक लेकर जल से स्वच्छ धो करके शिला पर सूक्ष्म पीस लें। अल्प जल के साथ पीस कर कल्क बना लें। इस कल्क (लुगदी) के मध्य में १ माशा गुड़ रखकर, टिकिया बनावें। इसके पश्चात् बालशोष-ग्रस्त शिशु के तालु के ठीक ऊपर ब्रह्मरन्ध्र (शिर) पर टिकिया को रख करके वस्त्र से बान्ध दें। इस प्रकार से प्रातः सायं दिन में दोनों समय नवीन टिकिया बना करके बान्धनी चाहिए।

गुण—बालशोष (बालकों का सूखा रोग) में यह प्रयोग अत्युत्कृष्ट है। इस प्रयोग को १०-१२ दिन तक निरन्तर करने से शिशुओं का सूखा रोग समूल नष्ट हो जाता है। हमने इस प्रयोग के द्वारा ८० से ९०% रोगियों को स्वस्थ होते हुए देखा है।

यदि टिकिया निर्माण के दैनिक परिश्रम से मुक्त होना चाहते हों; तो कुकरौंधे के पत्रों को सूक्ष्म पीस करके १-१ रत्ती प्रमाण में वटी बनाकर धूप में शुष्क करें। अच्छी प्रकार से सूखने पर शीशी में भर कर रख लें। १-१ गोली माता के दूध में घिस करके, प्रातः मध्याह्न और सायं काल दिन में तीन वार खिला दें। इस प्रकार से २०-२५ दिन तक निरन्तर खिलाने से बालशोष व्याधि शान्त हो जाती है।

(१८) बालशोषारि गुटिका

सत्य मोती ४ रत्ती, बेर पत्थर, दरियाई नारियल, काबुली हरड़ की छाल,

कमलगट्टे की गिरी, छोटी इलायची के बीज और वंशलोचन—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे लें। इन सबका सूक्ष्म चूर्ण बना करके गुलाब के अर्क में १२ घण्टे तक मर्दन करें। अच्छी प्रकार घुटाई होने पर जब यह गोली बनाने के योग्य बन जाय; तो १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बनाकर छाया में शुष्क कर के शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—½ से १ वटी तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, माता के दूध में मिलाकर पिला दें।

गुण—यह वटी बालशोष रोग में अत्युपयोगी है। ६६% (प्रतिशत) बालकों के सूखे रोग में लाभ होता है। अनुभूत है।

(१९) शोषघ्नी वटिका

शुद्ध कुक्कुटाण्डत्वक् १ तोला, बालवचा और लशुन प्रत्येक ३-३ माशे, शुद्ध मोम ३ तोले लें। मोम के अतिरिक्त शेष द्रव्यों को सूक्ष्म पीस लें। तत्पश्चात् मोम को कड़ाही में डाल करके मन्द-मन्द अग्नि के ऊपर पकावें। जब मोम पिघल जाय; तो उसमें पिसी हुई औषधि को डाल करके पिलावें। खरल में डालकर मर्दन करें और १-१ रत्ती की गोली बनाकर, शीशी में रख लें।

मात्रा और अनुपान—½ से दो गोली तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय दूध में घोल कर बालक को खिला दें।

गुण—जिन बालकों का शरीर सूख जाता है। केवल कंकाल शेष रह जाता है। उन बालकों को ४० दिन तक निरन्तर इसका सेवन कराने पर रोग नष्ट हो जाता है और बालक हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं।

(२०) बालशोषारि रस

वंशलोचन, गोदन्ती भस्म, प्रवाल भस्म, अभ्रक भस्म, प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला; मुक्ता शुक्ति पिष्टी, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध सुहागा—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे और चन्द्रोदय रस ३ माशे लें। प्रथम चन्द्रोदय तथा भस्में एकत्र मिलाकर ६ घण्टे मर्दन करें और शेष द्रव्यों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण और पिष्टी मिलाकर ३ घण्टे तक और घोंटें। तदुपरान्त ग्वार पाठे के रस में २४ घण्टे तक मर्दन करें। उत्तम प्रकार से सुदृढ़ मर्दन करने के पश्चात् १-१ रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर छाया में शुष्क करें। अच्छी प्रकार से सूख जाने पर शीशी में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२ चावल से ८ चावल तक, प्रातः सायं दिन में दोनों समय, माता के दूध के साथ खिला दें।

गुण—इस रस के सेवन से बालशोष रोग नष्ट होता है। इस रस को सेवन कराते हुए ही "लाक्षादि तैल" का बालक के सम्पूर्ण शरीर पर मर्दन कराने से बालकों का सूखा रोग शीघ्र शान्त होता है। अनुभूत है।

(२१) लाक्षादि तैल

पीपल वा बेर की लाख (लाक्षा) एक सेर लेकर सूक्ष्म कूट लें और इसे चार सेर जल में भिगो दें। १२ घण्टे तक भीगने के पश्चात् इस जल में लोघ का

सूक्ष्म चूर्ण २ तोले मिला करके एक कड़ाही में डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब २ सेर जल शेष रह जाय तो लाक्षा रस को वस्त्र से छान लें। इस छने हुए रस में—गौ का मट्ठा १ सेर, तिलों का तैल १ सेर, तथा सोंफ, अश्वगन्ध, हल्दी, देवदारु, पित्तपापड़ा, मरोड़फली, मुलहठी, मोथा, लाल चन्दन, श्वेत मुशली, रास्ना, प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण आठ-आठ माशे और मूर्वा का सूक्ष्म चूर्ण २ तोले—इन समस्त द्रव्यों को डाल करके मन्द-मन्द अग्नि पर पाक करें। जब रस तथा मट्ठा जल जाये और तैल मात्र शेष रह जाय; तो अग्नि से नीचे उतार कर, शीतल होने के पश्चात् छान करके शीशियों में डाल करके सुरक्षित रख लें।

उपयोग—इस तैल को रोगी के शरीर पर मलना चाहिए। यह तैल बाल शोष रोग में अनुभूत प्रयोग है। इसके मर्दन करने से वातरोग, जीर्णज्वर, विषम ज्वर और क्षय रोग मे उत्तम लाभ होता है।

(२२) रस पर्पटी—(बालकों के अतिसार वमन आदि रोगों में)

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक—प्रत्येक १-१ तोला ले करके दोनों की कज्जली बना करके, उसकी पर्पटी बना लें। इस पर्पटी के साथ—सैंधव लवण, श्वेत जीरा, काला जीरा, शुण्ठी, छोटी पिप्पली, काली मरिच, अतीस, मोचरस, बेल की गिरी, जायफल, लवङ्ग और केशर प्रत्येक द्रव्य का वस्त्रछन चूर्ण १-१ तोला और कस्तूरी ६ माशे—इन सबको मर्दन करके, शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—२ चावल से ८ चावल तक, प्रातः सायं यथावश्यक दोनों समय, दूध में मिलाकर दें।

गुण—बालकों के दान्त निकलते समय जो हरे पीले वर्ण के अतिसार(दस्त), वमन, उदर का फूल जाना, आदि अनेक कष्टप्रद उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं; जिनको देखकर उनके माता पिता हताश हो जाते हैं। ऐसी अवस्था होने पर शिशु को "रस पर्पटी" की केवल १-२ मात्रा सेवन कराने से लाभ हो जाता है। इसके सेवन करने से दान्त निकलते समय होने वाले अतिसार आदि समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं और सरलता से नवीन दान्त निकल आते हैं। यह बालकों के लिए अमृत-सदृश लाभप्रद है।

(२३) बालमित्र रसायन

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, हीरा काशीश, आमला, जायफल और वर्ग शहितरा—प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, कचूर, सोंफ, शुद्ध सुहागा, गुडूची और नीम सुखा—प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् कज्जली में हिंगुल का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर ६ घण्टे मर्दन करें। इसके उपरान्त शेष औषधियों का वस्त्रछन किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला करके कागजी निम्बू के रस में २४ घण्टे तक मर्दन करें। कागजी निम्बू का रस थोड़ा-थोड़ा डालता जाय और घुटाई करता जाय; इस प्रकार से ८ प्रहर (२४ घन्टे) तक स्थिरता के साथ घुटाई करने के उपरान्त जब यह औषधि गोली बनाने के योग्य हो

जाय; तो १-१ रत्ती प्रमाण की वटी बना लें और छाया में अच्छी प्रकार से सुखा करके स्वच्छ शीशी में भर करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—साधारणतया चौथाई गोली से १ गोली तक दें। अवस्था, बल और रोग आदि को विचार करके न्यून वा अधिक मात्रा करनी चाहिए। एक वर्ष तक के बालक को २ चावल के बराबर गोली दें। २ से ५ वर्ष तक की आयु वाले शिशु के लिए आध वटी और इसके ऊपर एक गोली दें।

सन्धिवात (गठिया वायु), पक्षाघात (अर्धाङ्गवायु), अर्दित (लकवा) आदि भयंकर वात जनित व्यधियों में ३ गोली तक, अदरक के रस वा पान के रस में अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करावें। आवश्यकता के अनुसार दिन तथा रात्रि में २-३ वार तक दें।

गुण तथा उपयोग—यह रसायन बालकों के लिए अत्युत्कृष्ट औषधि है। अनुपान भेद से देने पर शिशुओं के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। बालकों के आक्षेपक (डब्बा) रोग में इस गोली को दूध में घोल करके दिन में २-३ वार सेवन कराने पर एक ही दिन में रोग चला जाता है। कास में पान के पत्र में गोली को रखकर खिलाने से अच्छा लाभ होता है।

सन्धिवात (गठिया), अर्दित (लकवा), पक्षाघात (अधरंग) आदि वातजन्य व्याधियों में जहां अनेक प्रयोगों का सेवन कराके भी सफलता न मिले, वहाँ पर १ से ३ गोली तक अदरक के रस वा पान के रस में मिलाकर २४ घण्टे में २-३ वार दें और पथ्य का पालन करें तो सफलता मिलती है। मैंने सैंकड़ों रोगियों पर अनुभव किया है। मैं इस औषधि को अपने औषधालय में विशेष रूप से रखता हूँ। अव्यर्थ (पेटेण्ट) प्रयोग है।

अथ-विषतिन्दु-प्रकरणम् ॥४०॥

विषतिन्दु (कुचला)

"कुचला" सर्वत्र प्रसिद्ध तथा नित्योपयोगी विषैला पदार्थ है। इसके वृक्ष विलासपुर (सी. पी.) जनपद में एवं सह्याद्रि पर्वत पर अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इन वृक्षों के पत्र, पुष्प, त्वचा, और मूल आदि समस्त अवयव विषाक्त होते हैं। इनके पत्रों पर कोई खाद्य पदार्थ रख कर खाने से भी विषलक्षण प्रकट होने लगते हैं। ऐसे विषयुक्त वृक्ष को यदि कोई निरर्थक भक्षण करने लगे; तो अज्ञान है। विधाता ने मनुष्यों के लिए कुचले को अत्युपयोगी सिद्ध करने के भाव से इसमें अनेक उत्तम गुणों को समाविष्ट कर दिया है। कुचला जब पक करके भूमि के ऊपर गिरते हैं; तो विषतिन्दु के फलों की छाल मधुर होने के कारण से उनको कुछ कृमि खा लेते हैं। फलों की मधुर त्वचा को खाने के पश्चात् कृमियों द्वारा त्यागे हुए कुचले के फलों को मनुष्य सञ्चित कर लेते हैं और उष्ण जल में भिगोने के उपरान्त उनको स्वच्छ धो लेते हैं। फलों के ऊपर जो संलग्न भाग होता है वह धोने से पृथक् हो जाता है एवं स्वच्छ गोल चपटे बीज निकल आते हैं। इन्हीं को हम लोग विष-कुचला कहते हैं।

कुचला के शास्त्रोक्त सामान्य गुण—वात, कफ, रक्तदोष, कण्डू, प्रमेह, अर्श, व्रण तथा ज्वर शामक और सुखप्रद है।

विषतिन्दु के विशेष गुण—पौष्टिक, पाचक तथा वातनाशक है।

कुचले की सामान्य शुद्धि—कुचले को घी में लालवर्ण होने तक भून लेने से शुद्धि हो जाती है। परन्तु इसे जलाकर काला करना इष्ट नहीं है।

कुचले के कतिपय प्रयोग—कुचले द्वारा निर्मित होने वाले प्रयोग बहुत हैं। उनमें से कतिपय प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं—

(१) समीर गजकेशरी रस

शुद्ध कुचला चूर्ण, शुद्ध अफीम और काली मरिच का सूक्ष्म चूर्ण—इन तीनों द्रव्यों को समभाग में लें और एकत्र मिला करके १२ घण्टे तक मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा जल डालता जाय और मर्दन करता जाय। इस प्रकार से १२ घण्टे तक दृढ़ता के साथ घुटाई करने के पश्चात् जब औषधि वटी बनाने के योग्य हो जाय; तो १-१ रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर, छाया में शुष्क करके, शीशी में भरकर रखिए।

(२) शुद्ध कुचला, त्रिकटु (शुण्ठी, काली मरिच, पीपल), बड़ी हरड़, शुद्ध गन्धक, सैंधव लवण, घी में भुनी हुई हींग—इन छह द्रव्यों को समान भाग ले करके,

सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, सबको एकत्र मिला लें और जल के साथ मर्दन करके—२-२ रत्ती प्रमाण में गोली बनाकर, छाया में शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

(३) विषमुष्टि वटिका

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, अजवाइन, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आमला), सर्जक्षार, यवक्षार, चित्रक की जड़ की छाल, जीरा, त्रिकटु, वायविडङ्ग, सैंधव लवण, संचर लवण, तथा समुद्र लवण—इन १४ द्रव्यों को सम-भाग में और सम्पूर्ण औषधियों का जितना भार हो; उतना ही शुद्ध कुचला चूर्ण लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना करके शेष औषधियों का वस्त्रछन चूर्ण कज्जली में मिलाकर घोटें। इसके उपरान्त निम्बू के रस में २४ घण्टे मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा निम्बू का रस डालता जाय और घोटता जाय। इस प्रकार से २४ घण्टे तक स्थिरता के साथ घुटाई करने के पश्चात् जब यह औषधि वटी बनाने के योग्य हो जाय; तो २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर, छाया में शुष्क करें और शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें।

(४) शूलहरी गुटिका

शुद्ध कुचला, बड़ी हरड़ की छाल, छोटी पिप्पली, काली मरिच, शुण्ठी, घृत में भुनी हुई हींग, सैंधव लवण, शुद्ध गन्धक,—इन आठ द्रव्यों को समान भाग लें। सबका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एकत्र सम्मिश्रण करके, आर्द्रक के रस में १२ घण्टे तक उत्तम प्रकार से घुटाई करके २-२ रत्ती प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क कर, शीशी में रख लें।

(५) शूलघ्नी वटिका

ताम्र भस्म (जलतरु) १ माशा, शुद्ध अफीम २ माशे, शुद्ध कुचला चूर्ण ४ माशे, और काली मरिच का चूर्ण ८ माशे लें। एकत्र मिला करके आर्द्रक के रस में १२ घण्टे मर्दन करके मूंग प्रमाण की गोली बना, छाया में शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

(६) कुचलादि वटी

शुद्ध कुचला चूर्ण, पलाश के बीजों का चूर्ण, प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक–प्रत्येक द्रव्य २-२ माशे लें। प्रथम पारद और गन्धक की नीलवर्णा कज्जली बना लें। तत्पश्चात् पलाश के बीजों का चूर्ण कज्जली में मिला करके, निम्बू के रस में मर्दन करें। थोड़ा-थोड़ा निम्बू का रस डालता जाय और घुटाई करता जाय। इस प्रकारसे घुटाई करते-करते १५ निम्बुओं का रस शोषण कर लें। जब औषधि में १५ निम्बुओं का रस विलीन हो जाय; तो उसमें कुचला चूर्ण मिला करके पुनः मर्दन करें। उत्तम घुटाई करने के पश्चात् इसमें २॥ तोले मधु मिश्रण कर एक स्वच्छ काच शीशी में रस भरकर शीशी का मुख सम्यक् प्रकार से बन्द करके इसे धान्य राशि में गाढ़ दें। एक मास तक धान्य राशि के अन्दर रखने के पश्चात् शीशी को बाहर निकाल करके

औषधिका उपयोग करें। इसे वातजनित व्याधियों में वायुनाशक किसी योग्य अनुपान के साथ ३ से ४ रत्ती तक, १०० दिन पर्यन्त सेवन करें।

(७) कुचला चूर्ण

उत्तम पुष्ट (भरे हुए) कुचले ला करके उनको मिट्टी अथवा कांच के पात्र में गोमूत्र में भिगो दें। दो दिन के उपरान्त तृतीय दिन प्रथम बार डाले हुए गोमूत्र को पात्र से बाहर निकाल दें और नवीन डाल दें। इस प्रकार से ३१ दिन तक गोमूत्र में भिगोए रखिये और तीसरे दिन नवीन गोमूत्र का परिवर्त्तन करते रहिये। ३१ दिन तक गोमूत्र में भीगने के उपरान्त कुचले को बाहर निकालकर उसे छील लें तथा उसके दो दलों के मध्य की जीभ को बाहर निकाल दें। इसके पश्चात् उष्ण जल से ४-५ वार धो करके छाया में एक घण्टा तक सुखाकर इमामदस्ते में कूट करके चूर्ण बना लें और तारों की चालनी से छान करके २-३ घण्टे तक सुखा लें। पश्चात् उसे पांचवा भाग गोघृत में भून लें। यदि ५०० ग्राम कुचला हो; तो पांचवा भाग (१०० ग्राम) गोघृत चाहिए। इसे मन्द-मन्द अग्नि पर भूनें। जब कुचला लालवर्ण का हो जाय; तो अग्नि से नीचे उतार कर, धूप में अच्छी प्रकार से सुखा लें और सूखने पर शीशी में भर कर रख लें।

उपयोग—कुचला उपविष है। विष में अतिशीघ्र स्रोतोगामी होने की शक्ति रहती है। इसी कारण से हमारे देश में इसका प्रचार आबालवृद्ध है। इसके सेवन से अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदर शूल आदि रोग तत्काल शान्त हो जाते हैं। इसका चूर्ण उष्ण होने के कारण जठराग्नि को प्रदीप्त करता है—क्षुधावर्धक है। कतिपय मनुष्य इसको गोमूत्र में भिगो करके चूर्ण बना लेते हैं; और उस चूर्ण को गोमूत्र की २१ भावनाएं दे करके सेवन करते हैं। इस विधि से कुचला सेवन करने पर—पैरों की खींचन एवं निर्बलता नष्ट होती है। अतिसार तथा रक्तातिसार में लाभ होता है। अन्यान्य रोगों में जब शारीरिक दुर्बलता बढ़ती है; उस समय इस चूर्ण का सेवन करना अमृत तुल्य लाभप्रद होता है। हस्त तथा पैरों का शोथ और गुदभ्रंस की दशा में कुचला स्वकीय पौष्टिक सामर्थ्य के बल से लाभ करता है। किसी भी रोग के उपरान्त आई हुई दैहिक निर्बलता में कुचला सेवन अवश्यमेव लाभप्रद होता है। केवल प्रकृति, बल, अवस्था, देश तथा काल आदि को विचार करके बुद्धिपूर्वक इसको सेवन कराना इष्ट है।

जो बालक रात्रि में विस्तर के ऊपर मूत्र त्याग कर देते हैं; यह रोग शारीरिक निर्बलता से अथवा मेरुदण्डगत ज्ञानतन्तुओं की असमर्थता के कारण से होता है। इन दोनों में से जिस किसी भी कारण से हो; बुद्धिपूर्वक कुचले का उपयोग करने से २-३ दिन में ही लाभ की अनुभूति होने लगती है।

वात रोगों में कुचला दिव्यौषधि का कार्य करता है। वायुविकारों को शान्त करने के लिए "कुचला" को अल्पमात्रा में तथा दीर्घकाल पर्यन्त सेवन कराना

चाहिए। दीर्घकाल तक अल्पमात्रा में कुचले का उपयोग करने से वातजन्य व्याधियों में उत्तम लाभ होता है।

अजीर्ण, आमवात, कटिग्रह तथा अन्य सन्धि रोगों में कुचला रामवाणवत् कार्य करता है। उसी प्रकार पक्षाघात, अर्दित, आदि शुद्ध वात रोगों में कुचला देना परम हितकारक है। ऐसे रोगों में "समीर गजकेशरी" की १ रत्ती की मात्रा दी जाती है। इन रोगों में कुचले को तभी देवे; जब वायु को छोड़कर अन्य दोषों का शमन हो गया हो। उक्त वात रोगों में जब रोगी अचेतन हो, कम्पनसहित और भयभीत अवस्था में हो; उस समय इसका प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए। उक्त अचेतना आदि लक्षणों के नष्ट होने पर जब रोगी कुछ खाने पीने लगे और वेग कुछ पुराने हो चले हों; तब कुचले का सेवन करना समयोचित है। साराँश यह है कि—नवीन उत्पन्न व्याधि में कुचले का सेवन कराना इष्टकर नहीं है। अनेक वार "मेरुरज्जु" के रोग में हाथ, पैर कांपने लगते हैं और एक वात रोग इस प्रकार का भी होता है; जिसमें लेखक का हाथ ही काम्पता रहता है; ऐसे रोगों में कुछ समय तक कुचला अवश्य देता रहे।

कुचला स्वाद में अति कड़वा होता है; अतएव जीर्ण ज्वर में देने से लाभ होता है। ऐसे अवसर पर हम "**कृष्ण महामृत्युञ्जय**" का प्रयोग करके अच्छा गुण पाते हैं।**मात्रा**—१ रत्ती, अदरक के रस के साथ। शरीर को पुष्ट करने में भी कुचला अतीव प्रशस्त है; अतएव धातुपौष्टिक चूर्णों और गोलियों में इसे डाल देते हैं। इसके सेवन से, शारीरिक निर्बलता से जो तापमान बढ़ जाया करता है; वह क्षीण हो जाता है। वीर्यस्राव और शुक्रदोष में विषतिन्दु का प्रयोग करना उत्तम है। हमारे प्रान्त में जिन पुरुषों को निजी पौरुष-शक्ति की न्यूनता का सन्देह हो जाता है वे प्रायः कुचले का ही सेवन करते हैं। वीर्यस्राव-जनित एवं शुक्र दोषोत्पन्न दुर्बलता को यह दूर करता है। वीर्यवाहिनी नली पर इसका प्रभाव चाहे जिस कारण से होता हो; परन्तु इतना तो हम निःसन्देह कह सकते हैं; कि विद्यार्थियों के वीर्यस्राव में तो यह बहुत ही अच्छा लाभ दिखाता है। अत्यधिक मैथुन करने से, कामुकता प्रवर्धक कुत्सित पुस्तकें पढने से, अप्राकृत और निन्दनीय कुकर्मों से, जो स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि धातुविकार होता है, उसको एवं तज्जनित निर्बलता को कुचला अवश्य नष्ट करता है। "क्योंकि कुचले का प्रभाव मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड-स्थित ज्ञानतन्तुओं पर होने से;—वीर्यवाहिनी नाडी, जिसकी जन्मभूमि मेरुदण्ड में ही है; उस पर भी होता है; अतएव कुचला वीर्यस्राव और शुक्रदोषों तथा तज्जनित निर्बलता को नष्ट करने में एवं शरीर को पुष्ट बनाने में पूर्ण समर्थ है" ऐसा व्यवहार में मनुष्य कहते हैं; जो प्रत्यक्ष द्वारा सत्यसिद्ध हो चुका है।

उसी प्रकार रोगी की मानसिक शक्ति जब निर्बल पड़ गई हो तब कुचला देना प्रशस्त है। उन्माद, योषापस्मार, अपस्मार आदि विकारों में दोषानुकूल दे

सकते हैं। अजीर्ण में कुचले का प्रयोग उत्तम लाभदायक होता है। जब खाये हुए अन्न का पाचन होने में १२ से १६ अथवा २० घण्टे का समय लगता हो; तब उष्ण जल के साथ कुचले का सेवन करना तत्काल लाभ दिखाता है। अथवा उसमें उक्त "शूलहरी वटी" को देना हितावह है। "शूलहरी गुटिका" को अजवाइन के अर्क वा उष्ण जल के अनुपान के साथ सेवन कराने से—"असह्य हृदय वेदना" में अवश्य लाभ होता है। इसके सेवन से जाठर रस अधिक उत्पन्न होता है जो भक्षितान्न को पचाता है। अजीर्ण जनित छर्दि (वमन) को यह शान्त करता है। वातप्रधान रोगों में इसका प्रयोग आश्चर्यजनक होता है।

उपरिकथित रोगों के अतिरिक्त स्थलों पर कुचले का प्रयोग करना अवाञ्छनीय है। विषों के प्रयोग में सबसे बड़ा दोष है—उनको अनभिज्ञता से प्रयुक्त करना। यदि बुद्धिपूर्वक विषों का उपयोग न किया जाय; तो यश का स्थान अपयश में परिवर्तित हो जाता है। जो वैद्य बुद्धि से विचार किये विना ही अज्ञता से विषों का प्रयोग करते हैं वे संसार में निन्दापात्र बनते हैं। अतएव विष प्रयोग में योजक कुशल एवं अनुभवी होना चाहिये। संसार के समस्त विष हाथ ऊपर उठा करके चिल्ला रहे हैं कि— "हमारा उपयोग जानने वाला मनुष्य जगत्पूजनीय हो सकता है।" परन्तु तथाकथित विषविशेषज्ञ दुर्लभ हो रहे हैं। अनभिज्ञ पुरुष असावधानी के साथ विष-प्रयोग करके यदि दुःखी होता है; तो हम क्या करें? हम अपना कार्य करते हैं। इसी से कहा है—"योजकस्तत्र दुर्लभः।"

आज जो लोग इसका अपूर्ण यत्किंचित् विचार सहित उपयोग कर रहे हैं; वे करोड़ों रुपये संचित करके अपने देश के लिए प्रेषित करते जा रहे हैं। भारतीय-जन केवल प्रेक्षक बने हुए हैं।

यदा कदा उदरशूल इतना अधिक होता है कि—रोगी प्राण त्याग करने के लिए उद्यत हो जाता है। इस अवस्था में यह विचारणीय है कि—उदरशूल वातज है अथवा मिश्रित ? पित्तज शूल को छोड़ करके शेष कोई भी उदरशूल होने पर "विषमुष्टि वटिका" को उष्ण जल के साथ सेवन करना उत्तम लाभप्रद है। कभी-कभी "यकृद् विकार" के कारण से उदर में जो शूल होता है; उसमें "शूलघ्नी वटिका" का उपयोग करना चाहिये।

जब कभी शरीर के किसी स्थान विशेष में उस स्थल की क्रिया शिथिल पड़ जाती है; तब उसे "सुप्तवात रोग" कहा जाता है। उसमें स्पर्श ज्ञान नहीं होता। कुचला ज्ञानवाहक तन्तुओं का उद्बोधक होने के कारण से उक्त रोग में भी लाभदायक होता है। संख्या ६ में लिखित 'कुचलादि वटी" को ३-४ मास तक सेवन करने से "सुप्तवात रोग" में अत्युत्तम लाभ होता है।

अ० अं० २२ व०। पृ० ११०९ से किंचित परिवर्तित।

अथ-विष-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥४१॥

स्थावर और जंगम भेद से विष को दो भागों में विभक्त किया जाता है। शंखिया, वत्सनाभ आदि अचेतन गरल को स्थावर तथा उन्मत्त कुक्कुर, शृगाल, वृश्चिक आदि चेतन प्राणियों के विष को जंगम कहते हैं। यहाँ पर स्थावर विष और जंगम विष इन दोनों के कतिपय प्रयोग लिखे जाते हैं।

शंखिया विष नाशक प्रयोग

१—गूलर के पत्र १० नग को जल से स्वच्छ धो करके शिला पर सूक्ष्म पीस लें। सूक्ष्म पीसने पर इसे पांच तोले जल में मिला करके भक्षितमल्ल रोगी को पिला दें। इस प्रकार से इस औषधि को १-१ घण्टा के पश्चात् पिलाते रहें। इस प्रयोग से संखिया का विष शान्त हो जाता है।

२–भृङ्गराज का रस पिलाने से खाये हुए शंखिये का विष नष्ट होता है।

३–काकमाची (मकोय) का रस पिलाने से भयंकर मल्ल (शंखिया) विष भी दूर हो जा … शाक सेवन करने से भी विष का प्रभाव … ची का शाक यथेष्ट खा करके एक छटांक … ऊपर विष का प्रभाव नहीं होता था। …

… योग

य … ोम) खा लिया हो और उसका विषैला प्र … ाशे फिटकरी-चूर्ण को जल के साथ खिल …

… उपाय

१ … साथ पीस करके पानी एक छटांक में … ात दिन तक निरन्तर सेवन कराते रहें … ों से बाहर निकाल देती है। फलतः पा …

२ … च्छ धो लें और शिला के ऊपर सूक्ष्म पीस … तपारद रोगी को पिला दें। इस प्रयोग को … रीर से बाहर निकल जाता है।

३ … च्छ धोकर सूक्ष्म पीसकर पानी में मिलाव … बाहर निकल जाता है।

… छटांक जल में मिट्टी के पात्र में मन्द मन्द अग्नि पर पकावें। जब … (एक छटांक जल) शेष रह जाये तो रोगी को पीने के लिए दें। पथ्य में गेहूं का दलिया दें। लवण, मरिच, घृत नहीं देना चाहिये।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से पारदीय विष, रस कर्पूर का विष और हिंगुल का विष नष्ट हो जाता है।

५—वमन प्रयोग— विष भक्षण में—वचा चूर्ण २ माशे को उष्ण जल के साथ रोगी को खिला दें। इससे वमन हो जाता है और विष का प्रभाव शान्त होता है।

जंगम विषहर प्रयोग

उन्मत्त कुक्कुर के विष में प्रयोग–(पागल कुत्ते के विष में)

१—स्वर्णक्षीरी के बीज १ तोला और काली मरिच के १७ दाने—इन दोनों

सकते हैं। अजीर्ण में कुचले का प्रयोग उत्तम लाभदायक होता है। जब खाये हुए अन्न का पाचन होने में १२ से १६ अथवा २० घण्टे का समय लगता हो; तब उष्ण जल के साथ कुचले का सेवन करना तत्काल लाभ दिखाता है। अथवा उसमें उक्त "शूलहरी वटी" को देना हितावह है। "शूलहरी गुटिका" को अजवाइन के अर्क वा उष्ण जल के अनुपान के साथ सेवन कराने से—"असह्य हृदय वेदना" में अवश्य लाभ होता है। इसके सेवन से जाठर रस अधिक उत्पन्न होता है जो भक्षितान्न को पचाता है। [illegible] यह शान्त करता है। वातप्रधान रोगों में

[illegible] लों पर कुचले का प्रयोग करना अवाञ्छ-
[illegible] दोष है—उनको अनभिज्ञता से प्रयुक्त
[illegible] किया जाय; तो यश का स्थान अपयश
[illegible] से विचार किये बिना ही अज्ञता से विषों
[illegible] ब्रते हैं। अतएव विष प्रयोग में योजक
[illegible] के समस्त विष हाथ ऊपर उठा करके
[illegible] वाला मनुष्य जगत्पूजनीय हो सकता
[illegible] हो रहे हैं। अनभिज्ञ पुरुष असावधानी
[illegible] है; तो हम क्या करें? हम अपना कार्य
[illegible] र्लभः।"

[illegible] चित् विचार सहित उपयोग कर रहे हैं;
[illegible] ए प्रेषित करते जा रहे हैं। भारतीय-

[illegible] ता है कि—रोगी प्राण त्याग करने के
[illegible] विचारणीय है कि—उदरशूल वातज है
[illegible] पित्तज शूल को छोड़ करके शेष कोई भी उदरशूल होने पर "विषमुष्टि वटिका" को उष्ण जल के साथ सेवन करना उत्तम लाभप्रद है। कभी-कभी "यकृद् विकार" के कारण से उदर में जो शूल होता है; उसमें "शूलघ्नी वटिका" का उपयोग करना चाहिये।

जब कभी शरीर के किसी स्थान विशेष में उस स्थल की क्रिया शिथिल पड़ जाती है; तब उसे "सुप्तवात रोग" कहा जाता है। उसमें स्पर्श ज्ञान नहीं होता। कुचला ज्ञानवाहक तन्तुओं का उद्बोधक होने के कारण से उक्त रोग में भी लाभदायक होता है। संख्या ६ में लिखित 'कुचलादि वटी" को ३-४ मास तक सेवन करने से "सुप्तवात रोग" में अत्युत्तम लाभ होता है।

अ० अं० २२ व०। पृ० ११०६ से किंचित परिवर्तित।

अथ-विष-चिकित्सा-प्रकरणम् ॥४१॥

स्थावर और जंगम भेद से विष को दो भागों में विभक्त किया जाता है। शंखिया, वत्सनाभ आदि अचेतन गरल को स्थावर तथा उन्मत्त कुक्कुर, शृगाल, वृश्चिक आदि चेतन प्राणियों के विष को जंगम कहते हैं। यहाँ पर स्थावर विष और जंगम विष इन दोनों के कतिपय प्रयोग लिखे जाते हैं।

शंखिया विष नाशक प्रयोग

१—गूलर के पत्र १० नग को जल से स्वच्छ धो करके शिला पर सूक्ष्म पीस लें। सूक्ष्म पीसने पर इसे पांच तोले जल में मिला करके भक्षितमल्ल रोगी को पिला दें। इस प्रकार से इस औषधि को १-१ घण्टा के पश्चात् पिलाते रहें। इस प्रयोग से संखिया का विष शान्त हो जाता है।

२—भृङ्गराज का रस पिलाने से खाये हुए शंखिये का विष नष्ट होता है।

३—काकमाची (मकोय) का रस पिलाने से भयंकर मल्ल (शखिया) विष भी दूर हो जाता है। काकमाची औषधि विषघ्न है। इसका शाक सेवन करने से भी विष का प्रभाव नहीं होता। एक महात्मा जी थे। वे काकमाची का शाक यथेष्ट खा करके एक छटांक मल्ल (शंखिया) खा जाते थे। किन्तु उनके ऊपर विष का प्रभाव नहीं होता था।

तैल मिश्रित-अहिफेन-विषहर योग

यदि किसी ने तैल मिला हुआ अहिफेन (अफीम) खा लिया हो और उसका विषैला प्रभाव हो गया हो; तो उस अवस्था में चार माशे फिटकरी-चूर्ण को जल के साथ खिलाने पर अफीम का विष शांत हो जाता है।

अशुद्ध पारदीय विष विनाशक उपाय

१—वट (बरगद) के फल १ तोला को जल के साथ पीस करके पानी एक छटांक में मिलाकर रोगी को पिला दें। इस प्रकार सात दिन तक निरन्तर सेवन कराते रहें। यह औषधि ७ दिन में पारे को मूत्र मार्ग से बाहर निकाल देती है। फलतः पारदीय विष का प्रभाव नहीं होता।

२—जवासे की जड़ ७ माशे लेकर जल से स्वच्छ धो लें और शिला के ऊपर सूक्ष्म पीस करके एक छटांक जल में घोल करके भक्षितपारद रोगी को पिला दें। इस प्रयोग को ४ दिन तक करने से पारा मूत्र मार्ग द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

३—अरणी के पत्र ३½ तोले को जल से स्वच्छ धोकर सूक्ष्म पीसकर पानी में मिलाकर रोगी को पिलाने से पारा मूत्रीय मार्ग से बाहर निकल जाता है।

४—कट्फल (कायफल) २ तोले लेकर सात छटांक जल में मिट्टी के पात्र में मन्द मन्द अग्नि पर पकावें। जब सातवाँ भाग (एक छटांक जल) शेष रह जाये तो रोगी को पीने के लिए दें। पथ्य में गेहूं का दलिया दें। लवण, मरिच, घृत नहीं देना चाहिये।

गुण—इस क्वाथ के सेवन से **पारदीय** विष, **रस** कर्पूर का विष और **हिंगुल** का विष नष्ट हो जाता है।

५—वमन प्रयोग— विष भक्षण में—वचा चूर्ण २ माशे को उष्ण जल के साथ रोगी को खिला दें। इससे वमन हो जाता है और विष का प्रभाव शान्त होता है।

जंगम विषहर प्रयोग

उन्मत्त कुक्कुर के विष में प्रयोग–(पागल कुत्ते के विष में)

१—स्वर्णक्षीरी के बीज १ तोला और काली मरिच के १७ दाने—इन दोनों

को जल के साथ सूक्ष्म पीसकर आध पाव जल में मिला करके पागल कुत्ते के काटे हुए व्यक्ति को पिला दें। इसे केवल प्रातः समय दिन में एक वार पिलावें। इस विधि से निरन्तर ३-४ दिन प्रयोग करें। इसके सेवन से रोगी को वमन और विरेचन होते हैं। उसमें पीले वर्ण के कृमि निकलते हैं। यह प्रयोग शरीरगत विष को बाहर निकाल देता है।

२—इसी प्रकार से द्रोणपुष्पी (गूमा) का प्रयोग करने से उन्मत्त कुक्कुर का विष शान्त हो जाता है।

३—खूम्मा वनस्पति का सूक्ष्म चूर्ण और पुराना गुड़—दोनों औषधियों को समान-समान ले करके एकत्र घोटलें। अच्छे प्रकार घुटाई करके १-१ माशा प्रमाण की गोली बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ गोली खाकर ऊपर से सद्योजल पीवें।

गुण—यह वटी उन्मत्त कुक्कुर के विष को शान्त करती है। जिस व्यक्ति को पागल कुत्ते ने काट लिया हो, उसे यह औषधि सेवन कराने से लाभ हो जाता है। इस प्रयोग का काटने के पश्चात् आठ दिन के अन्दर ही एक ही दिन सेवन करने पर विष का प्रभाव नहीं होता। यह प्रयोग सन्त प्रदत्त है।

४—अपामार्ग प्रयोग—अपामार्ग (चिरचिटे) के पत्रों को पानी से स्वच्छ धो करके, शिला पर भांग के सदृश सूक्ष्म पीस कर जल में घोल कर रोगी को पिला दें। इस प्रकार कुछ दिन तक प्रतिदिन प्रयोग करने से—सर्प, वृश्चिक, मक्षिका, खटमल आदि जन्तुओं का विष प्रभाव नहीं करता। सन्त प्राप्त प्रयोग।

५—वृश्चिक दंश हर प्रयोग—उत्तम श्वेत सैंधव लवण की एक डली ५ तोले की लेकर उसे ३ दिन धूप में और तीन रात्रि ओस में रख दें। इसके पश्चात् चतुर्थ दिन उस सैंधव लवण को खरल में डाल करके १२ घण्टे तक उत्तम प्रकार दृढ़ता के साथ मर्दन करें। ४ प्रहर (१२ घण्टे) तक अजस्र घुटाई होने के उपरान्त जब यह नेत्रों में अञ्जन लगाने के समान सूक्ष्म बन जाय; तो इसे स्वच्छ शीशी में भरकर काक (डाट) लगाकर सुरक्षित रखिये।

गुण—वृश्चिक ने शरीर के जिस भाग में काट लिया हो उसके विपरीत ओर की चक्षु में इस अञ्जन को आँजना चाहिए। इस प्रयोग से बिच्छू का विष उतर जाता है। यदि कास में अन्य कोई औषधि लाभदायक सिद्ध नहीं हो; तो अदरक के रस और मधु के साथ इसे उचित मात्रा में देने से एक सप्ताह में भगवान् चाहे तो पूर्ण लाभ होगा। जिस व्यक्ति के शरीर में बाल गिरते हों; तो वहाँ पर इस अञ्जन को कुछ दिन तक निरन्तर मलने से केश उत्पन्न हो जाते हैं। यह प्रयोग अनेक गुणों से पूर्ण है। एक वार अवश्य बनाकर लाभ उठावें।

६—वृश्चिकदंशहर प्रलेप—सुमल्लखार, वर्की हरिताल, मनःशिला (मैंनसिल) और मुश्क कर्पूर—इन चार औषधियों को समभाग में (अशुद्ध ही ग्रहण करें) लें। सबका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर तुलसी के रस अथवा अपामार्ग के रस में ८ घण्टे तक मर्दन करके रख लें।

गुण—वृश्चिक ने जिस स्थान पर काटा हो, वहाँ पर पानी में घिस करके इस लेप को लगा दें। १० मिनट में आराम हो जाता है। अनुभूत है।

परिशिष्ट

काञ्जी-निर्माण विधि—एक सेर चावलों को सोलह सेर जल में पकावें। चावलों के पकने पर मण्ड को वाहर निकाल लें। इसके उपरान्त एक सेर कुलथी को २० सेर जल में पका कर क्वाथ बनावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार लें। शीतल होने पर हाथ से मर्दन करके छान लें। इस क्वाथ को चावलों के मण्ड में मिला दें। इसे तैल-लिप्त एक मिट्टी के पात्र में भर दें और इसमें राई, जीरा, सैंधव लवण, घी मे भुनी हुई हींग, सोंठ, और हल्दी–इन प्रत्येक द्रव्य का वस्त्रछन चूर्ण ५-५ तोले मिला दें। इसके अतिरिक्त इसमें—वासा के पत्र और माष (उड़द) के बड़े आध सेर बनाकर डाल दें। इस पात्र का मुख बन्द करके तीन दिन तक रख दें। इसके पश्चात् चतुर्थ दिन इसमें से खट्टी गन्ध आने लगे तो इसे छान करके उपयोग में लें। इसे "काञ्जी" कहते हैं। यह पीने के योग्य है।

वक्तव्य—औषधि शोधन करने के लिए जो काञ्जी बनाई जाती है, उसमें सैंधव लवण को छोड़कर अन्य मसाले मिलाने का आग्रह नहीं है।

द्वितीय विधि—एक सेर चावल अथवा ज्वार को सोलह गुणित जल में पकावें। जब एक भाग जल सूख जाय और तीन भाग शेष रहे; तब अग्नि से नीचे उतार कर, छान लें और ३-४ दिन तक बन्द रख दें; पीछे खट्टी गन्ध होने पर छान कर उपयोग में लें।

तण्डुलोदक-निर्माण विधि—चार तोले पुराने चावलों को यवकुट चूर्ण बना लें। इसे ३२ तोले जल में १।। घण्टे तक भिगोकर रखने के पश्चात् इसे हाथ से मर्दन करके छान लें। इस छने हुए जल को तण्डुलोदक (चावल धोवन) कहते हैं। अनुपान आदि में इसका प्रयोग करें। शा० सं०

तुत्थ से ताम्र निर्माण विधि—एक सेर तुत्थ का चूर्ण बनाकर एक लोहे की कड़ाही में डाल दें और ऊपर से उसमें बथुवे का स्वरस भर दें। २४ घण्टे तक कड़ाही को इसी प्रकार रहने दें। तत्पश्चात् कड़ाही के ऊपर आये हुए स्वच्छ जल को सावधानी से बाहर निकाल कर उसमें पुनः बथुवे का स्वरस भर दें। २४ घण्टे के उपरांत उसके जल को पूर्ववत् निकालें। इस प्रकार ३-४ वार करें और कड़ाही के निम्न भाग में स्थित ताम्र को लेते रहें। एक सेर तुत्थ से आध पाव ताम्र निकल आता है।

तुत्थ-उत्पन्न ताम्र की भस्म-निर्माण विधि—उक्त विधि से तुत्थोत्थ ताम्र को ३ घण्टे तक निम्बू के रस में मर्दन करके उष्ण जल से धोलें। तत्पश्चात् आक

के दूध में खरल करके टिकिया बना, शुष्क करें। सूखने पर इन टिकियाओं को थूहर के डण्डे में रखकर, वस्त्र मिट्टी कर, धूप में शुष्क होने पर गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर ताम्र भस्म को निकाल लें। इसके पश्चात् वनगोभी के रस में मर्दन करके टिकिया बना, शुष्क करें। सूखने पर इन टिकियाओं को वनगोभी के कल्क (लुगदी) में रख, शुष्क कर, उसके ऊपर वस्त्र मिट्टी कर, धूप में सुखा, गजपुट की अग्नि दें। स्वाङ्गशीत होने पर भस्म को ग्रहण कर लें। यह भस्म मलिन श्वेत वर्ण की होती है। अनुपान भेद से समस्त रोगों में उपयोगी है। परीक्षित है।

हिङ्गुलोत्थ पारद

शुद्ध हिंगुल का सूक्ष्म चूर्ण बना लें। हिंगुल चूर्ण का जितना भार हो उससे द्विगुणित जीर्ण स्वच्छ खद्दर का वस्त्र लें और इस वस्त्र के ऊपर हिंगुल चूर्ण को बिछाकर इसे धीरे-धीरे लपेट कर गोला-सा बना लें और इस गोले के ऊपर सूत लपेट दें। पश्चात् गोले को मिट्टी के पात्र में रख कर अग्नि लगा दें। पात्र के ऊपर लोहे की कड़ाही को विपरीत (उलटी) रख दें। कुछ-कुछ वायु के आवागमन के लिये सन्धि में लकड़ी लगा दें। स्वाङ्गशीत होने पर इससे पारद को ग्रहण कर लें। पात्र के अन्दर चारों ओर ओस के कण के समान संलग्न पारद को ले लें। २० तोले हिंगुल से १६-१७ तोले पारद निकल आता है।

इस हिंगुलोत्थ पारद को और अधिक शुद्ध कर लेने से विशेष गुण आ जाते है। इसको शुद्ध करने के लिए—द्रव्य

ईंट के चूर्ण में २ दिन और पलाण्डु रस, घृत कुमारी के रस, चित्रक के क्वाथ, अर्कदुग्ध, स्नुही क्षीर, अडूसे के रस, निम्ब के पत्रों के रस, और तीव्र सिरका, इन प्रत्येक द्रव्य के साथ पृथक्-पृथक् एक-एक दिन मर्दन करके धो लिया करें। तत्पश्चात् इसे चार तह किये हुए बलिष्ठ वस्त्र की थैली में रखकर पोटली बना लें। पश्चात् पारद से द्विगुणित सैंधव लवण और लवण से चतुर्गुणित जल में दोलायन्त्र विधि से १२ घण्टे पकावें। आवश्यकता के अनुसार इसमें और जल डालते रहें। इस प्रकार से विशुद्ध हुए पारद में विशिष्ट गुण आ जाते हैं।

अथ यन्त्र प्रकरणम्

बाष्प स्वेदन-यन्त्र—एक हण्डी में क्वाथ, जल आदि स्वेदक द्रव औषधि डाल करके हाण्डी के मुख पर बलिष्ठ वस्त्र बान्ध दिया जाता है। उस वस्त्र के ऊपर स्वेदनीय द्रव्य रखकर एक शराव से हण्डी का मुख बन्द कर उसके ऊपर वस्त्र मिट्टी कर चूल्हे पर चढ़ा दें और अग्नि दें। इस प्रकार अग्नि जलाने से हण्डी-गत द्रव की बाष्प से वस्त्र-स्थित द्रव्य का स्वेदन हो जाता है।

ऊर्ध्वपातन-यन्त्र

एक चौड़े मुख की हण्डी में द्रव्य डाल करके उसके ऊपर एक दूसरी हाण्डी का तला टिका दिया जाता है। ऊपर के पात्र के पार्श्व में एक नाली जल को बाहर

निकालने के लिए होती है। इस नाली को बन्द करके ऊपर के पात्र में जल भरकर दोनों हण्डियों की सन्धि बन्द कर इसको अग्नि पर रखा जाता है। नीचे की हण्डी में रखा हुआ द्रव्य उड़कर ऊपर की हण्डी के तले पर आ लगता है। यदि दोनों हण्डियो के मुख मिलाकर, सन्धि बन्द कर अग्नि दी जाय और शीतल जल में भीगे हुए वस्त्र-खण्ड से ऊपर की हण्डी के तल को निरन्तर ठंडा रखा जाय, तो ऊर्ध्व-पातन हो जाता है। यदि दोनों हण्डियों के मुख मिलाकर तिरछा करके द्रव्य को उड़ाया जाय तो उसे "तिर्यक्-पातन-यन्त्र" कहते हैं।

नलिका-डमरू यन्त्र

समान मुखवाली दो हण्डिका लेकर उनके मुखों को जल के साथ पत्थर के ऊपर तब तक घिसें जब तक कि दोनों हण्डियों के दोनों मुख सन्धि शून्य न हो जांय। पत्थर के ऊपर थोड़ा-थोड़ा जल डालता जाय और हण्डी के मुख को धीरे-धीरे घिसता जाय। दोनों हण्डियों के मुखों को परस्पर संयुक्त करने पर जब दोनों मुख अच्छे प्रकार मिल जायँ और उनके मध्य में कोई छिद्र न रहे; तो घिसना बन्द कर दें। इसके उपरान्त ऊपर की हण्डी के ठीक मध्य-तल में एक ऐसा गोल छिद्र बना लें जिसमें हाथ की एक अङ्गुलि सरलता से आ जा सके। तत्पश्चात् खड़िया मिट्टी की बनाई हुए एक नली जो चार अङ्गुलि प्रमाण में लम्बी हो, लें, और उस नली के मध्य में सूआ अथवा चाकू से ऐसा छिद्र बना लें जिसमें फूला हुआ मटर का दाना निकल सके। इस नली को हाण्डी के छिद्र में लगा दीजिए। यह नली ऊपर की हण्डी के समतल और उसके अन्दर की ओर लटकती रहेगी।

इसके उपरांत इस यन्त्र के ऊपर ५ अथवा ७ वस्त्र मिट्टी करके धूप में सुखा लें। इसके अन्दर जारणीय द्रव्य रखकर वज्र मुद्रा देकर पारद में द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुणित, षड्गुणित गन्धक जारण किया जा सकता है। इसके साथ ही लोह आदि सप्त धातुओं की भस्में भी सरलता से सिद्ध हो जाती है।

उक्त नलिका के चारों ओर सिन्दूर रस लग जाता है। पारद आदि द्रव्य उड़कर बाहर नहीं जाते। साथ ही गन्धक जारण सुगमता से हो जाता है। जब तक गन्धक जीर्ण नहीं होता, तब तक नलिका के छिद्र से गन्धक का धूम्र बाहर निकलता रहेगा। गन्धक का जारण होने पर धूम्र निकलना बन्द हो जायगा। धूम्र निकलना बन्द होने के पश्चात् "गन्धक का जारण" हो चुका है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये। उस समय एक लोहे की शलाका को उक्त छिद्र में लगाकर देख भी लेना चाहिये। यदि शलाका में गन्धक कीच लग जाय, तो निश्चय कर लें कि अभी गन्धक जीर्ण नहीं हुआ है। उस समय और अग्नि जलावें और चार-पाँच तह किया हुआ गीला वस्त्र छिद्र को त्याग कर शेष यन्त्र के ऊपर ढक दें। जिससे पारा छिद्र के द्वारा बाहर न निकले क्योंकि पारद को रोकने वाला जो गन्धक था, वह जीर्ण

हो गया। उसके जारण होने पर पारद को रोकने के लिए यन्त्र के ऊर्ध्व भाग पर आर्द्र वस्त्र रखना चाहिये। पुन: परीक्षा करने पर जब शलाका में गन्धक कीचड़ न लगे; तो उस समय गन्धक जारण हो गया है; ऐसा निश्चय हो जाता है। स्वाङ्गशीतल होने पर यन्त्र को खोल लें और नली के चारों ओर संलग्न "चन्द्रोदय रस" को सङ्गृहीत कर लें।

ध्यान रहे कि—पारद एक सेर में गन्धक ६ सेर होगा; तो दो बड़े-बड़े नाँदों का डमरू-यन्त्र बनेगा। इसी प्रकार कज्जली के प्रमाण से ही छोटा वा बड़ा डमरू-यन्त्र बनेगा।

पुटयन्त्र

एक शराव में ऊर्ध्वपातन करने योग्य द्रव्य रखकर, उसके ऊपर से द्वितीय शराव को विपरीत (उलटा) रखकर, दोनों की सन्धि बन्द करके, धूप में सुखा लें। सूखने पर इस पुट को एक अङ्गीठी में जलते हुए कोयलों के ऊपर रखा जाता है। निम्न शरावस्थ द्रव्य उड़कर पुट की छत में जा लगता है।

डेकी-यन्त्र

एक समान आकार की तीन हाण्डी लें। एक हाण्डी में बड़े-बड़े छिद्र बना दें। इन छिद्रों को हण्डी के मध्य में इस प्रकार से बनाना चाहिये जिससे नीचे की हण्डी के मुख पर रखने से सभी छिद्र मुख के अन्दर समाविष्ट हो जायँ। मुख के बाहर कोई छिद्र न बने। जिस द्रव्य का तैल आदि निकालना इष्ट हो; उस द्रव्य को नीचे की हण्डी में डालकर उसके ऊपर छिद्रों वाली हाण्डी रख दें। छिद्रों के ऊपर एक छोटी तिपाई रखें, और उस तिपाई के ऊपर एक चीनी मिट्टी का छोटा पात्र रख दें। इसके पश्चात् तीसरी हण्डी में जल भरकर तिपाई वाली हण्डिका के ऊपर रख दें। और सन्धि बन्द करके अग्नि दें। इससे नीचे की हण्डी में रखे हुए द्रव्यों का तैल वा द्रव भाग उड़कर तीसरी हण्डी के तले पर लगता और द्वितीय हण्डी में रखे हुए पात्र में गिरता जाता है।

पाताल-यन्त्र

जिस वस्तु का तैल निकालना हो उसे एक छोटे मुख वाले लघु घट में भर कर उसके मुख पर एक लोहे की जाली को बांध कर घड़े के मुख के साथ एक कांच की कूपी का मुख जोड़ देते हैं और कूपी को भूमि के अन्दर गाड़ कर घड़े के ऊपर कण्डों को लगाकर अग्नि देते हैं।

अथवा सात वस्त्र मिट्टी की गई एक काली शीशी में तैल निकालने योग्य द्रव्य भर (जो औषधि भरनी इष्ट हो, उसे यवकुट चूर्ण बनाकर ही भरना उचित है) कर शीशी के मुख पर लोहे की बनी हुई सूक्ष्म जाली रखकर लोहे के तार से दृढ़ता के साथ बांध दें। इसके उपरांत एक मिट्टी की नांद अथवा लोहे की कड़ाही के ठीक मध्य भाग में एक ऐसा छिद्र बना लिया जाय; जिसमें वस्त्र मिट्टी की हुई उक्त शीशी का मुख बाहर निकल सके। छिद्र बन जाने के पश्चात् उसमें औषधि युक्त कांच-कूपी को विपरीत करके लगा दें और इसे चूल्हे के ऊपर रखकर शीशी के मुख के

नीचे कोई स्वच्छ पात्र रख दें। तत्पश्चात् नांद अथवा कड़ाही में शीशी के चारों ओर जंगली कण्डों को लगाकर अग्नि जला दें। अग्नि की उष्णता से कांच कूपीस्थ द्रव्य का तैल निकलकर नीचे के पात्र में सञ्चित हो जाता है।

पिधान यन्त्र—मिट्टी की एक हाण्डी जो सुडौल और अच्छी पकी हुई होनी चाहिए, उसे लेकर चौड़े पत्थर के ऊपर जल डालकर हाण्डी का मुख घिसें। जब तक हण्डी का मुख समान न हो जाए, तब तक घिसें। उसके पश्चात् उस हण्डी के मुख पर अच्छे प्रकार से आ सके ऐसा एक ताम्र-पत्र गोलाकार में काट लें। उस ताम्र-पात्र को शुद्ध करना चाहिये। उसको शुद्ध करने के लिए—

इमली के पत्र, सैंधव लवण और गो मूत्र इनमें ताम्रपत्र को डालकर १२ घंटे तक उबालने से शुद्धि होगी। क्योंकि इस शुद्ध किये हुए ताम्र-पत्र को हण्डी के मुख पर रखना पड़ेगा, अतएव इस पत्र को काठ की मूंगरी (हथौड़ी) से कूटना चाहिये। इस पत्र को काष्ठ की हथौड़ी से धीरे-धीरे कूट करके ऐसा बना लिया जाय; जिससे ताम्र-पत्र और हाण्डी के मध्य में कहीं पर भी छिद्र न रहे। इसके उपरान्त हण्डी के ऊपर तीन वस्त्र मिट्टी करके धूप में शुष्क कर लें। सूखने पर इसमें जारणीय द्रव्य (कज्जली) भर कर ऊपर से उक्त ताम्र-पत्र से ढक दें। अब १—चिकनी मिट्टी, २—सैंधव लवण और ३—कण्डों की वस्त्रछन राख—इन तीनों को अच्छी प्रकार जल से गूंद कर इससे सन्धिबन्द करने के पश्चात् वज्र मुद्रा करें। वज्र मुद्रा करने के उपरान्त ५–७ वस्त्र मिट्टी करके धूप में उत्तम प्रकार सुखा लें। इस यन्त्र को "पिधान-यन्त्र" कहते हैं।

इस यन्त्र में गन्धक जारण पारद के साथ ही होता है। इसके साथ ही साथ ताम्र की भस्म भी सिद्ध होती है। इस सरल विधि में पारद उड़कर बाहर नहीं जा सकता। अन्तर्धूम रस के पकने से औषधि बहुगुणकारी बनती है। अपनी इच्छानुसार स्वर्ण, रजत, लोह, अभ्रक आदि जिस धातु की भस्म बनानी हो; वह शुद्ध धातु कज्जली के साथ रख देने से दो-तीन वार में उत्तम भस्म निष्पन्न होती है। इस यन्त्र की रचना-शैली भी सुगम है।

बालुका-यन्त्र के लिए—सिद्ध-भ्राष्ट्री (चन्द्रोदयकरी)

कूपीपक्व-रसायन निर्माण करने के लिए भट्टी बाहर से चौकोन और भीतर से गोल बनानी चाहिये। नीचे कुछ गोलाई अधिक और ऊपर गोलाई न्यून रखनी चाहिये। जिससे अग्नि की लपटें अच्छे प्रकार से लग सकें। प्रथम २८ इंच चौकोन भूमि में ८ इन्च का गहरा गड्ढा बना करके उसे गोबर और मिट्टी से अच्छे प्रकार लेप दें। इसके उपरान्त भ्राष्ट्री (भट्टी) की दीवार बनावें। दीवार को बनाते समय सावधानी तथा चित्त की एकाग्रता से कार्य करना चाहिये। बीच में गोल भाग रहे, इस प्रकार सम्भाल कर दीवार बनावें। नीचे चौकोन २८ इन्च का और ऊपर २४

इञ्च रखिये, इस कारण भूमि पर से दीवाल अन्दर की ओर कुछ बढ़ती हुई बनानी पड़ेगी।

भूमि के समान दीवार होने पर भित्ति के बराबर बीच में एक मुख लकड़ी डालने के लिये ७ इञ्च चौड़ा और ८ इञ्च ऊंचा (लम्बा) रखना चाहिये। मुख के ऊपर भी दीवार बनानी होगी। दीवाल की ऊंचाई गड्ढे में से २४ इञ्च और भूमि से १६ इञ्च रहेगी। दीवाल की मोटाई ६ इञ्च ऊपर के भाग मे रहे, इस प्रकार से सावधान होकर बनावें। नीचे की मोटाई लगभग ८ इञ्च रहेगी। ऊपर के भाग की दीवाल चारों ओर ६-६ इञ्च मोटी रहने से बीच में १३ इञ्च गोलाकार स्थान बालुका-यन्त्र को रखने के लिए रिक्त रह जायगा।

मुख की ओर की दीवार को छोड़ करके शेष तीनों भित्तियों में भूमि से १० इञ्च ऊंचाई पर पैर के अङ्गुष्ठ के समान मोटी ९-९ इञ्च लम्बी लोहे की साटें रखनी चाहिए। इन सांटों का ३-३ इञ्च लम्बाई जितना भाग मिट्टी के भीतर रहेगा और ६-६ इञ्च जितना भाग दीवाल में दब जाएगा। जो तीन-तीन इञ्च साटें मिट्टी के अन्दर दीखती हैं उन्हीं पर बालुका-यन्त्र की कुछ किनारी मिट्टी से बाहर दीखती रहेगी।

बालुका यन्त्र—एक पक्की मिट्टी की हाण्डी अथवा लोहे की कड़ाही ऐसी लें जो उक्त भट्टी के ऊपर आ जाय और भट्टी के ऊपर उस पात्र को रखने पर चारों ओर एक-एक अङ्गुलि प्रमाण में स्थान रिक्त रह जाए। एक-एक अङ्गुलि प्रमाण में चारों ओर स्थान रिक्त रहने से अग्नि की लपटें चतुर्दिक एक समान लगती रहती हैं और धूम भी निकलता रहता है। इस हण्डी की ऊंचाई लगभग १२ इञ्च और चौड़ाई शीशी को भीतर रखने पर चारों ओर लगभग दो-दो इञ्च का स्थान रिक्त रहना चाहिये। कुछ मिट्टी के पात्र तीव्र अग्नि के समय फूट जाते हैं, और लोहे के पात्र में मन्द-अग्नि के समय भी तीव्रताप लग जाने की सम्भावना है। अतएव समयानुसार मिट्टी की परिपक्व हण्डी अथवा कड़ाही आदि लोह-पात्र लेना चाहिये। यदि मिट्टी की हण्डी ली हो, तो २-३ वस्त्रमिट्टी करके उसके मुख पर लोहे के तार बाँध दें। ऐसा करने से टूटने का भय नहीं रहेगा। लोह-पात्र में भी २-३ वस्त्र मिट्टी करें। जो भी पात्र लिया हो उसके ठीक तल भाग में एक रुपये (ताम्बे का प्राचीन पैसा) के समान आकार में छिद्र कर लें। उसके ऊपर दो इञ्च चौकोर एक अभ्रक का खण्ड रख दें और उसके चारों ओर (शीशी को स्थिर रखने और बालु की रक्षा के लिए) थोड़ी मिट्टी लगा दें। मिट्टी शुष्क होने पर वस्त्र मिट्टी की हुई आतशी शीशी को अभ्रक-खण्ड के ऊपर सीधी रख कर चारों ओर अल्प मिट्टी लगा दें। इसके पश्चात् यन्त्र के चारों ओर रेत (बालु) भर दें।

आतशी-शीशी पर वस्त्र मिट्टी करने की विधि—एक बड़े पेट वाली संकुचित लम्बी ग्रीवा वाली कांच कूपी लें और उसके ऊपर ७ वस्त्र मिट्टी करें। वस्त्र मिट्टी

करने के लिए छनी हुई चिकनी मिट्टी के साथ अल्प गोबर और अश्व की लीद मिला लेने से अच्छी दृढ़ता आ जाती है। अथवा भिगोकर छनी हुई मिट्टी ८ सेर, बालु दो सेर, राख एक सेर और नमक आध सेर—इन समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला कर कीचड़ के तुल्य बना लें। इसके उपरान्त ८ से ६ इञ्च पर्यन्त लम्बाई वाले वस्त्र-खण्ड को कीचड़ के समान बनाई हुई मिट्टी में भिगोकर शीशी के ऊपर लपेट दें। एक लेप को लगाने के पश्चात् उसे धूप में दो दिन तक सुखावें। एक लेप के अच्छे प्रकार शुष्क होने के पश्चात् ही द्वितीय वस्त्र-मिट्टी का लेप लगावें। सात वस्त्र-मिट्टी करने में लगभग १४ दिन का समय व्यतीत हो जाता है।

अथ-मुद्रा-प्रकरणम्

साधारण मुद्रा—चिकनी मिट्टी को एक दिन जल में भिगोकर छान लें और उसमें चतुर्थ भाग गोबर तथा चतुर्थ भाग अश्व की लीद मिला करके भस्म बनाने वाले सम्पुट पर लेप करें। सम्पुट की सन्धि बन्द करें। इसे साधारण मुद्रा कहते हैं।

डमरू-यन्त्र की सन्धि बन्द करने की विधि—डमरू-यन्त्र की सन्धि बन्द करने के लिए—एक भाग चूने को दो भाग गेहूं के आटे में मिलाकर जल से गूंद कर लगावें। र० सा०

वज्रमुद्रा—पीपल की लाख एक तोला, लोहचूर्ण (लुहार की भट्टी के समीप जो लोहे का मल बिखरा हुआ रहता है, वह) अथवा लोह-भस्म १ तोला, रूई ३ माशे, सैंधव लवण १ तोला, बालू २ तोला, और चिकनी-मिट्टी ४ तोले लें। इन सर्व द्रव्यों को एकत्र मिलाकर घन के ऊपर रखकर हथौड़े से कूटें। थोड़ा-थोड़ा जल मिलाते हुए तीन दिन तक कूटना चाहिए। कूटते-कूटते जब यह चिकना कल्क बन जाय, तो इसे डमरू-आदि यन्त्र के ऊपर लगावें—सन्धि बन्द करें। इस मुद्रा के करने से पारद आदि द्रव्य यन्त्र से बाहर नहीं उड़ सकते।

द्वितीय-वज्र-मुद्रा—पूर्वोक्त लाख आदि ६ द्रव्यों में से सैंधव लवण को त्याग करके शेष पांच द्रव्यों को उक्त प्रकार से कूट कर कल्क बनाने पर यह द्वितीय प्रकार की वज्रमुद्रा सिद्ध होती है।

दृढ़मुद्रा—मधु तथा चूना अथवा गुड़ और चूना–दोनों को जल के साथ मिला कर सान लेते हैं। इसे शीशी और डाट की सन्धियों को बन्द करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसका नाम "दृढ़-मुद्रा" है।

मध्यम-मुद्रा—सैंधव लवण, चिकनी मिट्टी और जंगली कण्डों की भस्म—इन तीनों को समभाग लेकर जल के साथ सानकर कीचड़ के समान बना लेते हैं। इसका उपयोग ज्वर, शूलहर आदि औषधि-निर्माण में होता है।

महापुट

भूमि के अन्दर एक गड्ढा ऐसा बनावें, जो दो हाथ लम्बा और उतना ही

चौड़ा तथा लम्बाई के समान ही गहरा हो। उसे गोबर तथा मिट्टी से लेप दें और सूखने पर उसके आधे भाग में जङ्गली कण्डे भर कर मध्य में सम्पुट रख कर पुनः उसके ऊपर जङ्गली कण्डे भरें तथा अग्नि दें। इसको "महापुट" कहते हैं।

गजपुट

पृथ्वी के अन्दर डेढ हाथ गहरा, इतना ही चौड़ा और इतना ही लम्बा एक गड्ढा बनाकर उसे गोबर मिट्टी से लेप दें। शुष्क होने पर उसमें ऊपर-नीचे आरने और मध्य भाग में औषधि-सम्पुट रख कर अग्नि दें। इस पुट को "गजपुट" नाम से बोला जाता है। इस पुस्तक में जहाँ-जहाँ गजपुट में औषधि निर्माण करने का उल्लेख किया गया है, वहाँ-वहाँ इसी लक्षण के अनुसार "गजपुट" बनाना चाहिए।

कुक्कुट-पुट

भूमि में एक हाथ गहरा, एक हाथ चौड़ा और इतना ही लम्बा गड्ढा बना लें। उसे गोबर-मिट्टी से लेपकर. सूखने दें। तत्पश्चात् उसमें ऊपर-नीचे आरने और मध्य में सम्पुट रख अग्नि दें। इसको "कुक्कुट पुट" कहते हैं।

अथ पारदस्याष्ट-संस्काराः

(१) स्वेदन संस्कार—चित्रक मूल, शुण्ठी, काली मरिच, पिप्पली, सैंधव लवण, राई, मूली और अदरक—इन आठ द्रव्यों को समभाग मिलाकर ४० तोले लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में एक सेर (८० तोले) पारद मिलाकर काञ्जी के साथ तीन दिन तक मर्दन करके इसका गोला बना लें। इस गोले को केले के पत्र अथवा कमल के पत्र में लपेट कर ऊपर से सूत बान्ध दें। इसके उपरान्त बलिष्ठ वस्त्र की चार-तह की थैली में रख कर काञ्जी में ४८ घण्टे तक दोला-यन्त्र विधि से पकावें--स्वेदन करें।

यन्त्र में काञ्जी को डालता जाय और स्वेदन करता जाय। इस स्वेदन संस्कार में लगभग एक मन काञ्जी व्यय होगी, अतएव प्रथम काञ्जी की व्यवस्था करनी चाहिये। स्वेदन होने के उपरान्त पारद को दोलायन्त्र से निकाल करके डमरूयन्त्र से उड़ा लें। डमरूयन्त्र से कुछ पारद उड़ा देने के उपरान्त भी जो औषधियों की राख में पारा शेष रह जाता है वह हण्डी शीतल होने पर राख से स्वतः पृथक् हो जायेगा। कदाचित् राख में पारद का कुछ अंश शेष रह जाय, तो डमरूयन्त्र से पुनः ऊर्ध्वपातन कर लें। इस प्रकार से पारद का प्रथम संस्कार पूर्ण हो जाता है।

(२) मर्दन संस्कार–लाल ईंट का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण, पाकशाला का धूम्र, कम्बल वा ऊन की काली राख, और कड़वी तोरई के बीज—इन प्रत्येक द्रव्य को पारद का सोलहवाँ भाग ले करके समस्त द्रव्यों को पारद के साथ मिला कर निम्बू रस के साथ

३ दिन दृढ़ता से मर्दन करें। इसके उपरान्त डमरूयन्त्र द्वारा ऊर्ध्वपातन करने पर पारद शीशे के दोष से मुक्त हो जाता है।

इसके उपरान्त उस पारे में इन्द्रायण के मूल का चूर्ण और अङ्कोल के मूल का चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १६वाँ-१६वाँ भाग मिलाकर काञ्जी के साथ एक दिन खरल कर डमरूयन्त्र द्वारा उड़ाने पर पारदवंग दोषों से मुक्त हो जाता है।

(३) मूर्च्छन-संस्कार

घृतकुमारी के रस, त्रिफला-क्वाथ और चित्रक मूल के क्वाथ में पृथक्-पृथक् ७-७ दिन क्रमशः घोटें। घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन करने से पारद के मल का नाश, त्रिफला-क्वाथ से दाह और चित्रकमूल के क्वाथ से पारे का विष दोष क्षीण हो जाता है। इस प्रकार से २१ दिन तक मर्दन करने से पारद मूर्च्छित हो जाता है।

(४) उत्थापन-संस्कार

मूर्च्छित पारद को सूर्यताप में निम्बु के स्वरस के साथ १२ घण्टे मर्दन करें। इसके पश्चात् डमरू-यन्त्र से ऊर्ध्वपातन करने पर उत्थापन संस्कार निष्पन्न हो जाता है।

(५) पातन-संस्कार

ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् भेद से पातन तीन प्रकार का होता है।

(अ) ऊर्ध्व पातन—पारद में १/३ भाग ताम्र चूर्ण मिलाकर लोहे के खरल में निम्बु के रस के साथ ६ घण्टे मर्दन करके गोला बनाकर डमरूयन्त्र से ऊर्ध्वपातन कर लें।

(आ) अधः पातन—हरड़, बहेड़ा, आमला, चित्रकमूल, सैंधवलवण, राई, और सहिजन की छाल—इन समस्त द्रव्यों को समभाग मिलाकर वस्त्रछन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को पारद से आधा भाग लेकर पारे के साथ मिलाकर घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस में तब तक मर्दन करें; जब तक कि पारद के कण अदृश्य न हो जायँ। इसके उपरान्त इसे मिट्टी के घड़े में लेप करके, लेप वाले घड़े को ऊपर रखकर उसके नीचे समान मुख वाले दूसरे घड़े को रखकर डमरू यन्त्र बना लें। नीचे के घड़े को भूमि में गाढ़ दें और उसके चारों ओर इतना जल भर दें कि जिसमें नीचे का घट डूब जाय। ध्यान रहे कि ऊपर वाले घड़े का केवल चतुर्थांश ही भूमि के ऊपर रहना चाहिए। शेष तीन भाग भूमि के अन्दर आ जायगा। क्योंकि नीचे के घड़े के चारों ओर शीतल जल की व्यवस्था करनी हैं; अतएव उसके लिए एक बाँस की नली दो हाथ लम्बी पृथ्वी के अन्दर गाढ़ दें। जिसका एक मुख नीचे के घट के साथ लगा रहे; और दूसरा मुख ऊपर के घड़े से १-१॥ हाथ दूर रहे। इस नली को जल से पूर्ण रखना चाहिए। जैसे-जैसे नली रिक्त होती जाय वैसे-वैसे उसमें जल डालता जाय। इस योजना को करने के पश्चात् ऊपर के घड़े पर आरण्य कण्डों की अग्नि दें। मध्यम-अग्नि १२ घण्टे तक जलाने से पारद नीचे आ जाता है। अथवा भूधर यन्त्र से पारे का अधः पातन करें।

(इ) तिर्यक्-पातन—पारद का चतुर्थ भाग धान्याभ्रक लें और दोनों को एकत्र मिलाकर काञ्जी के साथ १२ घण्टे तक मर्दन करें। इसके पश्चात् ताड़ में से झड़ते हुए मद्य (ताड़ी) को भरने के लिए फूले हुए पेट वाले और लम्बी ग्रीवा वाले मिट्टी के घड़े आते हैं; ऐसे दो घड़े लें। एक घट में उक्त मर्दित पारद का लेप करके दूसरे घड़े के साथ डमरू यन्त्र बना लें। अर्थात् दोनों घड़ों के मुखों को परस्पर मिला कर दृढ़ता से सन्धि बन्द करें। पारद वाले घड़े के ऊपर वस्त्र मिट्टी करें।

पारद वाले घड़े को चूल्हे के ऊपर रख कर अग्नि दें और ऊपर वाले घड़े के ऊपर शीतल जल से भीगा हुआ वस्त्र फेरते रहें अथवा शीतल जल के छींटे देते रहें। पारद वाले घड़े के ऊपर के भाग में भी शीतल जल से भीगा हुआ वस्त्र घुमाते रहें।

वक्तव्य—पारद वाले घंट के अन्दर सुहागा और लाख का रस उसके चारों ओर लगा लें। इससे पारद लेपित घट के ऊपर शीतल जल के भीगा हुआ वस्त्र फेरने से वह फूट न सकेगा। यदि पारद लेपित घट के ऊपर शीतल जल से भीगा हुआ वस्त्र नहीं फेरा जायगा तो पारद का अधिक भाग उड़ जायेगा। पारद के घट पर वस्त्र मिट्टी अवश्य करें।

स्मरण रहे कि—"अग्नि की लपटें घड़े के ऊपर के भाग में न लगें" इसकी व्यवस्था प्रथम ही कर लेनी चाहिए।

इस विधि से युक्तिपूर्वक १२ घण्टे तक अग्नि देने पर पारद दूसरे घट में चला जाता है। इस पद्धति से ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पातन होने से पातन-संस्कार पूर्ण होता है।

(६) बोधन-संस्कार

उपर्युक्त संस्कारों से पारद निर्बल होता है; अतएव उसे बलवान् करने के लिए बोधन-संस्कार करना चाहिए। तदर्थ—पृष्ठपर्णी का पञ्चाङ्ग, और कमल-कन्द को समभाग में लेकर जल के साथ पीसकर इसका कल्क बना लें। इस कल्क की (कटोरे के समान) एक मूषा और उसके ऊपर के लिए एक ढक्कन बना लें और पारद को मूषा के अन्दर रखकर ऊपर से उसी ढक्कन से ढककर गोला बना उस गोले के ऊपर भोजपत्र अथवा कमल का पत्र लपेट कर सूत से बान्ध दें। तत्पश्चात् उसे चतुर्गुणित वस्त्र की थैली में भर कर दोला-यन्त्र विधि से तीन दिन तक काञ्जी में स्वेदन करें। उसके उपरान्त पारद को उससे निकाल कर उष्ण जल से धो लें। इस प्रकार पारद का बोधन-संस्कार पूर्ण हो जाता है।

(७) नियमन-संस्कार

गन्धनाकुली (सर्पाक्षी) [अभावे रास्नामूल] का कन्द, इमली, वाञ्झ ककोड़े का कन्द, भाङ्गरा, नागरमोथा, और धत्तूरे के बीजों का क्वाथ बना लें। इस क्वाथ में पारद को १२ घण्टे तक दोलायन्त्र विधि से पकावें। इसके उपरान्त उसे निकाल

कर काञ्जी से धो लें। इस संस्कार से पारद की चञ्चलता समाप्त होकर उसमें स्थिरता आ जाती है।

(८) सन्दीपन-संस्कार

सैंधव लवण, समुद्र लवण, राई, सुहागा, सहिजन की छाल, काली मरिच, पिप्पली, यवक्षार, सर्जक्षार, चित्रक मूल, और बिजौरा—इन प्रत्येक द्रव्य को तुल्य भाग में लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को पारद से द्विगुणित लेकर पारे के साथ मिलाकर निम्बु के स्वरस में ७ दिन खरल कर गोला बना, उसके ऊपर भोजपत्र लपेट कर सूत से बान्ध दें और बलिष्ठ वस्त्र की थैली में रखकर दोला-यन्त्र विधि से काञ्जी में ३ दिन तक पकावें। तत्पश्चात् उष्ण जल से पारद को धोकर एक काञ्च के पात्र में निम्बु के रस में पारद को डालकर १२ घण्टे तक सूर्य-ताप में रख दें। दूसरे दिन उसे गर्म जल से धो लें। इस प्रकार से पारद का आठवाँ सन्दीपन नामक संस्कार पूर्ण हो जाता है। इन संस्कारों से पारद सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो जाता है।

यद्यपि पारदीय अष्ट संस्कारों को करने में अत्यधिक परिश्रम तथा विपुल समय की आवश्यकता है और इन संस्कारों के कारण पारे का अधिक भाग उड़ भी जाता है; तथापि अष्ट संस्कारित पारद की व्याधिहरण योग्यता और कार्यकारिणी क्षमता अत्यधिक बढ़ जाती है।

अथ शोधन प्रकरणम्

सरसों के तैल की शुद्धि

आठ सेर सरसों का तैल लेकर उसे एक लोहे की कड़ाही में गर्म करें। पीली मिट्टी आध पाव को जल में भिगोकर मर्दन करके एक टिकिया बना लें। गर्म तैल में इस टिकिया को डाल दें। इसके उपरान्त उसमें आध पाव गुड़ छोड़ दें। गुड़ के जल जाने पर २ तोले सैंधव लवण को जल में घोल करके तैल में डाल दें और कुछ समय के उपरान्त अग्नि से नीचे उतार लें। इस विधि से सरसों के तैल की शुद्धि हो जाती है।

शिलाजीत की शुद्धि

शिलाजीत के पत्थरों को अष्ट गुणित त्रिफला के क्वाथ में २४ घण्टे तक भिगोकर रखिये। इसके उपरान्त हाथ से मर्दन करके ऊपर के जल को कड़ाही में डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। गाढ़ा होने पर इसे रख लें।

अथवा शिलाजीत के पत्थरों को द्विगुणित उष्ण जल वा त्रिफला कषाय में १२ घण्टे भिगोकर, मर्दन करके अल्प काल रखकर ऊपर का नितरा हुआ जल ले-लेते हैं। इस जल को चपटे लोह-पात्र में डालकर धूप में रख देते हैं और ऊपर आयी हुई मलाई को ले लेते हैं। पुनः अल्प उष्ण जल डालकर धूप में रख देने पर आई

हुई मलाई को ग्रहण कर लें। इसे धूप में शुष्क करके शीशियों में भर लिया जाता है।

वक्तव्य—अग्नि पर अधिक पकाने से शिलाजीत के अन्दर विद्यमान अनेक गुण लुप्त हो जाते हैं।

गेरू शुद्धि

कोमल गेरू का सूक्ष्म चूर्ण करके गाय के घी में भून लेने से गेरू की शुद्धि होती है।

रसकर्पूर की शुद्धि

(१) रसकर्पूर को १६ गुणा घी में १२ घण्टे तक दोलायन्त्र विधि से मन्द-मन्द अग्नि पर पकाने से रसकर्पूर का शोधन होता है। इसके शोधन की द्वितीय विधि—

(२) रसकर्पूर की एक डली ३ तोले की लें। ३ तोले लशुन का कल्क बनाकर रसकर्पूर के ऊपर लेप लगा दें और इसे आध सेर सरसों के तैल में मन्दाग्नि पर पकावें। रक्तवर्ण होने पर तैल से निकाल कर लेप को हटा कर पुनः ३ तोले लशुन की लुगदी का लेप करके आध सेर सरसों के तैल में पकावें और रक्तवर्ण का होने पर निकाल लें। इस विधि से तीन वार पकाने पर रसकर्पूर की शुद्धि होती है।

मृद्दारश्‍ृङ्ग की शुद्धि (मुर्दासंग)

निम्बु के रस और अदरक के रस की पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें और प्रत्येक भावना में ३ घण्टे मर्दन करने से मुर्दासंग की शुद्धि होती है।

काशीश की शुद्धि

भृङ्गराज के रस में एक दिन मर्दन करने से काशीश का शोधन होता है।

काले धत्तूरे के बीजों की शुद्धि

धत्तूरे के बीजों को (अच्छे पके हुए धत्तूर-बीज ही ग्रहण करें) १२ घण्टे तक गोमूत्र में भिगो कर रख दें। उसके उपरान्त बाहर निकालकर शुष्क कर लें। कूट कर छिलकों को दूर करके रख लें।

वत्सनाभ विष की शुद्धि

जो वत्सनाभ तोड़ने पर भीतर से ठोस और चिकना हो, ऐसा विष लेकर उसके छोटे-छोटे खण्ड बनाकर, मिट्टी अथवा काँच के पात्र में डालकर ऊपर से गोमूत्र इतना डाल दें कि— जिसमें द्रव्य डूब जाय। प्रतिदिन गोमूत्र को नवीन परिवर्तित करके पात्र को ढक दिया करें। इस प्रकार से तीन दिन गोमूत्र में रखने के पश्चात् उसे बाहर निकालकर स्वच्छ जल से धोकर एक वस्त्र की पोटली में वान्ध

कर गौ के दूध में दोलायन्त्र विधि से ३ घण्टे तक मन्दाग्नि पर पकावें। इसके उपरान्त उसे जल से धोकर, सुखाकर, सुरक्षित रख लें। सि० यो० सं०

फिटकरी शोधन

फिटकरी का चूर्ण बना लें और उसे लोहे की कड़ाही अथवा मिट्टी के पात्र में डालकर अग्नि पर पकावें। जब जलीयांश जल जाय और फिटकरी फूल जाय तो इसे उतार कर पीसकर शीशी में भर कर रख लें।

लशुन-शुद्धि—लशुन को छीलकर गौ के मट्ठे में भिगो दें। दिन भर भीगने के उपरान्त रात्रि में मट्ठा से बाहर निकाल कर शुष्क करें। दूसरे दिन पुनः मट्ठे में भिगोकर रात्रि को पृथक् कर लें। इस प्रकार सात दिन तक निरन्तर करने से लशुन शुद्ध होगा। प्रतिदिन नवीन मट्ठा डालना चाहिए। इस विधि से शुद्ध होने पर लशुन में गन्ध नहीं रहती।

हींग-शुद्धि—गौ के घृत में भूनने से हींग का शोधन होता है।

सुहागे की शुद्धि—फिटकरी के तुल्य ही सुहागे की शुद्धि करनी चाहिए।

कुचले की शुद्धि—कुचला प्रकरण में लिखित विधि से करें।

अफीम की शुद्धि—अफीम को अदरक के रस की १२ भावना दें। प्रत्येक भावना में २-३ घण्टे मर्दन करके, सुखाना चाहिए। इससे अफीम-शुद्धि हो जाती है।

अथवा अफीम को जल में घोलकर चार तह किये हुए वस्त्र से छान लेने पर उसका मल ऊपर आ जाता है जल नीचे रह जाता है। इस छने हुए जल को मन्दाग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लें। यह अफीम शुद्ध हो गई है। चि० च०

मल्ल शोधन-विधि

मल्ल (संखिया) के चने के समान छोटे-छोटे खण्ड बना लें और इनको वस्त्र की पोटली में बांधकर गोदुग्ध में दोला-यन्त्र-विधि से ३ घण्टे पकावें। इसके पश्चात् पोटली से मल्ल को निकालकर उष्ण जल से धोकर, छाया में शुष्क करके रख लें।

वक्तव्य—दोला-यन्त्र में पकाते समय मन्द-मन्द अग्नि जलावें।

अथवा सोमल (संखिया) के छोटे-छोटे खण्डों को शीशे के पात्र में डालकर उसमें नींबू का रस (औषधि डूबने योग्य) भर दें। प्रतिदिन पात्र के रस को निकाल कर उसमें नवीन रस परिवर्तित करते रहें। तीन दिन तक नींबू के रस में रखने के पश्चात् इसे पात्र से निकालकर उष्ण जल से धोकर शुष्क करके रख लें।

मल्ल भस्म

एक मिट्टी की हण्डी में मूली की राख अथवा अपामार्ग की राख १ सेर ऊपर-नीचे और उसके मध्य में शुद्ध संखिया दो तोले रखकर राख को अच्छे प्रकार हाथ से दबा दें। उसके पश्चात् हण्डी के मुख पर मिट्टी का ढक्कन रखकर वस्त्र-मिट्टी से सन्धि बन्द कर धूप में शुष्क करें और हण्डी को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर पैर के अंगुष्ठ के समान मोटी दो लकड़ी की अग्नि १२ घण्टे तक निरन्तर जलाने पर मल्ल भस्म सिद्ध होती है।

मात्रा और अनुपान—½ से २ चावल तक भस्म को मुनक्के में रखकर दांतों से स्पर्श किए बिना निगल जाये। ऊपर से दूध में घृत मिलाकर पीवे अथवा प्रथम घृत पान करने के पश्चात् औषधि सेवन करे। रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण तथा उपयोग—इस भस्म के सेवन से कास, श्वास, शीत ज्वर, कुष्ठ, पक्षाघात (अधरंग) और नपुंसकता आदि अनेक रोगों का शमन होता है।

सोमल तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य होने से कफ और वायु का शमन करता है और पित्त की वृद्धि करता है। यह रक्ताभिशरण क्रिया को बढ़ाता है। कृमिनाशक होने से रुधिर, माँस, अस्थि और मज्जा में रहे हुए विषमज्वर, उपदंश और कुष्ठ आदि के कीटाणुओं को नष्ट करता है। उपदंश जनित उपद्रव, गुद-शूक, नासा-व्रण, तालु-व्रण, पक्ष्मव्रण, कनीनिका-व्रण, नाणी-व्रण, अतिसार, आन्त्र-विकार, पक्षाघात आदि में लाभप्रद है। फुफ्फुस, हृदय और वातवाहिनियों को उत्तेजना देता है। यदि कफ-प्राधान्य सन्निपात में प्रारम्भ से ही सोमल का उपयोग किया जाये; तो रोग का बल बढ़ नहीं सकता। श्वास नलिका में कफ संचित होने से कण्ठ में घुर-घुर शब्द का होना, अचेतना, नाड़ी-गति का मन्द होना, शरीर में शीतलता की वृद्धि और भ्रम आदि लक्षण हों; कफ को बाहर निकालने की वातवाहिनयों में शक्ति नहीं हो; ऐसे समय पर सोमल भस्म का प्रभाव तत्काल होता है। किन्तु यदि ज्वर १०१ डिग्री से अधिक हो, नेत्र रक्त वर्ण के हों, पित्त-प्राधान्य अन्य लक्षण भी प्रतीत होते हों, तो ऐसी परिस्थिति में सोमल भस्म का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा रक्ताभिशरण की वृद्धि होकर मस्तिष्क में रक्त अधिक चढ़ता है।

वक्तव्य—कास, श्वास आदि रोगों में अधिक कफ की वृद्धि होने पर सोमल भस्म की अल्प मात्रा देनी चाहिए। अन्यथा कफ-प्रकोप, हृदय का अवरोध, नेत्रदाह, उदर-पीड़ा, शिर की पीड़ा, संधि स्थानों में पीड़ा, वृक्क स्थान में उष्णता, आदि उपद्रव होने लगते हैं एवं मूत्र अल्प तथा पीतवर्ण का होता और ज्वर आ जाता है। कदाचित् ऐसा होने पर मौक्तिक पिष्टी और शिलाजीत देकर उपद्रवों को शान्त करें। तीन दिन के पश्चात् आवश्यकता होने पर पुनः स्वल्प मात्रा में सोमल भस्म देना प्रारम्भ करें।

संखिया भस्म खाने वाले को मूली का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। पित्त

प्रकृति वाले को पित्तविकार में अथवा उष्ण ऋतु में मल्लभस्म नहीं देनी चाहिए।

द्वितीय विधि—पापड़खार ४ तोले लेकर उसे एक शरावे में ऊपर-नीचे आध-आध भाग और मध्य में एक तोला सोमल रखकर दूसरे शरावे से ढककर बलवान वस्त्र-मिट्टी करके सन्धि बन्द करें। ध्यान रहे कि सम्पुट करने के लिए समान प्रमाण के ऐसे दो शरावे लेने चाहियें, जिनकी संधि में रिक्त स्थान न रहे। सम्पुट को धूप में शुष्क करने के पश्चात् दो सेर कण्डों की अग्नि देने से श्वेत वर्ण की उत्तम कोमल भस्म सिद्ध होती है।

मात्रा और अनुपान—१ चावल से ४ चावल तक, मधु, दुग्ध, घृत वा मिश्री के साथ दें। श्वास रोग में गुड़ के हलवे के प्रथम ग्रास में दें।

उपयोग—यह भस्म फुफ्फुस-सन्निपात (न्यूमोनिया), विषमज्वर, कास, श्वास, कुष्ठ, पक्षाघात में हितकर है।

तृतीय विधि—शुद्ध सोमल, कलमी शोरा, चूना, सीप भस्म, सुहागा खील—प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोले और नवसादर १६ तोले लें। चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना, समस्त औषधियों को एकत्र मिला, ८ तोले अर्क-दुग्ध में दृढ़ता से मर्दन करके, दो-दो तोले की टिकिया बना, शुष्क कर, शराव सम्पुट करें और शुष्क होने पर २॥ सेर कण्डों में रखकर अग्नि दें। यह कृष्ण वर्ण की भस्म बनेगी। यह भस्म भार में कुछ अल्प होगी; परन्तु अधिक लाभप्रद है।

मात्रा और अनुपान—आधी से एक रत्ती तक आर्द्रक के रस, वा मिश्री मिश्रित दुग्ध के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—यह भस्म वातव्याधि, अधरंग, सन्धिवात, जीर्णज्वर, नवीन वातज्वर, कफज्वर, गलगण्ड और अर्श में हितकर है।

मल्ल-पुष्प

सोमल १० तोले को नींबू के रस में एक दिन मर्दन करें। इसके पश्चात् लाल फिटकरी का चूर्ण १० तोले मिलाकर एक घण्टा घोटें। इसको मिट्टी की एक छोटी हण्डी में भरकर उसके ऊपर दूसरी हण्डी रखकर डमरू-यन्त्र बना, सन्धि बन्द करके शुष्क करें। शुष्क होने के पश्चात् इस यन्त्र को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर ६ घंटे तक मन्दाग्नि दें। ऊपर वाली हण्डी पर शीतल जल से भीगा हुआ वस्त्र घुमाते रहें। एक वस्त्र के उष्ण होने पर दूसरा जल से भीगा हुआ वस्त्र यन्त्र के ऊपर घुमाना चाहिए। ६ घण्टे की मन्दाग्नि देने के पश्चात् अग्नि बन्द करें। स्वाङ्ग शीतल होने पर यन्त्र को खोलकर ऊपर वाली हण्डी के तल भाग में संलग्न मल्ल-पुष्प को सावधानी से संचित कर लें और शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ चावल, बतासे में रखकर वा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—मल्ल-पुष्प—श्वास, कास, जीर्णज्वर, कुष्ठ, रक्तविकार, सन्निपात, उपदंश, संधिवात, इन रोगों में अत्युपयोगी है। सन्निपात में जो कफ का संचय होकर रोगी के कण्ठ में घुर-घुर शब्द होने लगता है; मल्लपुष्प के सेवन से वह सत्वर दूर होता है।

वक्तव्य—पित्त प्रकृति वाले रोगियों को एवं १०२ डिग्री से अधिक तापमान होने पर मल्लपुष्प नहीं देना चाहिए। इसके सेवन काल में दूध और घृत की विशेष मात्रा सेवनीय और अपथ्य से दूर रहना चाहिए।

तुत्थ-शोधन-विधिः

तुत्थ को अम्ल वर्ग, तिलों के तैल, अश्वमूत्र, गोमूत्र में दोलायन्त्र विधि से पकाने पर तुत्थ-शोधन हो जाता है।

तुत्थ-भस्म

शुद्ध तुत्थ, शुद्ध गन्धक और शुद्ध सुहागा—इनको समभाग लेकर बड़हल के रस में मर्दन कर, गोला बना, शुष्क होने पर शराव सम्पुट बना, कुक्कुट पुट की अग्नि दें। इस प्रकार से २-३ बार कुक्कुट पुट देने पर तुत्थ भस्म बन जाती है।

मात्रा—आधी से एक रत्ती तक।

गुण—यह भस्म, वमन कराने, उपदंश में पिचकारी देने और नेत्र सम्बन्धित विकारों में लाभप्रद है।

ताम्र-शोधन-विधि

ताम्र-पत्र को तपा-तपाकर इमली के रस तथा नींबू के रस में ७-७ बार, और अर्क दुग्ध, दही के जल और घीग्वार के रस में पृथक्-पृथक् ३-३ बार बुझाने पर तांबा सर्व-दोष-रहित हो जाता है।

बंग-शोधन-विधि

बङ्ग को रांगा या कलई कहते हैं। इसे पिघलाकर हरिद्रा-मिश्रित निर्गुण्डी के रस, अर्क दूध, काञ्जी, गोमूत्र आदि किसी एक द्रव पदार्थ में ७ बार बुझाने से बंग की शुद्धि होती है। क्योंकि पिघलने के पश्चात् तरल (काञ्जी, गोमूत्र आदि द्रव) पदार्थ में जब बङ्ग डाला जाता है, तो वह उछलता है, इससे डालने वाले व्यक्ति के शरीर के जलने की आशंका अवश्य रहती है; अतएव जिस पात्र में बङ्ग बुझाना हो उसके ऊपर चक्की का पाट आदि कोई सछिद्र भारी पत्थर रखने के पश्चात् ही पिघले हुए राँगे को उस पत्थर के छिद्र में से नीचे के पात्र में डालना चाहिये। डालने वाले व्यक्ति को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

बंग भस्म

शुद्ध बंग को लोहे की कड़ाही में डालकर पिघलावें। जब बंग पिघल जायें, तो उसमें पलाश (ढाक) के पुष्पों का चूर्ण डालते जायें और कलछी से चलाते जायें। इस प्रकार ६ घण्टे तक तीव्राग्नि देने के पश्चात् कड़ाही को थाली से ढक दें। स्वांग-शीत होने पर वस्त्र से भस्म को छान लें। इसमें से कच्चे बङ्ग को पृथक रख लें और छने हुए बङ्ग को ६ घण्टे तक घृतकुमारी के रस में मर्दन करके दो-दो तोले की टिकिया बना, शुष्क करें और गजपुट की अग्नि दें। इस विधि से ४–६ पुट देने पर श्वेतवर्ण की कोमल भस्म सिद्ध होती है। अधिक पुट देने से रक्तवर्ण की भस्म सिद्ध होगी।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ रत्ती तक, मलाई और मिश्री के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण—यह बङ्ग भस्म प्रमेह, प्रदर, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, बहुमूत्र, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु आदि रोगों को शान्त करती है। स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, अत्यार्त्तव, कष्टार्त्तव में भी लाभप्रद है। बङ्गभस्म वातनाशक और शुक्रवर्धक है।

बङ्गभस्म-निर्माण की द्वितीय विधि

शुद्ध बङ्ग एक सेर को एक लोहे की कड़ाही में डालकर अग्नि के ऊपर उष्ण करें। जब कड़ाही में डाला हुआ बङ्ग पिघल जाए, तो हल्दी, अजवाइन, जीरा, इमली की छाल और पीपल के वृक्ष की छाल—इन पांचों द्रव्यों का चूर्ण (प्रत्येक का पृथक्-पृथक् ३-३ छटांक और १-१ तोला) एक सेर लें। प्रथम हल्दी का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा पिघले हुए बंग में डालता जाए और बड़ी कलछी से चलाता जाये। हल्दी का सम्पूर्ण चूर्ण जल जाने के पश्चात् यथाक्रम अजवाइन, जीरा, इमली और पीपल के चूर्ण को थोड़ा-थोड़ा डालते हुए उत्तम प्रकार से चलाता जाए,। सम्पूर्ण चूर्ण के जल जाने के पश्चात् कड़ाही की सम्पूर्ण बंग को कलछी से एकत्रित करके उसके ऊपर मिट्टी की शराव ढक दें और लगभग ६ घण्टे तक तीव्राग्नि जलाते रहें। इसके पश्चात् अग्नि बन्द कर दें। कड़ाही के शीतल होने पर सूप द्वारा बङ्गगत चूर्ण की राख को पृथक् करके इस बङ्ग को सूक्ष्म वस्त्र से छान लें। एक सेर बङ्ग में से किसी-किसी समय १—२ तोला अपक्व बङ्ग की छोटी-छोटी डलियाँ रह जाती हैं। उनको उससे पृथक कर लें। यह भस्म खड़िया मिट्टी के सदृश श्वेत वर्ण की होती है। इस छनी हुई भस्म को घृतकुमारी के रस में ६ घण्टे मर्दन करके, १-१ तोला की टिकिया बना, शुष्क कर पूर्ववत् अर्क-पत्र में लपेटकर, सूत से बाँधकर, शराव सम्पुट बना, वस्त्र मिट्टी करके धूप में शुष्क करें और गजपुट की अग्नि दें। इस प्रकार से ४-६ पुट देने से कोमल भस्म सिद्ध होती है।

मान-परिभाषा

८ लाल चावल	=	१ रत्ती वा गुञ्जा
८ रत्ती	=	१ माशा
१२ माशा	=	१ तोला वा कर्ष
२½ तोला	=	१ औंस
५ तोला	=	१ छटाँक
४ छटाँक	=	१ पाव
८ छटाँक	=	½ सेर
१६ छटाँक	=	१ सेर
४० सेर	=	१ मन

ॐ भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वति नो बृहस्पतिर्दधातु।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

नमो भगवद्भ्य आत्रेयादिभ्यो महर्षिभ्य आयुर्वेदविद्या प्रवर्त्तकेभ्यो नमो गुरुभ्यश्च॥

आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्ण देव जी चैतन्य पाराशर प्रणीत
चिकित्सा-आलोक समाप्त॥

अशुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	ओइम्	ओ३म्
३०	३२	माली मिर्च	काली मिर्च
३२	३०	मुछे	मुझे
४२	७	(१२) सूतराज···	(१३) सूतराज···
४७	१२	अक्छी	अच्छी
४६	२८	गिलोया	गिलोय
६२	२४	अत्युयोगी	अत्युपयोगी
६६	१६	तेहो	होते
६८	३	सैंधव लवर्ण, चूर्ण	सैंधव लवण चूर्ण,
६८	३१	हर	प्रहर
१०६	७	(२) कुण्ठादि	(२) कुष्ठादि
१२६	७	अपन	अपनी
१२६	६	पची	पच
१३४	२६	(१०) आदित्यरस रस	(१०) आदित्य रस
१४१	२	बीजा	बीज
१४७	२६	[illegible]	जल
१४८	३१	जिनती	जितनी
१७७	२८	[illegible]	वृद्ध
२१३	८	([illegible]) वातगज···	(३) वातगज···
२१७	१८	(तित्ली)	(तिल्ली)
२१७	२६	(१) धृतकुमारि···	(१) घृतकुमारि···
२१७	३३	अंतिम शब्द	मिट्टी
२२६	४	सभी	भी
२४४	३२	बाजा	बाजारू

प्रकाशक श्री चैतन्य संस्थान, योगाश्रम,
रजपुरा-मेरठ (उ० प्र०)